मानव धर्म्म प्रकास

अर्थात्

मनुस्मृति का हिन्दी भाषा में अनुवाद।

काशी के राजकीय संस्कृत पाठशाला के धर्मशास्त्र के

अध्यापक श्री गुलजार पण्डित ने किया।

दूसरी बार छापा·

ई· जे· लाजरस कम्पनी साहिब ने मेडिकल् हाल् नामक छापे ख़ाने में छपवाया।

सन १८७८ ईस्वी·

इस का मोल ४) रुपये

मानव धर्म्म प्रकास

अर्थात्

मनुस्मृति का हिन्दी भाषा में अनुवाद।

काशी के राजकीय संस्कृत पाठशाला के धर्मशास्त्र के अध्यापक

श्री गुलजार पण्डित ने किया।

दूसरी बार छापा·

ई· जे· लाजरस कम्पनी साहिब ने मेडिकल् हाल् नामक छापे ख़ाने में छपवाया।

सन् १८७८ ईस्वी·

॥ मनुस्मृति का सूची पत्र ॥

॥ अथ मनुस्मृति मूल और टीका भाषा ॥

बड़े बड़े ऋषि लोगों ने सकल वेदार्थ आदिक को चिन्तन करन हार जो निचिन्त बैठे थे मनु ऋषि तिस के समीप जा करके और विधि से प्रति पूजन करके इस बात को पूछा (इस स्थान पर प्रति शब्द से यह जाना जाता है कि प्रथम मनु ऋषि ने सब ऋषियों को आसन देके पूछा कि सुन्दर प्रकार से आए यह पूछना पूजन हुआ फेर ऋषियों ने मनु ऋषि का पूजन किया यह प्रति पूजन भया अब यहां ऐसी शंका होती है कि ग्रंथ की समाप्ति और विघ्न का नाश यह दो बात के लिये ग्रंथ के आदि मध्य अंत्य में बस्तु कथन रूप अथवा आशीर्वाद रूप वा नमस्कार रूप यह तीन प्रकार के मंगल हैं इस में कोई एक मंगल बड़े लोग करते हैं तो इस स्थान पर कौन मंगल भया तिस का समाधान यह है कि संसार के पालन के लिये परमात्मा सर्वज्ञता और ऐश्वर्य्य आदि गुण से युक्त मनु रूप होके उत्पन्न भये तिस का नामोच्चारण मंगल है सो आगे मनु जी बारहवीं अध्याय में कहेंगे कि मनु जी को कोई मनु कोई अग्नि कोई प्रजापति कोई इंद्र कोई प्राण कोई नित्य परब्रह्म कहता है)। १। कि हे भगवान (अर्थात् ऐश्वर्य्य आदि छः गुण से युक्त सो विष्णु पुराण में कहा है कि संपूर्ण ऐश्वर्य्य और वीर्य्य यश श्री ज्ञान वैराग्य ये सब जिस में रहे सो भगवान कहाता है) ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन चारों वर्णों को और अनुलोम प्रतिलोमों को (अर्थात् ऊंच बीज से नीच योनि में हुआ सो अनुलोम कहाता है और नीच बीज से ऊंच योनि में हुआ सो प्रतिलोम कहाता है जैसे ब्राह्मण से क्षत्रिया कन्या में भया यह अनुलोम है और क्षत्रिय से ब्राह्मणी कन्या में भया यह प्रतिलोम है इसी प्रकार से दूसरी जात में भी जानना ये सब वर्ण संकर हैं) इन्हों के धर्म को क्रम से ठीक ठीक हम लोगों से कहिये। २। क्योंकि

मनुमेकाग्रमासीनमभिगम्य महर्षयः। प्रतिपूज्य यथान्यायमिदं वचनमब्रुवन्। १। भगवन्स-
र्ववर्णानां यथावदनुपूर्वशः। अन्तरप्रभवानाञ्च धर्म्मान्नो वक्तुमर्हसि। २। त्वमेको ह्यस्य सर्वस्य
विधानस्य स्वयंभुवः। अचिन्त्यस्याऽप्रमेयस्य कार्य्यतत्वार्थवित्प्रभो। ३। स तैः पृष्टस्तथा सम्य-
गमितौजा महात्मभिः। प्रत्युवाचाऽर्च्यतान्सर्वान्महर्षीन् श्रूयतामिति। ४। आसीदिदन्तमोभूत-
मऽप्रज्ञातमऽलक्षणम्। अप्रतर्क्यमऽविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः। ५। * * * *

हे प्रभु अचिंत्य १ (अर्थात् चिंता करने योग्य नहीं) और अप्रमेय (अर्थात् इतना है इस के योग्य भी नहीं) और स्वयंभू (अर्थात् आप से भया) ऐसा जो वेद तिस में लिखित जो ज्योतिष्टोमादि यज्ञ और ब्रह्म ज्ञान उस के अर्थ के जाननहार केवल आप ही हैं। ३। जब उन महात्माओं ने इस प्रकार से उस महात्मा तेजस्वी से यह प्रश्न पूछा तब श्री मनु जी ने उन सब महर्षियों की पूजा करके कहा कि सुनिये। ४। यह सब जगत प्रथम प्रकृति में लीन रहा और प्रकृति भी ब्रह्म स्वरूप होकर नाम रूप से रहित थी और प्रत्यक्ष अनुमान शब्द ये तीन प्रमाण हैं इन प्रमाणों से नहीं जाना गया क्योंकि देख नहीं पड़ता या और लक्षण (अर्थात् चिन्ह सो भी न रहा और वेद भी प्रकट न रहा उस समय में) और अपने कार्य में असमर्थ की नाई रहा इस में यह प्रश्न हो सकता है कि ऋषि लोगों ने धर्म की बात पूछी और मनु ने उत्तर दिया कि यह जगत ऐसा रहा सो कैसे बने तो इस का उत्तर यह है कि जगत का कारण ब्रह्म है तिस का कथन धर्म ही है इस बात को मनु जी आगे कहेंगे धृति क्षमा दम अस्तेय शौच इंद्रियनिग्रह धी विद्या सत्य अक्रोध यह दश धर्म का लक्षण हैं इस में विद्या (अर्थात् आत्म ज्ञान) सो धर्म ही है महा भारत में भी लिखा है कि आत्म ज्ञान और तितिक्षा (अर्थात् क्षान्ति) यह दो सब का धर्म है और याज्ञवल्क्य ऋषि ने भी कहा है कि योग करके आत्मा का दर्शन यह तो परम धर्म है व्यास जी ने ब्रह्म मीमांसा के प्रथम सूत्र में कहा है कि ब्रह्म के जानने की इच्छा करना चाहिये दूसरे सूत्र में ब्रह्म का लक्षण कहने के लिये यह कहा कि जिस से जगत की उत्पत्ति पालन नाश है सोई ब्रह्म है इस प्रकार से और भी ऋषि लोगों ने कहा है ग्रंथ बढ़ि जायगा इस लिये बस करते हैं। ५। * * * *

इसके उपरान्त अप्रकट अचल सामर्थ्य वाला और तम का नाश करनेहारा परमात्मा भगवान इस महा भूतादि (अर्थात् पृथिवी जल तेज वायु आकाश आदि को प्रकाश करता हुआ) प्रकट भया । ६ । जो परमात्मा इन्द्रियों से परे सूक्ष्म अप्रकट नित्य अचिन्त्य और सब भूतों का आत्मा है सोई आप से आप प्रकट हुआ । ७ । उस के मन में इच्छा भई कि अपने शरीर से अनेक प्रकार की प्रजा उत्पन्न किया चाहिये तो उसने पहिले जल को उत्पन्न किया फिर उस जल में बीज डाला । ८ । तब वह बीज सुवर्ण के सदृश और सूर्य के समान अण्ड के आकार होगया फिर उस अंडे में ब्रह्मा (अर्थात् हिरण्यगर्भ) संपूर्ण सृष्टि के अर्थात् उत्पन्न जो चेतन अचेतन है तिस के पितामह आप से आप उत्पन्न भये । ९ । नारायण शब्द का अर्थ कहते हैं कि जल को नारा कहते हैं कारण इस का यह है कि नर परमात्मा का नाम है और जल परमात्मा का संतति है तो नारा (अर्थात् जल) पूर्व में परमात्मा का गृह था इस लिये परमात्मा को नारायण कहते हैं । १० । जो परमात्मा सब का कारण अप्रकट नित्य कारण कार्य स्वरूप है उस ने जिस पुरुष को उत्पन्न किया उसी को संसार में लोग ब्रह्मा कहते हैं । ११ । उस अंडे में अपने एक बरस तक रह के और परमात्मा का ध्यान करके उस अण्डे का दो भाग किया । १२ । उन दोनों खंडों में उस ने स्वर्ग और पृथिवी को बनाया फिर इन दोनों के बीच में आकाश आठो दिशा और अचल समुद्र को भी रचा । १३ । फिर ब्रह्मा ने परमात्मा से संकल्प विकल्प रूप मन को उत्पन्न किया और मन की उत्पत्ति के पहिले समर्थ और अभिमान करनेहारा अहंकार को बनाया । १४ ।

ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् । महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः । ६ । यो-
ऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः । सर्वभूतमयोऽचिन्त्यस्स एव स्वयमुद्बभौ । ७ । सो-
ऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः । अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् । ८ ।
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् । तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः । ९ । आपो
नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः । ता यदस्यायनं पूर्वन्तेन नारायणः स्मृतः । १० । यत्तत्का-
रणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् । तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते । ११ । तस्मि-
न्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम् । स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद्द्विधा । १२ । ताभ्यां
सशकलाभ्याञ्च दिवं भूमिं च निर्ममे । मध्ये व्योमदिशश्चाऽष्टावपां स्थानं च शाश्वतम् । १३ ।
उद्बवर्हात्मनश्चैव मनस्सदसदात्मकम् । मनसश्चाप्यहंकारमभिमंतारमीश्वरम् । १४ । महान्तमेव
चात्मानं सर्वाणि त्रिगुणानि च । विषयाणां ग्रहीतॄणि शनैः पञ्चेन्द्रियाणि च । १५ ।
तेषान्त्ववयवान्सूक्ष्मान् षण्णामप्यमितौजसाम् । सन्निवेश्यात्ममात्रासु सर्वभूतानि निर्ममे । १६ ।
यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्मास्तस्येमान्याश्रयन्ति षट् । तस्माच्छरीरमित्याहुस्तस्य मूर्तिम्मनीषिणः । १७ ।
तदा विशन्ति भूतानि महान्ति सह कर्म्मभिः । मनश्चावयवैः सूक्ष्मैस्सर्वभूतकृदव्ययम् । १८ ।

और अहंकार के पूर्व आत्मा का उपकार करनेहारा महत्तत्व को (अर्थात् बुद्धि को) और विषयों को (अर्थात् शब्द स्पर्श रूप रस गंध को) ग्रहण करनेहारी पांच ज्ञान इन्द्रियों को और पांच कर्म्म इन्द्रियों को और तन्मात्रा (अर्थात् शब्द स्पर्श रूप रस गंधों) को भी बनाया ये सब पदार्थ जो हुए हैं और जो कहे जांयगे सो सब त्रिगुणात्मक हैं (अर्थात् सतो गुण रजो गुण तमो गुण से युक्त हैं) । १५ । और उन अमित शक्तिमानों के (अर्थात् अहंकार तन्मात्रा आदि के) सूक्ष्म अवयवों को अपने अपने विकार में (अर्थात् तन्मात्रा का विकार पञ्च महा भूत अहंकार का विकार इन्द्रिय) मिला करके सब भूतों को (अर्थात् मनुष्य पशु पक्षी वृक्ष आदि को) परमात्मा ने बनाया । १६ । उसके (अर्थात्) प्रकृति सहित ब्रह्म के शरीर का छः सूक्ष्म अवयव (अर्थात् तन्मात्रा और अहंकार) ये सब कथित और वक्ष्यमाण (अर्थात् जो कहे जांयगे) और इन्द्रियों इन्हीं के उत्पन्न करने वाले हैं इसी कारण से पण्डित लोग ब्रह्म के स्वभाव को शरीर कहते हैं ऐसा लिखा है और जो कहे गए हैं कि जिस में ये छः (अर्थात्) तन्मात्रा और अहङ्कार रहै) उस को शरीर कहते हैं । १७ । फिर उस नाश रहित और सब भूत को करनहार ब्रह्म से अपने अपने कार्य्यों के साथ आकाश आदि महा भूत और सूक्ष्म अवयवों के साथ मन उत्पन्न भया आकाश का काम अवकाश देना वायु का गति तेज का पाक जल का पिण्डी करण और पृथिवी का धारण और मन का कार्य्य शुभ अशुभ की इच्छा । १८ । * *

इस के उपरान्त अविनाशी ब्रह्म ने इन सात बड़े पराक्रम रखने वाले महत्तत्व अहंकार पञ्च तन्मात्राओं को सूक्ष्म भाग से इस विनाशी जगत को बनाया । १९ । इन महा भूतों के मध्य में पूर्व पूर्व का गुण पर पर में जाता है जिस की चौथी संख्या है तिस में तितना गुण रहता जैसे आकाश पहिला है उस का एक शब्द ही गुण है और वायु दूसरा है उस में पूर्व का (अर्थात् आकाश का शब्द गुण) और निज का स्पर्श गुण है । इसी क्रम से अग्नि में तीन गुण (अर्थात् शब्द स्पर्श पूर्व भूतों का और अपना रूप है और जल में रस गुण अपना और पूर्वों का तीन गुण पृथिवी में गंध अपना और पूर्वों का चार गुण । २० । फिर परमात्मा ने सब जीवों का नाम और कर्म्म भिन्न भिन्न जिस का जैसा सृष्टि के पूर्व में रहा वैसा ही वेद शब्द से जानके पहिले बनाया जैसे गो जाति का गौ नाम रक्खा और अश्व जाति का अश्व ब्राह्मण का कर्म्म अध्ययन आदि ठहराया और क्षत्रिय का कर्म्म प्रजा रक्षण आदि । २१ । फिर प्रभु ने (अर्थात् ब्रह्मा ने) देवतों को और जड़ पदार्थों को और सूक्ष्म नित्य यज्ञ को उत्पन्न किया । २२ । तब अग्नि वायु सूर्य्य से क्रम करके ब्रह्मा नित्य तीनों वेद को (अर्थात् ऋग् यजु साम को निकाला यज्ञ सिद्धि के लिये । २३ । तिस पीछे काल और काल के विभाग (अर्थात् वर्ष मास पक्ष दिन आदि) और अश्विनी आदि नक्षत्र सूर्य्य आदि ग्रह नदी समुद्र पर्वत सम (अर्थात् सीधा स्थान) विषम (अर्थात् टेढ़ा स्थान) इन सब को बनाया । २४ । इन के

तेषामिदन्तु सप्तानां पुरुषाणां महौजसाम् । सूक्ष्माभ्यो मूर्तिमात्राभ्यः सम्भवत्यव्ययाद्व्ययम् । १९ ।
आद्याद्यस्य गुणन्त्वेषामवाप्नोति परः परः । यो यो यावतिथश्चैव स स तावद्गुणः स्मृतः । २० ।
सर्वेषान्तु सनामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् । वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे । २१ ।
कर्म्मात्मनाञ्च देवानां सोऽसृजत्प्राणिनां प्रभुः । साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञं चैव सनातनम् । २२ ।
अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयम्ब्रह्म सनातनम् । दुदोह यज्ञसिध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम् । २३ ।
कालं कालविभक्तींश्च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा । सरितस्सागरान् शैलान्समानि विषमाणि च । २४ ।
तपो वाचं रतिञ्चैव कामञ्च क्रोधमेव च । सृष्टिं ससर्ज चैवेमां स्रष्टुमिच्छन्निमाः प्रजाः । २५ ।
कर्म्मणाञ्च विवेकार्थं धर्म्माऽधर्म्मौ व्यवेचयत् । द्वन्द्वैरयोजयच्चेमाः सुखदुःखादिभिः प्रजाः । २६ ।
अण्व्यो मात्रा विनाशिन्यो दशार्द्धानां तु याः स्मृताः । ताभिस्सार्द्धमिदं सर्वं संभवत्यनुपूर्वशः । २७ ।
यन्तु कर्म्मणि यस्मिन्स न्ययुंक्त प्रथमं प्रभुः । स तदेव स्वयं भेजे सृज्यमानः पुनः पुनः । २८ ।
हिंस्राऽहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माऽधर्मावृताऽनृते । यद्यस्य सो दधात्सर्गे तत्तस्य स्वयमाविशत् । २९ ।
यथर्तुलिंगान्यृतवः स्वयमेवर्तुपर्यये । स्वानि स्वान्यभिपद्यन्ते तथा कर्म्माणि देहिनः । ३० ।
लोकानान्तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः । ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रञ्च निरवर्तयत् । ३१ ।

बनाने के पीछे तप अर्थात् प्राजापत्य आदि) वाणी रति (अर्थात् चित्त का संतोष) इच्छा काम क्रोध इन सब को और जो कहे जायंगे । देव आदिक प्रजा उन की बनाने की इच्छा करके बनाया । २५ । कर्म्मों के प्रकार के जानने के लिये (अर्थात् यज्ञ आदि धर्म ब्रह्म वध आदि अधर्म) अलग करके इन के सुख दुःख रूप फल को प्रजाओं के पीछे लगा दिया आदि शब्द करके काम क्रोध लोभ मोह क्षुधा पिपासा ये सब जोड़ा हैं इन को भी प्रजाओं के पीछे लगा दिया । २६ । पांचो महा भूतों की विनाश होने वाली सूक्ष्म मात्रा जो शब्द स्पर्श रूप रस गंध इन से सम्पूर्ण जगत क्रम से होता है । २७ । ब्रह्मा ने जिस जीव को पूर्व कल्प में जिस कर्म में (अर्थात् जिस स्वभाव में) लगाया रहा वही जीव फिर उत्पन्न समय में उसी कर्म में आप से आप लगा । २८ । हिंसा अहिंसा कोमलता कठोरता धर्म्म अधर्म्म सत्य झूठ इन में से पूर्व कल्प में जिस का जो कर्म ब्रह्मा ने बनाया था वही कर्म्म आप से आप उस जीव को प्राप्त भया जैसे सिंह हाथी को मारता है और मृग किसी को नहीं मारता है ब्राह्मण का कोमल स्वभाव और क्षत्रिय का क्रूर स्वभाव धर्म्म जैसे ब्रह्मचारी को गुरु सेवा अधर्म्म जैसे ब्रह्मचारी को मांस मैथुन की सेवा बहुधा देवतों का सत्य कथन और प्रायः मनुष्यों का असत्य कथन है । २९ । जैसे वसन्त आदि ऋतु अपने अपने कार्य्य के अवसर में (अर्थात् समय में) अपने अपने चिन्हों को (अर्थात् आम का बौरना गरमी का पड़ना घटा का उठना आदि) आप से आप पाते हैं तैसे ही जीव हिंसा आदि कर्म्मों को पाते हैं । ३० । भू लोक आदि के बढ़ने के लिये मुख बाहु जंघा चरण इन से क्रम करके ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र को बनाया । ३१ ।

फिर ब्रह्मा अपने शरीर का दो भाग करके आधे से पुरुष बना और आधे से स्त्री बनी इस के पीछे उस समर्थ ने स्त्री से संगम करके विराट पुरुष को उत्पन्न किया । ३२ । मनु जी कहते हैं कि हे महर्षि लोगो उस विराट पुरुष ने तप करके जिस को बनाया सो मैं ही हूं यह बात आप लोग जानिये और मैं सब का उत्पन्न करने वाला हूं । ३३ । फिर मैं ने प्रजा को उत्पत्ति की इच्छा करते घोर तपस्या करके पहिले दश बड़े ऋषियों को जो प्रजा के पति हैं तिन को उत्पन्न किया । ३४ । उन्हों के नाम ये हैं मरिचि अत्रि अंगिरा पुलस्त्य पुलह क्रतु प्रचेता वशिष्ठ भृगु नारद १० । ३५ । इन ऋषियों ने सात बड़े तेजस्वी मनु को और देवतों को और देवतों के स्थानों को (अर्थात् स्वर्गों को) और महा प्रतापी बड़े बड़े ऋषियों को उत्पन्न किया मनु शब्द इस स्थान में अधिकार वाची है चौदहो मन्वन्तर के बीच में जिस मनु का सृष्टि के आदि में अधिकार है उस मन्वन्तर में वही मनु कहाता है । ३६ । यक्ष (अर्थात् वैश्रवण आदि) राक्षस पिशाच गंधर्व अप्सरा असुर नाग वासुकी आदि सर्प गरुड़ आदि और पितरों के समूह को बनाया । ३७ । इस के पीछे बिजुली वज्र मेघ रोहित और इंद्र धनुष उल्क (अर्थात् लुक का टूटना) केतु और नाना प्रकार के तारागण (अर्थात् ध्रुव अगस्त्य आदि को) बनाया । ३८ । किन्नर (अर्थात् घोड़ मुहें) बानर मत्स्य विविध प्रकार के पक्षी पशु मृग मनुष्य और दुइदंता सांप को बनाया । ३९ । फिर बड़े कीड़े छोटे कीड़े शलभ ढील मांछी उंडुस डंस मसा नाना प्रकार के वृक्ष इन

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत् । अर्द्धेन नारी तस्यां स विराटमसृजत्प्रभुः । ३२ ।
तपस्तप्त्वाऽसृजद्यन्तु स स्वयं पुरुषो विराट् । तं मां वित्तास्य सर्वस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमाः । ३३ ।
अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् । पतीन्प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश । ३४ ।
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् । प्रचेतसं वशिष्ठं च भृगुन्नारदमेव च । ३५ । देवा-
न्देवनिकायांश्च महर्षींश्चामितौजसः । ३६ । यक्षरक्षः पिशाचांश्च गंधर्वाप्सरसोसुरान् । नागा-
न्सर्पान्सुपर्णांश्च पितृणाञ्च पृथग्गणान् । ३७ । विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च । उल्का-
निर्घातकेतूंश्च ज्योतींष्युच्चावचानि च । ३८ । किन्नरान्वानरान्मत्स्यान्विविधांश्च विहंगमान् ।
पशून्मृगान्मनुष्यांश्च व्यालांश्चोभयतो दतः । ३९ । कृमिकीटपतंगांश्च यूकामक्षिकमत्कुणम् ।
सर्वञ्च दंशमशकं स्थावरञ्च पृथग्विधम् । ४० । एवमेतैरिदं सर्वं मन्नियोगान्महात्मभिः । यथा
कर्मतपोयोगात्सृष्टं स्थावरजङ्गमम् । ४१ । येषान्तु यादृशङ्कर्म्म भूतानामिह कीर्तितम् । तत्तथा
वोऽभिधास्यामि कर्म्मयोगञ्च जन्मनि । ४२ । पशवश्च मृगाश्चैव व्यालांश्चोभयतो दतः । रक्षांसि
च पिशाचाश्च मनुष्याश्च जरायुजाः । ४३ । अण्डजाः पक्षिणः सर्पा नक्रा मत्स्याश्च कच्छपाः ।
यानि चैवं प्रकाराणि स्थलजान्यौदकानि च । ४४ । स्वेदजं दंशमशकं यूकामक्षिकमत्कुणम् ।
उष्मणश्चोपजायंते यच्चान्यत्किञ्चिदीदृशम् । ४५ । उद्भिज्जाः स्थावरास्सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः ।
ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः । ४६ । * * * * * * *

सब को बनाया । ४० । मनु जी कहते हैं कि इस प्रकार से बड़े २ ऋषियों ने अपने २ तपस्या के बल से हमारी आज्ञा पाकर जीवों के कर्मानुसार स्थावर जंगम को उत्पन्न किया । ४१ । जिन जीवों का जैसा कर्म इस संसार में पूर्व आचार्यों ने कहा है तिन जीवों का तैसा ही कर्म आप लोगों से हम कहेंगे और जन्म मरण का क्रम भी कहेंगे । ४२ । पशु मृग व्याल (अर्थात् दूनों ओर दांत वाले सर्प) राक्षस पिशाच मनुष्य ये सब जरायुज हैं (अर्थात् गर्भ का ढांकने वाला जो चर्म तिस में ये सब रहते हैं पीछे उस से निकलते हैं) । ४३ । पक्षी सर्प नांक मत्स्य कछुआ ये सब अण्डज हैं (अर्थात् अण्डे से उत्पन्न होते हैं) और जो इस प्रकार के स्थल से अथवा जल से उत्पन्न हों सो भी अण्डज कहाते हैं । ४४ । डंस मसा ढील मांछी उंडुस ये सब गरमी से होते हैं इस लिये स्वेदज कहाते हैं और अन्य जो ऐसे ऊष्मा से (अर्थात् गरमी से) होते हैं सो भी स्वेदज कहाते हैं स्वेद (अर्थात् पसीना) तिस से भए हैं । ४५ । स्थावर जितने हैं सो सब उद्भिज्ज कहाते हैं (अर्थात् पृथ्वी को फोड़ के निकलते हैं इस लिये उद्भिज्ज कहाते हैं) सो दो प्रकार के हैं कोई बीज से उत्पन्न होते हैं कोई डार लगाने से होते हैं यव धान आदि ओषधि कहाते हैं इन सबों का फल जब पक्का तब नाश को पाते हैं ये सब बहुत पुष्प फल सहित होते हैं । ४६ । * * * * *

जिन में फूल नहीं लगता केवल फल ही लगता है उन को वनस्पति कहते हैं जिन में फूल फल दोनों लगते हैं उन को वृक्ष कहते हैं। ४७। जिन में मूल से लता समूह उत्पन्न होती है और बड़ी शाखा नहीं होती उन को गुच्छ कहते हैं जैसे मालती आदि जिन में मूल एक है और अंकुर अनेक एकठ्ठे उत्पन्न होते हैं उन को गुल्म बोलते हैं जैसे ऊख सरहरी और ये अनेक प्रकार के होते हैं और तृण जाति कोई बीज से होते हैं कोई डार लगाने से होते हैं जैसे गुल्म आदि (अर्थात्) प्रताना जिन में सूत रहता है जैसा लौकी कोंहड़ा आदि और बल्ली (अर्थात् गुडुचि आदि)। ४८। इन सब में तमोगुण अधिक रहता है इस कारण से भीतर ही सुख दुःख का ज्ञान रहता है। ४९। इस विनाशी घोर संसार में ब्रह्मा से लेकर बल्ली पर्यंत जीवों की गति है सो आप लोगों से हम ने कहा। ५०। इस प्रकार से अचिन्त्य पराक्रमी ब्रह्मा ने इस को और मुझ को बना के सृष्टि काल को प्रलय काल करके नाश करते हुए लीन भए। ५१। जब ब्रह्मा जागते रहते हैं तब यह जगत देख पड़ता रहता है और जब वह शांत पुरुष सो जाता है तब सब जगत प्रलय को प्राप्त होता है। ५२। जब ब्रह्मा स्वस्थ होके सोते हैं तब कर्म से प्राप्त है देह जिस को ऐसा जो जीव और मन दोनों अपने कर्मों से (अर्थात् देह धारण से) जीव और संकल्प विकल्प से मन निवृत्त होते हैं (अर्थात्

अपुष्पाः फलवंतो ये ते वनस्पतयः स्मृताः। पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः। ४७। गुच्छगुल्मन्तु विविधं तथैव तृणजातयः। बीजकाण्डरुहाण्येव प्रतानावल्य एव च। ४८। तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्म्महेतुना। अन्तस्संज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः। ४९। एतदन्तास्तु गतयो ब्रह्माद्याः समुदाहृताः। घोरेऽस्मिन्भूतसंसारे नित्यं सततयायिनि। ५०। एवं सर्वं स सृष्ट्वेदं माञ्चाऽचिन्त्यपराक्रमः। आत्मन्यंतर्दधे भूयः कालं कालेन पीडयन्। ५१। यदा स देवो जागर्ति तदेदं चेष्टते जगत्। यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निमीलति। ५२। तस्मिन्स्वपिति तु स्वस्थे कर्म्मात्मानः शरीरिणः। स्वकर्म्मभ्यो निवर्तन्ते मनश्च ग्लानिमृच्छति। ५३। युगपत्तु प्रलीयन्ते यदा तस्मिन्महात्मनि। तदायं सर्वभूतात्मा सुखं स्वपिति निर्वृतः। ५४। तमोयन्तु समाश्रित्य चिरन्तिष्ठति सेन्द्रियः। न च स्वं कुरुते कर्म्म तदोत्क्रामति मूर्तितः। ५५। यदाणुमात्रिको भूत्वा बीजं स्थाष्णु चरिष्णु च। समाविशति संसृष्टस्तदा मूर्तिं विमुञ्चति। ५६। एवं स जाग्रत्स्वप्नाभ्यामिदं सर्वं चराचरम्। संजीवयति चाजस्रं प्रमापयति चाव्ययः। ५७। इदं शास्त्रन्तु कृत्वासो मामेव स्वयमादितः। विधिवद्ग्राहयामास मरीच्यादींस्त्वहं मुनीन्। ५८। एतद्वोयं भृगुश्शास्त्रं श्रावयिष्यत्यशेषतः। एतद्धि मत्तोऽधिजगे सर्वमेषोऽखिलं मुनिः। ५९। ततस्तथा स तेनोक्तो महर्षिर्मनुना भृगुः। तानब्रवीदृषीन्सर्वान्प्रीतात्मा श्रूयतामिति। ६०। स्वायम्भुवस्यास्य मनोः षड्वंश्या मनवोपरे। सृष्टवन्तः प्रजाः स्वाः स्वा महात्मानो महौजसः। ६१।

ब्रह्मा की यह नित्य प्रलय कहाती है)। ५३। जब एकठ्ठे सब जीव उस महात्मा में लीन हो जाते हैं तब यह सब भूतों का आत्मा सुख पूर्वक आनन्द पाके सोता है (अर्थात् तब महा प्रलय होती है)। ५४। अब मरण का प्रकार लिखते हैं इन्द्रियों के साथ यह जीव बहुत काल पर्यंत अज्ञानता में पड़ कर रहता है और जब अपना कार्य (अर्थात् श्वास प्रश्वास नहीं करता) तब पूर्व देह से निकल कर दूसरी देह में जाता है। ५५। और जब कि वही जीव भूत इन्द्रिय मन बुद्धि वासना कर्म वायु अज्ञान इन आठ पुरियों से युक्त होकर स्थावर बीज में प्रवेश करता है तब वृक्ष आदि रूप शरीर को धारण करता है और जब जंगम बीज में प्रवेश करता है तब मानुष आदि शरीर को धारण करता है। ५६। इसी प्रकार से वह अविनाशी ब्रह्मा जागने से और सोने से इस संपूर्ण चराचर को बारंबार जिलाता है और मारता है। ५७। इस शास्त्र को बनाकर ब्रह्मा ने प्रथम हम को विधि पूर्वक बताया और हम ने मरीचि आदि मुनियों को सिखलाया। ५८। और अब इस संपूर्ण शास्त्र को भृगु मुनि आप लोगों को सुनावेंगे क्योंकि उस ने हम से इस शास्त्र को पढ़ा है। ५९। जब इस प्रकार से मनु ने भृगु से कहा तब भृगु प्रसन्न होकर सब ऋषियों से कहा कि सुनिए। ६०। ब्रह्मा के पुत्र जो मनु तिस के वंश में छः मनु और भी हैं उन महा तेजस्वी और महात्माओं ने अपने २ अधिकार में अपनी २ प्रजा को उत्पन्न किया। ६१। * * * * *

तिन के नाम ये हैं स्वारोचिष औत्तमि तामस रैवत चाक्षुष वैवस्वत । ६२ । स्वायंभुव मनु आदि ये सातों मनु जो बड़े तेजस्वी हैं अपने २ अधिकार में संपूर्ण चराचर को उत्पन्न करके पालन करते भए । ६३ । अब कथित मन्वन्तर में सृष्टि और प्रलय आदि को काल के परिमाण को जानने के लिए कहते हैं अठारह पल की एक काष्ठा होती है और तीस काष्ठा की एक कला और तीस कला की एक मुहूर्त और तीस मुहूर्त की एक अहोरात्र (अर्थात् एक दिन रात) । ६४ । मनुष्य और देवता के रात्रि दिन का विभाग सूर्य करते हैं (अर्थात् सूर्य से मनुष्य और देवता के रात्रि दिन के विभाग का ज्ञान होता है) सब जीवों के सोने के लिए रात्रि बनी है और व्यवहार के लिए दिन बना है । ६५ । मनुष्य के एक मास के बराबर पितरों का अहोरात्र होता है उस में कृष्ण पक्ष काम करने के लिए दिन है शुक्ल पक्ष सोने के लिये रात्रि है । ६६ । मनुष्य के एक बरस के बराबर देवतों का एक रात दिन होता है जब तक सूर्य उत्तरायण रहैं तब तक दिन है और जब तक दक्षिणायन रहैं तब तक रात्रि है (अर्थात् मकर की संक्रांति से लेके मिथुन की संक्रांति तक उत्तरायण कहाता है और कर्क की संक्रांति से लेके धन की संक्रांति तक दक्षिणायन कहलाता है) । ६७ । ब्रह्मा के रात्रि दिन का जो प्रमाण है सो और प्रत्येक युगों का जो प्रमाण है सो संक्षेप से और क्रम से जानो । ६८ । देवतों के

स्वारोचिषश्चौत्तमिश्च तामसो रैवतस्तथा । चाक्षुषश्च महातेजा विवस्वत्सुत एव च । ६२ ।
स्वायंभुवाद्याः सप्तैते मनवो भूरितेजसः । स्वे स्वेऽन्तरे सर्वमिदमुत्पाद्यापुश्चराचरम् । ६३ ।
निमेषा दश चाष्टौ च काष्ठा त्रिंशत्तु ताः कला । त्रिंशत्कला मुहूर्तः स्यादहोरात्रन्तु तावतः । ६४ ।
अहोरात्रे विभजते सूर्य्यो मानुषदैविके । रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्म्मणामहः । ६५ ।
पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः । कर्म्मचेष्टास्वहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी । ६६ ।
दैवे रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः । अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् । ६७ ।
ब्राह्मस्य तु क्षपाहस्य यत्प्रमाणं समासतः एकैकशो युगानान्तु क्रमशस्तन्निबोधत । ६८ ।
चत्वार्य्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम् । तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथा विधः । ६९ ।
इतरेषु च संध्येषु ससंध्यांशेषु च त्रिषु । एकापायेन वर्त्तन्ते सहस्राणि शतानि च । ७० ।
यदेतत्परिसंख्यातमादावेव चतुर्युगम् । एतद्द्वादशसाहस्रन्देवानां युगमुच्यते । ७१ । दैविकानां युगानान्तु सहस्रं परिसंख्यया । ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयन्तावती रात्रिरेव च । ७२ । तद्वै युगसहस्रान्तम्ब्राह्मं पुण्यमहर्विदुः । रात्रिञ्च तावतीमेव तेऽहोरात्रविदो जनाः । ७३ । तस्य सोऽहर्न्निशस्यान्ते प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते । प्रतिबुद्धश्च सृजति मनः सदसदात्मकम् । ७४ । मनस्सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया । आकाशं जायते तस्मात्तस्य शब्दं गुणं विदुः । ७५ । आकाशात्तु विकुर्वाणात्सर्वगंधवहः शुचिः । बलवान जायते वायुः स वै स्पर्शगुणो मतः । ७६ । * *

चार हजार बरस का सत युग होता है युग के पूर्व देवतों का चार सौ ४०० बरस संध्या कहलाती है और युग के ऊपर उतना ही संध्यांश कहलाता है । ६९ । और तीन युगों का (अर्थात् त्रेता द्वापर कलि का) उन के संध्या और संध्यांश का परिमाण क्रम से एक सहस्र और एक शत के घटाने से होता है (अर्थात् ३००० बरस का त्रेता युग और ३०० बरस संध्या और संध्यांश और २००० बरस का द्वापर युग २०० बरस संध्या २०० बरस संध्यांश और १००० बरस का कलियुग १०० बरस संध्या १०० बरस संध्यांश) । ७० । यह जो चारों युग का परिमाण कहा उस से बारह हजार गुना देवतों का युग होता है । ७१ । और देवतों के हजार युग के बराबर एक दिन ब्रह्मा का होता है और उतनी ही रात्रि होती है । ७२ । ब्रह्मा के एक हजार युग के बराबर परब्रह्म का एक दिन होता है सो दिन बड़ा पवित्र है और रात्रि भी उतनी ही है इस रात्रि दिन के जानने वालों ने यह कहा है । ७३ । ब्रह्मा अपने दिन में काम करते हैं और रात्रि में सोते हैं जब जागते हैं तब संकल्प विकल्प रूप जो मन उस को भू आदि तीन लोक के उत्पत्ति के लिए आज्ञा देते हैं । ७४ । मनु ने ब्रह्मा की आज्ञा पाके आप से आप आकाश को बनाया उस का गुण शब्द है । ७५ । आकाश से सर्व गंध का पहुंचाने वाला पवित्र बलवान वायु उत्पन्न भया उस का गुण स्पर्श है । ७६ । *

वायु से अंधकार को नाश करने हारा और प्रकाश करने हारा ज्योति उत्पन्न भया उस का गुण रूप है। ७७। और ज्योति से जल उत्पन्न भया जिस का गुण रस है और जल से पृथिवी उत्पन्न भई जिस का गुण गंध है महा प्रलय के अन्त में (अर्थात् सृष्टि के आरंभ में प्रथम से उत्पत्ति का क्रम यही है)। ७८। जो देवतों का युग है बारह हजार बरस उस का एकहत्तर गुना एक मन्वन्तर कहाता है (अर्थात् एक मनु का अधिकार रहता है)। ७९। असंख्य मन्वन्तर और उत्पत्ति संहार इन सब को खेलवाड़ के सदृश बिना परिश्रम ब्रह्मा बारंबार करते हैं। ८०। संपूर्ण धर्म चारो चरण से सत्य युग में रहा और सत्य बोलना रहा अधर्म से कोई उपाय मनुष्य लोग नहीं करते थे। ८१। त्रेता आदि तीनों युगों में लोग अधर्म से (अर्थात् चोरी झूठ कपट से) उपाय करने लगे इस लिये धर्म एक एक चरण घट गया (अर्थात् त्रेता में तीन चरण का धर्म रहा द्वापर में दो चरण का कलि में एक चरण का रहा)। ८२। सत्य युग में सब जीव रोग से रहित रहे और जो मन में संकल्प करते थे सो सब होता था चार सौ बरस जीते थे और त्रेता आदि तीनों युगों में आयुष्य जीवों की एक एक चरण घट जाती है (अर्थात् त्रेता में तीन सौ बरस द्वापर में दो सौ बरस कलि में एक सौ बरस का जीना है) ८३। वेद में मनुष्यों का जो आयुष्य कहा है और कामना के लिये जो प्रार्थना है मनुष्यों की तिस

वायोरपि विकुर्वाणाद्विरोचिष्णुं तमोनुदम्। ज्योतिरुत्पद्यते भास्वत्तद्रूपगुणमुच्यते। ७७।
ज्योतिषश्च विकुर्वाणादापो रसगुणाः स्मृताः। अद्भ्यो गंधगुणा भूमिरित्येषा सृष्टिरादितः। ७८।
यत्प्राग्द्वादशसाहस्रमुदितं दैविकं युगम्। तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्तरमिहोच्यते। ७९।
मन्वन्तराण्यसंख्यानि सृष्टिः संहार एव च। क्रीडन्निवैतत्कुरुते परमेष्ठी पुनः पुनः। ८०।
चतुष्पात्सकलो धर्मः सत्यं चैव कृते युगे। नाधर्मेणागमः कश्चिन्मनुष्यान्प्रतिवर्तते। ८१।
इतरेष्वागमाद्धर्मः पादशस्त्ववरोपितः। चौरिकानृतमायाभिर्धर्मश्चापैति पादशः। ८२।
अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः। कृते त्रेतादिषु ह्येषा मायुर्ह्रसति पादशः। ८३।
वेदोक्तमायुर्मर्त्यानामाशिषश्चैव कर्मणाम्। फलंत्यनुयुगं लोके प्रभावश्च शरीरिणाम्। ८४।
अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे। अन्ये कलियुगे नृणां युगह्रासानुरूपतः। ८५।
तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते। द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे। ८६।
सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महाद्युतिः। मुखबाहूरुपज्जानां पृथक्कर्माण्यकल्पयत्। ८७।
अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनन्तथा। दानं प्रतिग्रहञ्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्। ८८।
प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च। विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः। ८९।
पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च। वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च। ९०।
एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म्म समादिशत्। एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया। ९१।
ऊर्द्ध्वं नाभेर्मेध्यतरः पुरुषः परिकीर्तितः। तस्मान्मेध्यतमस्त्वस्य मुखमुक्तं स्वयंभुवा। ९२।

का फल और मनुष्यों का प्रभाव (अर्थात् शाप और आशीर्बाद) ये सब जैसा युग होता है तैसा ही फलते हैं। ८४। युग के घटने के अनुसार मनुष्यों का धर्म सब युगों में भिन्न २ होता है (अर्थात् सत्य युग में और त्रेता में और द्वापर में और कलि में और है) ८५। सत्य युग में केवल तप प्रधान है त्रेता में ज्ञान द्वापर में यज्ञ कलि में दान प्रधान है। ८६। इस संपूर्ण जगत की रक्षा के लिये उस तेजस्वी ब्रह्मा ने मुख बाहु जंघा चरण से क्रम करके उत्पन्न जो चारो वर्ण तिन्हों के क्रम को भिन्न २ स्थापन किया। ८७। पढ़ना पढ़ाना यज्ञ करना यज्ञ कराना दान देना दान लेना ये छः कर्म ब्राह्मण के लिये स्थापन किया। ८८। प्रजा का रक्षण करना दान देना यज्ञ करना पढ़ना और संसार के भोग बिलास में चित्त को न लगाना ये पांच कर्म क्षत्रिय के लिये संक्षेप से स्थापन किया। ८९। पशुओं की रक्षा दान देना यज्ञ करना पढ़ना बेपार करना ब्याज लेना खेती करना ये सात कर्म वैश्यों के लिये ठहराया ९०। शूद्र के लिये एक ही कर्म्म प्रभु ने ठहराया कि निश्छल होकर इन तीनों वर्णों की सेवा करना। ९१। पुरुष की नाभी के ऊपर के सब स्थान मुख छोड़ के पवित्र हैं और इन सब से मुख तो और भी अधिक पवित्र है ये बातें ब्रह्मा ने कहा है। ९२।

इस सब सृष्टि में धर्म करके ब्राह्मण सब से उत्तम है इस लिये कि अति उत्तम अंग से उत्पन्न है और सब से श्रेष्ठ है और वेद को धारण करता है । ९३ । ब्रह्मा ने प्रथम उस के तप के बल से अपने मुख से उत्पन्न किया इस लिये कि संपूर्ण सृष्टि की रक्षा करें और देवतों पितरों को मंत्र के बल से हव्य और कव्य (अर्थात् देवतों के भाग और पितरों के भाग) को पहुंचावें । ९४ । उस ब्राह्मण से बढ़के कौन है कि जिस के मुख से देवता लोग हव्य खाते हैं और पितर लोग कव्य खाते हैं । ९५ । स्थावर जंगम जीव के मध्य में कीट आदि श्रेष्ठ हैं तिन से पशु आदि श्रेष्ठ हैं तिन से मनुष्य श्रेष्ठ हैं तिन से ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं । ९६ । ब्राह्मणों के मध्य में विद्वान (अर्थात् वेद शास्त्र के पढ़ने वाले) श्रेष्ठ हैं तिन से शास्त्र कथित कर्म के करने में बुद्धि जिस की है सो श्रेष्ठ हैं तिन से शास्त्रोक्त कर्म करने वाले श्रेष्ठ हैं तिन से ब्रह्मज्ञानी श्रेष्ठ हैं । ९७ । ब्राह्मण की उत्पत्ति जो है सो धर्म की नित्य मूर्ति है ब्राह्मण धर्म करने के लिये उत्पन्न है इस लिये मोक्ष पाने के योग्य होता है । ९८ । ब्राह्मण जब पृथिवी में उत्पन्न भया तब सब भूत के आत्मा ईश्वर धर्म रूप भंडार के रक्षा के लिये ब्राह्मण रूप होकर उत्पन्न भये । ९९ । जो कुछ कि वस्तु संसार में है सो सब मानो

उत्तमाङ्गोद्भवात् ज्यैष्ठ्याद्ब्रह्मणश्चैव धारणात् । सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः । ९३ ।
तं हि स्वयंभूः स्वादास्यात्तपस्तप्त्वादितोऽसृजत् । हव्यकव्याभिवाह्याय सर्वस्यास्य च गुप्तये । ९४ ।
यस्यास्येन सदा श्नंति हव्यानि त्रिदिवौकसः । कव्यानि चैव पितरः किंभूतमधिकन्ततः । ९५ ।
भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः । बुद्धिमत्सु नरः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणः स्मृताः । ९६ ।
ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः । कृतबुद्धिषु कर्त्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः । ९७ ।
उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिर्धर्म्मस्य शाश्वती । स हि धर्म्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते । ९८ ।
ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते । ईश्वरः सर्वभूतानां धर्म्मकोशस्य गुप्तये । ९९ ।
सर्वस्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किंचिज्जगतीगतम् । श्रैष्ठ्येनाभिजनेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणोऽर्हति । १०० ।
स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वम्वस्ते स्वन्ददाति । च आनृशंस्याद्ब्राह्मणस्य भुञ्जन्ते हीतरे जनाः । १०१ ।
तस्य कर्मविवेकार्थं शेषाणामऽनुपूर्वशः । स्वायम्भुवो मनुर्धीमानिदं शास्त्रमकल्पयत् । १०२ ।
विदुषा ब्राह्मणेनेदमध्येतव्यं प्रयत्नतः । शिष्येभ्यश्च प्रवक्तव्यं सम्यङ्नान्येन केनचित् । १०३ ।
इदं शास्त्रमधीयानो ब्राह्मणः शंसितव्रतः । मनोवाग्देहजैर्नित्यं कर्म्मदोषैर्न लिप्यते । १०४ ।
पुनाति पङ्क्तिं वंश्यांश्च सप्त सप्त परावरान् । पृथिवीमपि चैवेमां कृत्स्नामेकोपि सोऽर्हति । १०५ ।
इदं स्वस्त्ययनं श्रेष्ठमिदम्बुद्धिविवर्द्धनम् । इदं यशस्यमायुष्यमिदं निःश्रेयसं परम् । १०६ ।
अस्मिन् धर्म्मोऽखिलेनोक्तो गुणदोषौ च कर्म्मणाम् । चतुर्णामपि वर्णानामाचारश्चैव शाश्वतः । १०७ ।

ब्राह्मणों की निज वस्तु के सदृश है क्योंकि ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न है और सब से श्रेष्ठ है इस लिये सब वस्तु का स्वामी ब्राह्मण होने सकता है यह ब्राह्मणों की प्रशंसा मात्र है क्योंकि मनु जी ब्राह्मणों को भी चोरी के लिये दंड आगे कहेंगे । १०० । ब्राह्मण अपनी ही वस्तु को भोजन करता है पहिरता है देता है और ब्राह्मण की दया से क्षत्रिय आदि भोग करते हैं । १०१ । उस ब्राह्मण के कर्म्मों को और क्षत्रिय आदि के कर्म्मों को जानने के लिये स्वयंभू के पुत्र बड़े बुद्धिमान मनु जी ने इस शास्त्र को बनाया । १०२ । पंडित जो ब्राह्मण हैं सो इस शास्त्र को बहुत यत्न से पढें शिष्यों को सुंदर प्रकार से पढ़ावें और क्षत्रिय आदि पढ़ें परंतु पढ़ावें न । १०३ । इस शास्त्र को जो ब्राह्मण पढ़ता है और व्रत को करता है सो मन वाणी देह से जायमान जो कर्म दोष उस से लिप्त नहीं होता । १०४ । और वह ब्राह्मण पापी मनुष्य से नष्ट जो पंगति है उस को पवित्र करता है और अपने सात पुरखा ऊपर के और उतना ही नीचे के पवित्र करता है और संपूर्ण पृथिवी को अकेला ही धारण कर सकता है । १०५ । यह शास्त्र कल्याण का घर है और श्रेष्ठ है बुद्धि बढ़ाने वाला है यश और आयुष्य इन दोनों को हित है और मोक्ष का उपाय है । १०६ । इस शास्त्र में संपूर्ण धर्म्म और कर्म्मों के गुण दोष आचार इन सब को कहा है । १०७ ।

वेद से कथित और स्मृति से (अर्थात् धर्म्म शास्त्र से) कथित जो आचार है सो परम धर्म्म है इस लिये जो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य अपने हित की इच्छा चाहैं तो इस शास्त्र में सर्व काल युक्त रहैं। १०८। आचार रहित जो ब्राह्मण है सो वेद के फल को भोग नहीं कर सकता आचार सहित हो तो संपूर्ण वेद के फल को भोग कर सकता है। १०९। जब मुनियों ने देखा कि धर्म्म की प्राप्ति आचार ही से होती है तब संपूर्ण तपस्या का मूल जो आचार है उस को धारण किया। ११०। अब शिष्यों को सुख पूर्वक ज्ञान के लिये जो विषय इस ग्रन्थ में कहे जायंगे उन की अनुक्रमणिका (अर्थात् क्रम) कहते हैं जगत की उत्पत्ति संस्कार विधि (अर्थात् गर्भाधान आदि) व्रत का आचरण और उपचार और स्नान की उत्कृष्ट विधि। १११। स्त्री प्रसंग विवाहों का लक्षण महायज्ञ का विधान श्राद्ध विधि। ११२। जीविका का लक्षण ब्रह्मचारी का व्रत भक्ष्य अभक्ष्य शौच द्रव्य शुद्धि (अर्थात् वस्तुओं की पवित्र करने की रीति)। ११३। स्त्री के धर्म करने का उपाय तपस्या मोक्ष संन्यास राजों का धर्म्म सब कार्यों का विचार। ११४। साक्षियों से पूछने की रीति स्त्री पुरुष का धर्म विभाग धर्म (अर्थात् बांट बखरा करना) जूआ खेलने की रीति दुष्टों का दण्ड। ११५। वैश्य और शूद्रों के धर्म का करना वर्ण संकरों की उत्पत्ति विपत्ति काल में वर्णों का धर्म्म पाप छूटने की विधि। ११६। संसार गमन (अर्थात् एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीर में जाना) सो तीन प्रकार का है उत्तम मध्यम अधम

आचारः परमो धर्म्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च। तस्मादस्मिन् सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः। १०८।
आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते। आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाग्भवेत्। १०९।
एवमाचारतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम्। सर्वस्य तपसो मूलमाचारञ्जगृहुः परम्। ११०।
जगतश्च समुत्पत्तिं संस्कारविधिमेव च। व्रतचर्य्योपचारञ्च स्नानस्य च परम्विधिम्। १११।
दाराधिगमनञ्चैव विवाहानाञ्च लक्षणम्। महायज्ञविधानं च श्राद्धकल्पञ्च शाश्वतः। ११२।
वृत्तीनां लक्षणञ्चैव स्नातकस्य व्रतानि च। भक्ष्याभक्ष्यञ्च शौचञ्च द्रव्याणां शुद्धिमेव च। ११३।
स्त्रीधर्म्मयोगं तापस्यं मोक्षं संन्यासमेव च। राज्ञश्च धर्म्ममखिलङ्कार्य्याणाञ्च विनिर्णयम्। ११४।
साक्षिप्रश्नविधानञ्च धर्म्मं स्त्रीपुंसयोरपि। विभागधर्म्मं द्यूतञ्च कण्टकानाञ्च शोधनम्। ११५।
वैश्यशूद्रोपचारञ्च संकीर्णानां च संभवम्। आपद्धर्म्मञ्च वर्णानां प्रायश्चित्तविधिन्तथा। ११६।
संसारगमनञ्चैव त्रिविधं कर्मसंभवम्। निःश्रेयसं कर्म्मणाञ्च गुणदोषपरीक्षणम्। ११७।
देशधर्म्मान् जातिधर्म्मान् कुलधर्म्मांश्च शाश्वतान्। पाखण्डगणधर्म्मांश्च शास्त्रेऽस्मिन्नुक्तवा-
न्मनुः। ११८। यथेदमुक्तवान् शास्त्रम्पुरा पृष्टो मनुर्मया। तथेदं यूयमप्यद्य मत्सकाशान्नि-
बोधत। ११९। * ॥ इति मानवे धर्म्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायाम्प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥
विद्वद्भिस्सेवितस्सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः। हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्म्मस्तन्निबोधत। १।
कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता। काम्यो हि वेदाऽधिगमः कर्म्मयोगश्च वैदिकः। २।

और यह तीन प्रकार के शुभ अशुभ कर्म्म से होता है आत्मज्ञान और कर्मों के गुण दोष की परीक्षा। ११७। देश जाति कुल पाखंडी (अर्थात् वेद में जो चिन्ह नहीं लिखा है उस का धारण जो करता है) इन सभों का धर्म हीन सब बातों को इस ग्रन्थ में मनु ऋषि ने कहा है। ११८। अब भृगु ऋषि कहते हैं जिस प्रकार से हम ने इस शास्त्र को मनु जी से पूछा और उन्हों ने कहा उसी प्रकार से आप लोग भी हम से जानिए ॥ ११९ ॥ * ॥ इति श्री मनु स्मृति भाषा टीकायां कुल्लूक भट्ट व्याख्यानुसारिण्यां श्री बाबू देवीदयाल सिंह कारितायां श्री मत्कम्पनी संस्कृत पाठशालीय धर्मशास्त्रि गुलज़ार शर्म्म पण्डित कृतायां प्रथमोध्यायः ॥ १ ॥ * ॥ शत्रुता मित्रता से रहित अच्छे पण्डित लोगों ने धर्म्म की सेवा की है और वह धर्म्म कल्याण करनेहार है उस धर्म्म को हम से जानिए। १। फल की इच्छा से कोई काम करना अच्छा नहीं है क्योंकि उस से बंधन होता है (अर्थात् उस फल के भोग करने के लिये शरीर धारण करना पड़ता है) और जो नित्य कर्म है और नैमित्तिक है (अर्थात् कोई निमित्त पाके होता है जैसे पुत्र उत्पन्न होने से जात कर्म करना) सो आत्मज्ञान का सहाय होकर मोक्ष के लिये होता है इस लिये तीन प्रकार के कर्म हैं एक नित्य दूसरा नैमित्तिक तीसरा काम्य (अर्थात् कामना के लिये जो कर्म करना) सो तीसरा यह अच्छा नहीं है इस्से इच्छा मात्र का निषेध नहीं करते क्योंकि वेद का स्वीकार और वैदिक सकल धर्म संबंध इच्छा ही का विषय है ॥ २ ॥

इच्छा यज्ञ व्रत नियम धर्म्म ये सब संकल्प से (अर्थात् इस कर्म से यह फल होवे ऐसी बुद्धि से) उत्पन्न हैं। ३। बिना इच्छा के कोई कर्म्म है नहीं जो कुच्छ कि करता है सो सब इच्छा ही से। ४। फल की इच्छा बिना कर्म करै तो मोक्ष को पाता है और इस लोक में जो इच्छा करै सो भी पाता है। ५। संपूर्ण वेद का कहना और वेद के जानने वालों का कहना और करना और साधु लोगों का करना और जिस कर्म करने से अपना संतोष हो ये सब धर्म का मूल (अर्थात् जड़) है। ६। संपूर्ण वस्तु के जाननहार मनु जी ने जिस किसी का जो कुच्छ कि धर्म इस ग्रंथ में कहा है सो सब वेद में है। ७। ज्ञान रूपी नेत्र से संपूर्ण शास्त्र को देखकर वेद को प्रमाण जानके अपने धर्म में रहै। ८। वेद में और धर्म शास्त्र में जो धर्म कहा है उस धर्म को जो मनुष्य करता है सो इस लोक में कीर्ति को और परलोक में बड़े सुख को पाता है। ९। श्रुति और स्मृति (अर्थात् वेद और धर्म शास्त्र) इन दोनों के उलटे तर्क से न बिचारना क्योंकि इन्हीं दोनों से धर्म निकला है। १०। जो मनुष्य वेद वाक्य को तर्क शास्त्र के आश्रय से अप्रमाण मानके श्रुति स्मृति का अपमान करता है वह नास्तिक है वेद का निन्दा करने वाला है

सङ्कल्पमूलः कामो वै यज्ञास्सङ्कल्पसम्भवाः। व्रतानियमधर्म्माश्च सर्वे सङ्कल्पजाः स्मृताः। ३।
अकामस्य क्रिया काचिद्दृश्यते नेह कर्हिचित्। यद्यद्धि कुरुते किञ्चित्तत्तत्कामस्य चेष्टितम्। ४।
तेषु सम्यग्वर्तमानो गच्छत्यमरलोकताम्। यथा संकल्पितांश्चेह सर्वान्कामान् समश्नुते। ५।
वेदोऽखिलो धर्म्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्। आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च। ६।
यः कश्चित्कस्यचिद्धर्म्मो मनुना परिकीर्तितः। स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः। ७।
सर्वन्तु समवेक्ष्येदन्निखिलं ज्ञानचक्षुषा। श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान्स्वधर्म्मे निविशेत वै। ८।
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्म्ममनुतिष्ठन् हि मानवः। इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम्। ९।
श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रन्तु वै स्मृतिः। ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ। १०।
योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः। स साधुभिर्बहिः कार्य्यो नास्तिको वेदनिन्दकः। ११।
वेदः स्मृतिस्सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः। एतच्चतुर्विधं प्राहुस्साक्षाद्धर्म्मस्य लक्षणम्। १२।
अर्थकामेष्वसक्तानान्धर्मज्ञानम्विधीयते। धर्मञ्जिज्ञासमानानाम्प्रमाणं परमं श्रुतिः। १३।
श्रुतिद्वैधं तु यत्र स्यात्तत्र धर्म्मावुभौ स्मृतौ। उभावपि हि तौ धर्म्मौ सम्यगुक्तौ मनीषिभिः। १४।
उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा। सर्वथा वर्त्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः। १५।
निषेकादिश्मशानान्तो मंत्रैर्यस्योदितो विधिः। तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिन् ज्ञेयो नाऽन्यस्य क-
स्यचित्। १६। सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदंतरम्। तं देवनिर्मितन्देशमार्यावर्त्तम्प्रचक्षते। १७।

उस को साधु लोग अपनी मण्डली से बाहर कर देवै। ११। वेद और स्मृति भले लोगों का आचार अपने आत्मा का प्रिय ये चारो साक्षात् धर्म के लक्षण हैं जैसे सूर्य के उदय में होम करना और बिना उदय में होम करना ये दोनों बात शास्त्र में लिखी हैं इस में जो अपने को प्रिय हो सो करना। १२। अर्थ और काम इन दोनों की इच्छा जिस को नहीं है उस को धर्म ज्ञान का विधान करते हैं और जिस को धर्म जानने की इच्छा है उस को केवल वेद ही प्रमाण है। १३। जिस कर्म के करने में दो प्रकार की श्रुति है उस में दोनों प्रमाण हैं और दोनों धर्म हैं इस बात को अच्छे प्रकार से पण्डितों ने कहा है। १४। सूर्य उदय में और सूर्य के अनुदय में और सूर्य नक्षत्र इन दोनों से रहित काल में होम करना ये तीनों काल होम के लिये वेद में कहे हैं और यह तीनों धर्म ही है इस में जो प्रसन्न हो सो करैं। १५। निषेक (अर्थात् स्त्री में गर्भ का स्थापन) यह प्रथम संस्कार है इस आदि लेके मरण तक जिस को मंत्र से संस्कार होता है। (अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य) इन्हीं तीनों वर्ण को इस शास्त्र में अधिकार जानना स्त्री और शूद्र इन दोनों का अधिकार न जानना। १६। देवतों की नदी जो सरस्वती और दृषद्वती हैं इन दोनों के मध्य देश को आर्यावर्त कहते हैं। १७।

* * *

ब वर्णों का और वर्णसंकरों का इस देश में जो आचार चला आया है सो सदा चार कहाता है । १८ । आर्यावर्त के समीप में कुरुक्षेत्र
त्स्य पाञ्चाल शूरसेनक ये सब देश ब्रह्मर्षियों के हैं । १९ । पृथिवी में सब मनुष्य इस देश में उत्पन्न ब्राह्मणों से अपने अपने
रित्र को जानें । २० । हिमाचल और विंध्याचल का मध्य बिनशन के पूर्व प्रयाग के पश्चिम यह मध्य देश कहाता है । २१ ।
र्व समुद्र से लेके पश्चिम समुद्र तक और हिमाचल विंध्याचल का मध्य यह आर्यावर्त कहाता है । २२ । काला मृग अपने स्व-
ाव से जिस देश में रहे सो देश यज्ञ करने के योग्य है इस के परे म्लेच्छ देश है । २३ । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य यत्न पूर्वक इसी
श में रहें और शूद्र तो जीविका के कष्ट से जिस देश में चाहै तिस देश में रहै । २४ । भृगु जी कहते हैं कि हे ऋषि लोगो
ाप से संक्षेप करके धर्म का मूल और सभों की उत्पत्ति इन दोनों को मैं ने कहा अब वर्णों के धर्मों को जानिए । २५ । ब्राह्मण
त्रिय वैश्य इन सब को वेद में कहे जो गर्भाधान आदि शरीर का संस्कार सो इस लोक में और परलोक में पवित्र करनहार है
स लिये इन संस्कारों को करना चाहिए । २६ । गर्भ संस्कार जात कर्म चूडाकरण व्रतबंध इन संस्कारों से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों

तस्मिन्देशे य आचारः पारंपर्य्यक्रमागतः । वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते । १८ ।
कुरुक्षेत्रञ्च मत्स्यांश्च पाञ्चालाः शूरसेनकाः । एष ब्रह्मर्षिदेशो वै आर्यावर्तादनन्तरः । १९ ।
एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः । स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः । २० ।
हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि । प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः । २१ ।
आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्राच्च पश्चिमात् । तयोरेवान्तरं गिर्य्योरार्य्यावर्तम्विदुर्बुधाः । २२ ।
कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः । स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परः । २३ ।
एतान्द्विजातयोदेशान्संश्रयेरन् प्रयत्नतः । शूद्रस्तु यस्मिन्कस्मिन्वा निवसेद्वृत्तिकर्षितः । २४ ।
एषा धर्मस्य वो योनिः समासेन प्रकीर्तिता । सम्भवश्चास्य सर्वस्य वर्णधर्मान्निबोधत । २५ ।
वैदिकैः कर्म्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम् । कार्य्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च । २६ ।
गार्भैर्होमैर्जातकर्म्म चौडमौञ्जीनिबंधनैः । बैजिकं गार्भिकञ्चैनो द्विजानामपमृज्यते । २७ ।
स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः । महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः । २८ ।
प्राङ्नाभिवर्द्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते । मंत्रवत्प्राशनञ्चास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम् । २९ ।
नामधेयन्दशम्यान्तु द्वादश्याम्वास्य कारयेत् । पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते । ३० ।
मङ्गल्यम्ब्राह्मणस्य स्यात् क्षत्रियस्य बलान्वितम् । वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् । ३१ ।
शर्म्मवद्ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितम् । वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रैष्यसंयुतम् । ३२ ।
स्त्रीणां सुखोद्यमक्रूरं विस्पष्टार्थं मनोहरम् । मङ्गल्यन्दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत् । ३३ ।
चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात् । षष्ठेन्नप्राशनं मासि यद्वेष्टम्मङ्गलङ्कुले । ३४ ।

के बीज का दोष और गर्भ का दोष छूट जाता है । २७ । वेद का पढ़ना व्रत होम त्रैविद्य नाम का व्रत देव ऋषि पितरों का
र्पण पुत्र की उत्पत्ति महा यज्ञ यज्ञ इन सब कर्मों से यह शरीर मोक्ष प्राप्ति के योग्य होती है । २८ । नालच्छेदन के पहिले
ातकर्म होता है उस में मंत्र सहित सोना मधु घी लड़का को भोजन कराना पड़ता है । २९ । जन्म से ग्यारहवें दिन में अथवा
ारहवें दिन में नाम करण होता है कदाचित इन दिनों में न हुआ तो अच्छी तिथि नक्षत्र पुण्य दिन गुण सहित में करना । ३० ।
ाह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन्हों का नाम क्रम से मङ्गल बल धन निन्दा इस को कहने वाला जो शब्द तिस करके युक्त करना ।
३१ । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन्हों के नाम के अंत में क्रम से शर्म रक्षा पुष्टि प्रेष्य (अर्थात् दास) इन शब्दों का
हने वाला शब्द रहै जैसे शुभशर्म्मा बलवर्म्मा वसुभूतिः दीनदासः । ३२ । जो सुख पूर्वक कहाजाय और कठोरता से रहित अर्थ
जिस का खुलासा मनोहर मंगल और आशीर्वाद इन दोनों में से एक अर्थ का कहने वाला दीर्घ वर्ण अंत में हो ऐसा नाम
स्त्रियों का करना चाहिए जैसा यशोदा देवी । ३३ । चौथे महीना में घर से बाहर निकालना छठें महीना में अन्न प्राशन कराना
थवा जिस महीने में अपने कुल की रीति हो उस में करना । ३४ ।　　*　　*　　*　　*

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन सब का चूड़ाकर्म प्रथम वर्ष में अथवा तीसरे वर्ष में करना चाहिए यह वेद की आज्ञा है । ३५ । गर्भ से अथवा जन्म से आठवें ग्यारहवें बारहवें वर्ष में क्रम से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन को यज्ञोपवीत करना चाहिये । ३६ । ब्रह्म तेज बल धन इन सभों की इच्छा चाहै तो क्रम से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य को पांचवें छटवें आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत करैं । ३७ । सोलह बाईस चौबीस वर्ष तक ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों की गायत्री पतित नहीं होती है । ३८ । इस के उपरांत तीनों वर्ण यज्ञोपवीत से रहित होते हैं और व्रात्य कहाते हैं गायत्री इन्हों की पतित होती है और भले लोग इन्हों की निन्दा करते हैं । ३९ । इन्हों के साथ कोई संबंध पढ़ने पढ़ाने का अथवा विवाह आदि का न रक्खै जब तक ये लोग प्रायश्चित न करैं । ४० । अब तीनों वर्णों के ब्रह्म चारियों का चर्म आदि सब कहते हैं काला मृग हरिण बकरा इन सभों के चर्म को क्रम से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ऊपर के अंग में धारण करैं और सन तीसी भेड़ इन सभों के सूत्र से जो वस्त्र होता है उस को नीचे के अंग में धारण करैं । ४१ । ब्राह्मण को मूंज का मेखला (अर्थात् करधनी) सो कैसी रहे कि तीन लर की बराबर चिक्कन और क्षत्रिय को मूर्बा (अर्थात् इसी नाम का तृण विशेष है) उसके दुइ लर की वैश्य को सन के सूत्र की तीन लर की । ४२ । मूंज

चूडाकर्म्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्म्मतः । प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात् । ३५ ।
गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् । गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः । ३६ ।
ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्य्यम्विप्रस्य पञ्चमे । राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे । ३७ ।
आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्त्तते । आद्वाविंशात् क्षत्रबंधोराचतुर्विंशतेर्विशः । ३८ ।
अत ऊर्द्ध्वं त्रयोप्येते यथाकालमसंस्कृताः । सावित्री पतिता व्रात्या भवन्त्यार्य्यविगर्हिताः । ३९ ।
नैतैरपूतैर्विधिवदापद्यपि हि कर्हिचित् । ब्राह्मान् यौनांश्च संबंधान्नाचरेद्ब्राह्मणैः सह । ४० ।
कार्ष्णरौरववास्तानि चर्म्माणि ब्रह्मचारिणः । वसीरन्नानुपूर्व्वेण शाणक्षौमाविकानि च । ४१ ।
मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्य्या विप्रस्य मेखला । क्षत्रियस्य तु मौर्वीज्या वैश्यस्य शणतान्तवी । ४२ ।
मुञ्जालाभे तु कर्तव्याः कुशाश्मान्तकवल्वजैः । त्रिवृता ग्रन्थिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव वा । ४३ ।
कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्द्ध्ववृतं त्रिवृत् । शणसूत्रमयं राज्ञो वैश्यस्याविकसौत्रिकम् । ४४ ।
ब्राह्मणो बैल्वपालाशौ क्षत्रियो वाटखादिरौ । पैलवौदुम्बरौ वैश्यो दण्डानर्हन्ति धर्म्मतः । ४५ ।
केशान्तिको ब्राह्मणस्य दण्डः कार्य्यः प्रमाणतः । ललाटसम्मितो राज्ञः स्यात्तु नासान्तिको विशः । ४६ ।
ऋजवस्ते तु सर्व्वे स्युरव्रणाः सौम्यदर्शनाः । अनुद्वेगकरा नॄणां सत्वचो नाग्निदूषिताः । ४७ ।
प्रतिगृह्येप्सितन्दण्डमुपस्थाय च भास्करम् । प्रदक्षिणम्परीत्याग्निञ्चरेद्भैक्षं यथाविधि । ४८ ।
भवत्पूर्वञ्चरेद्भैक्षमुपनीतो द्विजोत्तमः । भवन्मध्यन्तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरः । ४९ ।
मातरम्वा स्वसारं वा मातुर्वै भगिनीं निजाम् । भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं नावमानयेत् । ५० ।

मूर्बा सन ये तीनों न मिलैं तो कुश अश्मान्तक (अर्थात् बहेड़ा) बल्वज (अर्थात् बगई) इन्हीं की करना तीन लर की एक वा तीन अथवा पांच गांठी की करना जैसा कुल का आचार चला आया हो तैसा करना यह नहीं कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये लोग क्रम से एक तीन पांच गांठि का रक्खै । ४३ । कपास का जनेऊ ब्राह्मण को सन का क्षत्रिय को भेड़ के रोम का वैश्य को सो कैसा करना कि तिगुना करके फेर तिगुना करना । ४४ । ब्राह्मण बेल का अथवा परास का क्षत्रिय बर का अथवा खैर का वैश्य पीलू का अथवा गुल्लर का दंड धारण करै । ४५ । केश मस्तक नासिका तक दंड को क्रम से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य धारण करैं । ४६ । सब दंड कोमल और छिद्र से रहित सुंदर त्वचा सहित रहै और मनुष्यों के अनुद्वेग करने वाला और अग्नि करके दूषित न रहै । ४७ । दंड धारण करके सूर्य का उपस्थान करके (अर्थात् सूर्य के संमुख होके) अग्नि को प्रदक्षिण करके विधि पूर्वक भिक्षा मांगै । ४८ । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये तीनों वर्ण के ब्रह्मचारी भिक्षा मांगने की वाक्य में क्रम से आदि मध्य अंत में भवत् शब्द को कहै । ४९ । माता भगिनी मौसी इन्हों से प्रथम भिक्षा मांगै और जो ब्रह्मचारी का अपमान न करै उस से भी मांगै । ५० ।

शक्तल होकर भित्ता मांगके गुरु के समीप रक्खै इस के अनंतर आचमन करके पवित्रता से पूर्व मुख बैठकर भोजन करै। ५१।
र्व दक्षिण पश्चिम उत्तर इन दिशों की ओर मुख करके भोजन करने से क्रम करके आयुष यश लक्ष्मी सत्य इन्हों की वृद्धि होती
। ५२ । प्रति दिन एकाग्र (अर्थात् निश्चिंत) होके आचमन करके भोजन करै और फेर भी भोजन करके आचमन करै
ार इन्द्रियों को जल से छूवै । ५३ । प्रति दिन अन्न का पूजन करै और अन्न की निन्दा न करै अन्न को देखकर प्रसन्न
ावै और हर्ष करै हम को यह अन्न नित्य मिलै ऐसा कहके भोजन करै। ५४। अन्न की पूजा करने से सामर्थ्य
अर्थात् तेज) और वीर्य्य (अर्थात् इन्द्रिय शक्ति) ये दोनों बढ़ते हैं और बिना पूजा करने से इन्हीं दोनों का नाश होता है
५५ । जूठ किसी को न देना सायंकाल और प्रातःकाल के मध्य में भोजन न करना (अर्थात् तीन बेर न भोजन करना) अति
ोजन (अर्थात् बहुत भोजन) न करना जूठे हुए संते कहीं न जाना। ५६ । अति भोजन आयुष आरोग्य स्वर्ग पुण्य इन सभों के
हत नहीं है और लोक में निंदित है इस लिये अति भोजन नहीं करना, ५७ । ब्रह्म तीर्थ से नित्य ही ब्राह्मण आचमन करै

समाहृत्य तु तद्भैक्षं यावदर्थममायया । निवेद्य गुरवे ऽश्नीयादाचम्य प्राङ्मुखः शुचिः । ५१ ।
आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यन्दक्षिणामुखः । श्रियंप्रत्यङ् मुखो भुङ्क्ते ऋतम्भुङ्क्ते ह्युदङ्-
मुखः । ५२ । उपस्पृश्य द्विजो नित्यमन्नमद्यात्समाहितः । भुक्त्वा चोपस्पृशेत्सम्यगद्भिः खानि
च संस्पृशेत् । ५३ । पूजयेदशनन्नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन् । दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च
सर्वशः । ५४ । पूजितं ह्यशनं नित्यम्बलमूर्जञ्च यच्छति । अपूजितन्तु तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिदम्
। ५५ । नोच्छिष्टङ्कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा । न चैवात्यशनङ्कुर्य्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत्
। ५६ । अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यञ्चातिभोजनम् । अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत्
। ५७ । ब्राह्मेण विप्रस्तीर्थेन नित्यकालमुपस्पृशेत् । कायत्रैदशिकाभ्याम्वा न पित्र्येण कदाचन
। ५८ । अङ्गुष्ठमूलस्य तले ब्राह्मन्तीर्थम्प्रचक्षते । कायमङ्गुलिमूलेऽग्रे दैवम्पित्र्यन्तयोरधः । ५९ ।
त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम् । खानि चैव स्पृशेदद्भिरात्मानं शिर एव च । ६० ।
अनुष्णाभिरफेनाभिरद्भिस्तीर्थेन धर्मवित् । शौचेप्सुस्सर्वदाचामेदेकान्ते प्रागुदङ्मुखः । ६१ ।
हृद्गाभिः पूयते विप्रः कण्ठगाभिस्तु भूमिपः । वैश्योऽद्भिः प्राशिताभिस्तु शूद्रः स्पृष्टाभिरन्ततः । ६२ ।
उद्धृते दक्षिणे पाणावुपवीत्युच्यते द्विजः । सव्ये प्राचीन आवीती निवीती कण्ठसज्जने । ६३ ।
मेखलामजिनन्दण्डमुपवीतं कमण्डलुम् । अप्सु प्रास्य विनष्टानि गृह्णीतान्यानि मंत्रवत् । ६४ ।
केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते । राजन्यबंधोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके ततः । ६५ ।
अमंत्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः । संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम् । ६६ ।

देव तीर्थ पितृ तीर्थ प्रजापति तीर्थ से आचमन न करै । ५८ । अंगूठा तर्जनी कनिष्ठिका इन तीनों का मूल क्रम से ब्रह्म तीर्थ
पितृ तीर्थ प्रजापति तीर्थ कहाता है हाथ का अग्र देव तीर्थ है । ५९ । प्रथम तीन बेर आचमन करना दो बार मुख धोना मुख
में जो इन्द्रिय हैं (अर्थात् नाक कान आंख मुख) इन सभों को जल से छूना शिर और हृदय इन्हों को भी । ६० । पूर्व मुख
अथवा उत्तर मुख होकर फेन से रहित शीतल जल से सर्व काल एकान्त में पवित्रता की इच्छा करता हुआ आचमन करै । ६१ ।
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन सभों के आचमन करने में जल का प्रमाण यह है कि क्रम से हृदय कण्ठ मुख मध्य जिह्वा ओष्ठ
तक जल प्रवेश करै । ६२ । बाएं कंधे में जनेऊ रहने से उपवीती (अर्थात् सव्य) कहाता है दहिने कंधे में रहने से प्राचीन आ-
वीती (अर्थात् अपसव्य) कहाता है कंठ में रहने से निवीती कहाता है । ६३ । मेखला चर्म दंड जनेऊ कमंडलु ये सब नष्ट हो
जावें तो जल में डाल देना और नवीन मंत्र सहित ग्रहण करना । ६४ । ब्राह्मण को केशांत कर्म गर्भ से सोलहवें वर्ष में क्षत्रिय
को वही कर्म बाईसवें वर्ष में और वैश्य को चौबीसवें वर्ष में होता है । ६५ । ये सब संस्कार स्त्रियों को मन्त्र रहित करना
परन्तु जिस काल में जिस क्रम से कहा है उसी काल में उसी क्रम से करना । ६६ । * * * *

स्त्रीयों को विवाह संस्कार मंत्र सहित है पति की सेवा यही गुरुकुल में वास है गृह का काम काज यही अग्नि की सेवा है। ६७। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य को जनेऊ की विधि कहा यह विध पुण्य है दूसरे जन्म का जनाने वाला है (अर्थात् इस कर्म से दूसरा जन्म होता है) इस के उपरांत कर्म योग को जानो। ६८। शिष्यों को जनेऊ कराके पहिले पवित्रता आचार अग्नि का सेवा संध्योपासन (अर्थात् संध्या करने की रीति) इन सब को गुरू सिखलावे। ६९। शास्त्र की रीति से पठन समय में आचमन कर उत्तर मुख से ब्रह्माञ्जली कर (अर्थात् हाथ जोड़कर) जितेंद्रिय होके छोटा वस्त्र पहिरकर शिष्य रहे। ७०। प्रति दिन पाठ के प्रारंभ में और समाप्ति में अपने दोनों हाथ से गुरू के दोनों पाद को ग्रहण करे हाथ का जोड़ना ब्रह्माञ्जली कहाती है। ७१। गुरू के सन्मुख होकर दहिने हाथ से दहिने पाद को और बायें हाथ से बायें पाद को ग्रहण करे। ७२। शिष्यों को पढ़ाने के समय में गुरू ऐसा बोले कि अधीष्व भो (अर्थात् पढ़ो) तब शिष्य पढ़े और जब कहे कि विरामोस्तु (अर्थात् बस करो) तब शिष्य चुप रहे इस का तात्पर्य्य यह है कि गुरू की आज्ञा से पढ़े और चुप रहे। ७३। प्रति दिन पाठ के प्रारंभ में और समाप्ति में प्रणव (अर्थात् ओंकार) को कहे और न कहे तो पढ़ा भूल जाता है। ७४। पूर्व दिशा में कुश का अग्र भाग करके उस पर

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः। पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया। ६७।
एष प्रोक्तो द्विजातीनामौपनायनिको विधिः। उत्पत्तिव्यञ्जकः पुण्यः कर्मयोगन्निबोधत। ६८।
उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः। आचारमग्निकार्य्यञ्च संध्योपासनमेव च। ६९।
अध्येष्यमाणस्त्वाचान्तो यथाशास्त्रमुदङ्मुखः। ब्रह्माञ्जलिकृतोध्याप्यो लघुवासा जितेन्द्रियः। ७०।
ब्रह्मारम्भेवसाने च पादौ ग्राह्यौ गुरोस्सदा संहत्य हस्तावध्येयं स हि ब्रह्माञ्जलिः स्मृतः। ७१।
व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः। सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणेन च दक्षिणः। ७२।
अध्येष्यमाणन्तु गुरुर्नित्यकालमतन्द्रितः अधीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामोस्त्विति चारमेत्। ७३।
ब्राह्मणः प्रणवं कुर्य्यादादावन्ते च सर्वदा। स्रवत्यनोंकृतम्पूर्वं परस्ताच्च विशीर्य्यति। ७४।
प्राक्कूलान् पर्य्युपासीनः पवित्रैश्चैव पावितः। प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्तत ओंकारमर्हति। ७५।
अकारञ्चा प्युकारञ्च मकारञ्च प्रजापतिः। वेदत्रयान्निरदुहद्भूर्भुवः स्वरितीति च। ७६।
त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादम्पादमदूदुहत्। तदित्यृचोस्याः साविच्याःपरमेष्ठी प्रजापतिः। ७७।
एतदक्षरमेताञ्च जपन् व्याहृतिपूर्विकाम्। संध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते। ७८।
सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्त्रिकं द्विजः। महतोप्येनसो मासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते। ७९।
एतयर्चा विसंयुक्तः काले च क्रियया स्वया। ब्रह्मक्षत्रियविड्योनिर्गर्हणां याति साधुषु। ८०।
ओंकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः। त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयम्ब्रह्मणो मुखम्। ८१।
योधीतेऽहन्यहन्येतान्त्रीणि वर्षाण्यतंद्रितः। स ब्रह्मपरमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान्। ८२।
एकाक्षरम्परं ब्रह्म प्राणायामाः परन्तपः। सावित्र्यास्तुपरं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते। ८३।

बैठकर पवित्र मंत्र से पवित्र होकर तीन बार प्राणायाम करे तब ओंकार कहने के योग्य होता है। ७५। अकार उकार मकार इन तीनों अक्षरों को और भूः भुवः स्वः इन को भी ब्रह्मा ने तीनों वेद से (अर्थात् ऋग्यजुसाम से) निकाला। ७६। इन्हीं तीने वेद से एक एक पाद गायत्री का ब्रह्मा नें निकाला। ७७। ओंभूः भुवः स्वः इन को और गायत्री के तीनों पाद को दोनों संध्या में जप करे वेद पढ़ने वाला ब्राह्मण तो संपूर्ण वेद के पुण्य से युक्त होवे। ७८। बाहर जाके हजार बार इन्हीं तीनों को पढ़े तो एक महीना में बड़े पाप से छूटै जैसे केंचुर से सांप छूटता है। ७९। अपने काल में जो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीनों से रहित हैं सो साधु लोगों में निन्दा को पाते हैं। ८०। यही तीनों (अर्थात् ओंभूः भुवः स्वः गायत्री) वेद का मुख है और परमात्म के मिलने का द्वार है। ८१। जो मनुष्य आलस्य को छोड़कर तीन बर्ष तक प्रति दिन यही तीनों को पढ़े सो वायु रूप होक ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त होवे। ८२। यह पर ब्रह्म है प्राणायाम (अर्थात् वायु का रोकना) यह परम तप है गायत्री से बड़ कोई नहीं है चुप रहने से सत्य बोलना अच्छा है। ८३। * * * *

ा संपूर्ण क्रिया वेद में लिखी है सो सब विनाश सहित हैं और ओंकार रूप जो ब्रह्म है सो अविनाशी है। ८४। यज्ञ
दस गुण अधिक जप है सो उपांशु (अर्थात् पास के रहने वाले भी न सुनें कर सो सुन पड़ने से सौ गुन अधिक है और मन
जप करै ओंठ न हिलने पावै सो उपांशु से हजार गुन अधिक है। ८५। जो पाक यज्ञ चार है (अर्थात् वैश्वदेव होम बलि कर्म
नित्य श्राद्ध अतिथि भोजन) और विधि यज्ञ (अर्थात् अमावास्या पूर्णमासी के होम आदि ये सब जप यज्ञ का सोरहवां भाग भी
नहीं पा सकते। ८६ ॥ ब्राह्मण सब जीव से मित्रता राखै (अर्थात् यज्ञ करने में हिंसा होती है उसको न करै) केवल जप ही को
करै तो सब सिद्धि होती है। ८७। अपने अपने विषयों से इन्द्रियों को रोके (अर्थात् रूप रस गंध स्पर्श शब्द ये पांचों विषयों में नेत्र
जिह्वा नासिका त्वचा कर्ण ये पांचों इन्द्रिय लगने न पावैं जैसे सारथी कुचाल से घोड़ा को रोकता है। ८८। जो पूर्व पंडितों नें
एकादश इन्द्रिय कही हैं तिन सब को ठीक ठीक क्रम से कहेंगे। ८९। श्रोत्र त्वक् चक्षु जिह्वा नासिका पायु उपस्थ हस्त पाद
वाणी तिस में पायु (अर्थात् मार्ग) उपस्थ (अर्थात् भग लिंग)। ९०। इन सभों में पहिली पांच ज्ञान इन्द्रिय कहाती हैं दूसरी

क्षरन्ति सर्वावैदिक्यो जुहोति यजतिक्रियाः। अक्षरं दुष्करं ज्ञेयम्ब्रह्म चैव प्रजापतिः। ८४।
विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः। उपांशुः स्याच्छतगुणः सहस्रो मानसः स्मृतः। ८५।
ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः। सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्। ८६।
जप्येनैव तु संसिध्येद्ब्राह्मणो नात्र संशयः। कुर्य्यादन्यन्न वा कुर्य्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते। ८७।
इन्द्रियाणाम्विचरतां विषयेष्वपहारिषु। संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यंतेव वाजिनाम्। ८८।
एकादशेन्द्रियाण्याहुर्यानि पूर्वे मनीषिणः। तानि सम्यक् प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः। ८९।
श्रोत्रन्त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी। पायूपस्थं हस्तपादं वाक्चैव दशमी स्मृता। ९०।
बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः। कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैषां पाय्वादीनि प्रचक्षते। ९१।
एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम्। यस्मिन् जिते जितावेतौ भवतः पञ्चकौ गणौ। ९२।
इन्द्रियाणाम्प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम्। सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिन्नियच्छति। ९३।
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते। ९४।
यश्चैतान्प्राप्नुयात्सर्वान् यश्चैतान्केवलां स्त्यजेत्। प्रापणात्सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते। ९५।
न तथैतानि शक्यन्ते सन्नियन्तुमसेवया। विषयेषु प्रजुष्टानि यथा ज्ञानेन नित्यशः। ९६।
वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमांश्च तपांसि च। न विप्रभावदुष्टस्य सिद्धिङ्गच्छन्ति कर्हिचित्। ९७।
श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः। न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः
। ९८। इन्द्रियाणान्तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम्। तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम्। ९९।

ांच कर्म इन्द्रिय कहाती हैं। ९१। ग्यारहवां मन है अपने गुण करके दोनों (अर्थात् ज्ञान इन्द्रिय) और कर्म इन्द्रीय कहाती
जिस मन के जीतने से ये सब दशो जीते जाते हैं। ९२। इन्द्रियों के प्रसंग से जीव दोषी होता है और इन्द्रियों का निग्रह
करै (अर्थात् विषयों में न लगावै) तो जीव सिद्धि को पाता है। ९३। जिस बस्तु में मन की इच्छा है उस बस्तु के मिलने से
मन को तृप्ति हो सो कभी नहीं होती जैसे घी को पाके अग्नि बढ़ती ही है। ९४। जिस मनुष्य को मन का इच्छित पदार्थ सब
मिलता है और जो मिले हुए पदार्थों को त्याग करता है इन दोनों में त्याग करने वाला बड़ा है। ९५। विषयों की सेवा
बिना किए उन्हीं का त्याग नहीं होता किंतु उन्हीं में दोष देखने से त्याग होता है। ९६। जिस का स्वभाव दुष्ट है उस को
वेद त्याग यज्ञ नियम तप ये सब सिद्धि को नहीं दे सकते। ९७। जो मनुष्य सुनके छूके देखके भोग करके सूंघके हर्ष को
नहीं पाता और न इसके बिना शोक को पाता सो जितेन्द्रिय कहाता है। ९८। सब इन्द्रियों में से एक भी इन्द्रिय अपने
विषय में लगी तो जीव की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है जैसे चलनी से पानी का निकालना। ९९। * * *

उपाय से सब इन्द्रियों को और मन को बस करके जिस में शरीर को दुःख न होने पावै ऐसी रीति से सब अर्थों को सिद्धि करै । १०० । प्रातःकाल में गायत्री का जप करता रहै जब तक सूर्य का दर्शन न होवै और इसी रीति से सायंकाल में जब तक तारा का दर्शन न होवै । १०१ । प्रातःकाल की संध्या करने से रात्रि का पाप छूटता है और सायंकाल की संध्या करने से दिन का पाप छूटता है । १०२ । जो मनुष्य दोनों काल की संध्या को नहीं करता है सो शूद्र की नाईं संपूर्ण द्विज कर्म से बाहर निकल जाता है । १०३ । बन में जाकर जल के समीप नित्य विधि करके निचिन्त होके केवल गायत्री को पढ़ै । १०४ । वेद के जो अंग हैं (अर्थात् शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त ज्योतिष छंद) और जो नित्य कर्म है होम के मंत्र हैं इन सभों में अनध्याय का आदर नहीं है । १०५ । जो नित्य कर्म में मंत्र पढ़े जाते हैं सो अनध्याय में भी पुण्य ही है । १०६ । जो मनुष्य एक वर्ष तक विधि पूर्वक पवित्र होकर नित्य ही वेद को पढ़ता है उस को वही वेद नित्य ही दूध दही घी मधु को देता है । १०७ । जिस का यज्ञोपवीत हुआ हो वह समावर्तन (अर्थात् वेद पढ़ने की समाप्ति) तक अग्नि में इंधन लगावै भिक्षा मांगै भूमि में सोवै गुरू का

वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा । सर्बान्संसाधयेदर्थानक्षिण्वन् योगतस्तनुम् । १०० ।
पूर्वां संध्यां जपं स्तिष्ठेत्सावित्रीमार्कदर्शनात् । पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात् । १०१ ।
पूर्वां संध्यां जपं स्तिष्ठन्नैशमेनो व्यपोहति । पश्चिमां तु समासीनो मलं हंति दिवाकृतम् । १०२ ।
न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् । स शूद्रवद्बहिष्कार्य्यः सर्वस्माद्द्विजकर्म्मणः । १०३ ।
अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः । सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः । १०४ ।
वेदोपकरणेचैव स्वाध्याये चैव नैत्यके । नानुरोधोस्त्यनध्याये होममंत्रेषु चैव हि । १०५ ।
नैत्यके नास्त्यनध्यायो ब्रह्मसत्रं हि तत्स्मृतम् । ब्रह्माहुति हुतम्पुण्यमनध्यायवषट् कृतम् । १०६ ।
यः स्वाध्यायमधीतेब्दं विधिना नियतः शुचिः । तस्य नित्यं क्षरत्येष पयो दधि घृतं मधु । १०७ ।
अग्नीन्धनम्भैक्षचर्य्यामधः शय्यां गुरोर्हितम् । आसमावर्तनात्कुर्य्यात्कृतोपनयनो द्विजः । १०८ ।
आचार्य्यपुत्रः शुश्रूषुर्ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः । आप्तः शक्तोऽर्थदः साधुः स्वोध्याप्या दशधर्मतः । १०९ ।
नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः । जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत् । ११० ।
अधर्म्मेण च यः प्राह यश्चाधर्म्मेण पृच्छति । तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषम्वाधिगच्छति । १११ ।
धर्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषा वापि तद्विधा । तत्र विद्या न वप्तव्या शुभं बीजमिवोषरे । ११२ ।
विद्ययैव समं कामं मर्तव्यं ब्रह्मवादिना । आपद्यपि हि घोरायां न त्वेनामिरिणे वपेत् । ११३ ।
विद्या ब्राह्मणमेत्याह शेवधिस्तेस्मि रक्ष माम् । असूयकाय मां मादास्तथास्यां वीर्य्यवत्तमा । ११४ ।
यमेव तु शुचिं विद्यान्नियतं ब्रह्मचारिणम् । तस्मै मा ब्रूहि विप्राय निधिपायाप्रमादिने । ११५ ।
ब्रह्मयस्त्वननुज्ञातमधीयानादवाप्नुयात् । स ब्रह्मस्तेयसंयुक्तो नरकम्प्रतिपद्यते । ११६ ।

हित करै । १०८ । आचार्य का पुत्र सेवा करने वाला धर्म करने वाला ज्ञान देने वाला पवित्रता से रहने वाला बांधव ग्रहण धारण समर्थ साधु जतिवाला द्रव्य देने वाला ये दश धर्म पूर्वक पढ़ाने के योग्य हैं । १०९ । बिना पूछे कोई बात किसी को न कहना अन्याय से पूछे तो भी न कहना जाने हुए भी बुद्धिमान लोक में जड़ की नाईं रहैं । ११० । जो अधर्म से कहता है और जो अधर्म से पूछता है दोनों में से एक मर जाता है अथवा शत्रुता को पाता है । १११ । जिस स्थान में धर्म अर्थ और सेवा जैसा कहा है शास्त्र में तैसा नहीं है तिस स्थान में विद्या को न बोना जैसे सुन्दर बीज ऊसर भूमि में नहीं बोया जाता है । ११२ । विद्या के सहित वेद पढ़ने वाला इच्छा पूर्वक मर जावै परन्तु कैसी भी विपत्ति में उस विद्या को ऊसर भूमि में न बोवै । ११३ । विद्या ब्राह्मण के पास आकर कहती है कि मैं तुम्हारी निधि हूं मेरी रक्षा करो निंदक को मुझे न दो तो मैं बहुत वीर्य सहित रहूंगी । ११४ । जिस को पवित्र और ब्रह्मचारी निधि का रक्षा करने वाला सावधानता से रहने वाला जानो उस ब्राह्मण को मुझे दो । ११५ । गुरु की आज्ञा बिना पढ़ते पढ़ाते सुनके जो वेद को जानता है सो वेद का चोर है और नरक में जाता है । ११६ । *

किक ज्ञान अथवा वैदिक ज्ञान वा ब्रह्म ज्ञान इन सब को जिस्से पावै उस को पहिले प्रणाम करै। ११७। केवल गायत्री ही
जानता हो परंतु शास्त्रोक्त नियम से सहित हो सो मान के योग्य है और तीनों वेद को पढ़े हो सब बस्तु का बेंचने वाला
शास्त्रोक्त नियम से रहित हो निषिद्ध वस्तु का भोजन करनेवाला हो सो मान के योग्य नहीं है। ११८। बड़े लोग जिस
सन पर वा जिस शय्या पर बैठे हों उस पर न बैठे और आप शय्या अथवा आसन पर बैठा हो तो उठके बड़े लोगों को प्रणाम
रै। ११९। बड़े लोगों के आने से छोटे लोगों का प्राण ऊपर जाने की इच्छा करता है और छोटे लोग जब उठके प्रणाम करते
तब उस प्राण को पाते हैं। १२०। जो मनुष्य बड़े लोगों को नित्य ही प्रणाम करता है और सेवा करता है उस की विद्या
युष यश बल ये चारो बढ़ते हैं। १२१। बड़े लोगों को प्रणाम के उपरान्त मैं फलाना हूं ऐसा अपना नाम कहै। १२२। जो
नुष्य प्रणाम करने की वाक्य को नहीं जानते सो केवल अपने नाम ही को कहैं और स्त्री भी इसी प्रकार से कहैं। १२३।
णाम करत अपने नाम के अंत में भोः ऐसा कहै भो शब्द जो है सो नाम का स्वरूप है यह ऋषियों ने कहा। १२४। आशीर्वाद

लौकिकं वैदिकं वापि तथाध्यात्मिकमेव च। आददीत यतो ज्ञानन्तम्पूर्वमभिवादयेत्। ११७।
सावित्रीमात्रसारोऽपि वरं विप्रः सुयंत्रितः। नायन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी। ११८।
शय्यासनेऽध्याचरिते श्रेयसा न समाविशेत्। शय्यासनस्थश्चैवैनं प्रत्युत्थायाभिवादयेत्। ११९।
ऊर्ध्वम्प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति। प्रत्युत्थानाभिवादाभ्याम्पुनस्तान्प्रतिपद्यते। १२०।
अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः। चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्। १२१।
अभिवादात्परम्विप्रो ज्यायांसमभिवादयन्। असौ नामाहमस्मीति स्वन्नाम परिकीर्तयेत्। १२२।
नामधेयस्य ये केचिदभिवादन्न जानते। तान्प्राज्ञोऽहमिति ब्रूयास्त्रियस्सर्वास्तथैव च। १२३।
भोः शब्दं कीर्तयेदन्ते स्वस्य नाम्नोऽभिवादने। नाम्नां स्वरूपभावो हि भोभाव ऋषिभिः स्मृतः। १२४।
आयुष्मान्भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने। अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः। १२५।
यो न वेत्त्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम्। नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः। १२६।
ब्राह्मणङ्कुशलम्पृच्छेत्क्षत्रबन्धुमनामयम्। वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च। १२७।
अवाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानपि यो भवेत्। भोभवत्पूर्वकन्त्वेनमभिभाषेत धर्मवित्। १२८।
परपत्नी तु या स्त्रीस्यादसम्बन्धा च योनितः। ताम्ब्रूयाद्भवतीत्येवं सुभगे भगिनीति च। १२९।
मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरानृत्विजो गुरून्। असावहमिति ब्रूयात्प्रत्युत्थाय यवीयसः। १३०।
मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रूरथ पितृष्वसा। सम्पूज्या गुरुपत्नीवत्समास्ता गुरुभार्यया। १३१।
भ्रातुर्भार्य्योपसंग्राह्या सवर्णाहन्यहन्यपि। विप्रोष्य तूपसंग्राह्या ज्ञातिसम्बन्धियोषितः। १३२।

नि में आयुष्मान्भव सौम्य ऐसा कहना चाहिए नाम के अन्त में अकारादि स्वर को प्लुत (अर्थात् त्रिमात्रात्मक) कहना। १२५।
मनुष्य आशीर्वाद देने की वाक्य को नहीं जानता है उस को प्रणाम नहीं करना जैसा शूद्र वैसा वह है। १२६। ब्राह्मण से
शल क्षत्रिय से अनामय वैश्य से क्षेम शूद्र से आरोग्य पूछना चाहिए। १२७। जो मनुष्य अपने से छोटा है और यज्ञ करता है
स को यज्ञ में भो भवत ऐसे शब्द से बोलना उस का नाम न लेना। १२८। जो स्त्री अपने कोई संबंध में नहीं है उस को
वती सुभगे भगिनी ऐसा कहना। १२९। मामा चाचा श्वसुर ऋत्विज (अर्थात् यज्ञ कराने वाल) गुरु ये सब अपने वय से छोटे
हों तो उस को मैं फलाना हूं ऐसा कहकर उठ के प्रणाम करै। १३०। मौसी मामी सास फूफू ये सब गुरु की स्त्री के सम
इस लिये गुरु की स्त्री की नाईं इन सब का पूजा करना उचित है। १३१ जेठे भाई की जो सवर्णा स्त्री है (अर्थात् दूसरे वर्ण
नहीं है) उसका पाद छू के नित्य ही प्रणाम करना और जाति संबंध की जो स्त्री है उसका पाद छू के प्रणाम करना विदेश
जाके अपने देश में रहै तब पाद को न छूवै प्रणाम मात्र करै। १३२।

फूफू मौसी जेठी भगिनी इन सब को माता के समान जानना माता तो इन सभों से बड़ी है। १३३। एक ग्राम वा एक पु
के रहने वाले गुण से रहित हो और दस बरस जेठा हो तो उस के साथ मित्रता का व्यवहार होता है और गुणी हो पांच
बरस जेठा हो तौ भी मित्रता ही का व्यवहार होता है और वेद पढ़े हो तीन बरस जेठा हो तो मित्रता ही होती है और
सम्बंध में हो तो थोड़े ही काल में मित्रता होती है सर्वत्र जो काल कह आए हैं उस के ऊपर ज्येष्ठता का व्यवहार होता
है। १३४। दस बरस का ब्राह्मण और सौ बरस का क्षत्रिय दोनों आपुस में पिता पुत्र की नाईं रहैं तिस में ब्राह्मण पिता है
और क्षत्रिय पुत्र है। १३५। द्रव्य बन्धु बय कर्म विद्या ये पांच मान्य के स्थान हैं इस में पूर्व पूर्व से उत्तर उत्तर बड़ा है। १३६। ब्राह्मण क्षत्रिय
वैश्यों के इन पांचों के मध्य में जिस में जितना अधिक वस्तु रहै सो मान्य के जोग्य है नब्बे ९० बरस के ऊपर बय हो तो शूद्र भी मान के
योग्य है। १३७। जो रथ पर चढ़ा है और जो नब्बे ९० बरस के ऊपर का बय वाला है रोगी है बोझ लिए है स्त्री है ब्रह्मचारी
है राजा है विवाह करने के लिए जो वर है इन सब को राह छोड़ देना (अर्थात् इन सभों में कोई एक ओर से आता हो और उस के समीप
दूसरी ओर से कोई आता हो तो वह राह छोड़ देवै इन सभों के जाने के लिये)। १३८। और ये सब आपुस में ब्रह्मचारी को और राजा को

पितुर्भगिन्यां मातुश्च ज्यायस्यां च स्वसर्य्यपि। मातृवद्वृत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्यो गरीयसी। १३३।
दशाब्दाख्यं पौरसख्यं पञ्चाब्दाख्यं कलाभृताम्। त्र्यब्दपूर्वं श्रोत्रियाणां स्वल्पेनापि स्वयोनिषु। १३४।
ब्राह्मणन्दशवर्षन्तु शतवर्षन्तु भूमिपम्। पितापुत्रौ विजानीयाद्ब्राह्मणस्तु तयोः पिता। १३५।
वित्तम्बन्धु वयः कर्म्म विद्या भवति पञ्चमी। एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम्। १३६।
पञ्चानान्त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुणवन्ति च। यत्र स्युः सोच मानार्हः शूद्रोपि दशमीङ्गतः। १३७।
चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियाः। स्नातकस्य च राज्ञश्च पन्था देयो वरस्य च। १३८।
तेषान्तु समवेतानां मान्यौ स्नातकपार्थिवौ। राजस्नातकयोश्चैव स्नातको नृपमानभाक्। १३९।
उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः। सकल्पं सरहस्यञ्च तमाचार्य्यम्प्रचक्षते। १४०।
एकदेशन्तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः। योध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते। १४१।
निषेकादीनि कर्म्माणि यः करोति यथाविधि। सम्भावयति चान्नेन सो विप्रो गुरुरुच्यते। १४२।
अग्न्याधेयम्पाकयज्ञानग्निष्टोमादिकान्मखान्। यः करोति वृतो यस्य स तस्यर्त्विगिहोच्यते। १४३।
य आवृणोत्यवितथं ब्रह्मणाश्रवणावुभौ। स माता स पिता ज्ञेयस्तन्न द्रुह्येत्कदाचन। १४४।
उपाध्यायान्दशाचार्य्य आचार्य्याणां शतं पिता। सहस्रं तु पितॄन्माता गौरवेणातिरिच्यते। १४५।
उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान्ब्रह्मदः पिता। ब्रह्म जन्म हि विप्रस्य प्रेत्य चेह च शाश्वतम्। १४६।
कामान्माता पिता चैनं यदुत्पादयतो मिथः। संभूतिं तस्य तां विद्याद्यद्योनावभिजायते। १४७।
आचार्य्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद्वेदपारगः। उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या सा जरामरा। १४८।

राह देवैं राजा और ब्रह्मचारी में राजा राह देवै। १३९। यज्ञोपवीत करके कल्प और रहस्य (अर्थात् गोप्य वस्तु) सहित वे
को पढ़ावै वह आचार्य्य कहाता है। १४०। वेद का एक देश और वेद के छः अंग (अर्थात् शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त ज्योति
छन्द) इन सब को जीविका के लिये जो पढ़ाता है सो उपाध्याय कहाता है। १४१। गर्भाधान आदि कर्म को विधि सहित व
कराता है और अन्न से बढ़ाता है सो ब्राह्मण गुरु कहाता है। १४२। बरण लेके अग्निहोत्र कर्म अष्टका श्राद्ध आदि अग्निष्टो
आदि यज्ञ इन सब को करता है सो ऋत्विक् कहाता है। १४३। जो दोनों कान को वेद से पूर्ण करता है सो माता
और पिता है उस से द्रोह कभी न करना। १४४। उपाध्याय से दश गुण आचार्य्य बड़ा है आचार्य्य से सौ गुण पिता बड़ा
पिता से हजार गुण माता बड़ी है। १४५। जन्म देने वाला और वेद पढ़ाने वाला इन दोनों में वेद पढ़ाने वाला बड़ा है वे
पढ़ने से जो जन्म होता है सो नित्य (अर्थात् नाश रहित) है। १४६। माता पिता अपने काम के वस होकर पुत्र को उत्प
करते हैं इस लिए उत्पत्ति की योनि है। १४७। जो जन्म गायत्री करके आचार्य्य करता है सो जन्म सत्य है अजर है अमर है। १४८

ाड़ा वा बहुत वेद के पढ़ाने से जो उपकार करता है उस को भी गुरू जानना । १४९ । अपने बय से छोटा है और वेद को पढ़ाता है र्म को सिखलाता है वह भी गुरू कहाता है । १५० । अंगिरा के लड़का ने अपने चाचों को पढ़ाया और बेटा ऐसा कहा क्योंकि ान से बडा रहा इस लिए । १५१ । वे चाचा लोग क्रोध पाके देवतों से पूछा सब देवतों ने मिलके कहा कि तुम्हारे लड़के ने च्छा कहा । १५२ । क्योंकि जो कुच्छ नहीं जानता वह बालक कहाता है और जो मंत्र देता है सो पिता कहाता है । १५३ । रस और केश का पाकना द्रव्य बन्धु इन सभों करके बड़ा नहीं होता किन्तु ऋषि लोगों ने यही धर्म कहा है कि हमारे सब अंग सहित वेद का पढ़ने वाला जो है सोई बड़ा है । १५४ । ब्राह्मणों में ज्ञान से बड़ाई है क्षत्रियों में बल से वैश्यों में धन ान्य से शूद्रों में जन्म से बड़ाई है । १५५ । केश के पकने से वृद्ध नहीं कहाता युवा है और पढ़े है उसी को देवतों ने वृद्ध हा है । १५६ । काष्ठ की हाथी चाम का मृग मूर्ख ब्राह्मण इन तीनों केवल नाम ही को धारण करते हैं काम कुच्छ नहीं कर

अल्पं वा बहु वा यस्य श्रुतस्योपकारोऽति यः । तमपीह गुरुं विद्याच्छ्रुतोपक्रियया तया । १४९ ।
ब्राह्मस्य जन्मनः कर्ता स्वधर्मस्य च शासिता । बालोपि विप्रो वृद्धस्य पिता भवति धर्म्मतः । १५० ।
अध्यापयामास पितृन् शिशुरांगिरसः कविः । पुत्रका इति होवाच ज्ञानेन परिगृह्यतान् । १५१ ।
ते तमर्थमपृच्छन्त देवानागतमन्यवः । देवाश्चैतान्समेत्योचुर्न्याय्यम्वः शिशुरुक्तवान् । १५२ ।
अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मंत्रदः । अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मंत्रदम् । १५३ ।
न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बंधुभिः । ऋषयश्चक्रिरेधर्म्मं योनूचानः स नो महान् । १५४ ।
विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठं क्षत्रियाणान्तु वीर्य्यतः । वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः । १५५ ।
न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः । यो वै युवाप्यधीयानस्तन्देवाः स्थविरं विदुः । १५६ ।
यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः । यश्च विप्रोनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति । १५७ ।
यथा षंढोफलः स्त्रीषु यथा गौर्गवि चाफला । यथा चाज्ञेफलं दानं तथा विप्रो न्टचोफलः । १५८ ।
अहिंसयैव भूतानां कार्य्यं श्रेयोनुशासनम् । वाक्चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता । १५९ ।
यस्य वाङ्मनसी शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा । स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम् । १६० ।
नारुन्तुदः स्यादार्तोपि न परद्रोहकर्म्मधीः । ययास्योद्विजते वाचा नालोक्यान्तामुदीरयेत् । १६१ ।
सम्मानाद्ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव । अमृतस्यैव चाकांक्षेदवमानस्य सर्वदा । १६२ ।
सुखं ह्यवमतः शेते सुखं च प्रतिबुध्यते । सुखञ्चरति लोकेस्मिन्नवमंता विनश्यति । १६३ ।
अनेन क्रमयोगेन संस्कृतात्मा द्विजः शनैः । गुरौ वसन्सञ्चिनुयाद्ब्रह्माधिगमिकन्तपः । १६४ ।
तपोविशेषैर्विविधैर्व्रतैश्च विधि चोदितैः । वेदः कृत्स्नोधिगन्तव्यः सरहस्यो द्विजन्मना । १६५ ।

कते । १५७ । जिस प्रकार से नपुंसक मनुष्य स्त्रियों में निष्फल है और गौ गौ में निष्फल है जिस प्रकार से मूर्ख ब्राह्मण को ान देना निष्फल है तिस प्रकार से बे पढ़ा ब्राह्मण निष्फल है । १५८ । जिस में सब जीवों को पीड़ा न हो ऐसा कल्याण कर-हार जो कर्म उस कर्म की आज्ञा देना चाहिए और मधुर चिक्कन वाणी बोलना चाहिये धर्म की इच्छा करने वाले को । १५९ । जिस की वाणी और मन शुद्ध है सर्व काल में रक्षित है सो वेदान्त के फल को पाता है । । १६० । दुःखित हो तौ भी ऐसी ात न बोले कि जिस से किसी को मर्म घाव हो पराए के द्रोह कर्म में बुद्धि को न रक्खे जिस बात में किसी का जीव उद्वेग ो प्राप्त हो ऐसी बात न बोले । १६१ । सन्मान से ब्राह्मण डरता रहै विष की नाईं और अपमान की इच्छा करै अमृत की ाईं । १६२ । अपमान पाके सुख पूर्वक सोता है और सुख पूर्वक जागता है इस लोक में घूमता है और अपमान करने वाला ाश को पाता है । १६३ । इस प्रकार से संस्कार को पाके धीरे धीरे गुरुकुल में बास करता हुआ ब्रह्म को प्राप्ति करने वाली तप ो करै । १६४ । नाना प्रकार के तप और व्रत को करके रहस्य (अर्थात् गोप्य बस्तु) सहित वेद को पढ़े । १६५ । * *

ब्राह्मण तप करता हुआ वेद ही को पढ़े यही उस का परम तप है । १६६ । पांव से लेके नख तक परम तप वह करता है जो माला पहिरे हुए भी बुद्धिमान शक्ति पूर्वक दिन दिन वेद को पढ़ता है ब्रह्मचारी को माला पहिरना निषिद्ध है इस लिए निषिद्ध कर्म करके भी वेद को पढ़े तो भी वह तप ही है । १६७ । जो ब्राह्मण वेद का पढ़ना छोड़के शास्त्रों के पढ़ने में परिश्रम करता है सो जीता हुआ अपने वंश सहित शूद्र के भाव को प्राप्त होता है । १६८ । वेद में यह बात है कि ब्राह्मण का जन्म तीन है प्रथम माता से दूसरा यज्ञोपवीत होने से तीसरा यज्ञ करने से । १६९ । तिस में जो यज्ञोपवीत होने से जन्म है उस में गायत्री माता है आचार्य्य पिता है । १७० । वेद के देने से आचार्य्य पिता कहाता है जब तक यज्ञोपवीत नहीं होता तब तक उस लड़के का अधिकार कोई काम में नहीं होता । १७१ । यज्ञोपवीत के भए बिना लड़के का अधिकार श्राद्ध करने में होता है और तब तक शूद्र के समान होता है । १७२ । यज्ञोपवीत के उपरान्त व्रत करना चाहिए और विधि पूर्वक वेद ग्रहण करना

वेदमेव सदाभ्यस्येत्तपस्तप्स्यन् द्विजोत्तमः । वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते । १६६ ।

आहैव सनखाग्रेभ्यः परमन्तप्यते तपः । यः स्रग्व्यपि द्विजोधीते स्वाध्यायं शक्तितोन्वहम् । १६७ ।

योनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् । स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशुगच्छति सान्वयः । १६८ ।

मातुरग्रेधिजननं द्वितीयं मौंजिबंधने । तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचोदनात् । १६९ ।

तत्र यद्ब्रह्म जन्मस्य मौंजीबंधनचिह्नितम् । तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य्य उच्यते । १७० ।

वेदप्रदानादाचार्य्यम्पितरं परिचक्षते । न ह्यस्मिन् युज्यते कर्म्म किञ्चिदामौञ्जिबंधनात् । १७१ ।

नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म स्वधा निनयनादृते । शूद्रेण हि समस्तावद्यावद्वेदे न जायते । १७२ ।

कृतोपनयनस्यास्य व्रतादेशनमिष्यते । ब्रह्मणो ग्रहणञ्चैव क्रमेण विधिपूर्वकम् । १७३ ।

यद्यस्य विहितं चर्म्म यत्सूत्रं या च मेखला । यो दण्डो यच्च वसनं तत्तदस्य व्रतेष्वपि । १७४ ।

सेवेतेमांस्तु नियमान्ब्रह्मचारी गुरौ वसन् । सन्नियम्येन्द्रियग्राममन्तपो वृद्ध्यर्थमात्मनः । १७५ ।

नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्य्याद्देवर्षिपितृतर्पणम् । देवताऽभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च । १७६ ।

वर्जयेन्मधुमांसं च गंधं माल्यं रसान्स्त्रियः । शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनाञ्चैव हिंसनम् । १७७ ।

अभ्यङ्गमञ्जनञ्चक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम् । कामं क्रोधञ्च लोभञ्च नर्तनङ्गीतवादनम् । १७८ ।

द्यूतञ्च जनवादञ्च परिवादन्तथा नृतम् । स्त्रीणाञ्च प्रेक्षणालम्भमुपघातम्परस्य च । १७९ ।

एकः शयीत सर्वत्र न रेतस्कन्दयेत्क्वचित् । कामाद्धि स्कंदयन् रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः । १८० ।

स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः । स्नात्वार्कमर्चयित्वा त्रिः पुनर्मामित्यृचञ्जपेत् । १८१ ।

उदकुम्भं सुमनसो गोशकृन्मृत्तिकां कुशान् । आहरेद्यावदर्थानि भैक्षञ्चाहरहश्चरेत् । १८२ ।

चाहिए । १७३ । जिस का जो चर्म जो सूत्र जो मेखला जो दण्ड जो वस्त्र है सोई व्रत में भी रहै । १७४ । ब्रह्मचारी गुरुकुल में बास करता हुआ इन्द्रियों को बस करके अपने तप के बढ़ने के लिए आगे जो कहेंगे नियम उस को सेवन करे । १७५ । नित्य ही स्नान करके पवित्र होकर देव ऋषि पितरों का तर्पण करे देवतों का पूजन करे अग्नि में लकड़ी को डाले । १७६ । मधु मांस गंध माला रस स्त्री और शुक्त (अर्थात् जो स्वभाव से मधुर है काल पाके जल बास करके आमिल हो जावै) प्राणियों का मारना । १७७ । अबटन काजल जूता छाता काम क्रोध लोभ नांच गीत बाजा । १७८ । जूआ झगड़ा पराए का झूठ दोष कहना स्त्रियों को देखना और मिलना पराए का नाश इन सब को बरावै । १७९ । अकेला सोवै वीर्य्य को न गिरावै और जो इच्छा से वीर्य को गिराता है सो अपने व्रत को नाश करता है । १८० । स्वप्न में बिना इच्छा से वीर्य्य गिरा हो तो नहाके सूर्य्य की पूजा करके पुनर्मां इस मंत्र को तीन बेर जप करै । १८१ । जल का घड़ा पुष्प गोबर मांटी कुशा इन सब को अपने कार्य्य के अनुसार ल्यावै और भिक्षा को नित्य ही मांगै । १८२ ।

ा मनुष्य वेद और यज्ञ और अपने अच्छे कर्मों से सहित हो उसी के गृह से भिक्षा ल्यावै । १८३ । गुरु के कुल में जाति के
ल में बन्धु के कुल में भिक्षा न मांगै दूसरे गृह में न मिल सके तो पहिले पहिले को छोड़ देवै । १८४ । जो सब कह आए हैं इन
ों का अभाव हो तो सब गांव में भिक्षा मांगै मौन होके इन्द्रियों को बस करके परन्तु पापियों का गृह छोड़ देवै । १८५ ।
र से लकड़ी लाकर आकाश में रक्खै उसी लकड़ी से सायंकाल में और प्रातःकाल में होम करै आलस्य को छोड़ देवै । १८६ ।
ामर्थ्य रहत संते सात दिन तक भिक्षा न मांगै और अग्नि में होम न करे तो अव कीर्णी का व्रत जो आगे कहेंगे उस व्रत को
रे । १८७ । भिक्षा मांग के नित्य ही भोजन करे परन्तु एक ही के अन्न न भोजन करे भिक्षा मांग के भोजन करना उपवास के
म है । १८८ । विश्वे देव कर्म के निमित्त अथवा पितृ कर्म के निमित्त निमंत्रित हो तो श्राद्ध में इच्छा पूर्वक भोजन करे परन्तु
ानों कर्म में क्रम से व्रती की नाईं और ऋषियों की नाईं रहे (अर्थात् व्रत में जैसे मधु मांस आदिक का भोजन निषिद्ध है
से ही रहे और ऋषि कहिए यतो तिसकी नाईं मधु मांस आदिक का वर्जन करे यह करने से उसके व्रत का लोप नहीं होता)
१८९ । श्राद्ध में भोजन करना यह ब्राह्मण ही का काम है और क्षत्रिय वैश्य ब्रह्मचारियों का नहीं है । १९० । गुरु की आज्ञा

वेदयज्ञैरहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्म्मसु । ब्रह्मचर्य्या हरेद्भैक्ष्यं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् । १८३ ।
गुरोः कुलन्न भिक्षेत न ज्ञातिकुलबंधुषु । अलाभे त्वन्यगेहानाम्पूर्वम्पूर्वम्विवर्जयेत् । १८४ ।
सर्वम्वापि चरेद्ग्रामम्पूर्वोक्तानामसंभवे । नियम्य प्रयतो वाचमभिशस्तांस्तु वर्जयेत् । १८५ ।
दूरादाहृत्य समिधः सन्निदध्याद्विहायसि । सायम्प्रातश्च जुहुयात्ताभिरग्निमतन्द्रितः । १८६ ।
अकृत्वा भैक्षचरणमसमिध्यच पावकम् । अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णिव्रतञ्चरेत् । १८७ । भैक्ष्येण
वर्तयेन्नित्यं नैकान्नादीभवेद्व्रती । भैक्ष्येण व्रतिनोवृत्तिरुपवाससमास्मृता । १८८ । व्रतवद्देवदैवत्येपि
त्र्येकर्म्मण्यर्थषिवत् । काममभ्यर्थितो श्नीयाद्व्रतमस्य न लुप्यते । १८९ । ब्राह्मणस्यैव कर्म्मैतदुपदिष्टं
मनीषिभिः । राजन्यवैश्ययोस्त्वेवं नैतत्कर्म्म विधीयते । १९० । चोदितो गुरुणा नित्यमप्रचोदित एव
वा कुर्य्यादध्ययने यत्नमाचार्य्यस्य हितेषु च । १९१ । शरीरञ्चैव वा चञ्च बुद्धीन्द्रियमनांसि च । निय-
म्यप्राञ्जलिस्तिष्ठेद्वीक्ष्यमाणो गुरोर्मुखम् । १९२ । नित्यमुद्धृतपाणिः स्यात्साध्वाचारः सुसंयतः ।
आस्यतामिति चोक्तस्सन्नासीताभिमुखं गुरोः । १९३ । हीनान्नवस्त्रवेषः स्यात्सर्वदा गुरुसन्निधौ ।
उत्तिष्ठेत्प्रथमञ्चास्य चरमञ्चैव सम्विशेत् । १९४ । प्रति श्रवण सम्भाषे शयानो न समाचरेत् ।
नासीनो नच भुञ्जानो न तिष्ठन्न पराङ्मुखः । १९५ । आसीनस्य स्थितः कुर्य्यादभिगच्छंस्तुतिष्ठतः ।
प्रत्युद्गम्यत्वाव्रजतः पश्चाद्धावंस्तुधावतः । १९६ । पराङ्मुखस्याभिमुखो दूरस्थस्यैत्यचान्तिकम् ।
प्रणम्य तु शयानस्य निदेशे चैव तिष्ठतः । १९७ । * * *

ा चाहे न हो परन्तु वेद के पढ़ने में और गुरु के हित कर्म में यत्न करे । १९१ । गुरु के मुख को देखता हुआ शरीर वाणी बुद्धि
न्द्रिय मन इन सब को वश करके हाथ जोड़े खड़ा रहै । १९२ । ओढ़नें का जो वस्त्र है उसके बाहर दक्षिण हस्तको नित्य हीं
कए रहै साधु की नाईं आचार सहित रहैं चंचलता को छोड़े रहैं बैठो ऐसी आज्ञा गुरु की हो तब उन के सन्मुख बैठै । १९३ ।
ुरु के समीप सर्व काल में हीन अन्न और हीन वस्त्र से और हीन स्वरूप से रहै (अर्थात् जैसा अन्न गुरु भोजन करैं उससे निकृष्ट
न्न भोजन करै और जैसा वस्त्र गुरु पहिरैं उससे निकृष्ट वस्त्र पहिरै औ जैसा स्वरूप गुरु बनाए रहैं उस से निकृष्ट स्वरूप
पना बनाए रहै) गुरु के जागने के पहिले जागै और गुरु के सोने के पीछे सोवै । १९४ । सोता आसन पर बैठा भोजन करता
ौर विमुख (अर्थात् मुख फेरे) हुआ गुरु से न बोले और गुरु की बात न सुनैं किन्तु । १९५ । गुरु बैठे हों तो आप ठाढ़ होकर
ोले और बात को सुनै गुरु खड़ा हो तो आप डोलता हुआ बातों को कहै और गुरु डोलते हों तो सन्मुख जाकर बोले और
ात को सुनै जो गुरु दौड़ते हों तो आप भी पीछे दौड़कर बोले और बात को सुनै । १९६ । गुरु विमुख हो तो उन के
न्मुख जाकर और दूर हो तो समीप जाकर सोए हो तो प्रणाम कर आज्ञा को सुनै । १९७ । * *

गुरु के समीप में शय्या आसन अपना नीच राखै गुरु के देखते हुए जैसा चाहै तैसा आसन करके न रहै। १९८। गुरु पीछे भी केवल उनके नाम को न लेवै और गुरु के गमन भाषण चेष्टा की नाईं आप यह तीनों कर्म को न करै। १९९। जहां गुरु का सच्चा वा झूठा दोष कहा जाता हो वा निंदा होती हो तहां कांन मूंदना अथवा वहां से उठि जाना। २००। गुरु का सच्चा वा झूठा दोष कहने से गदहा होता है और निंदा करने से कुत्ता होता है अनुचित गुरु का धन भोजन करने से छोटा कीड़ा होता है और गुरु की बड़ाई को नहीं सहि सकता सो बड़ा कीड़ा होता है। २०१। गुरु की पूजा दूर से (अर्थात् किसी से पूजा की सामग्री भेज के) न करना और क्रुद्ध होके न अपनी स्त्री के समीप हो तो भी न करना आप सवारी पर हो वा आसन पर बैठा हो तो सवारी से उतर के और आसन को छोड़ के प्रणाम करै। २०२। जो मनुष्य गुरु के देश से शिष्य के देश में आया है और जो शिष्य के देश से गुरु के देश में गया है इन दोनों मनुष्यों के समीप में गुरु के साथ शिष्य न रहै जो बात गुरु के सुनने में न आवै ऐसी कोई बात गुरु की वा और की न कहै (अर्थात् गुरु से छिपा कर कोई बात न कहै)। २०३। बैल घोड़ा ऊंट इन करके युक्त जो यान (अर्थात् रथ गाड़ी) तिस पर और अटारी चटाई पाथर काठ नाव इन सबों पर गुरु के साथ बैठै। २०४।

नीचं शय्यासनञ्चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ। गुरोस्तु चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत्। १९८। नोदाहरेदस्य नामपरोक्षमपि केवलम्। नचैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषितचेष्टितम्। १९९। गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वापि प्रवर्त्तते। कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यम्वा ततोन्यतः। २००। परीवादात्खरो भवति श्वावै भवति निन्दकः। परिभोक्ताकृमिर्भवति कीटो भवति मत्सरी। २०१। दूरस्थो नार्चयेदेनं न क्रुद्धो नान्तिके स्त्रियाः। यानासनस्थश्चैवैनमवरुह्याभिवादयेत्। २०२। प्रतिवातेऽनुवातेव नासीत गुरुणासह। असंश्रवे चैव गुरोर्न किञ्चिदपि कीर्तयेत्। २०३। गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासादस्रस्तरेषु कटेषु च। आसीत गुरुणासार्द्धं शिलाफलकनौषु च। २०४। गुरोर्गुरौसन्निहिते गुरुवद्वृत्तिमाचरेत्। न चानिसृष्टो गुरुणास्वान् गुरूनभिवादयेत्। २०५। विद्यागुरुष्वेत देवनित्यावृत्तिः स्वयोनिषु। प्रतिषेधत्सुचाधर्म्मान् हितंचोपदिशत्स्वपि। २०६। श्रेयस्सु गुरुवद्वृत्तिं नित्यमेव समाचरेत्। गुरुपुत्रेषु चार्य्येषु गुरोश्चैव स्वबंधुषु। २०७। बालः समानजन्मा वा शिष्यो वा यज्ञकर्मणि। अध्यापयन् गुरुसुतो गुरुवन्मानमर्हति। २०८। उत्सादनञ्च गात्राणां स्नापनोच्छिष्टभोजने। न कुर्य्याद्गुरुपुत्रस्य पादयोश्चावनेजनम्। २०९। गुरुवत्प्रति पूज्याः स्युस्सवर्णा गुरुयोषितः। असवर्णास्तु संपूज्याः प्रत्युत्थानाभिवादनैः। २१०। अभ्यञ्जनं स्नापनञ्च गात्रोत्सादनमेव च। गुरुपत्न्या न कार्य्याणि केशानाञ्च प्रसाधनम्। २११। गुरुपत्नी तु युवतिर्नाभिवाद्येह पादयोः। पूर्णविंशतिवर्षेण गुणदोषौ विजानता। २१२। स्वभाव एषनारीणां नराणामिहदूषणम्। अतोर्थान्न प्रमाद्यंति प्रमदासु विपश्चितः। २१३।

गुरु के गुरु में भी गुरु की नाईं आचरण करै और गुरु की आज्ञा बिना अपानें देश से आए हुए चाचा आदि को प्रणाम न करै। २०५। इसी प्रकार से आचार्य्य को छोड़ कर उपाध्याय आदि दश गुरु हैं और संबंधी जो चाचा आदि हैं और जो अधर्म्म से बचाते हैं और जो हित बात का उपदेश करते हैं इन सबों में नित्य हीं गुरु की नाईं सब व्यवहार राखै। २०६। जो बड़े लोग हैं और श्रेष्ठ जो गुरु पुत्र है और जो गुरु के बंधु जन हैं इन सभों में गुरु की नाईं आचरण करै। २०७। गुरु का पुत्र अपाने बय से छोटा हो वा बड़ा हो और पढ़ाने में समर्थ हो और अपानीं यज्ञ दर्शन के लिये आवे तो उसका मान गुरु की नाईं करना चाहिए। २०८। स्नान कराना उबटन लगाना जूठा भोजन करना पांव धोना ये सब काम गुरु पुत्र का न करना। २०९। सवर्णा जो गुरु पत्नी है उस की पूजा गुरु की नाईं करना और असवर्णा जो है उस की पूजा तो उठके प्रणाम करै इतना हीं है। २१०। गुरु की स्त्री को तेल और उबटन न लगावै स्नान कराना केश पसारना ये भी न करै। २११। जो शिष्य बीस वर्ष का हो और गुण दोष को जानता हो वह युवती गुरु पत्नी का पांव पकड़ के प्रणाम न करै। २१२। मनुष्यों को दूषित करना यह नारियों का स्वभाव ही है इस लिये पंडित लोग स्त्री के विषय में सावधानता से रहते हैं। २१३। * *

ाम क्रोध सहित हो पंडित वा मूर्ख हो तो उस को निषिद्ध राह पर लेजाने को स्त्री लोग समर्थ हैं । २१४ । माता भगिनी
ड़की इन सबों के साथ एकांत में न रहना इंद्रिय सब बलवान हैं पंडितों को भी खींचती हैं । २१५ । युवती गुरु पत्नी को
वा शिष्य इच्छा पूर्वक विधि से मैं फलाना हूं ऐसा कहता हुआ भूमि में बंदना करै । २१६ । सज्जनों के धर्म को स्मरण करता
आ शिष्य विदेश से आके गुरु पत्नी का पांव पकड़े और प्रणाम तो प्रति दिन करै । २१७ । जिस प्रकार से कुदारी से खनते
नते जल को मनुष्य पाता है तिस प्रकार से सेवा करते करते गुरु की संपूर्ण विद्या को शिष्य पाता है । २१८ मूड़ मुड़ाए वा
टा रखाये अथवा शिखा को जटा सदृश बनाए हो परन्तु ब्रह्म चारी को ग्राम में रहते हुए सूर्य उदय को और अस्त को न
प्त होवे किंतु ग्राम से बाहर जब ब्रह्म चारी जावे तब ये दोनों कर्म होवें । २१९ । कदाचित ब्रह्म चारी के ग्राम में रहते हुए ये
ोनों कर्म होवें तो जप करता हुआ उस दिन उपवास करै । २२० । यह दोनों कर्म भए पीछे पूर्व कथित जो प्रायश्चित्त है उस को
करै तो बड़े पाप से युक्त होता है । २२१ । आचमन करके दोनों संध्या में एकाग्र चित्त होकर पवित्र देश में विधि पूर्वक

अविद्वांसमलंलोके विद्वांसमपि वा पुनः । प्रमदा ह्युत्पथन्नेतुं कामक्रोधवशानुगम् । २१४ । मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् । बलवानिंद्रियग्रामो विद्वांसमपकर्षति । २१५ । कामं तु गुरुपत्नीनां युवतीनां युवा भुवि । विधिवद्वंदनं कुर्यादसावहमिति ब्रुवन् । २१६ । विप्रोष्यपादग्रहणमन्वहं चाभिवादम् । गुरुदारेषु कुर्वीत सतान्धर्म्ममनुस्मरन् । २१७ । यथाखनन्खनित्रेण नरोवार्यधिगच्छति । तथा गुरुगताम्विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति । २१८ । मुण्डो वा जटिलो वा स्यादथवा स्याच्छिखाजटः । नैनं ग्रामेभिनिम्लोचेत्सूर्य्योनाभ्युदियात्क्वचित् । २१९ । तञ्चेदभ्युदियात्सूर्य्यः शयानं कामचारतः । निम्लोचेद्वाप्यविज्ञानाज्जपन्नुपवसेद्दिनम् । २२० । सूर्य्येणह्यभिनिर्मुक्तः शयानोभ्युदितश्चयः । प्रायश्चित्तमकुर्वाणो युक्तः स्यान्महतैनसा । २२१ । आचम्य प्रयतो नित्यमुभेसंध्ये समाहितः । शुचौदेशे जपन् जप्यमुपासीत यथाविधि । २२२ । यदिस्त्रीयद्यवरजः श्रेयः किञ्चित्समाचरेत् । तत्सर्वमाचरेद्युक्तो यत्र वास्यरमेन्मनः । २२३ । धर्म्मार्थावुच्यतेश्रेयः कामार्थौ धर्म्म एव च । अर्थएवेह वा श्रेयस्त्रिवर्गइतितुस्थितिः । २२४ । आचार्य्यो ब्राह्मणोमूर्तिः पितामूर्तिः प्रजापतेः । माता पृथिव्यामूर्तिस्तु भ्रातास्वोमूर्तिरात्मनः । २२५ । आचार्य्यश्च पिताचैव माताभ्राता च पूर्वजः । नार्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः । २२६ । यं माता पितरौ क्लेशं सहेते सम्भवेन्नृणाम् । न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुम्वर्षशतैरपि । २२७ । तयोर्नित्यं प्रियं कुर्य्यादाचार्य्यस्य च । सर्वदा तेष्वेवत्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते । २२८ । तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमन्तप उच्यते । नतैरभ्यनुज्ञातो धर्म्ममन्यं समाचरेत् । २२९ । * * * * *

ायत्री का जप करै । २२२ । स्त्री अथवा छोटा मनुष्य कोई अच्छी बात करता हो तो उस बात को ग्रहण करै अथवा शास्त्र से
विरुद्ध जो कर्म है उस में पुरुष का मन संतुष्ट हो सो कर्म्म करै । २२३ । किसी के मत में धर्म और अर्थ ये दोनों कल्याण
करन हार हैं किसी के मत में अर्थ और काम कल्याण करन हार है किसी के मत में धर्म्म कल्याण करन हार है अब अपना
त कहते हैं कि धर्म्म अर्थ काम ये तीनों परस्पर अविरुद्ध हैं पुरुषार्थ साधनता करके कल्याण कारक हैं (अर्थात् पुरुष को सब
स्तु यही तीनों से होता है) २२४ । आचार्य्य परमात्मा की मूर्ति है पिता ब्रह्मा की मूर्ति है माता पृथिवी की मूर्ति है सहोदर
भाई अपनी मूर्ति है । २२५ । आचार्य्य पिता जेठा सहोदर भाई ये तीनों का अपमान आप दुःखित हो तो भी न करै ब्राह्मण
को तो अवश्य यह बात है । २२६ । मनुष्य के उत्पत्ति समय में जो क्लेश माता पिता सहते हैं उस क्लेश से उत्तीर्ण सब जन्म के
उपकार से भी नहीं हो सकता इस लिये ये सब देवता रूप हैं इन्हों का अपमान न करना चाहिये । २२७ । माता पिता आचार्य्य
यह तीनों का प्रिय नित्य हीं करना तीनों के संतुष्ट होने से सब तपस्या समाप्त होती है । २२८ । यही तीनों की सेवा परम
तप है इन्हों की आज्ञा बिना कोई दूसरा धर्म्म नहीं करना । २२९ । * * * * *

तीनों लोक तीनों आश्रम तीनों वेद तीनों अग्नि यही तीनों हैं । २३० । गार्हपत्य अग्नि माता हैं दक्षिण अग्नि माता हैं आहवनीय अग्नि गुरु हैं ये तीनों अग्नि बहुत बड़ी हैं । २३१ । ये तीनों के विषय में सावधानता से रहने में तीनों लोक को जीतता है बड़ा तेजस्वी होकर देवतों की नाईं स्वर्ग में आनंद करता है । २३२ । माता पिता गुरु ये तीनों की भक्ति से क्रम करके भू लोक अंतरिक्ष लोक ब्रह्म लोक को पाता है । २३३ । जिस मनुष्य ने इन तीनों का आदर किया उस के सब धर्म आदर को पा चुके और जिस मनुष्य ने इन तीनों का आदर नहीं किया उस का सब क्रिया निष्फल भई । २३४ । जब तक ये तीनों जीते रहैं तब तक स्वतंत्र होकर दूसरा धर्म न करैं उन्हीं की सेवा और हित और प्रिय को करैं । २३५ । इन्हीं की सेवा पूर्वक दूसरा धर्म्म भी करै तो मन वाणी कर्म करके उन्हीं से कहि देवै । २३६ । यही तीनों में पुरुष के करने की जो वस्तु है सो हो जाती है यही साक्षाद्धर्म्म है और तो उप धर्म्म है । २३७ । श्रद्धा करते हुए सुंदर विद्या को नीच से भी लेना और चांडाल से भी परम धर्म को लेना स्त्री सुंदरी को दुष्ट कुल से भी लेना । २३८ । विष बालक शत्रु इन सबों से क्रम करके अमृत सुंदर वचन सुंदर आचरण सुवर्ण इन सब को

त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः । त एव हि त्रयो वेदास्त एवोक्तास्त्रयोग्नयः । २३० ।
पिता वै गार्हपत्योग्निर्माताग्निर्दक्षिणः स्मृतः । गुरुराहवनीयस्तु साग्नि त्रेतागरीयसी । २३१ ।
त्रिष्व प्रमाद्यन्नेतेषु त्रींल्लोकान्विजयेद्गृही । दीप्यमानः स्ववपुषा देववद्दिवि मोदते । २३२ ।
इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम् । गुरुशुश्रूषया त्वेवम्ब्रह्मलोकं समश्नुते । २३३ ।
सर्वे तस्या दृता धर्म्मा यस्यैते त्रय आदृताः । अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्या फलाः क्रियाः । २३४ ।
यावत्त्रयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत् । तेष्वेव नित्यं शुश्रूषां कुर्य्यात्प्रियहिते रतः । २३५ । तेषा-
मनुपरोधेन पारत्र्यं यद्यदाचरेत् । तत्तन्निवेदयेत्तेभ्यो मनो वचन कर्म्मभिः । २३६ । त्रिष्वेते ष्विति कृत्यं
हि पुरुषस्य समाप्यते । एष धर्म्मः परः साक्षादुपधर्म्मोऽन्य उच्यते । २३७ । श्रद्दधानः शुभां विद्यामा-
ददीतावरादपि । अन्त्यादपिपरं धर्म्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि । २३८ । विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि
सुभाषितम् । विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः । २३९ । स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्म्मः
शौचं सुभाषितम् । विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः । २४० । अब्राह्मणादध्ययनमा-
पत्काले विधीयते । अनुव्रज्या च शुश्रूषा यावदध्ययनङ्गुरोः । २४१ । नाब्राह्मणे गुरौ शिष्यो वास-
मात्यन्तिकं वसेत् । ब्राह्मणे चाननूचाने काङ्क्षन् गतिमनुत्तमाम् । २४२ । यदित्वात्यन्तिकं वासो
रोचयेत गुरोः कुले । युक्तः परिचरेदेनमाशरीरविमोक्षणात् । २४३ । आसमाप्तेः शरीरस्य यस्तु
शुश्रूषते गुरुम् । स गच्छत्यञ्जसा विप्रो ब्रह्मणः सद्म शाश्वतम् । २४४ । न पूर्वं गुरवे किञ्चिदु-
पकुर्वीत धर्म्मवित् । स्नास्यंस्तु गुरुणाज्ञप्तः शक्त्या गुर्वर्थमाहरेत् । २४५ । क्षेत्रं हिरण्यं गामश्वं छत्रो-
पानहमासनम् । धान्यं शाकं च वासांसि गुरवे प्रीतमावहेत् । २४६ । * * *

ग्रहण करना । २३९ । स्त्री रत्न विद्या धर्म पवित्रता सुंदर वचन नाना प्रकार की कारीगरी इन सब को जहां से मिलै वहां से लेना । २४० । आपत काल आके पड़े तो क्षत्रिय आदि से ब्राह्मण पढ़ै जब तक पढ़ै तब तक उस गुरु के पीछे चलै और सेवा करै । २४१ । उत्तम गति की आकांक्षा करता हुआ मनुष्य क्षत्रिय आदि गुरु के समीप में और मूर्ख ब्राह्मण के समीप में अत्यंत वास न करै । २४२ । जब गुरु कुल में अत्यंत वास की इच्छा करै तब सावधानता से जब तक शरीर त्याग न हों तब तक सेवा करत वास करै परंतु ब्राह्मण गुरु के कुल में यह नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहाता है । २४३ । जो ब्रह्मचारी शरीर त्याग पर्य्यंत गुरु की सेवा करता है सो परिश्रम बिना अविनाशी जो ब्रह्म लोक है उस को पाता है । २४४ । धर्म का जाननें वाला ब्रह्मचारी जब तक पढ़ता रहै तब सेवा छोड़ के दूसरा उपकार गुरु का न करै जब पढ़ चुकै तब समावर्तन के निमित्त (अर्थात् पढ़नें के समाप्ति में पितृ कुल आने के लिये विवाह के अर्थ) स्नान करता हुआ गुरु की आज्ञा पाके जो गुरु मांगै सो दक्षिणा शक्ति पूर्वक देवै । २४५ । गुरु को प्रसन्न करता हुआ भूमि सुवर्ण गौ घोड़ा छाता जूता आसन साग वस्त्र इन सभ को देवै । २४६

ाचार्य्य के मरणोत्तर गुरु पुत्र गुण करके युक्त हो वा गुरु की स्त्री हो किम्वा गुरु के सपिण्ड (अर्थात् संबंधी) हो तो इन सबों
गुरु की नांई मानना। २४७। और जो नैष्ठिक ब्रह्मचारी है सो इन सभों के अभाव में गुरु के स्थान और आसन में विहार
रता हुआ अग्नि की सेवा करता अपने देह को साधन करे (अर्थात् जीव को ब्रह्म प्राप्ति योग्य करे। २४८। इस प्रकार से
ब्राह्मण अखंडित ब्रह्मचर्य्य को करता है सो उत्तम स्थान में जाता है संसार में फेर नहीं आता है। २४९। इति श्री
नुस्मृति भाषा टीकायां कुल्लूक भट्ट व्याख्या नुसारिण्यां श्री बाबू देवीदयाल सिंह कारितायां श्री मत्कम्पनी संस्कृत पाठ शालीय
र्म्म शास्त्रि गुलज़ार शर्म्म पण्डित कृतायां द्वितीयोध्यायः। २। * * * * *

छत्तिस वर्ष तक अथवा अठारह वर्ष तक वा नव वर्ष तक किम्वा जब तक वेद ग्रहण न करै तब तक तीनों वेद के
ढ़ने का व्रत करना योग्य है। १। तीनों वेद को वा दो वेद को अथवा एक ही वेद को क्रम से पढ़के अखण्डित व्रत वाला
रुप गृहस्थाश्रम में आवै। २। धर्म का अनुष्ठान करने से प्रसिद्ध जो ब्रह्म चारी हो और पिता से वेद पढ़ा हो (अर्थात् पिता
पढ़ना मुख्य है और आचार्य्य आदि से पढ़ना तो गौण है पिता पढ़ाने के योग्य न हो तो आचार्य्य आदि से पढ़ना) माला
हिरे हो शय्या पर बैठा हो तो उस को गौ मार के उस के रक्त से मधुपर्क बनाके पूजन करै आचार्य्य वा पिता। ३। गुरु की
ाज्ञा पाके स्नान करके विधि से समावर्तन कर्म्म को प्राप्त होके अपने वर्ण की लक्षण सहित जो कन्या है उससे विवाह करै

आचार्य्ये तु खलु प्रेते गुरुपुत्रे गुणान्विते। गुरुदारे सपिण्डे वा गुरुवद्वृत्तिमाचरेत्। २४७। एते-
ष्वविद्यमानेषु स्थानासनविहारवान्। प्रयुञ्जानोग्निशुश्रूषां साधयेद्देहमात्मनः। २४८। एवञ्चरति यो
विप्रो ब्रह्मचर्य्यमविप्लुतः। स गच्छत्युत्तमं स्थानं नचेह जायते पुनः। २४९। इति मानवे धर्म्मशास्त्रे
भृगुप्रोक्तायां संहितायां द्वितीयोध्यायः। २। * * * *

षट् त्रिंशदाब्दिकं चर्य्यं गुरौ त्रैवेदिकम्व्रतम्। तदर्द्धिकम्पादिकम्वा ग्रहणान्तिकमेव वा। १।
वेदानधीत्य वेदौ वा वेदम्वापि यथा क्रमम्। अविप्लुतब्रह्मचर्य्यो गृहस्थाश्रममाविशेत्। २।
तम्प्रतीतं स्वधर्म्मेण ब्रह्मदायहरम्पितुः। स्रग्विणं तल्पआसीनमर्हयेत्प्रथमङ्गवा। ३। गुरुणानुमतः
स्नात्वा समावृत्तो यथा विधि। उद्वहेत द्विजो भार्य्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्। ४। असपिण्डा च
या मातुरसगोत्रा च या पितुः। सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्म्मणि मैथुने। ५। महान्त्यपि
समृद्धानि गोजाविधनधान्यतः। स्त्री संबंधे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत्। ६। हीनक्रियं निष्पुरुषं
निश्छन्दो रोमशार्शसम्। क्षय्यामयाव्यपस्मारि श्वित्रिकुष्ठिकुलानि च। ७। * *

४। जो कन्या माता की सपिण्ड न हो (अर्थात् मातृ कुल के संबंध में पांच पुरुष के भीतर न हों) और माता की सगोत्रा
हो (अर्थात् जब तक जन्मनाम का ज्ञान रहे वंश में तब तक गोत्र कहाता है उस में न हो) पिता के गोत्र में और पिता
सपिण्ड में न हो (अर्थात् पितृ कुल के संबंध में सात पुरुष के भीतर न हो) सपिण्ड शब्द का अर्थ यह है कि पिण्ड कहिए
देह तिस का जो अवयव कहिए हाथ पांव नासिका आदि ये सब लड़का लड़की में माता पिता का आता है सो साक्षात् वा
रंपरा करके जिस में रहे सो सपिण्ड कहाता है जैसे माता पिता का हस्तपाद आदि पुत्र और कन्या में साक्षात् आता है
ौर पौत्र पौत्री में परंपरा से आता है जैसे पिता का हस्त पाद आदि पुत्र में आया और पौत्र में पुत्र का हस्त पाद आदि
या तो वह हस्त पाद आदि पितामह का ठहरा पुत्र के द्वार से यह परंपरा कहाता है इसी प्रकार से सब का जानना ऐसी
न्या ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों को दारकर्म और मैथुन कर्म्म में अच्छी है (अर्थात् जो कर्म स्त्री पुरुष दोनों से होता है जैसे अग्नि-
ोत्र और पुत्रोत्पादन इस कर्म में प्रशस्त है। ५। गौ बकरी धन अन्न इन सभों करके बड़ी संपत्ति से युक्त हो तो भी जो आगे
श कुल कहेंगे उस में विवाह न करना। ६। हीन है क्रिया जिस में और पुरुष से रहित है वेद का पढ़ना जिस में नहीं है
हुत रोम वाले पुरुष और स्त्री जिस में हैं बावसीर की बीमारी जिस कुल में है क्षयी (अर्थात् राजयक्ष्मा) अग्नि मंदता मृगी
वेत कुष्ट और जो अनेक प्रकार के कुष्ट हैं इन सभों में से कोई रोग करके युक्त कुल हो तो पूर्व कथित धनधान्य आदि से
ुक्त भी हो तो उस कुल में विवाह न करना। ७। * * * * *

कपिल वर्ण की अधिक अंग की (अर्थात् छङ्गुरी) रोगिणी बिना रोम वाली अति लोम वाली बहुत बोलने वाली पिङ्गल वर्ण वाली। ८। नक्षत्र वृक्ष म्लेच्छ पर्वत पक्षी सर्प दास भयानक इन सभों के नाम की नाईं जिस का नाम है उस से विवाह न करना। ९। अंग से हीन न हो और सुंदर जिस का नाम हो हंस और हाथी की गति के समान जिस की गति हो केश लोम दांत जिस का सूक्ष्म हो उस से विवाह करना। १०। जिस कन्या के भाई न हो और पिता का नाम न जाना हो उस से विवाह न करना पुत्रि का करण शंका करके और अधर्म शंका करके (अर्थात् बिना भाई की कन्या से विवाह करनें में पहिला लड़का उस कन्या के पिता का कहावेगा और पिता के नाम जानें बिना अधर्म होगा। ११। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों के अपनी जाति की स्त्री से विवाह करना श्रेष्ठ है और काम से और जात की कन्या से विवाह करैं तो आगे जो रीति कहेंगे उस रीति से करैं परंतु हठ श्रेष्ठ नहीं है। १२। शूद्र के एक ही भार्या है (अर्थात् अपने ही वर्ण की है) वैश्य के दो एक अपनें वर्ण की और एक शूद्र वर्ण की क्षत्रिय के तीन एक अपने वर्ण की दो पूर्व वर्ण की ब्राह्मण के चार एक अपने वर्ण की तीन पूर्व वर्ण की। १३। अब निषेध करते हैं आपत्काल में भी ब्राह्मण क्षत्रिय को शूद्र वर्ण की भार्या कोई इतिहास में नहीं है। १४। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये तीनों वर्ण मोह से हीन जाति की कन्या से विवाह करैं तो संतान सहित अपने कुल को झट पट अकुल कर डालते हैं

नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम्। नालोमिकां नातिलोमां नवाचाटान्नपिङ्गलाम्। ८।
नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम्। न पक्ष्य हि प्रेष्यनाम्नीं न च भीषण नामिकाम्। ९।
अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम्। तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत्स्त्रियम्। १०।
यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न विज्ञायेत वा पिता। नोपयच्छेत तांप्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशङ्कया। ११।
सवर्णाग्रेद्विजातीनां प्रशस्तादारकर्म्मणि। कामतस्तुप्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशोवराः। १२।
शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते। ते च स्वाचैवराज्ञश्च ताश्चस्वाचाग्रजन्मनः। १३।
न ब्राह्मणक्षत्रिययोरापद्यपि हि तिष्ठतोः। कस्मिंश्चिदपि वृत्तान्ते शूद्राभार्योपदिश्यते। १४।
हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्वहन्तो द्विजातयः। कुलान्येव नयंत्याशु ससन्तानानि शूद्रताम्। १५।
शूद्रावेदी पतत्यत्रेरुतथ्य तनयस्य च। शौनकस्य सुतोत्पत्या तदपत्यतया भृगोः। १६।
शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणोयात्यधोगतिम्। जनयित्वा सुतं तस्यां ब्राह्मण्यादेवहीयते। १७।
दैवपित्र्यातिथेयानि तत्प्रधानानि यस्य तु। नाश्नंति पितृदेवास्तन्न च स्वर्गं स गच्छति। १८।
वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च। तस्यां चैव प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते। १९।
चतुर्णामपि वर्णानाम्प्रेत्य चेहहिताहितान्। अष्टाविमान्समासेन स्त्रीविवाहान्निबोधत। २०।
ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः। गांधर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोधमः। २१।

। १५। शूद्र की कन्या के साथ विवाह करने से पतित होता है यह अत्रि ऋषि का मत है और औतथ्य ऋषि का भी यही मत है और उस कन्या में पुत्र होने से पतित होता है यह शौनक ऋषि का मत है और पौत्र होने से पतित होता है यह भृगु ऋषि का मत है। १६। शूद्र की कन्या को शय्या में रख के ब्राह्मण नरक को जाता है और उस में पुत्र होने से ब्राह्मण के कर्म्म की हानि होती है। १७। जिस ब्राह्मण को देवपितृ कार्य्या में शूद्र की कन्या प्रधान है (अर्थात् उस कार्य्य को वही करती है) उस का दिया हव्य और कव्य को देवता और पितर ग्रहण नहीं करते और वह ब्राह्मण स्वर्ग नहीं जाता देवतों के देने योग्य वस्तु को हव्य कहते हैं और पितरों के देने योग्य वस्तु को कव्य कहते हैं। १८। शूद्र की कन्या के ओठ को जिस ब्राह्मण ने चुम्बन किये और उस कन्या के श्वास से उस ब्राह्मण का मुखहत भया और पुत्र रूप हो कर आप उस में उत्पन्न भया (अर्थात् पुत्र जो होता है सो अपना स्वरूप है मानो आप ही उस में उत्पन्न होता है) उस ब्राह्मण का प्रायश्चित्त (अर्थात् उस पाप से छूटने की उपाय) शास्त्र में नहीं है। १९। चारो वर्णों के इसी लोक में और परलोक में हित अहित करने वाला आठ प्रकार का विवाह है उस को हे ऋषि लोगों हम से जानिए यह बात को भृगु मुनि कहते हैं। २०। ब्राह्म दैव आर्ष प्राजापत्य आसुर गांधर्व राक्षस पैशाच इस में आठवां अधम है। २१।

* * * * *

विवाह जिस वर्ण को धर्म से युक्त है और जिस विवाह का जो गुण दोष है और जिस विवाह से पुत्र होने में जो गुण
गुण है सो सब आप लोगों से हम कहेंगे। २२। प्रथम से छ विवाह ब्राह्मण को अच्छा है और क्षत्रिय के ऊपर का आसुर
दि चार अच्छा है वैश्य शूद्र को भी राक्षस को छोड़के क्षत्रिय को जो कहा है सो अच्छा है। २३। पहिले से चार विवाह
ह्मण को क्षत्रिय को राक्षस वैश्य को आसुर बहुत अच्छा है। २४। तिस में भी प्राजापत्य गांधर्व राक्षस ये तीनों धर्म करके
क है सामान्य से चारो वर्ण को क्षत्रिय को पूर्व कथित से प्राजापत्य नहीं पाया था उस की आज्ञा हुई और राक्षस वैश्य शूद्र
पूर्व कथित से नहीं पाया था उस की भी आज्ञा भई। २५। गांधर्व और राक्षस ये दोनों क्षत्रिय को अति अच्छा है। २६।
आठो विवाहों का लक्षण कहते हैं बर और कन्या को कपड़ा गहना देके बर को बुला के कन्या को देवै वह ब्राह्म विवाह
होता है। २७। यज्ञ में ऋत्विज को अलंकार सहित कन्या को देवै वह दैव विवाह कहाता है। २८। एक वा दो गौ और
ल बर से लेके कन्या को देवै वह आर्ष विवाह कहाता है। २९। बर और कन्या ये दोनों साथ धर्म को करैं ऐसा वाणी से

योयस्य धर्म्यो वर्णस्य गुण दोषौ च यस्ययौ। तद्वः सर्वम्प्रवक्ष्यामि प्रसवे च गुणागुणान्। २२।
षडानु पूर्व्या विप्रस्य क्षत्रस्य चतुरोवरान्। विट् शूद्रयोस्तुतानेव विद्याद्धर्म्या न्नराक्षसान्। २३।
चतुरो ब्राह्मणस्याद्यान्प्रशस्तान्कवयोविदुः। राक्षसंक्षत्रियस्यैक मासुरं वैश्यशूद्रयोः। २४।
पञ्चानान्तु त्रयो धर्म्याद्वाव धर्म्मौस्मृताविह। पैशाचश्चासुरश्चैव न कर्तव्यौ कदाचन। २५।
पृथक् पृथग्वामिश्रौ वा विवाहौ पूर्वचोदितौ। गांधर्वो राक्षसश्चैव धर्म्यौक्षत्रस्य तौस्मृतौ। २६।
आच्छाद्य चार्चयित्वाच श्रुतिशीलवते स्वयम्। आहूयदानं कन्याया ब्राह्मोधर्मः प्रकीर्त्तितः। २७।
यज्ञेतुवितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते। अलंकृत्य सुतादानं दैवंधर्म्मं प्रचक्षते। २८।
एकं गो मिथुनं द्वेवावरादादायधर्मतः। कन्याप्रदानं विधिवदार्षोधर्मः स उच्यते। २९।
स हनौचरतां धर्ममिति वाचानुभाष्यच। कन्याप्रदानमभ्यर्च्यप्राजापत्योविधिः स्मृतः। ३०।
ज्ञातिभ्योद्रविणं दत्वा कन्यायै चैव शक्तितः। कन्याप्रदानं विधिवदासुरो धर्म उच्यते। ३१।
इच्छयान्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च। गांधर्वः सतु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसंभवः। ३२।
हत्वा छित्वा च भित्वा च क्रोशंतीं रुदतीं गृहात्। प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते। ३३।
सुप्तांमत्तांप्रमत्तां वा रहोयत्रोपगच्छति। सपापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमो ऽधमः। ३४।
अद्भिरेव द्विजाग्र्याणां कन्यादानम्विशिष्यते। इतरेषान्तु वर्णानामितरेतरकाम्यया। ३५।
यो यस्यैषाम्विवाहानां मनुना कीर्त्तितो गुणः। सर्वं शृणुत तं विप्राः सर्वं कीर्त्तयतो मम। ३६।
दश पूर्वान्परान्वंश्यानात्मानं चैकविंशकम्। ब्राह्मीपुत्रः सुकृतकृन्मोचयेदेन सः पितॄन्। ३७।

हके बर की और कन्या की पूजा कर के कन्या को देवै वह प्राजापत्य विवाह कहाता है। ३०। कन्या को और कन्या की
ाति को द्रव्य देके कन्या ग्रहण करना यह आसुर विवाह कहाता है। ३१। बर और कन्या की परस्पर इच्छा करके जो
योग भया सो गांधर्व विवाह कहाता है यह मैथुन के हित है और काम से उत्पन्न है। ३२। मारि के छेदि के भेदि के हठ
रके रोती पुकारती कन्या को गृह से ले आना यह राक्षस विवाह है। ३३। सूती है मदनीय द्रव्य करके मत्त है वातिक
त्तिक श्लेष्मिक सान्निपातिक दुःख करके प्रमत्त है उस से एकांत में भोग करना सो पैशाच विवाह है वह सब विवाहों से
धम है। ३४। ब्राह्मण को जल से कन्यादान करना अच्छा है क्षत्रिय आदि को बिना जल ही परस्पर की इच्छा से वाणी
ात्र के कहने से विवाह होता है। ३५। जिस विवाह का जो गुण मनु जी ने कहा है सो हे ब्राह्मण लोगो हम अच्छे प्रकार
ो कहते हैं आप लोग सुनिए। ३६। ब्राह्म विवाह से पुत्र उत्पन्न हो और अच्छे कर्म्मों को करै तो दश पुरुष ऊपर के और
दश पुरुष नीचे के एक्कीसवां अपाने को पाप से छुड़ाता है। ३७। * * * *

दैव विवाह से उत्पन्न पुत्र अच्छे कर्म्म को करने वाला हो तो सात पुरुष ऊपर के और सात पुरुष नीचे के और अपने को पाप से छुड़ाता है आर्ष विवाह से उत्पन्न तीन तीन ऊपर और नीचे को प्राजापत्य विवाह से उत्पन्न छ छ नीचे ऊपर पुरुषों को पाप से छुड़ाता है अच्छे कर्म्मो कों करने वाला हो यह सर्वत्र जानना । ३८ । ब्राह्म आदि चार विवाह से उत्पन्न पुत्र बड़ा तेजस्वी होता है और भले लोगों के संमत होता है । ३९ । रूप गुण धन यश भाग्य धर्म इन सभों से युक्त होता है और सौ वर्ष जीता है । ४० । और जो चार विवाह हैं उस से जो उत्पन्न पुत्र होता है सो घातक होता है और झूठ बहुत बोलता है ब्रह्म धर्म का शत्रु होता है । ४१ । अनिंदित विवाह से अनिन्दित प्रजा उत्पन्न होते हैं और निन्दित विवाह से निन्दित प्रजा उत्पन्न होते हैं इस लिये निन्दित विवाह को नहीं करना चाहिये । ४२ । अपने वर्ण की जो कन्या है उसी में हस्त ग्रहण का संस्कार जानना और दूसरे वर्ण की कन्या के साथ विवाह करने में आगे जो विधि कहेंगे सो जानना । ४३ । क्षत्रिया कन्या वाण को ग्रहण करै और वैश्य की कन्या पयना (अर्थात् वृषभ की हांकने की वस्तु) को ग्रहण करै शूद्र की कन्या वस्त्र की दशा को ग्रहण करै बड़ी जाति वाले से विवाह करने में । ४४ । ऋतु काल (अर्थात् प्रतिमास में स्त्रियों के योनि द्वार से रुधिर का निकलना और गर्भ धारण के योग्य स्त्रियों की अवस्था विशेष जो ऋतु कहाता है) में स्त्री सो भोग करै और दूसरे की स्त्री से

दैवोढाजः सुतश्चैव सप्त सप्त परावरान् । आर्षोढाजः सुतस्त्रींस्त्रीन् षट् षट् कायोढजः सुतः । ३८ ।
ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानुपूर्वशः । ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायंते शिष्टसंमताः । ३९ । रूपस-
त्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः । पर्य्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जीवंति च शतं समाः । ४० । इतरेषु तु
शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः । जायंते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः । ४१ । अनिन्दितैः स्त्री
विवाहैरनिंद्या भवति प्रजा । निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निंद्यान्विवर्जयेत् । ४२ । पाणिग्रहणसं-
स्कारः सवर्णासूपदिश्यते । असवर्णा स्वयं ज्ञेयो विधिरुद्वाहकर्मणि । ४३ । शरः क्षत्रियया ग्राह्यः
प्रतोदो वैश्यकन्यया । वसनस्य दशा ग्राह्या शूद्रयोत्कृष्टवेदने । ४४ । ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनि-
रतः सदा । पर्ववर्ज्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया । ४५ । ऋतुःस्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयःषो-
डशस्मृताः । चतुर्भिरितरैस्सार्द्धमहोभिः सद्विगर्हितैः । ४६ । तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी-
त्रया । त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दशरात्रयः । ४७ । युग्मासु पुत्रा जायंते स्त्रियोयुग्मासु
रात्रिषु । तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्त्तवे स्त्रियम् । ४८ । पुमान्पुंसोधिके शुक्रे स्त्रीभवत्यधिके
स्त्रियाः । समेऽपुमान्पुंस्त्रियौ वा क्षीणेल्पे च विपर्ययः । ४९ । निंद्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो
रात्रिषु वर्जयन् । ब्रह्मचार्य्येव भवति यत्रतत्राश्रमे वसन् । ५० । * * *

गमन को नहीं करै परन्तु अपनी स्त्री के साथ गमन करने में ऋतु काल में भी पर्व को बराय देवै पर्व ये कहाते हैं कि कृष्ण पक्ष की अष्टमी और चतुर्दशी अमावास्या पूर्णिमा रवि संक्रांति और स्त्रीका मन हो तो बिना ऋतु काल भी संभोग करै यह नियम है ऋतु काल में समीप रहै और सामर्थ्य सहित हो पुरुष तो अवश्य गमन करै नहीं तो बड़ा दोष होता है । ४५ । ऋतु काल की सोलह रात्रि है । ४६ । तिस में पहिली चार और इगारहीं तेरहीं रात्रि निन्दित है दश रात्रि अच्छी है । ४७ । समरात्रि में पुत्र होता है (जैसे छठईं अठईं दशईं बारहीं चौदहीं सोलहीं) और विषमरात्रि में कन्या होती है (जैसे पंचईं सतईं नवईं इगारहीं तेरहीं पंद्रहीं) इस लिये पुत्रार्थी पुरुष सम रात्रि में स्त्री संभोग को करै । ४८ । पुरुष के वीर्य्य अधिक से पुत्र होता है विषम रात्रि में भी और स्त्री के वीर्य्य अधिक से कन्या होती है सम रात्रि में भी इस लिये अच्छे वस्तुओं के भोजन से अपने वीर्य को अधिक करै और निकाम वस्तु के भोजन से और थोड़ा खिलाने से स्त्री के वीर्य को कम करै और स्त्री पुरुष का वीर्य सम रहै तो नपुंसक होता है अथवा कन्या और पुत्र दोनों उत्पन्न होते हैं और स्त्री पुरुष दोनों का वीर्य कम रहै (अर्थात् निस्सार रहै) तो गर्भ की संभवै नहीं होती । ४९ । निंदायुक्त जो आठ रात्रि है तिस में स्त्री गमन नहीं करने से जिस आश्रम में रहै तिस में ब्रह्म चारीऐ कहाता है । ५० । * * * * *

ता कन्या का थोड़ा भी शुल्क (अर्थात् किछु लेके कन्या देना) न लेवै लोभ करके शुल्क लेने से कन्या बेचने वाला कहाता है ५१। स्त्रियों का धन यान (अर्थात् सवारी) वस्त्र इन सभको मोह से लेके उपजीवन करते जो बांधव लोग हैं सो बड़े पापी और नरक में जाते हैं। ५२। कोई ऋषिने आर्ष विवाह में दो गौ लेना कहा है सो झूठ है थोड़ा वा बहुत जो लेना है सो ने कहाता है। ५३। जिस कन्या के शुल्क को जाति लोग नहीं लेते सो बेचना नहीं कहाता शुल्क न लेना यह तो कुमारी पूजन है और दया है। ५४। बहुत कल्याण की इच्छा करनहार जो पिता भाई पति देवर हैं ये सब गहना और वस्त्र से यों की पूजा करैं। ५५। जिस कुल में स्त्रियों की पूजा होती है उस कुल मे देवता रमण करते हैं और जहां स्त्रियों की पूजा नहीं होती हां सब क्रिया निष्फल होती हैं। ५६। जिस कुल में स्त्री लोग शोक को करती हैं वह कुल झट पट नष्ट हो जाता है और स कुल में स्त्री लोग शोक को नहीं करती हैं वह कुल सदा बढ़ता है। ५७। पूजा को बिना पाए स्त्री लोग जिस कुल को प देती हैं वह कुल चारो ओर से नष्ट हो जाता है। ५८। इस लिये विभूति का इच्छा करने हार जो पुरुष हैं सो गहना

न कन्यायाः पिता विद्वान्गृह्णीयाच्छुल्कमण्वपि। गृह्णन् शुल्कं हि लोभेन स्यान्नरोपत्यविक्रयी। ५१।
स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवंति बांधवाः। नारीयानानि वस्त्रं वा ते पापा यान्त्यधो गतिम्। ५२।
आर्षे गोमिथुनं शुल्कं केचिदाहुर्मृषैवतत्। अल्पोप्येवं महान्वापि विक्रयस्तावदेव सः। ५३।
यासां नाददते शुल्कं ज्ञातयो न स विक्रयः। अर्हणं तत्कुमारीणामानृशंस्यं च केवलम्। ५४।
पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा। पूज्याभूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः। ५५।
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमंते तत्र देवताः। यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः। ५६।
शोचन्तिजामयोयत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्। न शोचन्तितु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा। ५७।
जामयोयानि गेहानि शपन्त्य प्रतिपूजिताः। तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः। ५८।
तस्मादेताः सदापूज्या भूषणाच्छादनाशनैः। भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च। ५९।
संतुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च। यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणन्तत्र वैध्रुवम्। ६०।
यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत्। अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्त्तते। ६१।
स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम्। तस्यान्त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते। ६२।
कुविवाहैः क्रियालोपैर्वेदानध्ययनेन च। कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च। ६३।
शिल्पेन व्यवहारेण शूद्रापत्यैश्च केवलैः। गोभिरश्वैश्च यानैश्च कृष्या राजोपसेवया। ६४।
अयाज्य याजनैश्चैव नास्तिक्येन च कर्म्मणाम्। कुलान्याशु विनश्यन्ति यानि हीनानि मंत्रतः। ६५।
मंत्रतस्तु समृद्धानि कुलान्यल्पधनान्यपि। कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद्यशः। ६६।
वैवाहिकेग्नौ कुर्वीत गृह्यं कर्म यथा विधि। पञ्चयज्ञ विधानञ्च पंक्तिञ्चान्वाहिकीं गृही। ६७।

त्र भोजन से स्त्रियों की पूजा सदा करै। ५९। जिस कुल में स्त्री से पति प्रसन्न रहता है और पति से स्त्री प्रसन्न रहती है उस ल में ध्रुव करके कल्याण है। ६०। जब स्त्री पति को प्रसन्न न राखै तो संतति कहां से होगी। ६१। स्त्री के प्रसन्न रहने से कुल सन्न रहता है और स्त्री के अप्रसन्न रहने से सब कुल अप्रसन्न रहता है। ६२। निन्दित विवाह क्रियालोप वेद का न पढ़ना ह्मण का अपमान इन सभों से कुल अकुलता को पाता है। ६३। चित्र लेखन आदि कर्म्म व्याज लेने के निमित्त धन देना वल शूद्र जाति की स्त्री से पुत्रोत्पत्ति गौ घोड़ा रथ इन सभों को मोल लेना और बेंचना खेती करना राज सेवा करना इन भों से। ६४। और यज्ञ कराने के योग्य नहीं है उस को यज्ञ कराने से और मंत्र के अभाव से झट पट कुल विनाश को प्राप्त ता है। ६५। जो कुल मंत्र से सहित है और बहुत धन से रहित है सो बड़ा कुल कहाता है बड़ा यश को पाता है। ६६। ह्य सूत्र में जो कर्म कहे हैं और पंच यज्ञ (अर्थात् वेद का पठन देव ऋषि पितृ का तर्पण होम बलि अतिथि के भोजन) का धान नित्य भोजन पाक इन सभों को विवाह समय की अग्नि में विधि से करना। ६७।   *   *   *

गृहस्थ के चूल्हा सिल लोढ़ा बढ़नी ओखरी मूंसर जल का घड़ा ये पांच सूना (अर्थात् वध का स्थान) इन सभों का कर्म करने से
जीव का नाश होता है । ६८ । इस पांच सूना के प्रायश्चित्त के लिये पांच महा यज्ञ को गृहस्थ लोग नित्य हीं करैं । ६९ । वेद
का पढ़ना देव ऋषि पितरों का तर्पण करना होम करना बलि देना अतिथि का पूजन करना इन सभों के क्रम से ब्रह्म यज्ञ पितृ यज्ञ
देव यज्ञ भूत यज्ञ मनुष्य यज्ञ कहते हैं । ७० । शक्ति पूर्वक इन पांचो महायज्ञों को जो त्याग नहीं करता है सो गृह में बास करते भी सूना
दोष से लिप्त नहीं होता । ७१ । जो मनुष्य देवता अतिथि भृत्य पितर इन सभों को और अपने को भोजन नहीं देता सो जीते
हुए मुआ है । ७२ । अहुत हुत प्रहुत ब्राह्महुत प्राशित ये पांच यज्ञ हैं । ७३ । इन पांचों को जप होम भूत बलि अतिथि पूजा
पितृ तर्पण क्रम से कहते हैं । ७४ । जो मनुष्य नित्य ही वेद पढता है अग्निमे होम करता है सो संपूर्ण संसार को धारण कर
सकता है । ७५ । अग्नि में जो आहुति पड़ती है सो सूर्य्य के समीप जाती है सूर्य्य से वृष्टि होती है वृष्टि से अन्न होता है अन्न से
प्रजा होते हैं । ७६ । जिस प्रकार से वायु को आश्रय करके सब जीव रहते हैं तिसी प्रकार से गृहस्थाश्रम को आश्रय करके सब

पञ्चसूनागृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्कर: । कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन् । ६८ ।
तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभि: । पञ्चक्लृप्तामहायज्ञा: प्रत्यहं गृहमेधिनाम् । ६९ ।
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञ: पितृयज्ञस्तु तर्पणम् । होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् । ७० ।
पञ्चैतान् यो महायज्ञान्न हापयति शक्तित: । स गृहेपि वसन्नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते । ७१ ।
देवतातिथिभृत्यानां पितृणामात्मनश्च य: । ननिर्वपति पञ्चानामुच्छ्वसन्न स जीवति । ७२ ।
अहुतञ्च हुतञ्चैवं तथा प्रहुतमेव च । ब्राह्म्यं हुतं प्राशितञ्च पञ्च यज्ञान् प्रचक्षते । ७३ ।
जपोहुतो हुतो होम: प्रहुतो भौतिको बलि: । ब्राह्म्यं हुतं द्विजाग्र्यार्चा प्राशितं पितृतर्पणम् । ७४ ।
स्वाध्याये नित्ययुक्त: स्याद्दैवे चैवेहकर्म्मणि । दैवकर्म्मणि युक्तो हि बिभर्तीदञ्चराचरम् । ७५ ।
अग्नौ प्रास्ता हुति: सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नन्तत: प्रजा: । ७६ ।
यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तव: । तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमा: । ७७ ।
यस्मात्त्रयोप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम् । गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही । ७८ ।
स सन्धार्य: प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता । सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्य्यो दुर्बलेन्द्रियै: । ७९ ।
ऋषय: पितरो देवा भूतान्यतिथयस्तथा । आशासते कुटुम्बिभ्यस्तेभ्य: कार्य्यम्विजानता । ८० ।
स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन् होमैर्देवान्यथा विधि । पितॄन् श्राद्धैश्च नृनन्नैर्भूतानि बलिकर्म्मणा । ८१ ।
कुर्य्यादहरह: श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा । पयो मूलफलैर्वापि पितृभ्य: प्रीतिमावहन् । ८२ ।
एकमप्याशयेद्विप्रं पित्रर्थे पाञ्चयज्ञिके । न चैवाप्याशयेत्किञ्चिद्वैश्वदेवम्प्रतिद्विजम् । ८३ ।
वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येग्नौ विधिपूर्वकम् । आभ्य: कुर्य्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् । ८४ ।

आश्रम रहते हैं । ७७ । वेद के अर्थ को कथन करके अन्न का दान देके तीनों आश्रम को गृहस्थाश्रमी दिन दिन धारण करता है
इस लिये गृहस्थाश्रमी ज्येष्ठ है । ७८ । परलोक में अक्षय स्वर्ग की और इस लोक में सुख की इच्छा करनेवाला पुरुष उस गृह
स्थाश्रम को नित्य ही धारण करै जो दुर्बल इन्द्रिय वालों से धारण नहीं होसकता । ७९ । ऋषि पितर देवता अतिथि ये सब गृहस्थ
से भोजन की आशा करते हैं इसलिये इन सब को अन्न और जल देना चाहिए । ८० । वेद पढ़ना होम करना श्राद्ध करना अन्न देन
बलि कर्म्म करना इन सभों से ऋषि देवता पितर मनुष्य भूत इस सभों का क्रम से विधि सहित पूजा करना । ८१ । पितरों के प्रीति
करता हुआ अन्न जल दूध मूल फल इन सभों से दिन दिन में पार्वण श्राद्ध करै । ८२ । पंचमहा यज्ञ के मध्य में पितरों
निमित्त बलि कर्म जो कहा है सो न बन पडै तो एक को अथवा बहुत ब्राह्मण को भोजन करावै परंतु वैश्वदेव के निमि
ब्राह्मण भोजन न करावै । ८३ । संस्कार सहित आवसथ्य नाम की अग्नि में जो आगे देवता कहैं गे उनको दिन दिन में वि
सहित आहुति देवै । ८४ ।

* * * * * * *

ग्निसोम अग्नीषोम विश्वेदेव धन्वन्तरि । ८५ । कुहू अनुमति प्रजापति द्यावा पृथिवी स्विष्टकृत् इन सब को आहुति देवे ८६ । अच्छे प्रकार से होम करके सब दिशा में प्रदक्षिण क्रम से इन्द्र वरुण यम चंद्र इन सब को और इन्हीं के सेवकों को बलि दे । ८७ । द्वारदेश में मरुत् को जल स्थान में जल को मूसल ओखरी के स्थान में वनस्पति को । ८८ । वास्तु पुरुष के शिर द मध्य में क्रम से श्री भद्र काली वास्तोष्पति इन सब को देवे । ८९ । विश्वे देव दिन में फिरने वाले भूत रात्रि में फिरने ले भूत इन सब को आकाश में देवे । ९० । वास्तु पुरुष के पीठ में सर्वात्म भूति को बलि देवे बलि देने से जो शेष अन्न है दक्षिण दिशा में पितरों को देवे । ९१ । कुक्कुर पतित डोंम पापरोगी कौआ छोटा कीड़ा इन सभों को धीरे से भूमि में दे । ९२ । इस रीति से जो ब्राह्मण सब जीवों को नित्य ही पूजन करता है सो तेज रूप होकर कोमल मार्ग से बड़े स्थान जाता है । ९३ । इस प्रकार से बलि कर्म्म करके गृह जन के भोजन के पहिले अतिथि को भोजन करावे और ब्रह्मचारी क्षुक को भिक्षा देवे । ९४ । विधि पूर्वक गुरु को गौ देने से जो फल होता है सो फल भिक्षुक को भिक्षा देने से गृहस्थाश्रमी

अग्नेः सोमस्य चैवादौ तयोश्चैव समस्तयोः । विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो धन्वन्तरय एव च । ८५ ।
कुह्वै चैवानुमत्य च प्रजापतय एव च । सह द्यावापृथिव्योश्च तथा स्विष्टकृतेन्ततः । ८६ ।
एवं सम्यग्घविर्हुत्वा सर्वदिक्षु प्रदक्षिणम् । इन्द्रांतकाप्पतीन्दुभ्यः सानुगेभ्यो बलिं हरेत् । ८७ ।
मरुद्भ्य इति तु द्वारि क्षिपेदप्स्वद्भ्य इत्यपि । वनस्पतिभ्य इत्येवं मुसलोलूखले हरेत् । ८८ ।
उच्छीर्षके श्रियै कुर्य्याद्भद्रकाल्यै च पादतः । ब्रह्म वास्तोष्पतिभ्यां तु वास्तुमध्ये बलिं हरेत् । ८९ ।
विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो बलिमाकाश उत्क्षिपेत् । दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नक्तञ्चारिभ्य एव च । ९० ।
पृष्ठवास्तुनि कुर्वीत बलिं सर्वात्मभूतये । पितृभ्यो बलिशेषन्तु सर्वन्दक्षिणतो हरेत् । ९१ ।
शुनां च पतितानाञ्च श्वपचां पापरोगिणाम् । वायसानां कृमीणाञ्च शनकैर्निक्षिपेद्भुवि । ९२ ।
एवं यः सर्वभूतानि ब्राह्मणो नित्यमर्चति । स गच्छति परं स्थानन्तेजोमूर्तिपथर्जुना । ९३ ।
कृत्वैतद्बलिकर्म्मैवमतिथिम्पूर्वमाशयेत् । भिक्षां च भिक्षवे दद्याद्विधिवद्ब्रह्मचारिणे । ९४ ।
यत्पुण्यफलमाप्नोति गान्दत्वा विधिवद्गुरोः । तत्पुण्यफलमाप्नोति भिक्षान्दत्वा द्विजो गृही । ९५ ।
भिक्षामप्युदपात्रम्वा सत्कृत्य विधिपूर्वकम् । वेदतत्वार्थविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् । ९६ ।
नश्यन्ति हव्यकव्यानि नराणामविजानताम् । भस्मीभूतेषु विप्रेषु मोहाद्दत्तानि दातृभिः । ९७ ।
विद्या तपः समृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु । निस्तारयति दुर्गाच्च महतश्चैव किल्बिषात् । ९८ ।
सम्प्राप्ता यात्वतिथये प्रदद्यादासनोदके । अन्नञ्चैव यथा शक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम् । ९९ ।
शिलानप्युञ्छतो नित्यं पञ्चाग्नीनपि जुह्वतः । सर्वं सुकृतमादत्ते ब्राह्मणोनर्चितो वसन् । १०० ।
तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता । एतान्यपि सताङ्गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन । १०१ ।

ता है । ९५ । वेद का सिद्धांत अर्थ का जाननें वाला ब्राह्मण को आदर से विधि पूर्वक भिक्षा को अथवा जल को देवे । ९६ । म सदृश ब्राह्मण में (अर्थात् मूर्ख ब्राह्मण में) देवता और पितर के निमित्त जो बस्तु मोह से दाता लोग देते हैं सो सब नष्ट जाता है । ९७ । विद्या तप करके युक्त जो ब्राह्मण उस की मुख रूपी अग्नि में जो होम किया जाता है सो बड़े पाप से होम ने वाले को छुड़ाता है । ९८ । आप से जो अतिथि आया उस को आदर से विधि पूर्वक यथा शक्ति आसन अन्न जल इन सब मनुष्य देवे । ९९ । वे पूजित ब्राह्मण अतिथि गृह में बास करें तो गृहवाला बड़ा तेजस्वी भी हो और शिल उंछ से जीवन ता हो पंचाग्नि को सेवन करता हो तो भी उस के सुकृत को वह लेता है शिल उंछ पंचाग्नि इस का अर्थ लिखते हैं कि खेती ने वाले खेत का अन्न काटि के ले जाते हैं उस में जो बाली गिरी रहती हैं वह शिल कहाता है और बनिआं लोग सायंकाल अन्न की ढेरी को दुकान में रख देते हैं उस ढेरी के स्थान पर जो अन्न गिरा रहता है वह उंछ कहाता है त्रेता आवस्थ्य सभ्य पञ्चाग्नि कहाता है । १०० । तृण भूमि जल मीठी बाणी इन बस्तुओं से सज्जनों का गृह कभी शून्य नहीं रहता । १०१ ।

एक रात्रि निवास करने से अतिथि कहाता है उस का रहना नित्य ही नहीं है इस लिये अतिथि कहाता है। १०२। भार्या अग्नि इन दोनों से युक्त जो गृहस्थ है उस के गृह में वैश्व देव के समय में आया हो तो एक गांव का रहने वाला और विचित्र हंसी कथा आदि से संगति करके आने वाला अतिथि नहीं कहाता है। १०३। बुद्धि रहित जो गृहस्थ परपाक की उपासना करते हैं उस के करने से परलोक में अन्न देने वाले का पशु होते हैं। १०४। सूर्य के अस्त समय में अतिथि आया हो तो उस को भोजन जल अवश्य देना काल में प्राप्त हो अथवा दूसरे काल में प्राप्त हो परंतु भोजन किए बिना गृह में वास न करने पावे। १०५। जो बस्तु अतिथि को भोजन न करावे उस बस्तु को आप भोजन न करे और अतिथि को भोजन देना यह तो धन यश आयुष स्वर्ग इन्हों का हित करने वाला है। १०६। आसन गृह शय्या पीछे चलना सेवा इन सब को उत्तम मध्यम हीन पुरुष में क्रम से उत्तम मध्यम हीन करना। १०७। वैश्व देव कर्म करने के पीछे दूसरा अतिथि आवे तो उस को यथा शक्ति अन्न देवे बलि कर्म न करे। १०८। भोजन के लिये ब्राह्मण अपना कुल और गोत्र को न कहे कदाचित कहे तो उगली बस्तु का भोजन करने वाला

एकरात्रन्तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः। अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते। १०२।
नैकग्रामीणमतिथिं विप्रं साङ्गतिकन्तथा। उपस्थितं गृहे विद्याद्भार्या यत्राग्नयोपि वा। १०३।
उपासते ये गृहस्थाः परपाकमबुद्धयः। तेन ते प्रेत्य पशुतां व्रजन्त्यन्नादिदायिनाम्। १०४।
अप्रणोद्योऽतिथिः सायं सूर्य्योढो गृहमेधिना। काले प्राप्तस्त्वकाले वा नास्यानश्नन् गृहे वसेत्। १०५।
न वै स्वयं तदश्नीयादतिथिं यन्न भोजयेत्। धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं चातिथिपूजनम्। १०६।
आसनावसथौ शय्यामनुव्रज्यामुपासनाम्। उत्तमेषूत्तमं कुर्य्याद्धीनं हीने समे समम्। १०७।
वैश्वदेवे तु निर्वृत्ते यद्यन्योतिथिराव्रजेत्। तस्याप्यन्नं यथा शक्ति प्रदद्यान्न बलिं हरेत्। १०८।
न भोजनार्थं स्वे विप्रः कुलगोत्रे निवेदयेत्। भोजनार्थं हि ते शंसन् वान्ताशीत्युच्यते बुधैः। १०९।
न ब्राह्मणस्य त्वतिथिर्गृहे राजन्य उच्यते। वैश्यशूद्रौ सखा चैव ज्ञातयो गुरुरेव च। ११०।
यदि त्वतिथि धर्मेण क्षत्रियो गृहमाव्रजेत्। भुक्तवत्सूक्तविप्रेषु काममन्तमपि भोजयेत्। १११।
वैश्यशूद्रावपि प्राप्तौ कुटुम्बेतिथिधर्म्मिणौ। भोजयेत्सहभृत्यैस्तावानृशंस्यं प्रयोजयन्। ११२।
इतरानपि सख्यादीन्संप्रीत्या गृहमागतान्। सत्कृत्यान्नं यथाशक्ति भोजयेत्सह भार्यया। ११३।
सुवासिनीं कुमारींश्च रोगिणो गर्भिणीस्त्रियः। अतिथिभ्योग्र एवैतान्भोजयेदविचारयन्। ११४।
अदत्वा तु य एतेभ्यः पूर्वम्भुङ्क्ते विचक्षणः। स भुञ्जानो न जानाति श्वगृध्रैर्जग्धिमात्मनः। ११५।
भुक्तवत्स्वथ विप्रेषु स्वेषु भृत्येषु चैव हि। भुञ्जीयातां ततः पश्चादवशिष्टन्तु दम्पती। ११६।
देवान् ऋषीन्मनुष्यांश्च पितॄन् गृह्याश्च देवताः। पूजयित्वा ततः पश्चाद्गृहस्थः शेषभुग्भवेत्। ११७।

कहाता है इस बात को पण्डितों ने कहा है। १०९। ब्राह्मण के गृह में क्षत्रिय वैश्य शूद्र मित्र जाति (अर्थात् अपना कुल) गु ये सब अतिथि नहीं कहाते क्योंकि क्षत्रिय आदि तीन वर्ण ब्राह्मण से नीच हैं और मित्र कुल इस में अपना संबंध है और गु तो अपना प्रभु है इस लिये जो अपने से बड़ा हो और संबंध से प्रभुता से भिन्न हो सो अतिथि सब वर्ण में कहाता है। ११० जब अतिथि के धर्म्म से ब्राह्मण के गृह में क्षत्रिय आवे तो ब्राह्मण के पीछे उस को भी भोजन देना। १११। इस रीति से दय करके वैश्य शूद्र को भी भृत्यों के साथ भोजन देना। ११२। प्रीति सहित मित्र आदि गृह में आए हों तो सत्कार सहित यथ शक्ति स्त्रियों के भोजन समय में उन्हों को भोजन देना। ११३। पतोहू विवाही लड़की छोटा लड़का रोगी गर्भिणी इन सभों के अतिथि भोजन के पहिले भोजन देना इस में विचार न करना। ११४। भोजन के योग्य जितने कह आए हैं उन सब को भोज कराए बिना बुद्धि हीन जो पुरुष आप भोजन करता है सो यह नहीं जानता है कि हमारी शरीर को कुक्कुर और गिद्ध भोजन करें। ११५। ब्राह्मण और संबंधी भृत्य इन सब को भोजन कराके जो बचे उस को गृह स्वामी अपनी स्त्री सहित भोजन करे। ११६। देवता ऋ पितर मनुष्य भूत इन सभों के निमित्त जो यज्ञ है उस को करके और इन सभों को भोजन कराके जो बचे उस का गृहस्थ भोजन करे। ११

ल अपनें ही के लिये जो मनुष्य पाक करता है सो पाप को भोजन करता है यज्ञ का शेष जो अन्न है सो भले लोगों के
जन में उचित है । ११८ । राजा और यज्ञ कराने वाला विद्या और व्रत इन दोनों से पक्का जो ब्रह्म चारी गुरु प्रिय श्वशुर
मां इन सभों का प्रति वर्ष में मधु पर्क से पूजा करना । ११९ । राजा और वेद पढ़ने वाला इन दोनों की पूजा मधु पर्क से यज्ञ
र्म में करना दूसरे समय में नहीं यह शास्त्र की मर्यादा है । १२० । सायंकाल में जो सिद्ध अन्न हैं उस से मंत्र रहित बलि कर्म्म
पत्नी करे यह पंच महा यज्ञ गृहस्थों के लिये है । १२१ । प्रति मास की अमावास्या में पितृ यज्ञ करके अग्नि होत्री ब्राह्मण
द्ध करे । १२२ । प्रति मास में पितरों की श्राद्ध को अन्वाहार्य कहते हैं उस श्राद्ध को शुद्ध मास में करना चाहिए प्रशस्त मांस
परन्तु मांस करके श्राद्ध करनां कलि युग में मना है । १२३ । उस श्राद्ध में जो भोजन कराने के योग्य है और जो योग्य नहीं
और जितनें चाहिए और जैसे अन्न करके भोजन कराना चाहिए सो सब कहेंगे । १२४ । श्राद्ध में दो कर्म्म हैं एक पितृ कर्म्म
रा देव कर्म्म तिस में कैसा भी धनी हो तो देव कर्म्म में एक को और पितृ कर्म्म में दो को भोजन करावे अथवा दोनों कर्म्म

अघंसकेवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात् । यज्ञ शिष्टाशनं ह्येतत्सतामन्नंविधीयते । ११८ ।
राजर्त्विक् स्नातकगुरून् प्रियश्वशुरमातुलान् । अर्हयेन्मधुपर्केण परिसंवत्सरात्पुनः । ११९ ।
राजा च श्रोत्रियश्चैव यज्ञकर्म्मण्युपस्थितौ । मधुपर्केण सम्पूज्यौ नत्वयज्ञ इतिस्थितिः । १२० ।
सायंत्वन्नस्य सिद्धस्य पत्न्यमंत्रबलिं हरेत् । वैश्वदेव हि नामैतत्सायं प्रातर्विधीयते । १२१ ।
पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चेन्दुक्षयेऽग्निमान् । पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्य्यान्मासानुमासिकम् । १२२ ।
पितृणां मासिकं श्राद्धमन्वाहार्य्यंविदुर्बुधाः । तच्चामिषेण कर्तव्यम्प्रशस्तेन समन्ततः । १२३ ।
तत्र ये भोजनीयाः स्युर्ये च वर्ज्या द्विजोत्तमाः । यावन्तश्चैव यैश्चान्नैस्तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः । १२४ ।
द्वौ दैवे पितृकार्य्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा । भोजयेत्सुसमृद्धो पि न प्रसज्येत विस्तरे । १२५ ।
सत्क्रियां देशकालौ च शौचम्ब्राह्मणसम्पदः । पञ्चैतान्विस्तरो हन्ति तस्मान्नेहेतविस्तरम् । १२६ ।
प्रथिता प्रेत कृत्यैषा पित्र्यन्नाम विधुक्षये । तस्मिन्युक्तस्यैति नित्यं प्रेतकृत्यैव लौकिकी । १२७ ।
श्रोत्रियायैव देयानि हव्यकव्यानि दातृभिः । अर्हत्तमाय विप्राय तस्मै दत्तम्महाफलम् । १२८ ।
एकैमपि विद्वांसं दैवे पित्र्ये च भोजयेत् । पुष्कलम्फलमाप्नोति नामंत्रज्ञान्बहूनपि । १२९ ।
दूरादेव परीक्षेत ब्राह्मणम्वेदपारगम् । तीर्थन्तद्धव्यकव्यानां प्रदाने सोऽतिथिः स्मृतः । १३० ।
सहस्रं हि सहस्राणामनृचां यत्र भुञ्जते । एकस्तान्मंत्रवित्प्रीतः सर्वानर्हति धर्म्मतः । १३१ ।
ज्ञानोत्कृष्टाय देयानि कव्यानि च हवींषि च । न हि हस्तावसृग्दिग्धौ रुधिरेणैव शुद्ध्यतः । १३२ ।

एक एक को भोजन करावे बहुत विस्तार में प्रसक्त न होवे । १२५ । सत्कार देश काल पवित्रता श्रेष्ठ ब्राह्मण इन सभों का
श विस्तार करता है इस लिये विस्तार न करना । १२६ । अमावास्या में श्राद्ध करने से पितरों का उपकार होता है उस से
तर लोग श्राद्ध करने वाले को गुणवान पुत्र पौत्र धन आदि सब वस्तु को देते हैं इस लिये श्राद्ध को अवश्य करना चाहिए
१२७ । देवता और पितरों के देने योग्य जो वस्तु है सो वेद पाठी बड़ा पूज्य जो ब्राह्मण है उसी को देना चाहिये उस के
ने से महा फल होता है । १२८ । देव पितर कर्म में एक भी पण्डित ब्राह्मण के भोजन कराने से बड़ा फल होता है और
हुत मूर्ख ब्राह्मण के भोजन कराने से वैसा फल नहीं होता है । १२९ । दूर से वेद पढ़ने वाले ब्राह्मण की परीक्षा करना
ता और पितरों की वस्तु का ग्रहण करने वाला वही है । १३० । दश लाख मूर्ख ब्राह्मण के भोजन कराने से जो फल होता है
मंत्र जानने वाला एक ब्राह्मण के भोजन कराने से होता है । १३१ । ज्ञानी ब्राह्मण को हव्य और कव्य (अर्थात् देवता
र पितरों के देने की वस्तु) को देना क्योंकि रुधिर से लिप्त हस्त रुधिर करके धोने से नहीं छूटता । १३२ । * *

देवता श्रोर पितरों के अन्न को जै ग्रास मूर्ख ब्राह्मण भोजन करता है तै बार श्राद्ध करने वाला अग्नि से तप्त शूल श्रोर ऋ(ष्टि)
(अर्थात् दो धारा शस्त्र) श्रोर लोह पिण्ड इन सब को भोजन करता है । १३३ । चार प्रकार के ब्राह्मण हैं ज्ञानी तपस्वी वे(द)
पाठी कर्म्मकाण्डी । १३४ । पितरों के देने योग्य बस्तुओं को ज्ञानी ब्राह्मण को देना श्रोर देवतों के देने योग्य बस्तुओं
यथा न्याय (अर्थत् पहिला न मिले तो दूसरा) चारों को देना । १३५ । जिस का मूर्ख पिता हो श्रोर आप वेद पा(ठी)
हो अथवा वेद पाठी पिता हो श्रोर पुत्र उस का मूर्ख हो । १३६ । इन दोनों में जिस का पिता वेद पाठी है सो बड़ा
श्रोर दूसरा भी वेद के पढ़ने से सत्कार के योग्य है । १३७ । श्राद्ध में मित्र को भोजन न कराना धन देके मैत्री करना शत्रुत(ा)
से मित्रता से रहित जो ब्राह्मण है उस को भोजन कराना । १३८ । जिस मनुष्य के देवपितृ संबंधी कार्य में मित्र ही प्रधान
(अर्थात् मित्रता ही से भोजन कराता है) उस को भोजन कराने का फल परलोक में नहीं होता । १३९ । जो मनुष्य श्राद्ध
भोजन ही के निमित्त मित्रता करता है सो स्वर्ग लोक से भ्रष्ट होता है श्रोर वह ब्राह्मणों में अधम है । १४० । ऐसा भोज(न)

यावतो ग्रसते ग्रासान् हव्यकव्येष्वमंत्रवित् । तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्तशूलर्ष्ट्ययो गुडान् । १३३ ।
स्तथापरे । १३४ । ज्ञाननिष्ठेषु कव्यानि प्रतिष्ठाप्यानि यत्नतः । हव्यानि तु यथान्यायं सर्वेष्वेव
चतुर्ष्वपि । १३५ । अश्रोत्रियः पिता यस्य पुत्रः स्याद्वेदपारगः । अश्रोत्रियो वा पुत्रः स्यात्पिता-
स्याद्वेदपारगः । १३६ । ज्यायांसमनयोर्विद्याद्यस्य स्याच्छ्रोत्रियः पिता । मन्त्रसंपूजनार्थन्तु सत्का-
रमितरोऽर्हति । १३७ । न श्राद्धे भोजयेन्मित्रन्धनैः कार्य्योऽस्य संग्रहः । नारिन्नमित्रं यं विद्यात्तं
श्राद्धे भोजयेद्द्विजम् । १३८ । यस्य मित्रप्रधानानि श्राद्धानि च हवींषि च । तस्य प्रेत्यफलन्नास्ति
श्राद्धेषु च हविष्षु च । १३९ । यः संगतानि कुरुते मोहाच्छ्राद्धेन मानवः । सस्वर्गाच्च्यवते लोका-
च्छ्राद्धमित्रोद्विजाधमः । १४० । सम्भोजनी साभिहिता पैशाची दक्षिणा द्विजैः । इहैवास्ते तु सा
लोके गौरन्धेवैकवेश्मनि । १४१ । यथेरिणे वीजमुप्त्वा न बप्ता लभते फलम् । तथान्टचे हविर्दत्वा
न दाता लभते फलम् । १४२ । दातॄन्प्रतिग्रहीतॄंश्च कुरुते फलभागिनः । विदुषे दक्षिणान्दत्वा
विधिवत्प्रेत्यचेह च । १४३ । कामं श्राद्धेर्चयेन्मित्रन्नाभिरूपमपित्वरिम् । द्विषता हि हविर्भुक्तं
भवति प्रेत्य निष्फलम् । १४४ । यत्नेन भोजयेच्छ्राद्धे बह्वृचं वेदपारगम् । शाखांतकमथाध्वर्युं छंदो-
गन्तु समाप्तिकम् । १४५ । एषामन्यतमो यस्य भुंजीत श्राद्धमर्चितः । पितॄणां तस्य तृप्तिः
स्याच्छाश्वतीसाप्त पौरुषी । १४६ । एष वै प्रथमः कल्पः प्रदाने हव्यकव्ययोः । अनुकल्पस्त्वयं
ज्ञेयः सदा सद्भिरनुष्ठितः । १४७ । * * * * * * *

पिशाचों का है इसी लोक में फल दायक है सब मनुष्य जानेंगे कि बहुत भोजन कराया है जिस प्रकार से अंधी गौ एक ही गृह
रह सकती है तिस प्रकार से वह भोजन इसी लोक में रहता है परलोक में काम नहीं आता । १४१ । जिस प्रकार से ऊसर भूमि
बीज बोने से बोने वाला फल को नहीं पाता तिसी प्रकार से मूर्ख ब्राह्मणों के देवता की बस्तु को भोजन कराने से दाता फ(ल)
को नहीं पा सकता है । १४२ । पण्डित ब्राह्मण को विधि पूर्वक दक्षिणा देने से दाता श्रोर प्रति ग्रहीता ये दोनों फल को पा(ते)
हैं इस लोक में श्रोर परलोक में भी । १४३ । श्राद्ध में मित्र को भोजन करावे तो चिंता नहीं परंतु शत्रु जब पण्डित भी हो
उस को भोजन नहीं कराना क्योंकि उस को भोजन कराने से परलोक में भोजन कराने के फल को दाता नहीं पाता है । १४४ । वे(द)
के दो भाग हैं एक मंत्र भाग है दूसरा ब्राह्मण भाग है ऋग्वेद के दोनों भाग को पढ़े हो अथवा यजुर्वेद के दोनों भाग को
हो तो ब्राह्मण को यत्न पूर्वक श्राद्ध में भोजन करावे अथवा संपूर्ण एक शाखा के पढ़े हो तो उस को भी श्राद्ध में भोजन कर(ावे)
। १४५ । इन वेद पाठियों में से एक को भी पूजा करके श्राद्ध में भोजन करावे तो सात पुरुष तक पितरों की तृप्ति होती है । १४(६)
हव्य श्रोर कव्य इन दोनों के दान में मुख्य पक्ष कहा अब भले लोगों ने जिस का स्वीकार किया है ऐसा जो गौण पक्ष है
को जानो । १४७ । * * * * * * *

ना मामा भैने श्वशुर विद्या गुरु दौहित्र (अर्थात् लड़की का बेटा) दामाद मौसी का पुत्र आदि और ऋत्विक् (अर्थात् कराने वाला) यजमान इन दशों को भोजन कराना मुख्य पक्ष के अभाव में । १४८ । देव कर्म में ब्राह्मण की परीक्षा नहीं ना और पितृ कर्म में तो यत्न से ब्राह्मणों की परीक्षा करना । १४९ । श्राद्ध में भोजन कराने के अयोग्य जो ब्राह्मण मनु जी कहा है सो ये हैं चोर महापातकी नपुंसक नास्तिक । १५० । ब्रह्मचारी मूर्ख दुष्ट चर्म वाला जूआ खेलने वाला बहुत को कराने वाला । १५१ । वैद्य मजूरी लेके तीन वर्ष तक देवतों की मूर्ति का पूजन करने वाला मांस बेंचने वाला बनियों के से जीने वाला । १५२ । मजूरी लेके ग्राम बासियों का अथवा राजा का आज्ञा करने वाला निकाम नखवाला जन्म से काला दांत ला गुरु का विरुद्ध कर्म्म करने वाला अधिकार रहत संते अग्नि होत्र का त्याग करने वाला व्याज से जीने वाला (अर्थात् ऋण वृद्धि ग्रहण करके जीने वाला, । १५३ । क्षय रोग वाला पशु के पालन से जीने वाला परिवेत्ता (अर्थात् अविवाहित जेठा भाई रहते हुए विवाह करने वाला छोटा भाई) पंच महा यज्ञ को नहीं करने वाला ब्राह्मणों से शत्रुता कराने वाला परिवित्तिः र्थात् विवाहित कनिष्ट भाई का अविवाहित जेठा भाई) गणाभ्यंतर (अर्थात् सब जीवों के बास के लिये जो बड़े लोगों ने मठ दि बनाया) अथवा सब जीवों के निमित्त धन दिया उस से जीने वाला । १५४ । नाच से जीने वाला स्त्री संभोग से भ्रष्ट

मातामहं मातुलं च स्वस्त्रीयं श्वशुरं गुरुम्। दौहित्रं विटपतिम्बन्धुमृत्विग्याज्यौ च भोजयेत् । १४८ ।
न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवे कर्म्मणि धर्म्मवित्। पित्र्ये कर्म्मणि तु प्राप्ते परीक्षेत प्रयत्नतः । १४९ ।
ये स्तेनपतितक्लीबा ये च नास्तिकवृत्तयः । तान् हव्यकव्ययोर्विप्राननर्हान्मनुरब्रवीत् । १५० ।
जटिलञ्चानधीयानं दुर्बलं कितवन्तथा । याजयंति च येपूगां स्तांश्च श्राद्धे न भोजयेत् । १५१ ।
चिकित्सकान्देवलकान्मांसविक्रयिणस्तथा । विपणेन च जीवन्तो वर्ज्याः स्युर्हव्यकव्ययोः । १५२ ।
प्रेष्यो ग्रामस्य राज्ञश्च कुनखी श्यावदन्तकः । प्रतिरोद्धा गुरोश्चैव त्यक्ताग्निर्वार्धुषिस्तथा । १५३ ।
यक्ष्मी च पशुपालश्च परिवेत्ता निराकृतिः । ब्रह्मद्विट् परिवित्तिश्च गणाभ्यन्तर एव च । १५४ ।
कुशीलवोवकीर्णो च वृषलीपतिरेव च । पौनर्भवश्च काणश्च यस्य चोपपतिर्गृहे । १५५ ।
भृतकाध्यापको यश्च भृतकाध्यापितस्तथा । शूद्रशिष्यो गुरुश्चैव वाग्दुष्टःकुण्डगोलकौ । १५६ ।
अकारणपरित्यक्ता मातापित्रोर्गुरोस्तथा । ब्राह्मैर्यौनैश्च संबंधैः संयोगं पतितैर्गतः । १५७ ।
अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी । समुद्रयायी वन्दी च तैलिकः कूटकारकः । १५८ ।
पित्राविवदमानश्च कितवो मद्यपस्तथा । पापरोग्यभिशस्तश्च दांभिको रसविक्रयी । १५९ ।
धनुश्शराणां कर्ता च यश्चाग्रे दिधिषूपतिः । मित्रध्रुक् द्यूतवृत्तिश्च पुत्राचार्यस्तथैव च । १६० ।

ह्मचारी शूद्रा स्त्री का पति प्रथम पति को छोड़ के दूसरा पति करने वाली स्त्री का पुत्र कांणा और जिस के गृह में उपपति (अर्थात् सरा पति) है वह भी । १५५ । मजूरी लेके पढ़ाने वाला मजूरी देके पढ़ने वाला शूद्र का शिष्य शूद्र का गुरु कठोर बोलने वाला पतित पढ़ाने वाला कुण्ड (अर्थात् पति के जीते हुए दूसरे पति से उत्पन्न) गोलक (अर्थात् पति के मुए हुए दूसरे पति से उत्पन्न) । १५६ रण बिना माता पिता गुरु का त्याग करने वाला पतित से पढ़ने वाला पतित के पढ़ाने वाला पतित से विवाह आदि संबंध करने ला । १५७ । गृह में अग्नि लगाने वाला विष का देने वाला कुण्ड के अन्न को भोजन करने वाला सोम लता का बेचने वाला मुद्र में जाने वाला वंदी (अर्थात् स्तुति पढ़ने वाला) तैल के निमित्त तिल आदि बीज का पीसने वाला मिथ्यावाद करने ला । १५८ । पिता से विवाद करने वाला आप पासा खेलने नहीं जानता और अपने अर्थ दूसरे को पासा खेलाने वाला सुरा छोड़कर मद्य पीने वाला कुष्टी अभिशस्त (अर्थात् पाप के निर्णय बिना पापी कहाने वाला बहाने से धर्म करने वाला) रस अर्थात् मधुर आमिल कड़ुआ लवण कषाय तीत इन्हों का बेचने वाला) । १५९ । बाण धनुष का करने वाला अग्रेदिधिषू पति अर्थात् जेठी सगी भगिनी के बिवाह बिना छोटी से विवाह करने वाला मित्र से द्रोह करनेवाला जूआ से जीने वाला पुत्र से ने वाला) । १६० ।

* * * * * *

मिरगी गण्डमाला सपेद कुष्ट इन रोगों में से कोई एक रोग वाला दुर्जन उन्मत्त अंधा वेद का निंदा करने वाला । १६१ । हाथी बयल घोडा ऊंट इन सभों के बीर्य का नाश करने वाला (अर्थात् बधिआ करने वाला) ज्योतिष विद्या से जीने वाला पक्षी पालने वाला संग्राम के लिये शस्त्र विद्या का उपदेश करने वाला । १६२ । बंधे जल को दूसरे स्थान में लेजाने वाला बहते जल को रोकने वाला गृह बनाने की विद्या से जीने वाला दूत (अर्थात् संदेश लेजाने वाला) मजूरी लेके वृक्ष लगाने वाला । १६३ । कुत्तों से क्रीड़ा करने वाला बाज पक्षी से जीने वाला कन्या (अर्थात् विवाह जिस का नहीं हुआ) का गमन करने वाला हिंसा करने वाला शूद्रों से जीने वाला बहुत मनुष्यों के यज्ञ कराने वाला । १६४ । आचार हीन नपुंसक नित्य ही मारने वाला खेती से जीने वाला श्लीपदी (अर्थात् मोटा पांव वाला) भले लोगों से निंदा को पानें वाला । १६५ । भेड़ भैंसि इन से जीने वाला विवाहित पति को छोड़ कर दूसरे पुरुष से विवाह करने वाली जो स्त्री उस का दूसरा पति मजूरी लेके मुए हुए मनुष्य को दाह करने वाला । १६६ । ये सब निन्दित आचार वाले हैं और ब्राह्मणों में अधम हैं पंगति में बैठाने के योग्य नहीं हैं इन

भ्रामरी गण्डमाली च श्वित्र्यथो पिशुनस्तथा। उन्मत्तोंधश्च वर्ज्या स्युर्वेदनिन्दक एव च । १६१ ।
हस्तिगोश्वोष्ट्रदमको नक्षत्रैर्यश्च जीवति । पक्षिणां पोषको यश्च युद्धाचार्यस्तथैव च । १६२ ।
स्रोतसां भेदको यश्च तेषाञ्चावरणे रतः । गृहसंवेशको दूतो वृक्षारोपक एव च । १६३ ।
श्वक्रीडी श्येनजीवी च कन्या दूषक एव च । हिंस्रो वृषलवृत्तिश्च गणानाञ्चैव याजकः । १६४ ।
आचारहीनः क्लीबश्च नित्यं याचनकस्तथा। कृषिजीवी श्लीपदी च सद्भिर्निन्दित एव च । १६५ ।
औरभ्रिको माहिषिकः परपूर्वापतिस्तथा । प्रेतनिर्यातकश्चैव वर्जनीयाः प्रयत्नतः । १६६ ।
एतान्विगर्हिताचारानपाङ्क्तेयान् द्विजाधमान् । द्विजातिप्रवरो विद्वानुभयत्र विवर्जयेत् । १६७ ।
ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति । तस्मै हव्यं न दातव्यं न हि भस्मनि हूयते । १६८ ।
अपाङ्क्त दाने यो दातुर्भवत्यर्द्ध्वम्फलोदयः । दैवे हविषि पित्र्ये वा तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः । १६९ ।
अव्रतैर्यद्द्विजैर्भुक्तं परिवेत्त्रादिभिस्तथा । अपाङ्क्तै यैर्यदन्यैश्च तद्वै रक्षांसि भुञ्जते । १७० ।
दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योग्रजे स्थिते । परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः । १७१ ।
परिवित्तिः परीवेत्ता यया च परिविद्यते । सर्वे ते नरकं यांति दातृयाजकपञ्चमाः । १७२ ।
भ्रातुर्मृतस्य भार्यायां योनुरज्येत कामतः । धर्मेणापि नियुक्तायां स ज्ञेयो दिधिषूपतिः । १७३ ।
परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ । पत्यौ जीवति कुण्डः स्यान्मृते भर्तरि गोलकः । १७४ ।
तौ तु जातौ परक्षेत्रे प्राणिनौ प्रेत्य चेह च । दत्तानि हव्यकव्यानि नाशयेते प्रदायिनाम् । १७५ ।

सभों को देव पितर कर्म्म में वर्जन करे जो पण्डित ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं सो । १६७ । जैसे तृण की अग्नि झट पट शांत हो जाती है तैसा ही मूर्ख ब्राह्मण है इस लिये हव्य और कव्य उस को न देना राख में होम नहीं होता है । १६८ । जो निंदित ब्राह्मण कहे हैं उन्हों के हव्य कव्य देने से परलोक में जो फल होता है उस संपूर्ण फल को हम (अर्थात् भृगु जी) कहेंगे । १६९ । पूर्व कथित निंदित ब्राह्मण जो भोजन करते हैं सो राक्षस भोजन करते हैं (अर्थात् फल रहित होता है)। १७० । अविवाहित सहोदर जेठा भाई के रहते हुए छोटा भाई विवाह करे और अग्नि होत्र करे तो जेठा भाई परिवित्ति कहाता है और छोटा भाई परिवेत्ता कहाता है । १७१ । परिवित्ति परिवेत्ता परिविन्ना (अर्थात् जिस कन्या से विवाह हुआ है) सो और उस कन्या को देने वाला विवाह कराने वाला ब्राह्मण ये पांचों नरक में जाते हैं । १७२ । मरे हुए भाई की स्त्री में जो आगे गमन करने की विधि कहेंगे उस विधि से भी अपनी इच्छा से गमन करने वाला दिधिषू पति कहाता है । १७३ । परस्त्री में दो पुत्र होते हैं एक कुंड दूसरा गोलक तिस में जीवत पति वाली में कुंड कहाता है मृत पति वाली में गोलक कहाता है । १७४ । इन दोनों के देव पितर कर्म में भोजन कराने से दान देने से परलोक में दाता को फल नहीं होता । १७५ । *

घति के योग्य जो ब्राह्मण नहीं है सो पंघति के योग्य जितने ब्राह्मण भोजन करते को देखता है तितनों का फल दाता नहीं
ता है इस लिये वह दाता बुद्धि रहित कहाता है । १७६ । अंधा काणा सपेद कुष्टवाला पाप रोग (अर्थात् राज रोग वाला)
न सभों के देखने से क्रम करके ९० । ६० । १०० । १००० । इतने ब्राह्मण भोजन कराने का फल नहीं होता है भोजन कराने
ाले को इस में यह संदेह है कि अंधा तो देख नहीं सकता किस प्रकार से फल को नाश करेगा तो इस का उत्तर यह है कि
खने के योग्य स्थान में बैठा हो (अर्थात् भोजन करने वाले ब्राह्मण के समीप में बैठा हो) । १७७ । शूद्र के यज्ञ में यज्ञ करने
ाला ब्राह्मण अपने अङ्गों से जितने ब्राह्मणों को छूता है तितने ब्राह्मणों के देने का फल दाता नहीं पाता और श्राद्ध में भी
च्छे ब्राह्मणों की पंघति से शूद्र के यज्ञ कराने वाला ब्राह्मण बैठ के भोजन करे तो जितने ब्राह्मण भोजन करते हैं उन सभों
भोजन कराने के फल को दाता नहीं पासकता । १७८ । शूद्र के यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण से लोभ करके वेद पढ़ने वाला भी
ाह्मण प्रतिग्रह करे (अर्थात् दान लेवे) तो झट पट नाश को प्राप्त होता है जैसे माटी का कच्चा पात्र जल में । १७९ । सोम
ता के बेचने वाले ब्राह्मण को दान देने से दाता दूसरे जन्म में विष्ठा भोजन करने वाली योनि में उत्पन्न होता है और इसी
ति से जीविका के लिये औषध करने वाले ब्राह्मण को दान देने से पीवु रक्त पीने वाली योनि में दाता उत्पन्न होता है और
जूरी लेके तीन वर्ष तक देव मूर्ति का पूजा करने वाले ब्राह्मण को और व्याज लेने वाले ब्राह्मण को दान देने से दान का

अपांक्त्यो यावतः पांक्त्यान्भुञ्जानाननुपश्यति । तावतान्न फलम्प्रेत्य दाताप्राप्नोति वालिशः । १७६ ।
वीक्ष्यान्धो नवतेः काणः षष्ठेः श्विचो शतस्य तु । पापरोगी सहस्रस्य दातुर्नाशयते फलम् । १७७ ।
यावतः संस्पृशेदङ्गैर्ब्राह्मणान् शूद्रयाजकः । तावतां न भवेद्दातु फलन्दानस्य पौर्तिकम् । १७८ ।
वेदविद्यापि विप्रस्य लोभात् कृत्वा प्रतिग्रहम् । विनाशं व्रजति चिप्रमामपात्रमिवाम्भसि । १७९ ।
सोमविक्रयिणे विष्ठा भिषजे पूयशोणितम् । नष्टन्देवलके दत्तमप्रतिष्ठन्तु वार्द्धुषौ । १८० ।
यत्तु वाणिजके दत्तन्नेह नामुत्र तद्भवेत् । भस्मनीवहुतं हव्यन्तथा पौनर्भवे द्विजे । १८१ ।
इतरेषु त्वपाङ्क्त्येषु यथोदिष्टेषु साधुषु । मेदोऽसृङ्मांसमज्जास्थि वदन्त्यन्नमनीषिणः । १८२ ।
अपांक्त्योपहता पङ्क्तिः पाव्यते यैर्द्विजोत्तमैः । तान्निबोधत कार्त्स्न्येन द्विजाग्र्यान्पङ्क्तिपावनान्
। १८३ । अग्र्याः सर्वेषु वेदेषु सर्वप्रवचनेषु च । श्रोत्रियान्वयजाश्चैव विज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः । १८४ ।
त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित् । ब्रह्मदेयात्मसन्तानो ज्येष्ठसामग एव च । १८५ ।
वेदार्थवित्प्रवक्ता च ब्रह्मचारी सहस्रदः । शतायुश्चैव विज्ञेया ब्राह्मणाः पङ्क्तिपावनाः । १८६ ।
पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा श्राद्धकर्मण्युपस्थिते । निमंत्रयेत त्र्यवरान् सम्यक् विप्रान् यथोदितान् । १८७ ।

ल नहीं होता है । १८० । बनिआं के कर्म से जीने वाले ब्राह्मण को दान देने से इस लोक में और परलोक में दान का फल
हीं होता और प्रथम पति को छोड़ के दूसरा पति करने वाली जो स्त्री है उस में दूसरे पति से उत्पन्न जो पुत्र सो पौनर्भव
हाता है उस को दान देना कैसा है जैसे भस्म में होम करना । १८१ । जो पंघति में बैठने योग्य नहीं हैं उन को दान देने
दूसरे जन्म में दाता मेद (अर्थात् हृदय का मांस) रक्त मांस मज्जा हाड़ इस के भोजन करने वाली योनि में उत्पन्न होता
। १८२ । चोर आदि ब्राह्मण से दूषित पंघति में बैठने से उस पंघति को पवित्र करन हारे जो ब्राह्मण उन को सुनिए । १८३ ।
तस कुल में दश पुरुष तक वेद और शास्त्र इन का पढ़ना पढ़ाना चला आया है उस कुल में उत्पन्न हो और चारों वेद को
ाकरण आदि छ अंग को पढ़ाने वाला हो सो ब्राह्मण पंघति को पवित्र करने वाला है । १८४ । त्रिणाचिकेत (अर्थात् अध्वर्यु
द भाग और उस की व्रत यह जिस को है) और अग्नि होत्री त्रिसुपर्ण (अर्थात् ऋग्वेद भाग और उस की व्रत यह जिस को
) व्याकरण आदि छ अंग का पढ़ने वाला ब्राह्म विवाह से उत्पन्न साम वेद के आरण्यक भाग को पढ़ने वाला ये छ पंघति
पवित्र करने वाले हैं । १८५ । वेदार्थ का जानने वाला और कहने वाला ब्रह्मचारी हो और हजार गौ देने वाला सौ बरस
ा हो सो पंघति को पवित्र करन हार है । १८६ । श्राद्ध करने के पूर्व दिन में अथवा उसी दिन में तीन से ऊपर मिल सकें
च्छे ब्राह्मण तो उन को नेवता देना न मिल सके तो एक दो तीन को भी नेवता देना । १८७ ।　*　*　*

नेवता पाके ब्राह्मण उस रात्रि दिन में मैथुन कर्म को न करे और वेद को भी न पढ़े श्राद्ध करने वाला भी ये दोनों कर्म को न करे । १८८ । नेवता पाए हुए ब्राह्मणों के समीप में पितर लोग खड़े रहते हैं वायु रूप होकर ब्राह्मणों के पीछे चलते हैं । १८९ । देव कर्म में अथवा पितृ कर्म में नेवता को पाके ब्राह्मण कोई प्रकार से भोजन को न करे तो उस पाप से दूसरे जन्म में शूकर योनि को प्राप्त होता है । १९० । श्राद्ध कर्म में नेवता को पाके शूद्रा स्त्री के साथ संगम करे तो श्राद्ध करने वाले का संपूर्ण पाप को पाता है । १९१ । क्रोध रहित भीतर बाहर से पवित्र राग (अर्थात् अभिमत वस्तु का अभिलाषा) द्वेष (अर्थात् अनभिमत वस्तु के न पाने में क्रोध) इन दोनों से रहित स्त्री संभोग से रहित युद्ध को छोड़े हुए दया आदि आठ गुण से युक्त महाभाग अनादि देवता रूप पितर है इस कारण से श्राद्ध करने वाला और श्राद्ध में भोजन करने वाला दोनों क्रोध से रहित होवें । १९२ । जिस से इन सभों की उत्पत्ति है और जिन नियमों करके जिन का सेवन है उन सब को जानिए । १९३ । ब्रह्मा के पुत्र मनु जी के मरीचि आदि पुत्र जो हैं तिन्हों के जो पुत्र हैं सो पितृगण है । १९४ । साध्यगण के पितर

निमंत्रितो द्विजः पित्र्ये नियतात्मा भवेत्सदा । न च छन्दांस्यधीयीत यस्य श्राद्धञ्च तद्भवेत् । १८८ ।
निमन्त्रितान् हि पितर उपतिष्ठन्ति तान् द्विजान् । वायुवच्चानुगच्छन्ति तथा सीनानुपासते । १८९ ।
केतितस्तु यथा न्यायं हव्यकव्ये द्विजोत्तमः । कथञ्चिदप्यतिक्रामन् पापः शूकरतां व्रजेत् । १९० ।
आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे वृषल्या सह मोदते । दातुर्यद्दुष्कृतङ्किञ्चित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते । १९१ ।
अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्मचारिणः । न्यस्तशस्त्रा महाभागाः पितरं पूर्वदेवताः । १९२ ।
यस्मादुत्पत्तिरेतेषां सर्वेषामप्यशेषतः । ये च यैरुपचर्य्याःस्युर्न्नियमैस्तान्निबोधत । १९३ ।
मनोर्हैरण्यगर्भस्य ये मरीच्यादयः सुताः । तेषामृषीणां सर्वेषां पुत्राः पितृगणाः स्मृताः । १९४ ।
विराट्सुताः सोमसदः साध्यानां पितरः स्मृताः । अग्निष्वात्ताश्च देवानां मरीच्या लोकविश्रुताः । १९५ ।
दैत्यदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगराक्षसाम् । सुपर्णकिन्नराणाञ्च स्मृतार्बार्हिषदोऽत्रिजाः । १९६ ।
सोमपा नाम विप्राणां क्षत्रियाणां हविर्भुजः । वैश्यानामाज्यपा नाम शूद्राणान्तु सुकालिनः । १९७ ।
सोमपास्तु कवेः पुत्राः हविष्मन्तोऽङ्गिरः सुताः । पुलस्त्यस्याज्यपाः पुत्रा वशिष्ठस्य सुकालिनः । १९८ ।
अग्निदग्धानग्निदग्धान् काव्यार्बर्हिषदस्तथा । अग्निष्वात्तांश्च सौम्यांश्च विप्राणामेव निर्दिशेत्
। १९९ । य एते तु गणा मुख्याः पितृणां परिकीर्त्तिताः । तेषामपीह विज्ञेयं पुत्रपौत्रमनन्तकम्
। २०० । ऋषिभ्यः पितरो जाताः पितृभ्यो देवमानवाः । देवेभ्यस्तु जगत्सर्वं चरं स्थाण्वनुपूर्वशः
। २०१ । राजतैर्भाजनैरेषामथोवा राजतान्वितैः । वार्य्यपि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्प्यते । २०२ ।
देवकार्य्याद्द्विजातीनां पितृकार्य्यम्विशिष्यते । दैवं हि पितृकार्यस्य पूर्वमाप्यायनं स्मृतम् । २०३ ।
तेषामारक्षभूतं तु पूर्वन्दैवं नियोजयेत् । रक्षांसि हि विलुम्पन्ति श्राद्धमारक्षवर्जितम् । २०४ ।

विराट् के पुत्र सोमसद हैं देवतों के पितर अग्निष्वात्त हैं ये सब मरीचि के पुत्र हैं और लोक में प्रसिद्ध हैं । १९५ । दैत्य दानव यक्ष गंधर्व उरग राक्षस सुपर्ण किन्नर इन सभों का पितर अत्रि का पुत्र बर्हिषद है । १९६ । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन सभों का पितर क्रम से सोमप हविर्भुज आज्यप सुकाली हैं । १९७ । कवि अंगिरा पुलस्त्य वशिष्ठ इन्हों का पुत्र क्रम से सोमप हविर्भुज आज्यप सुकाली हैं । १९८ । अग्निदग्ध अनग्निदग्ध काव्य बर्हिषद अग्निष्वात्त सौम्य ये सब ब्राह्मण के पितर हैं । १९९ । ये सब पितर मुख्य हैं उन्हों का पुत्र पौत्र अनन्त हैं । २०० । ऋषियों से पितर उत्पन्न हैं पितरों से देवता और मनुष्य उत्पन्न हैं देवतों से क्रम करके जङ्गम स्थावर संपूर्ण जगत् उत्पन्न है । २०१ । इन सब पितरों को रूपे के पात्र में अथवा रूपा से युक्त जो पात्र है उस में जल मात्र भी देवे तो उस से अक्षय सुख होता है । २०२ । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य के देव कार्य से पितृ कार्य बड़ा है इस कारण से देव कार्य प्रथम भए से पितृ कार्य का पूर्णता होती है । २०३ । पितृ कार्य्य का रक्षा करनहार देव कार्य को पहिले करना रक्षा रहित कार्य को राक्षस लोप करते हैं । २०४ । *

तृ कार्य के आदि अंत में देव कार्य्य करना और देव कार्य के आदि अंत में पितृ कार्य करने वाला अपने वंश सहित झट पट नाश प्राप्त होता है । २०५ । एकान्त पवित्र दक्षिण ओर ढरत देश को गोबर से लेप करे । २०६ । स्वभाव से शुद्ध बन आदि जो श नदी तीर निर्जन देश ऐसे स्थान में श्राद्ध करने से सर्वदा पितर संतुष्ट रहते हैं । २०७ । पृथक् पृथक् कुश के आसनों से वते ब्राह्मणों के स्नान आचमन कराके बैठावे । २०८ । प्रथम देव कार्य में नेवते ब्राह्मणों के गंध माला आदि से पूजन करे पीछे तृ कार्य में नेवते ब्राह्मणों के भी । २०९ । कुश तिल सहित जल को ब्राह्मणों के देके उन ब्राह्मणों की आज्ञा पाके उन ह्मणों के सहित अग्नि में होम करे । २१० । पहिले अग्नि सोम यम इन सब को हवि देके पीछे पितरों को अन्न आदि देवे २११ । अग्नि न होवे तो ब्राह्मण के हाथ ही में होम करे जोई अग्नि सोई ब्राह्मण है इस बात के मंत्र जानने वाले ब्राह्मणों कहा है । ११२ । क्रोध से रहित प्रसन्न मुख पुरातन लोक वृद्धि के निमित्त उद्योग के प्राप्त श्राद्ध के पात्र ब्राह्मण हैं इस बात मनु आदि ऋषियों ने कहा है इस लिये देवता रूप श्राद्ध ब्राह्मण के हस्त में देना यह पूर्व कथित विधि का अनुवाद है

दैवाद्यन्तन्तदीहेत पित्राद्यन्तन्न तद्भवेत् । पित्राद्यन्तन्त्वीहमानः क्षिप्रन्नश्यति सान्वयः । २०५ ।
शुचिन्देशं विविक्तञ्च गोमयेनोपलेपयेत् । दक्षिणा प्रवणञ्चैव प्रयत्नेनोपपादयेत् । २०६ ।
अवकाशेषु चोक्षेषु नदीतीरेषु चैव हि । विविक्तेषु च तुष्यन्ति दत्तेन पितरस्सदा । २०७ ।
आसनेषूपक्लृप्तेषु बर्हिष्मत्सु पृथक् पृथक् । उपस्पृष्टोदकान् सम्यक् विप्रांस्तानुपवेशयेत् । २०८ ।
उपवेश्यतु तान्विप्रानासनेष्वजुगुप्सितान् । गन्धमाल्यैः सुरभिभिरर्चयेद्देवपूर्वकम् । २०९ ।
तेषामुदकमानीय सपवित्रांस्तिलानपि । अग्नौ कुर्य्यादनुज्ञातो ब्राह्मणो ब्राह्मणैस्सह । २१० ।
अग्नेस्सोमयमाभ्याञ्च कृत्वाप्यायनमादितः । हविर्दानेन विधिवत्पश्चात्सन्तर्प्पयेत्पितॄन् । २११ ।
अग्न्यभावेतु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत् । योह्यग्निस्स द्विजो विप्रैर्मंत्रदर्शिभिरुच्यते । २१२ ।
अक्रोधनान् सुप्रसादान्वदन्त्येतान् पुरातनान् । लोकस्याप्यायने युक्तान् श्राद्धदेवान् द्विजोत्तमान्
। २१३ । अपसव्यमग्नौ कृत्वा सर्वमावृत्यविक्रमम् । अपसव्येन हस्तेन निर्वपेदुदकम्भुवि । २१४ ।
त्रींस्तु तस्माद्धविश्शेषात्पिण्डान् कृत्वा समाहितः । औदकेनैव विधिना निर्वपेद्दक्षिणामुखः । २१५ ।
न्युप्य पिण्डांस्ततस्तांस्तु प्रयतो विधिपूर्वकम् । तेषु दर्भेषु तं हस्तन्निमृज्याल्लेपभागिनाम् । २१६ ।
आचम्योदक्परावृत्य त्रिरायम्य शनैरसून् । षडृतूंश्च नमस्कुर्य्यात्पितॄनेव च मंत्रवित् । २१७ ।
उदकन्निनयेच्छेषं शनैः पिण्डान्तिके पुनः । अवजिघ्रेच्च तान् पिण्डान्यथान्युप्तान् समाहितः । २१८ ।
पिण्डेभ्यस्त्वल्पिकां मात्रां समादायानुपूर्वशः । तानेव विप्रानासीनान्विधिवत्पूर्वमाशयेत् । २१९ ।
ध्रियमाणे तु पितरि पूर्वेषामेव निर्वपेत् । विप्रवद्वापितं श्राद्धे स्वकं पितरमाशयेत् । २२० ।

अर्थात् सिद्ध का कथन है) । २१३ । अग्नौ करण होम को दक्षिण संस्थ (अर्थात् दक्षिण दिशा में करके) अपसव्य करके दक्षिण स्त से पिण्ड धरने की भूमि में जल देना । २१४ । होम से बची जो हवि है उस से तीन पिण्ड बना के दक्षिण हाथ से एकाग्र त्त और दक्षिण मुख होकर कुशों पर उन पिण्डों को देवे । २१५ । अपने कर्म काण्ड के सूत्र में कथित विधि से कुशों पर उन ण्डों को देकर पिण्ड के नीचे का जो कुश है उस के मूल में हाथ को पोंछे वृद्ध प्रपितामह आदि तीन पुरुषों के तृप्ति के ये । २१६ । मंत्र जानने वाला उत्तर मुख होकर आचमन और तीन प्राणायाम को यथा शक्ति करके वसन्त आदि छ ऋतुओं और पितरों को नमस्कार करे । २१७ । पिण्ड दान के पहिले पिण्ड रखने की भूमि में जो जल दिया है उस पात्र में बचा जल है उस को सब पिण्डों के समीप में क्रम से देवे पीछे उन पिण्डों को एकाग्र चित्त होकर क्रम से सूंघे । २१८ । पिण्डों थोड़ा थोड़ा अन्न को क्रम से लेकर उस को नेवते हुए बैठे ब्राह्मणों को विधि पूर्वक पहिले भोजन करावे । २१९ । पिता के ते हुए मरे हुए जो पितामह आदि तीन पुरुष उन की श्राद्ध करे अथवा पिता का जो ब्राह्मण है उस के स्थान में अपने पिता को भोजन करावे और पितामह प्रपितामह को पिण्ड देवे दोनों के निमित्त ब्राह्मण भोजन भी करावे । २२० । *

जिस का पिता मर गया हो और पितामह जीता हो सो पिता का नाम लेकर प्रपितामह का नाम लेवै । २२१ । अथवा जिस प्रकार से जीते पिता को भोजन कराना कहा है उसी प्रकार से जीते पितामह को भोजन करावे पिता प्रपितामह को पिण्ड देवे इस बात को मनु जी ने कहा है अथवा पितामह की आज्ञा पाके पिता प्रपितामह वृद्ध प्रपितामह को पिण्ड देवे पितामह को भोजन करावे। २२२। उन ब्राह्मणों के हस्त में तिल जल कुश को देके पिण्डों से निकाला जो थोड़ा थोड़ा भाग है उस को पिता आदि तीनों के जो ब्राह्मण हैं उन को क्रम से देवे इस बात को पहिले कह आए हैं बीच में और प्रसंग चला इस लिये उसी का स्मरण कराया है । २२३ । आप दोनो हाथों से अन्न संपूर्ण पात्र को रसोई के गृह से लाकर पितरों का चिंतन करता हुआ ब्राह्मणों के समीप में धीरे से परोसै । २२४ । एक हाथ से लाए हुए अन्न को असुर लोक छीन लेते हैं इस लिये दोनों हाथों से लाना चाहिए। २२५। एकाग्र चित्त होकर भूमि में गिरने न पावे ऐसी रीति से व्यंजन दाल शाग दूध दही घी मधु इन सब को भूमि में स्थापन करे। २२६। भक्ष्य (आर्थत् लड्डुआ आदि) भोज्य (अर्थात् जाउर आदि) नाना प्रकार के फल मूल आदि हृदय के प्रिय मांस सुगंध सहित पीने की बस्तु इन सभों को भी स्थापन करै २२७। एकाग्र चित्त होकर सब पदार्थों को ब्राह्मणों के समीप लाकर

पिता यस्य तु वृत्तः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः। पितुस्सनाम संकीर्त्य कीर्त्तयेत्प्रपितामहम् । २२१ ।

पितामहो वा तच्छ्राद्धम्भुञ्जीतेत्य ब्रवीन्मनुः । कामं वासमनुज्ञातः स्वयमेव समाचरेत् । २२२ ।

तेषान्दत्वा तु हस्तेषु सपवित्रन्तिलोदकम्। तत्पिण्डाग्रं प्रयच्छेत स्वधैषामस्त्विति ब्रुवन् । २२३ ।

पाणिभ्यान्तूपसंगृह्य स्वयमन्नस्य वर्द्धितम्। विप्रान्तिके पितॄन् ध्यायन् शनकैरुपनिक्षिपेत् । २३४ ।

उभयोर्हस्तयोर्मुक्तं यदन्नमुपनीयते । तद्विप्रलुंपन्त्यसुराः सहसा दुष्टचेतसः । २२५ ।

गुणांश्च सूपशाकाद्यान् पयो दधि घृतन्मधु । विन्यसेत्प्रयतः पूर्वम्भूमावेव समाहितः । २२६ ।

भक्ष्यम्भोज्यञ्च विविधं मूलानि च फलानि च। हृद्यानि चैवमांसानि पानानि सुरभीणि च । २२७ ।

उपनीय तु तत्सर्वं शनकैस्तु समाहितः । परिवेषयेत प्रयतो गुणान्सर्वान्प्रचोदयन् । २२८ ।

नास्रमापातयेज्जातु न कुप्येन्नानृतम्वदेत् । न पादेन स्पृशेदन्नन्न चैतदवधूनयेत् । २२९ ।

अस्रङ्गमयति प्रेतान् कोपोऽरीन् नृतं शुनः । पादस्पर्शस्तु रक्षांसि दुष्कृतीनवधूननम् । २३० ।

यद्यद्रोचेत विप्रेभ्यस्तत्तद्दद्यादमत्सरः । ब्रह्मोद्याश्च कथाः कुर्य्यात्पितॄणामेतदीप्सितम् । २३१ ।

स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि। आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानिऽखिलानिच। २३२।

हर्षयेत् ब्राह्मणां स्तुष्टो भोजयेच्च शनैः शनैः । अन्नाद्येनासकृच्चैतान्गुणैश्च परिचोदयेत् । २३३ ।

व्रतस्थमपि दौहित्रं श्राद्धे यत्नेन भोजयेत् । कुतपञ्चासने दद्यात्तिलैश्च विकिरेन्महीम् । १३४ ।

त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः । त्रीणि चात्र प्रशंसन्ति शौचमक्रोधमत्वराम् । २३५ ।

क्रम से यह मधु है यह आमिल है ऐसा सभों के गुण को कहत संते परोसै । २२८ । रोदन क्रोध असत्य भाषण इन को छोड़ देवे पांव से अन्न को न छूवे उछलाय उछलाय अन्न को पात्र में न राखै । २२९ । रोदन कोप असत्य भाषण पांव से छूना अन्न को उछलाना इन सभों से क्रम करके प्रेत शत्रु कुक्कुर राक्षस पाप करने वाला इन सभों को वह अन्न जाता है । २३० । मत्सर (अर्थात् और के शुभ में द्वेष करना) को छोड़कर जो जो बस्तु ब्राह्मणों के रुचै उस उस बस्तु को देवे परमात्मा के निरूपण की कथा को कहैं पितरों के यह इष्ट हैं । २३१ । वेद धर्म शास्त्र आख्यान (अर्थात् गरुड़ मित्रावरुण आदि की कथा) महा भारत पुराण श्री सूक्त शिव सङ्कल्प सूक्त इन सब को ब्राह्मणों को सुनावे । २३२ । आप संतुष्ट होकर प्रिय वाणी कथन आदि से ब्राह्मणों को संतुष्ट करे जल्दी न करे यह अच्छा लड्डु है यह अच्छी जाउर है इस रीति से बस्तुओं के गुण को कथन करत संते भोजन करावे । २३३ । दौहित्र (अर्थात् लड़की का लड़का) व्रत में भी हो तो उस को यत्न पूर्वक श्राद्ध में भोजन करावे नेपाली कंबल का आसन देवे श्राद्ध की भूमि में तिल को छीटै । २३४ । श्राद्ध में तीन बस्तु पवित्र हैं दौहित्र नेपाली कंबल तिल और तीन बस्तु की प्रशंसा है श्राद्ध में वह तीनों बस्तु ये हैं कि पवित्रता शांति धीरता । २३५ ।   *   *   *

ाह्मण सब मौन होकर अति गरम अन्न को भोजन करैं वस्तुओं के गुण को दाता पूछे कुछ न बोले । २३६ । जब तक अन्न
 है और भोजन करने वाले बोलते नहीं हैं तब तक पितर लोग भोजन करते हैं । २३७ । शिर को बांधे हुए और दक्षिण
 बैठे हुए जूता को पहिने हुए जो भोजन करते हैं वह भोजन राक्षस को पहुंचता है । २३८ । चाण्डाल वाराह (अर्थात्
र) मुरगा कुक्कुर रजस्वला नपुंसक ये सब ब्राह्मणों को भोजन करते हुए न देखैं । २३९ । देव कर्म में अथवा पितृ कर्म में
 सभों के देखनें से सब कर्म नष्ट हो जाता है । २४० । शूकर मुरगा कुक्कुर शूद्र ये सब क्रम करके सूंघना पक्ष की वायु दृष्टि
ा इन सभों से नाश करते हैं । २४१ । खञ्ज वा काणा दाता का टहलू भी हो अथवा हीन अंग वाला किम्वा अधिक अंग
ा हो तो इन सभों को श्राद्ध के देश से निकाल देवे । २४२ । ब्राह्मण अथावा भिक्षुक ये दोनों भोजन के अर्थ आए हों तो
ति ब्राह्मणों की आज्ञा पाके शक्ति पूर्वक उन्हों का प्रति पूजन करैं । २४३ । सर्व प्रकार के अन्न आदि को व्यंजन आदि से
ाके जल डालके उस अन्न को भोजन किए जो ब्राह्मण हैं उन्हों के आगे भूमि में कुश के ऊपर डाल देवे । २४४ । जो बालक

अत्युष्णं सर्वमन्नं स्याद्भुञ्जीरन्स्तेपि वाग्यताः । न च द्विजातयो ब्रूयुर्दात्रा पृष्टा हविर्गुणाः । २३६ ।
यावदुष्णम्भवत्यन्नं यावदश्नाति वाग्यतः । पितरस्तावदश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः । २३७ ।
यद्वेष्टितशिरा भुङ्क्ते यद्भुङ्क्ते दक्षिणामुखः । सोपानत्कश्च यद्भुङ्क्ते तद्वै रक्षांसि भुञ्जते । २३८ ।
चाण्डालश्च वराहश्च कुक्कुटः श्वा तथैव च । रजस्वला च षण्ढश्च नेक्षेरन्नश्नतो द्विजान् । २३९ ।
होमे प्रदाने भोज्ये च यदेभिरभिवीक्ष्यते । दैवे कर्म्मणि पित्र्ये वा तद्गच्छत्यथा यथम् । २४० ।
घ्राणेन शूकरो हन्ति पक्षवातेन कुक्कुटः । श्वा तु दृष्टिनिपातेन स्पर्शेनावरवर्णजः । २४१ ।
खञ्जो वा यदि वा काणो दातुः प्रेष्योपि वा भवेत् । हीनातिरिक्तगात्रो वा तमप्यपनयेत्पुनः । २४२ ।
ब्राह्मणम्भिक्षुम्वापि भोजनार्थमुपस्थितम् । ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातश्शक्तितः प्रतिपूजयेत् । २४३ ।
सार्ववर्णिकमन्नाद्यं सन्नीया प्लाव्यवारिणा । समुत्सृजेद्भुक्तवतामग्रतो विकिरन्भुवि । २४४ ।
असंस्कृतप्रमीतानां त्यागिनां कुलयोषिताम् । उच्छिष्टं भागधेयं स्याद्दर्भेषु विकिरश्च यः । २४५ ।
उच्छेषणम्भूमिगतमजिह्मस्याशठस्य च । दासवर्गस्य तत्पित्र्ये भागधेयं प्रचक्षते । २४६ । आस-
पिण्डक्रियाकर्म्मद्विजातेः संस्थितस्य तु । अदैवम्भोजयेच्छ्राद्धम्पिण्डमेकन्तु निर्वपेत् । २४७ ।
सह पिण्डक्रियायान्तु कृतायामस्य धर्म्मतः । अनयैवावृता कार्य्यम्पिण्डनिर्वपनं सुतैः । २४८ ।
श्राद्धम्भुक्त्वा य उच्छिष्टं वृषलाय प्रयच्छति । सम्मूढो नरकं याति कालसूत्रमवाक्शिराः । २४९ ।
श्राद्धभुग्वृषलीतल्पन्तदहर्योऽधिगच्छति । तस्याः पुरीषे तन्मासम्पितरस्तस्य शेरते । २५० ।
पृष्ट्वा स्वदितमित्येवं तृप्तानाचामयेत्ततः । आचान्तांश्चानुजानीयादभितो रम्यतामिति । २५१ ।
स्वधास्त्वित्येव तं ब्रूयुर्ब्राह्मणास्तदनन्तरम् । स्वधाकारः पराह्याशीः सर्वेषु पितृकर्म्मसु । २५२ ।

न दाह के योग्य नहीं हैं और मर गए हैं और जो दोष से रहित कुल स्त्रियों को त्याग करने वाले हैं और मर गए हैं उन
ों को यह अन्न मिलता है जो कुश के ऊपर डाला गया है । २४५ । भूमि में जो जूठा अन्न है सो सब दास वर्ग का है परन्तु
 दास वर्ग कुटिलता और वंचकता ये दोनों दोषों से रहित होवे । २४६ । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों के मरण दिन से सपिण्डी
ा तक विश्वे देव के निमित्त ब्राह्मण भोजन न करावे किंतु प्रेत के निमित्त एक ब्राह्मण को भोजन करावे और एक पिण्ड को
 । २४७ । सपिण्डी करणोत्तर अमावास्या की श्राद्ध के विधान से क्षयाह में भी पिण्ड को पुत्र देवे । २४८ । श्राद्ध के अन्न
 भोजन करके जूठा अन्न शूद्र को जो देता है सो मूढ नीचे शिर किए हुए काल सूत्र नाम नरक में जाता है । २४९ । श्राद्धान्न
जन करके उस दिन रात्रि में कोई स्त्री के साथ जो गमन करता है उस का पितर एक मास तक उसी स्त्री के विष्ठा में
न करते हैं । २५० । अच्छे प्रकार से भोजन किया ऐसा पूछ के तृप्त जान के आचमन कराना तदनन्तर जाइए ऐसा बोले
द्ध करने वाला । २५१ । तदनन्तर वे सब ब्राह्मण स्वधास्तु ऐसा बोलैं संपूर्ण पितृ कर्म में स्वधा ऐसा करना बड़ा आशीर्वाद है । २५२ ।

तदनन्तर सब ब्राह्मणों के शेष अन्न को निवेदन करे जैसा वह ब्राह्मण कहैं तैसा करे । २५३ । एको दिष्ट श्राद्ध में तृप्ति प्रश्न के अर्थ स्वदितं ऐसा कहना चाहिए वृद्धि श्राद्ध में सम्पन्न ऐसा कहना चाहिये देवता के निमित्त जो श्राद्ध है उस में रुचितं ऐसा कहना चाहिए । २५४ । अपराह्न काल कुश गोबर आदि से भूमि का शोधन तिल उदारता अन्न आदि का संस्कार पंगति के पवित्र करनहार ब्राह्मण ये सब पार्वण श्राद्ध में सम्पति है । २५५ । मंत्र पूर्वाह्न काल हविष्य भूमि शोधन जो पूर्व कह आये हैं ये सब देव कर्म के सम्पत्ति हैं । २५६ । मुनियों के अन्न दूध सोम लता का रस विकार रहित मांस बिना बनाया लवण सेंधा आदि ये सब स्वभाव से हवि कहाते हैं । २५७ । गोष्ठी श्राद्ध (अर्थात् द्वादश प्रकार के श्राद्ध गणना में गोष्ठ्यांशुद्ध्यर्थमष्टमम् ऐसा विश्वा मित्र ने कहा है) में सुश्रुतं ऐसा कहना चाहिए उन ब्राह्मणों को बिदा करके श्राद्ध करने वाला पवित्र होकर निचिंत दक्षिण दिशा की अकांक्षा करत पितरों से आगे जो बर कहेंगे मांगै । २५८ । हमारे कुल में दाता वेद संतति ये सब बढ़ें श्रद्धा बनी रहै बहुत धन आदि देने की वस्तु होवें । २५९ । इस रीति से पिण्डों को देकर तदनंतर उन पिण्डों को गौ ब्राह्मण बकरा

ततो मुक्तवतान्तेषामन्नशेषन्निवेदयेत् । यथा ब्रूयुस्तथा कुर्य्यादनुज्ञातस्ततो द्विजैः । २५३ ।
पित्र्ये स्वदितमित्येव वाच्यङ्गोष्ठे तु सुश्रुतम् । सम्पन्नमित्यभ्युदये दैवे रुचितमित्यपि । २५४ ।
अपराह्णस्तथादर्भा वास्तुसम्पादनन्तिलाः । सृष्टिर्मृष्टिर्द्विजाश्चाग्र्याः श्राद्धकर्म्मसु सम्पदः । २५५ ।
दर्भाः पवित्रं पूर्वाह्णो हविष्याणि च सर्वशः । पवित्रं यच्च पूर्वोक्तम्विज्ञेया हव्यसम्पदः । २५६ ।
मुन्यन्नानि पयः सोमो मांसं यच्चानुपस्कृतम् । अक्षारलवणञ्चैव प्रकृत्या हविरुच्यते । २५७ ।
विसृज्य ब्राह्मणांस्तांस्तु नियतो वाग्यतः शुचिः । दक्षिणां दिशमाकांक्षन् याचेते मान्वरान्पितॄन् ।
२५८ । दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदास्सन्ततिरेव च । श्रद्धा च नो माव्यगमद्बहुदेयञ्च नोऽस्त्विति । २५९ ।
एवन्निर्वपणं कृत्वा पिण्डांस्तांस्तदनन्तरम् । गां विप्रमजमग्निं वा प्राशयेदप्सु वा क्षिपेत् । २६० ।
पिण्डनिर्वपणं केचित्पुरस्तादेव कुर्वते । वयोभिः खादयन्त्यन्ये प्रक्षिपन्त्यनलेऽप्सुवा । २६१ ।
पतिव्रता धर्म्मपत्नी पितृपूजनतत्परा । मध्यमन्तु ततः पिण्डमद्यात्सम्यक् सुतार्थिनी । २६२ ।
आयुष्मंतं सुतं सूते यशो मेधा समन्वितम् । धनवन्तम्प्रजावन्तं सात्विकन्धार्म्मिकन्तथा । २६३ ।
प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य ज्ञातिप्रायम्प्रकल्पयेत् । ज्ञातिभ्यः सत्कृतं दत्वा बान्धवानपि भोजयेत् । २६४ ।
उच्छेषणन्तु तत्तिष्ठेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः । ततो गृहबलिं कुर्यादिति धर्मो व्यवस्थितः । २६५ ।
हविर्यच्चिररात्राय यच्चानंत्याय कल्प्यते । पितृभ्यो विधिवद्दत्तं तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः । २६६ ।
तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन वा । दत्तेन मासन्तृप्यन्ति विधिवत्पितरो नृणाम् । २६७ ।
द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन्मासान् हारिणेन तु । औरभ्रेणाथ चतुरः शाकुनेनाथ पंच वै । २६८ ।

अग्नि इन सभों में से एक को भोजन करावें अथवा जल में डाल देवें । २६० । कोई आचार्य कहते हैं कि ब्राह्मण भोजन के पीछे पिण्ड दान करना कोई आचार्य ऐसा कहते हैं कि उन पिण्डों को पक्षियों से भोजन कराना कोई आचार्य जल में अथवा अग्नि में डालना ऐसा कहते हैं । २६१ । पति व्रता अपनी स्त्री पितरों की पूजा करने वाली लड़का होने की इच्छा करती पितामह पिण्ड को अच्छे प्रकार से भोजन करे । २६२ । बड़ी आयुष यश बुद्धि संतति सत्वगुण धर्म इन सभों से युक्त पुत्र होवै । २६३ । हाथ को धोके आचमन करके बचे अन्न से जाति को भोजन करावे तदनंतर संबंधवाले को भोजन करावे । २६४ । ब्राह्मणों का जूठ तब तक रहै जब तक ब्राह्मण बिदा न होवें ब्राह्मणों के बिदाई के अनन्तर जूठे स्थान को धोवे तदनंतर गृह बलि करे यह धर्म व्यवस्था के प्राप्त है । २६५ । जो हवि बहुत काल तक तृप्ति को करती है और जो हवि अनंत फल के लिये होती है पितरों को विधि पूर्वक देने से सो सब कहेंगे । २६६ । तिल धान्य यव उरद जल मूल फल इन में से कोई एक वस्तु को शास्त्र की रीति करके देने से १ मास तक पितरों की तृप्ति होती है । २६७ । मछली हरिण भेड़ा पक्षी इन सभों के मांस को देने से क्रम करके २ ३ ४ ५ महीना तक पितरों की तृप्ति होती है । २६८ । * * *

रा चित्र मृग एण (अर्थात् मृग विशेष) रु रु (एभी मृग विशेष है) इन सभों के मांस को देने से क्रम करके ६ ७ ८ ९ महीना
। २६९ । शूकर भैंसा इन दोनों में से कोई एक के मांस को देने से १० मास तक खरहा कछुआ इन दोनों में से कोई एक
मांस को देने से ११ महीना तक । २७० । गौ के दूध से अथवा उसी दूध की जाउरि से १ वर्ष तक वार्ध्रीणस (अर्थात् नदी
दि में जल को पीते हुए जिस बकरा का दोनों कांन जल को छूवे और श्वेत वर्ण हो इंद्रिय जिस की क्षीण हो) की मांस
१२ वर्ष तक । २७१ । कालशाक महाशल्क (अर्थात् मत्स्य विशेष) गैंड़ा लाल बकरा इन सभों में से कोई एक की मांस को
से और मधु से तीनी से अनन्त वर्ष तक । २७२ । वर्षा काल में मघायुक्त त्रयोदशी तिथि में कोई बस्तु को मधु से युक्त
के देवे तो भी अक्षय फल को प्राप्त होता है । २७३ । पितर लोग मनाते हैं कि हमारे कुल में ऐसा पुरुष उत्पन्न होवे कि
द्र कृष्ण त्रयोदशी तिथि में अथवा उसी मास की दूसरी कोई तिथि में पूर्व दिशा में सूर्य की छाया गए हुए काल में (अर्थात्
राह्न काल में) मधु घी से युक्त जाउरि को देवे । २७४ । जो कुछ बस्तु विधि पूर्वक अच्छे प्रकार से श्रद्धा सहित पितरों को
हैं उसका अनंत फल परलोक में होता है । २७५ । कृष्ण पक्ष में दशमी से लेके चतुर्दशी को छोड़ कर अमावास्या तक

षण्मासांश्छागमांसेन पार्षतेन च सप्त वै । अष्टावेणस्य मांसेन रौरवेण नवैव तु । २६९ ।
दसमासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः । शशकूर्म्मयोस्तु मांसे न मासानेकादशैव तु । २७० ।
सम्वत्सरन्तु गव्येन पयसा पायसेन च । वार्द्धीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी । २७१ ।
कालशाकं महाशल्काः खड्गलोहामिषम्मधु । आनंत्यायैव कल्प्यन्ते मुन्यन्नानि च सर्वशः । २७२ ।
यत्किञ्चिन्मधुना मिश्रं प्रदद्यात्तु त्रयोदशीम् । तदप्यक्षयमेव स्याद्वर्षासु च मघासु च । २७३ ।
अपि नः स कुले जायाद्यो नो दद्यात्त्रयोदशीम् । पायसं मधुसर्पिर्भ्यां प्राक् छाये कुञ्जरस्य च । २७४ ।
यद्यद्ददाति विधिवत्सम्यक् श्रद्धा समन्वितः । तत्तत्पितॄणां भवति परत्रानन्तमक्षयम् । २७५ ।
कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्ज्जयित्वा चतुर्द्दशीम् । श्राद्धे प्रशस्तास्तिथयो यथैता न तथेतराः । २७६ ।
युक्षु कुर्वन् दिनर्क्षेषु सर्वान्कामान्समश्नुते । अयुक्षु तु पितॄन्सर्वान्प्रजां प्राप्नोति पुष्कलाम् । २७७ ।
यथा चैवापरः पक्षः पूर्वपक्षाद्विशिष्यते । तथा श्राद्धस्य पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यते । २७८ ।
प्राचीना वीतिना सम्यगपसव्यमतन्द्रिणा । पित्र्यमानिधानात्कार्य्यंविधिवद्दर्भपाणिना । २७९ ।
रात्रौ श्राद्धन्न कुर्वीत राक्षसी कीर्त्तिता हि सा । संध्ययोरुभयोश्चैव सूर्य्ये चैवाचिरोदिते । २८० ।
अनेन विधिना श्राद्धं चिरब्दस्येह निर्वपेत् । हेमन्तग्रीष्मवर्षासु पाञ्चयज्ञिकमन्वहम् । २८१ ।
न पैतृ यज्ञियो होमो लौकिकेऽग्नौ विधीयते । न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताग्नेर्द्विजन्मनः । २८२ ।
यदेव तर्प्पयत्यद्भिः पितॄन्स्नात्वा द्विजोत्तमः । तेनैव कृत्स्नमाप्नोति पितृयज्ञक्रियाफलम् । २८३ ।
वसून्वदन्ति तु पितॄन् रुद्रांश्चैव पितामहान् । प्रपितामहांस्तथाऽदित्यान् श्रुतिरेषा सनातनी । २८४ ।

थि जैसी श्राद्ध में अच्छी है तैसी और नहीं । २७६ । सम तिथि और सम नक्षत्र में श्राद्ध करने से संपूर्ण कामना को पाता है (जैसे
तीया चतुर्थी भरणी रोहिणी में) विषम तिथि और विषम नक्षत्र में श्राद्ध करने से धन विद्या से परिपूर्ण संतति को पाता है
से प्रतिपत् तृतीया अश्विनी कृतिका में) । २७७ जिस प्रकार करके शुक्ल पक्ष से कृष्ण पक्ष प्रशस्त है श्राद्ध में तिसी प्रकार
के पूर्वाह्न काल से अपराह्न काल प्रशस्त है । २७८ । दहिने कंधे जनेऊ को रक्खे हुए आलस को छोड़े हुए कुश को हाथ में
ए हुए पितृ तीर्थ करके शास्त्र की रीति से पितरों के कर्म को जब तक करै । २७९ । रात्रि में श्राद्ध न करना वह राक्षसी
ा कहाती है और दोनों संध्या में और प्रातःकाल तीन मुहूर्त तक इस में भी श्राद्ध न करना । २८० । इस विधि से वर्ष में
ंत ग्रीष्म वर्षा यह तीनों ऋतु में तीन बेर श्राद्ध को करै और पंच महा यज्ञ तो नित्यही करै । २८१ । अग्नि होत्री को पितृ
संबंधी होम लौकिकाग्नि में नहीं होता और अमावास्या बिना श्राद्ध नहीं होती । २८२ । पंचयज्ञ सम्बन्धी श्राद्ध न हो
के तो स्नान करके जो ब्राह्मण जल से तर्पण करता है उसी से संपूर्ण पितृ यज्ञ के फल को पाता है । २८३ । पिता को वसु
हते हैं पितामह को रुद्र कहते हैं प्रपितामह को आदित्य कहते हैं यह नित्य श्रुति है । २८४ ।　　*　　*　　*

ब्राह्मणों के भोजन से बचै जो अन्न उस को भोजन करके रहै अथवा यज्ञ करने से बचै जो अन्न उस को भोजन करके रहै । २८५ । भृगु जी कहते हैं कि हे ऋषि लोगो पंच यज्ञ के विधान को कहा अब ब्राह्मणों की जीविका के विधान को सुनिए । २८६ ॥ * ॥ इति श्री मनुस्मृति भाषा टीकायां कुल्लूक भट्ट व्याख्या ऽनुसारिण्यां श्री बाबू देवीदयाल सिंह कारितायां श्री मत्कम्पनी संस्कृत पाठशालीय धर्म्म शास्त्रि गुलज़ार शर्म्म पण्डित कृतायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ आयुष का चार भाग में पहिला भाग तक गुरु कुल में बास करै दूसरे भाग तक विवाह करके गृह में रहे इस स्थान में यह संदेह हो सकता है कि आयुष का निश्चित काल परिमाण जान नहीं पड़ता चार भाग का पहिला भाग किस प्रकार से जाना जाय कदाचित कहो कि सौ वर्ष के पुरुष होते हैं यह श्रुति में लिखा है तो २५ वर्ष चौथा भाग हुआ तो मनु जी ने छत्तीस वर्ष तक ब्रह्म चर्य करना यह कहा है इस के साथ विरोध पड़ेगा इस लिये जब तक ब्रह्म चर्य हो सके सोई आयुष का चौथा भाग है । १ । जीवों को अद्रोह करके अथवा थोड़ा द्रोह करके जो जीविका है उस से बिना आपत्काल में ब्राह्मण जीवन करै । २ । अनिन्दित कर्म से और शरीर को क्लेश न होने पावे ऐसी रीति से अपने भोजन मात्र के लिये धन का संचय करै । ३ । ऋत अमृत मृत प्रमृत झूट सांच इन सब वृत्तियों से जीवन करै । ४ । उंछशिल को ऋत

विघसाशी भवेन्नित्यन्नित्यम्वामृतभोजनः । विघसो भुक्तशेषन्तु यज्ञशेषन्तथा मृतम् । २८५ ।
एतद्वोऽभिहितं सर्वम्विधानम्पाञ्चयज्ञिकम् । द्विजातिमुख्यवृत्तीनाम्विधानं श्रूयतामिति । २८६ ॥ * ॥

इति मानवे धर्म्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥

चतुर्थमायुषो भागमुषित्वाद्यङ्गुरौ द्विजः । द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत् । १ ।
न द्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः । या वृत्तिस्तां समास्थाय विप्रो जीवेदनापदि । २ ।
यात्रामात्रप्रसिध्यर्थं स्वैः कर्म्मभिरगर्हितैः । अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसञ्चयम् । ३ ।
ऋतामृताभ्याञ्जीवेत्तु मृतेन प्रमृतेन वा । सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्या कदा च न । ४ ।
ऋतमुञ्छशिलं ज्ञेयममृतं स्यादयाचितम् । मृतन्तु याचितम्भैक्ष्यम्प्रमृतङ्कर्षणं स्मृतम् । ५ ।
सत्यानृतन्तु वाणिज्यन्तेन चैवापि जीव्यते । सेवाश्ववृत्तिराख्याता तस्मात्ताम्परिवर्ज्जयेत् । ६ ।
कुशूलधान्यको वा स्यात्कुम्भीधान्यक एव वा । त्र्यैहिको वापि भवेदश्वस्तनिक एव वा । ७ ।
चतुर्णामपि चैतेषां द्विजानां गृहमेधिनाम् । ज्यायान् परः परो ज्ञेयो धर्म्मतो लोकजित्तमः । ८ ।
षट् कर्म्मको भवेन्नित्यन्त्रिभिरन्यः प्रवर्त्तते । द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसत्रेण जीवति । ९ ।
वर्त्तयंश्च शिलोञ्छाभ्यामग्निहोत्रपरायणः । इष्टीः पार्वायनान्तीयः केवला निर्वपेत्सदा । १० ।
न लोकवृत्तं वर्त्तेत वृत्तिहेतोः कथञ्चन । अजिह्मामशठां शुद्धां जीवेत् ब्राह्मणजीविकाम् । ११ ।
सन्तोषम्परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् । सन्तोषमूलं हि सुखं दुःखमूलम्विपर्ज्जयः । १२ ।

कहते हैं बिना मांगे मिले उस को अमृत कहते हैं मांगे से मिलै उस को मृत कहते हैं खेती को प्रमृत कहते हैं । ५ । बनिज के कर्म को झूट साच कहते हैं सेवा को कुत्ते की वृति कहते हैं इस लिये कुत्ते की वृत्ति को छोड़ देवे । ६ । नित्य नैमित्तिक धर्म कृत्य पोष्यवर्ग सहित के तीन वर्ष तक भोजन हो सके इतने अन्न का संचय करै अथवा पूर्व कथित को एक वर्ष तक भोजन हो सके इतनें अन्न का संचय करै अथवा सब को एक दिन के भोजन योग्य अन्न का संचय करै । ७ । चार प्रकार के ब्राह्मण कहे हैं इस में जो जो पर कहे हैं सो सो पूर्व पूर्व से बड़े हैं धर्म्म से लोक को जीतने वाले हैं । ८ । इन चारों में पहिले छ कर्म (अर्थात् यज्ञ कराना पढ़ाना प्रतिग्रह ऋत आदि जो कह आए हैं) से जीवन करै दूसरा तीन कर्म (अर्थात् यज्ञ कराना पढ़ाना प्रतिग्रह से जीवन करै तीसरा दो कर्म (यज्ञ कराना पढ़ाना) से जीवन करै चौथा एक कर्म (अर्थात् पढ़ाना) से जीवन करै । ९ । शिल उंछ इन दोनों से जीवन करै अग्नि होत्र को करै दर्श (अर्थात् अमावास्या) पूर्णमासी आग्रयण (अर्थात् नवीन अन्न जब होवे इन तीनों काल में इष्टि (अर्थात् यज्ञ) को केवल करै । १० । जीविका के निमित्त असंत् प्रिय कथा विचित्र हंसी आदि को न करै झूट गुण कह के और दंभ से जो जीविका है उस को छोड़ कर ब्राह्मणों की शुद्ध जीविका से जीवन करै । ११ । परम संतोष को पाके सुखार्थी संयम (अर्थात् इन्द्रिय निग्रह को करै क्योंकि सुख का जड़ संतोष है दुःख का जड़ असंतोष है । १२ ।

पीछे जीविका कह आए हैं उस में से कोई एक जीविका से जीवन करत वेद का पठन समाप्त करके स्नान के निमित्त
र्थात् समावर्त्तन कर्म के निमित्त) स्यम (अर्थात् इंद्रियों का नियह) को करै और स्वर्ग यश आयुष इन सभों के हित करन
र जो व्रत आगे कहेंगे उन को धारण करै। १३। आलस को छोड़ कर वेद में कथित जो अपना कर्म है उस को करै यथा
क्ति उस कर्म को करने से परमगति को पाता है। १४। गाना बजाना यज्ञ कराने के योग्य जो नहीं हैं उस को यज्ञ कराना
। सब कर्मों से जीवन न कर पतित आदि से भी धन का संग्रह न करै। १५। इच्छा से रूप रस गंध स्पर्श शब्द इन सभों में
क्त न होवे इन सभों में अति प्रसक्ति को मन से निर्वृत्ति करै। १६। वेद पढ़ने का विरोधी जो अर्थ (कहिए धन) उस का
ाग करना जिस किसी प्रकार से वेद को पढ़ता रहे इसी से कृत कृत्य (अर्थात् करने के योग्य जो वस्तु सो) हो जाता है।
। वय कर्म अर्थ श्रुत (अर्थात् सुना हुआ) देश वेष वाणी बुद्धि इन सभों के सरूप बस्तु को आचरण करत संते इस संसार
विचरै। १८। बुद्धि को बढ़ाने वाला जो शास्त्र है (अर्थात् व्याकरण मीमांसा स्मृति पुराण न्याय आदि) धन को देने वाला
शास्त्र है (अर्थात् शुक्राचार्य का और वृहस्पति का बनाया) हित करने वाला जो शास्त्र है (अर्थात् वैद्यक और ज्योतिष)
सब को देखना वेदार्थ को जताने वाला जो ग्रंथ है उस को भी नित्य ही देखना। १९। जैसा जैसा शास्त्र का अभ्यास

अतोन्यतमयावृत्त्या जीवेस्तु स्नातको द्विजः। स्वर्गायुष्ययशस्यानि व्रतानीमानि धारयेत्। १३।
वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः। तद्धि कुर्वन् यथाशक्ति प्राप्नोति परमां गतिम्। १४।
नेहेतार्थान्प्रसङ्गेन न विरुद्धेन कर्मणा। न विद्यमानेष्वर्थेषु नार्त्यामपि यतस्ततः। १५।
इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत कामतः। अतिप्रसक्तिञ्चैतेषां मनसा सन्निवर्त्तयेत्। १६।
सर्वान् परित्यजेदर्थान् स्वाध्यायस्य विरोधिनः। यथा तथा ध्यापयंस्तु सा ह्यस्य कृतकृत्यता। १७।
वयसः कर्म्मणोऽर्थस्य श्रुतस्याऽभिजनस्य च। वेषावाग्बुद्धिसारूप्यमाचरन्विचरेदिह। १८।
बुद्धिवृद्धिकरण्याशु धन्यानि च हितानि च। नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान्। १९।
यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति। तथा तथा विजानाति विज्ञानञ्चास्य रोचते। २०।
ऋषियज्ञन्देवयज्ञम्भूतयज्ञञ्च सर्वदा। नृयज्ञम्पितृयज्ञञ्च यथा शक्ति न हापयेत्। २१।
एतानेके महायज्ञान् यज्ञशास्त्रविदोजनाः। अनीहमानाः सततमिन्द्रियेष्वेव जुह्वति। २२।
वाच्येके जुह्वति प्राणं प्राणे वाचञ्च सर्वदा। वाचि प्राणे च पश्यन्तो यज्ञनिर्वृत्तिमक्षयाम्। २३।
ज्ञानेनैवापरे विप्रा यजन्त्येतैर्म्मखैस्सदा। ज्ञानमूलं क्रियामेषां पश्यन्तो ज्ञानचक्षुषा। २४।
अग्निहोत्रञ्च जुहुयादाद्यन्ते द्युनिशोस्सदा। दर्शेन चार्द्धमासान्ते पौर्णमासेन चैव हि। २५।
सस्यान्ते नवसस्येष्ट्या तथर्त्वंते द्विजोऽध्वरैः। पशुना त्वयनस्यादौ समान्ते सौमिकैर्म्मखैः। २६।

ता है पुरुष तैसा तैसा विशेष करके जानता है और ज्ञान भी रुचता है उस पुरुष को। २०। ऋषि यज्ञ देव यज्ञ भूत यज्ञ मनुष्य
पितृ यज्ञ इन सब यज्ञों को यथा शक्ति न छोड़े। २१। यज्ञ शास्त्र के जानन हार जो पुरुष हैं और इन यज्ञों को करने की
च्छा नहीं करते हैं सो नित्य ही इंद्रियों में होम करते हैं। २२। वाणी और प्राण इन दोनों में अक्षय यज्ञ सिद्धि को देखते
ए एक पुरुष प्राण को वाणी में होम (अर्थात् संपादन) करते हैं और वाणी को प्राण में होम (अर्थात् संपादन) करते हैं।
। संपूर्ण क्रिया का जड़ ज्ञान है ऐसा ज्ञान रूपी नेत्र से देखते हुए एक पुरुष ज्ञान ही करके इन यज्ञों से यजन करते हैं। २४।
र्योदय में होम करना इस पक्ष में दिन के आदि (अर्थात् प्रातःकाल) में और रात्रि के आदि (अर्थात् सायंकाल) में होम
रना सूर्य के अनुदय में होम करना इस पक्ष में दिन के अंत (अर्थात् सायंकाल) में रात्रि के अंत (अर्थात् प्रातः काल) में
म करना अथवा सूर्य के उदय में होम करना इस पक्ष में दिन के आदि में दिन के अंत में होम करना सूर्य के अनुदय में
म करना इस पक्ष में रात्रि के आदि में रात्रि के अंत में होम करना अमावास्या में और पूर्णमासी में होम करना। २५।
वीन अन्न के उत्पत्ति समय में नवसस्य इष्टि करके होम करना ऋतु के अंत में चातुर्मास्य यज्ञ करके होम करना दोनों अयन
पशु करके होम करै वर्ष के अंत में अग्निष्टोम आदि यज्ञ को करै॥ २६॥ * * * * *

बड़ी आयुष का इच्छा करने वाला जो अग्नि होत्री ब्राह्मण है सो नवीन अन्न से यज्ञ को बिना किए और पशु से यज्ञ को बिना किए हुए नवान्न को और मांस को न भोजन करें। २७। नवीन अन्न से और पशु से जो अग्नि तृप्त नहीं हुई सो नवान्न और मांस के भोजन करने वाले के प्राणों को भोजन करने की इच्छा करती है। २८। आसन भोजन शय्या जल मूल फल इन सभों में से कोई एक वस्तु से यथा शक्ति बिना पूजा के पाए हुए अतिथि गृहस्थ के गृह में वास न करने पावै। २९। पाखण्डी (अर्थात् वेद विरुद्ध व्रत और चिह्न के धारण करने वाले) निषिद्ध जीविका से जीने वाले वैड़ाल व्रतिक जिस का लक्षण आगे कहेंगे वेद में जिस की श्रद्धा नहीं है विरोधी तर्क से व्यवहार करने वाले ये सब अतिथि काल में प्राप्त हों तो वाणी मात्र से भी इन्हों की पूजा न करै परंतु भोजन को तो देवै। ३०। वेद में पक्का और व्रत में पक्का अथवा दोनों में पक्का जो गृहस्थ है उस का पूजा हव्य और कव्य से करै विपरीत को वर्जन करै ३१। जो पाक को नहीं करते हैं ब्रह्मचारी पाखण्डी सन्यासी आदि इन को शक्ति पूर्वक अन्न को गृहस्थ देवै अपने कुटुंबों को भोजन देके जो बचे अन्न जल आदि उस से वृक्ष आदि जितने प्राणी हैं तिन सब को जल देवै। ३२। स्नातक जो गृहस्थ है सो क्षुधा करके दुःखित हो तो राजा यजमान विद्यार्थी इन सभों से धन की इच्छा

नान्विष्ट्वा नवसस्येष्ट्या पशुना चाग्निमान्द्विजः। नवान्नमद्यान्मांसम्वा दीर्घमायुर्जिजीविषुः। २७।
नवेनानर्चिता ह्यस्य पशुहव्येन चाग्नयः। प्राणानेवात्तुमिच्छन्ति नवान्नामिषगर्द्धिनः। २८।
आसनाशनशय्याभिरद्भिर्मूलफलेन वा। न कस्य चिद्वसेद्गेहे शक्तितोऽनर्चितोऽतिथिः। २९।
पाखण्डिनो विकर्मस्थान्वैडालव्रतिकान् शठान्। हैतुकान्वकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्। ३०।
वेदविद्याव्रतस्नातान् श्रोत्रियान् गृहमेधिनः। पूजयेद्धव्यकव्येन विपरीतांश्च वर्ज्जयेत्। ३१।
शक्तितो पचमानेभ्यो दातव्यङ्गृहमेधिना। सम्विभागश्च भूतेभ्यो कर्त्तव्योऽनुपरोधतः। ३२।
राजतो धनमन्विच्छेत्संसीदन्स्नातकः क्षुधा। याज्यांतेवासिनोर्वापि न त्वन्यत इति स्थितिः। ३३।
न सीदेत्स्नातको विप्रः क्षुधाशक्तः कथञ्चन। न जीर्णमलवद्वासा भवेच्च विभवे सति। ३४।
क्लृप्तकेशनखश्मश्रुर्दान्तः शुक्लाम्बरः शुचिः। स्वाध्याये चैव युक्तः स्यान्नित्यमात्महितेषु च। ३५।
वैणवीन्धारयेद्यष्टिं सोदकञ्च कमण्डलुम्। यज्ञोपवीतम्वेदञ्च शुभे रौक्मे च कुण्डले। ३६।
नेक्षेतोद्यन्तमादित्यन्नास्तं यान्तङ्कदा न च। नोपसृष्टन्न वारिस्थन्न मध्यन्नभसोगतम्। ३७।
न लंघयेद्वत्सतन्त्रीं न प्रधावेच्च वर्षति। न चोदके निरीक्षेत स्वं रूपमितिधारणा। ३८।
मृदङ्गान्देवतम्विप्रं घृतम्मधु चतुष्पथम्। प्रदक्षिणानि कुर्वीत प्रज्ञातांश्च वनस्पतीन्। ३९।
नोपगच्छेत्प्रमत्तोऽपि स्त्रियमार्त्तवदर्शने। समानशयने चैव न शयीत तया सह। ४०।
रजसाऽभिप्लुतान्नारीन्नरस्य ह्युपगच्छतः। प्रज्ञा तेजो बलञ्चक्षुरायुश्चैव प्रक्षीयते। ४१।
ताम्विवर्जयतस्तस्य रजसा समभिप्लुताम्। प्रज्ञा तेजो बलञ्चक्षुरायुश्चैव प्रवर्द्धते। ४२। * *

करै और से नहीं यह शास्त्र की मर्यादा है। ३३। समर्थ जो स्नातक गृहस्थ है सो क्षुधा करके किसी प्रकार से दुःखित न होवै विभव रहत संते जीर्ण और अस्वच्छ वस्त्र से न रहै। ३४। वेदाभ्यास में और अपने हित कर्म में नित्य युक्त रहै और केश नख दाढ़ी इन को छोटे किए रहै श्वेत वस्त्र पहिरे रहै पवित्रता से रहै इन्द्रियों का निग्रह किये रहै। ३५। बांस की लाठी जल सहित कमण्डलु यज्ञोपवीत सुंदर सुवर्ण के दो कुण्डल वेद इन सब को धारण करै। ३६। उदयकाल अस्तकाल मध्याह्नकाल में सूर्य को न देखै राहु करिके ग्रस्त हो तो भी न देखै जल में न देखै। ३७। बछरू के बांधने की रसरी को लंघन न करै वृष्टि होत संते न धावे जल में अपने रूप को न देखै यह शास्त्र में निश्चय है। ३८। कहीं जानें लगे और संमुख उखाड़ी माटी गौ देवता ब्राह्मण घृत मधु चौरहा जाना हुआ वृक्ष ये सब मिलें तो इन्हों के प्रदक्षिण करते हुए गमन करै। ३९। अति मत्त हो तो भी रजस्वला स्त्री में गमन न करै समान शय्या पर स्त्री के साथ शयन न करै। ४०। रजस्वला स्त्री में जो गमन करता है उसकी बुद्धि तेज बल नेत्र आयुष ये सब हीन हो जाते हैं। ४१। रजस्वला स्त्री में जो गमन नहीं करता है उसकी बुद्धि तेज बल नेत्र आयुष ये सब बढ़ते हैं। ४२। * * * * * * *

के साथ भोजन न करना और स्त्री भोजन करती हो छींकती हो जंभाती हो सुख से बैठी हो तो उस को न देखना । ४३ । खों में अंजन को लगाती हो अंगों में उबटन को लगाती हो नंगी हो बिआती हो तो उस को न देखे जिस ब्राह्मण को तेज कामना है सो । ४४ । एक वस्त्र को धारण किए हुए भोजन को न करै नंगा हुआ स्नान को न करै पैंड़ा राखी गौ का स्थान इन में न मूतै । ४५ । जोता खेत जल अग्नि के अर्थ किया जो ईंट का समूह पर्वत पुराना देवतों का गृह छोटे छोटे कीड़ों से ढेर करी जो माटी इन सभों में न मूतै और न विष्ठा करे । ४६ । जीव सहित जो गड़हा है उस में और गमन करते हुए खड़े हुए नदी का तीर पर्वत का मस्तक (अर्थात् ऊंचा शृङ्ग) इस में भी उन दोनों कर्मों को न करै । ४७ । अग्नि सूर्य जल ब्राह्मण गौ वायु इन सभों को देखते हुए उन दोनों कर्मों को न करे । ४८ । सूखा पत्ता तृण काठ ढेला आदि से भूमि को ढांप और शिर को बांधि के सब अंगों को ढांप के मौन होके मूतै और विष्ठा करै । ४९ । दिन में प्रातःकाल सायंकाल में उत्तर होकर और रात्रि में दक्षिण मुख हो कर मूत्र और विष्ठा का त्याग करै । ५० । छाया अंधकार प्राण बाधा भय इन सभों में

नाश्नीयाद्भार्य्यया सार्द्धं नैनामीक्षेत चाश्नतीम् । क्षुपतीं जृम्भमाणाम्वा न चासीनां यथा सुखम् । ४३ ।
नाञ्जयन्तीं स्वके नेत्रे न चाभ्यक्तामनावृताम् । न पश्येत्प्रसवन्तीञ्च तेजस्कामो द्विजोत्तमः । ४४ ।
नान्नमद्यादेकवासा न नग्नः स्नानमाचरेत् । न मूत्रम्पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोव्रजे । ४५ ।
न फालकृष्टे न जले न चित्यां न च पर्वते । न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदा च न । ४६ ।
न ससत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन्नापि च स्थितः । न नदीतीरमासाद्य न च पर्वतमस्तके । ४७ ।
वाय्वग्निविप्रमादित्यमपः पश्यंस्तथैव गाम् । न कदा च न कुर्वीत विण्मूत्रस्य विसर्ज्जनम् । ४८ ।
तिरस्कृत्योच्चरेत्काष्ठलोष्ठपत्रतृणादिना । नियम्य प्रयतो वाचं संवीताङ्गोऽवगुण्ठितः । ४९ ।
मूत्रोच्चारसमुत्सर्गन्दिवा कुर्य्यादुदङ्मुखः । दक्षिणाऽभिमुखो रात्रौ सन्ध्ययोश्च यथा दिवा । ५० ।
छायायामन्धकारे वा रात्रावहनि वा द्विजः । यथा सुखमुखः कुर्य्यात्प्राणबाधाभयेषु च । ५१ ।
प्रत्यग्निम्प्रतिसूर्य्यञ्च प्रतिसोमोदकद्विजान् । प्रतिगाम्प्रतिवातञ्च प्रज्ञा नश्यति मेहतः । ५२ ।
नाग्निम्मुखे नोपधमेन्नग्नान्नेक्षेत च स्त्रियम् । नामेध्यं प्रक्षिपेदग्नौ न च पादौ प्रतापयेत् । ५३ ।
अधस्तान्नोपदध्याच्च न चैनमभिलंघयेत् । न चैनम्पादतः कुर्य्यान्नप्राणाबाधमाचरेत् । ५४ ।
नाश्नीयात्सन्धिवेलायां न गच्छेन्नापि संविशेत् । न चैव प्रलिखेद्भूमिन्नात्मनोपहरेत् स्रजम् । ५५ ।
नाप्सुमूत्रम्पुरीषम्वा ष्ठीवनम्वा समुत्सृजेत् । अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितम्वा विषाणि वा । ५६ ।
नैकः स्वपेच्छून्यगेहे शयानन्न प्रबोधयेत् । नोदक्ययाऽभिभाषेत यज्ञङ्गच्छेन्न चावृतः । ५७ ।
अग्न्यागारे गवाङ्गोष्ठे ब्राह्मणानाञ्च सन्निधौ । स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणम्पाणिमुद्धरेत् । ५८ ।

न को अथवा दिन को जिस ओर मुख करने से सुख होवे उस ओर मुख कर मूत्र और विष्ठा का त्याग करै । ५१ । अग्नि सोम जल ब्राह्मण गौ वायु इन सब को देखते हुए मूत्र और विष्ठा का त्याग करने से बुद्धि का नाश होता है । ५२ । न को मुख से न फूंकना अग्नि में अपवित्र बस्तु को न डालना और पांव को न तपाना नंगी स्त्री को न देखना । ५३ । ङ के नीचे अग्नि को न रखना अग्नि को लंघन न करना पांव से न छूना प्राण बाधा न करना । ५४ । सायं काल प्रातः न में भोजन गमन सूतना इन तीनों कर्मों को न करना भूमि को रेखा करके न लिखना धारण किया जो फूल की माला है को अपने शरीर से आप न निकालना किंतु दूसरा कोई निकाले । ५५ । जल में मूत्र विष्ठा खंखार अपवित्र से लिपी हुई वस्तु रुधिर विष इन सब को न डाले । ५६ । गृह में अकेला न सोवे विद्या आदि करके अपने से बड़ा हो और सूता हो उसको न जगावे रजस्वला स्त्री से भाषण न करै बिना बुलाए यज्ञ में न जाय दर्शन के निमित्त जाय तो जाय । ५७ । अग्नि गृह गौ का स्थान ब्राह्मणों के समीप वेद का पढ़ा भोजन का करना इन सभों में दक्षिण हस्त को निकाले । ५८ । *

दूध को वा जल को पीती गौ हो तो उस को निवारण न करै और न किसी से कहै आकाश में इंद्र धनुष को देख कर किसी को न देखावे । ५९ । धर्म से रहित और बहुत व्याधि से युक्त जो ग्राम है उस में बास न करै अकेला मार्ग में न चले बहुत काल तक पर्वत में न बास करै । ६० । शूद्र के राज्य में और अधार्मिक जन पाखण्डी गण चाण्डालादि का उपद्रव इन्हों में से कोई एक कर के संयुक्त जो ग्राम आदि हैं उस में बास न करै । ६१ । तेल जिस का निकाला गया (अर्थात् पीना आदि) उस को न भोजन करै अति भोजन को न करै अति प्रातःकाल में अति सायं काल में भोजन न करै प्रातःकाल में अति भोजन किए हो तो सायं काल में भोजन न करै । ६२ । इस लोक में और परलोक में अर्थ से रहित जो व्यापार उस को न करै अंजली से जल को न पीना जंघा पर लड्डु आदि को रख करके उस को भोजन न करै बिना प्रयोजन क्या यह हुआ ... न करै । ६३ । नाचना गाना बजाना ताड़ी ठोंकना कट कटाना प्रेम रहित गदहा आदि ... । कास के पात्र में पांव को न धोवे फूटे पात्र में और जिस पात्र में मन को प्रसन्नता ... ा छाता जनेऊ गहना पुष्प माला कमण्डलु वस्त्र इन सब को किसी नें धारण किया हो ... रै



न वारयेद्गां धयन्तीं न चाचक्षीतकस्य चित् । न दिवीन्द्रायुधन्दृष्ट्वा ...
नाधर्म्मिके वसेद्ग्रामे न व्याधिबहुले भृशम् । नैकः प्रपद्येताध्वान ...
न शूद्रराज्ये निवसेन्नाधर्म्मिकजनावृते । न पाखण्डिगणाक्रान्ते ...
न भुञ्जीतोद्धृतस्नेहन्नातिसौहित्यमाचरेत् । नातिप्रगे नातिसायन्न ...
न कुर्वीत वृथा चेष्टां न वार्य्यञ्जलिना पिबेत् । नोत्सङ्गे भक्षयेद्भक्ष्यान्न ...
न नृत्येदथवा गायेन्न वादित्राणि वादयेत् । नास्फोटयेन्न चक्ष्वेडेन्न ...
न पादौ धावयेत्कांस्ये कदाचिदपि भाजने । न भिन्नभाण्डे भुञ्जीत ...
उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत् । उपवीतमलङ्कारं स्रजङ्करकं ...
नैर्व्रजेद्दुर्य्यैर्न च क्षुद्व्याधिपीडितैः । न भिन्नशृङ्गाक्षिखुरैर्न वालधिविरू... । ६७ । विनीतैस्तु
व्रजेन्नित्यमाशुगैर्लक्षणान्वितैः । वर्णरूपोपसम्पन्नैः प्रतोदेनातुदन्भृशम् । ६८ । बालातपः प्रेत-
धूमो वर्ज्यम्भिन्नन्तथासनम् । न छिन्द्यान्नखलोमानि दन्तैर्नोत्पाटयेन्नखान् । ६९ । न मृल्लो-
ष्टञ्च मृद्नीयान्न छिन्द्यात्करजैस्तृणम् । न कर्म्म निष्फलं कुर्य्यान्नायत्यामसुखोदयम् । ७० ।
लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादि च यो नरः । स विनाशं व्रजत्याशु सूचको शुचि रेव च । ७१ ।
न विगर्ह्य कथाङ्कुर्य्याद्बहिर्माल्यन्न धारयेत् । गवाञ्च यानम्पृष्ठेन सर्वथैव विगर्हितम् । ७२ ।
अद्वारेण च नातीयाद्ग्रामम्वा वेश्म वा वृतम् । रात्रौ च वृक्षमूलानि दूरतः परिवर्जयेत् । ७३ ।

। ६६ । बे सिखाया हुआ क्षुधा और व्याधि से पीड़ित टूट गया है जिस का सींग आंख खुर पोंछि ऐसे वृषभ से युक्त रथ पर चढ़के गमन न करै । ६७ । सिखाए हुए शीघ्र चलने वाले लक्षणों से युक्त वर्ण रूप से सम्पन्न ऐसे वृषभ से युक्त रथ पर चढ़के नित्य ही गमन करै और उस वृषभ को पैना से न मारै । ६८ । प्रातःकाल तीन मुहूर्त तक सूर्य का घाम और किसी के मत में कन्या राशिस्थित सूर्य का घाम जलता हुआ मुरदा का धूंआं टूटा आसन इन सब को बर्जन करे नख और लोम को नहीं छेदन करै दांतों से नख को न उखाड़े । ६९ । माटी और ढेला को मर्दन न करै नख से तृण को न छेदन करै निष्फल कर्म को न करै जिस कर्म के करने से सुख होने वाला नहीं है उस कर्म को न करै । ७० । ढेला मर्दन करने वाला तृण छेदने वाला नख को दांत से उखाड़ने वाला चुगुलई करने वाला अपवित्रता से रहने वाला शीघ्र नाश को पाता है । ७१ । लौकिक वार्ता में अथवा शास्त्रीय वार्ता में साभिनिवेश करके (अर्थात् चित्त लगाइ के) (अर्थात् आग्रह करके) कथा न करना केश में माला को धारण न करना बैल के पीठ पर बैठ के गमन न करना यह सर्वथा वर्जनीय है । ७२ । ग्राम अथवा गृह यह दोनों आवृत हो (अर्थात् घेरा हो) तो द्वार को छोड़ कर सांघि के उस के भीतर न जाना रात्रि के समय वृक्ष के मूल में न रहे । ७३ । * *

सा कभी न खेलै अपने जूता को अपने हाथ से एक स्थान से दूसरे स्थान में न लेइ जाना किंतु पांव से लेजाय शय्या पर बैठ के और बहुत अन्न को हाथ में रखके थोड़ा थोड़ा निकाल के आसन के ऊपर भोजन पात्र को रखके भोजन न करै । ७४ । तिल से मिली हुई बस्तु को रात्रि में न भोजन करै नंगा होके न सोवे जूठा हुआ कहीं न जाय । ७५ । गीला पांव करके भोजन करना और गीला पांव करके सोंना नहीं और जो देश नेत्र से देखा नहीं गया है । ७६ । और मरण आदि का संदेह जिस स्थान में है उस देश में कभी न जाना अपने मूत्र को और विष्ठा को न देखना नदी को बाहु से न तैरना । ७७ । बहुत दिन जीनें की इच्छा करने वाला जो पुरुष है सो केश भस्म हाड़ फूटा टूटा माटी के पात्र का टुकड़ा बनउर भूसा इन सभों पर खड़ा न रहै । ७८ । दूसरे ग्राम के रहने वाले पतित चाण्डाल पुल्कश (अर्थात् निषाद से शूद्रा में उत्पन्न) धन आदि से गर्वित मूर्ख धोबी आदि अत्यावसायी (अर्थात् चाण्डाल से निषाद स्त्री में उत्पन्न) इन्हों के साथ एक वृक्ष की छाया में न रहै । ७९ । शूद्र को मति न देना दास से भिन्न जो शूद्र है उस को जूठा अन्न न देना जिस हवि को एक देश का होम हुआ और बाकी जो रह गया है उस को शूद्र को न देना धर्म और व्रत इस का उपदेश शूद्र को न करना । ८० । जो पुरुष शूद्र

नाक्षैः क्रीडेत्कदाचित्तु स्वयन्नोपानहौ हरेत् । शयनस्थो न भुञ्जीत न पाणिस्थन्न चासने । ७४ ।
सर्वञ्च तिलसम्बद्धन्नाद्यादस्तमिते रवौ । न च नग्नः शयीतेह न चोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत् । ७५ ।
आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु सम्विशेत् । आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात् । ७६ ।
अचक्षुर्विषयन्दुर्गं न प्रपद्येत कर्हिचित् । न विण्मूत्रमुदीक्षेत न बाहुभ्यां नदीन्तरेत् । ७७ ।
अधितिष्ठेन्न केशांस्तु न भस्मास्थि कपालिकाः । न कार्पासास्थि न तुषान्दीर्घमायुर्जिजीविषुः । ७८ ।
न सम्वसेच्च पतितैर्न्न चाण्डालैर्न्न पुल्कशैः । न मूर्खैर्न्नावलिप्तैश्च नान्त्यैर्न्नान्त्यावसायिभिः । ७९ ।
न शूद्राय मतिन्दद्यान्नोच्छिष्टन्न हविष्कृतम् । न चास्योपदिशेद्धर्म्मन्नचास्य व्रतमादिशेत् । ८० ।
योह्यस्य धर्म्ममाचष्टे यश्चैवादिशति व्रतम् । सोसम्वृतन्नाम तमः सह तेनैव मज्जति । ८१ ।
न संहताभ्याम्पाणिभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः । नस्पृशेच्चैतदुच्छिष्टो न च स्नायाद्विना ततः । ८२ ।
केशग्रहान्प्रहारांश्च शिरस्येतान्विवर्ज्जयेत् । शिरः स्नातश्च तैलेन नाङ्गङ्किञ्चिदपि स्पृशेत् । ८३ ।
न राज्ञः प्रतिगृह्णीयादराजन्यप्रसूतितः । सूनाचक्रध्वजवतां वेशेनैव च जीवताम् । ८४ ।
दश सूना समञ्चक्रन्दश चक्रसमो ध्वजः । दश ध्वजसमो वेशो दश वेशसमो नृपः । ८५ ।
दश सूना सहस्राणि यो वाहयति शौनिकः । तेन तुल्यः स्मृतो राजा घोरस्तस्य प्रतिग्रहः । ८६ ।
यो राज्ञः प्रतिगृह्णीयाल्लुब्धस्योच्छास्त्र वर्त्तिनः । स पर्य्यायेण यातीमान्नरकानेकविंशतिम् । ८७ ।
तामिस्रमन्धतामिस्रम्महारौरवरौरवौ । नरकङ्कालसूत्रञ्च महानरकमेव च । ८८ ।
सञ्जीवनम्महावीचिन्तपनं सम्प्रतापनम् । संहातञ्च स काकोलङ्कुड्मलम्प्रतिमूर्त्तिकम् । ८९ ।

को धर्म और व्रत का उपदेश करता है सो उस शूद्र सहित असंवृत नाम नरक में जाता है । ८१ । मिले हुए दोनों हाथों से अपने शिर को न खुजलाना जूठा हुआ पुरुष अपने शिर को न छूवे शिर को छोड़के (अर्थात् गले तक) स्नान को न करै । ८२ । आप से अपने शिर को और केश को प्रहार न करै और दूसरे को भी शिर में तेल लगाके स्नान करै फेर दूसरे अंग में तेल को न लगावे । ८३ । जो राजा क्षत्रिय नहीं है उस से प्रतिग्रह को न करै कसाई तेली कलार इन से प्रतिग्रह को न करै । ८४ । वेश्या की जीविका से जीने वाले जो पुरुष हैं किम्वा स्त्री है उस से प्रतिग्रह को न लेवे । ८५ । दश कसाई के समान तेली है दश तेली के समान कलार है दश कलार के समान वेश्या है दश वेश्या के समान राजा है । ८६ । जो कसाई अपने लिये दश हजार जीव को मारता है उस के समान राजा है इस लिये उस का प्रतिग्रह घोर है । ८७ । लोभी और शास्त्र का अति क्रम करने वाला जो राजा है उस से जो पुरुष प्रतिग्रह करता है सो क्रम से आगे जो एक्कीस प्रकार नरक कहेंगे उस में जाता है । ८८ । तामिस्र अन्धतामिस्र महा रौरव रौरव नरक काल सूत्र महा नरक संजीवन महा वीचि तपन प्रतापन संहात काकोल कुड्मल प्रति मूर्तिक । ८९ ।

लोह शंकु ऋजीष शाल्मली नदी असि पत्र वन लोह दारक । ९० । इस बात को जानने वाले और परलोक में कल्याण की इच्छा करने वाले वेद के पढ़ने वाले जो ब्राह्मण हैं सो राजा से प्रतिग्रह को नहीं करते । ९१ । प्रहर रात्रि रहते उठ के धर्म और अर्थ इन दोनों का चिंतन करै धर्म अर्थ का जड़ जो शरीर क्लेश है उस को भी चिन्तन करै वेद का जो तत्व अर्थ है ब्रह्म कर्म उस को चिंतन करै । ९२ । उठ करके आवश्यक कर्म्मों को करके निर्चित होके शौच करना अपने काल में प्रातः काल सायंकाल की संध्या में बहुत काल तक जप करता रहै । ९३ । बड़ी संध्या करने से ऋषि लोगों ने बड़ी आयुष को पाया और बुद्धि यश कीर्त्ति ब्रह्म तेज इन सब को पाया । ९४ । विधि से श्रावणी अथवा भाद्र पदी में उपाकरण कर्म करके उद्योग को प्राप्त होकर साढ़े चार मास तक वेद को पढ़ै । ९५ । साढ़े चार मास के उपरान्त पुष्य नक्षत्र में ग्राम से बाहर जा के छन्द का उत्सर्ग (अर्थात् त्याग) करै जो श्रावणी में उपाकरण किए हो सो और जो भाद्र पदी में उपाकरण किए हैं सो माघ शुक्ल प्रतिपद में पूर्वाह्न काल (अर्थात् प्रातःकाल से मध्याह्न तक) में उत्सर्जन करै । ९६ । इस रीति से ग्राम के बाहर यथा शास्त्र उत्सर्ग करके पक्षिणी- रात्रि (अर्थात् उत्सर्ग का दिन और आने वाला दिन यह दोनों पक्ष की नाईं हैं जिस रात्रि का ऐसी जो बीच

लोहशङ्कुमृजीषञ्च पन्थानं शाल्मलीन्नदीम् । असिपत्रवनञ्चैव लोहदारकमेव च । ९० ।
एतद्विदन्तो विद्वांसो ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः । न राज्ञः प्रतिगृह्णन्ति प्रेत्य श्रेयोभिकांक्षिणः । ९१ ।
ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्म्मार्थौ चानुचिन्तयेत् । कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्वार्थमेव च । ९२ ।
उत्थायावश्यकं कृत्वा कृतशौचः समाहितः । पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत्स्वकाले चापराञ्चिरम् । ९३ ।
ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः । प्रज्ञां यशश्च कीर्त्तिञ्च ब्रह्मवर्चसमेव च । ९४ ।
श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वाप्युपाकृत्य यथा विधि । युक्तश्छन्दांस्यधीयीत मासान्विप्रोऽर्द्धपञ्चमान् । ९५ ।
पुष्ये तु छन्दसां कुर्याद्बहिरुत्सर्जनं द्विजः । माघशुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्णे प्रथमे ऽहनि । ९६ ।
यथा शास्त्रन्तु कृत्वैवमुत्सर्गं छंदसां बहिः । विरमेत्पक्षिणीं रात्रिन्तदेवैकमहर्निशम् । ९७ ।
अत ऊर्द्ध्वं तु छन्दांसि शुक्लेषु नियतः पठेत् । वेदाङ्गानि च सर्वाणि कृष्णपक्षेषु सम्पठेत् । ९८ ।
नाविस्पष्टमधीयीत न शूद्रजनसन्निधौ । न निशान्ते परिश्रान्तो ब्रह्माधीत्य पुनः स्वपेत् । ९९ ।
यथोदितेन विधिना नित्यं छंदस्कृतम्पठेत् । ब्रह्मछन्दस्कृतं चैव द्विजो युक्तो ह्यनापदि । १०० ।
इमान्नित्यमनध्यायानधीयानो विवर्जयेत् । अध्यापनञ्च कुर्वाणः शिष्याणां विधिपूर्वकम् । १०१ ।
कर्णश्रवेऽनिले रात्रौ दिवा पांसु समूहने । एतौ वर्षास्वनध्यायावध्यायज्ञाः प्रचक्षते । १०२ ।
विद्युत्स्तनितवर्षेषु महोल्कानां च संप्लवे । आकालिकमनध्यायमेतेषु मनुरब्रवीत् । १०३ ।
एतांस्त्वभ्युदितान्विद्याद्यदा प्रादुष्कृताग्निषु । तदा विद्यादनध्यायमनृतौ चाभ्रदर्शने । १०४ ।

की रात्रि) तक वेद को न पढ़ना अथवा उत्सर्ग का दिन रात्रि तक न पढ़ना । ९७ । इस के उपरांत नियम से शुक्ल पक्ष में वेद को पढ़ै कृष्ण पक्ष में शास्त्र को पढ़ै । ९८ । जिस में अक्षर स्पष्ट जाने जांय ऐसा पढ़ै शूद्र जन के समीप में न पढ़ै रात्रि के चौथे प्रहर में वेद पढ़ने से थकि जाय तो फेर सोवे नहीं । ९९ । जैसी विधि कही है उस विधि से युक्त होकर नित्य ही वेद के दोनों भाग (अर्थात् मंत्र और ब्राह्मण) को पढ़ै । १०० । आगे जो कहैंगे अनध्याय उस में गुरु और शिष्य ये दोनों वेद का पढ़ना और पढ़ाना न करैं । १०१ । रात्रि समय कान में वायु का शब्द जाना जाय और दिन में धूली पड़ती हो तो उस दिन अनध्याय करना वर्षा काल में इस बात को अध्याय के जानने वाले ने कही है । १०२ । बिजुली का चमकना गर्जना वर्षा हो और बड़ा लुक आकाश से गिरै तो उस समय से दूसरे दिन उसी समय तक अनध्याय है इस बात को मनु जी ने कहा है । १०३ । बिजुली का चमकना गर्जना वर्षा ये तीनों सायंकाल में हों तो वर्षा काल में अनध्याय जानना सर्वदा नहीं क्योंकि वर्षा काल में तो ये सब होते ही हैं संध्याकाल में हो तब अनध्याय होती है वर्षा काल से भिन्न काल में मेघ देख पड़े तो अनध्याय जानना । १०४ ।

* * * * * * * * * * *

तरिक्ष में भया जो उत्पात का शब्द भूकंप चंद्र सूर्य तारा इन सभों का उपसर्ग (अर्थात् उपद्रव) इन्हों में आकालिक (अर्थात् स समय में ये सब हों उस से दूसरे दिन उसी समय तक) अनध्याय सब ऋतु में जानना । १०५ । प्रातः संध्या काल में म के लिये अग्नि लकड़ी से मथन करके प्रकट भई और उसी समय में बिजुली का चमकना और गर्जना भया परन्तु वृष्टि न ई तो सज्योतिः (अर्थात् दिन भर) अनध्याय है और सायं संध्याकाल में तीनों पूर्व कथित वस्तु हों तो रात्रि भर अनध्याय ानना आकालिक न जानना । १०६ । ग्राम में और नगर में तो नित्य ही अनध्याय है और दुर्गन्ध में भी अनध्याय करना जिन ा धर्म की निपुणता कामना है उन को अनध्याय जानना । १०७ । ग्राम में मुरदा रहे तो अनध्याय होती है अधार्मिक के ीप में रोदन में दूसरे कार्य के लिये बहुत जनों के मिलाप में अनध्याय जानना । १०८ । जल अर्द्ध रात्र विष्ठा मूत्र त्याग में मन से भी वेद का चिंतन न करना जूठे हुए और श्राद्धान्न भोजन करके भी वेद को न पढ़ना । १०९ । एकोद्दिष्ट श्राद्ध निमन्त्रण ग्रहण करके निमंत्रण दिन से तीन दिन तक वेद को न पढ़ना राजा के सूतक में और चंद्र सूर्य ग्रहण में भी । ११० । ब तक एकोद्दिष्ट श्राद्ध का गंध लेप देह में रहै तब तक वेद को न पढ़े । १११ । मांस और सूतकान्न इन दोनों में कोई को

निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषाञ्चोपसर्जने । एतानाकालिकान्विद्यादनध्यायानृतावपि । १०५ ।
प्रादुष्कृतेष्वग्निषु तु विद्युत्स्तनितनिस्वने । स ज्योतिः स्यादनध्यायः शेषे रात्रौ यथा दिवा । १०६ ।
नित्यानध्याय एव स्याद्ग्रामेषु नगरेषु च । धर्मनैपुण्यकामानां पूतिगंधे च सर्वदा । १०७ ।
अन्तर्गतशवे ग्रामे वृषलस्य च सन्निधौ । अनध्यायो रुद्यमाने समवाये जनस्य च । १०८ ।
उदके मध्यरात्रे च विण्मूत्रस्य विसर्जने । उच्छिष्टः श्राद्धभुक् चैव मनसापि न चिन्तयेत् । १०९ ।
प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोद्दिष्टस्य केतनम् । त्र्यहन्न कीर्तयेद्ब्रह्म राज्ञो राहोश्च सूतके । ११० ।
यावदेकानुद्दिष्टस्य गंधो लेपश्च तिष्ठति । विप्रस्य विदुषो देहे तावद्ब्रह्म न कीर्तयेत् । १११ ।
शयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चैवावसक्थिकाम् । नाधीयीतामिषञ्जग्ध्वा सूतकान्नाद्यमेव च । ११२ ।
नीहारे बाणशब्दे च संध्ययोरेव चोभयोः । अमावास्याचतुर्दश्योः पौर्णमास्यष्टकासु च । ११३ ।
अमावास्या गुरुं हन्ति शिष्यं हन्ति चतुर्दशी । ब्रह्माष्टकापौर्णमास्यौ तस्मात्ताः परिवर्जयेत् । ११४ ।
पांशुवर्षे दिशां दाहे गोमायुविरुते तथा । श्वखरोष्ट्रे च रुवति पंक्तौ च न पठेद्द्विजः । ११५ ।
नाधीयीत श्मशानान्ते ग्रामांते गोव्रजेपि वा । वसित्वा मैथुनंवासः श्राद्धिकम्प्रतिगृह्य च । ११६ ।
प्राणि वा यदि वा प्राणि यत्किञ्चिच्छ्राद्धिकम्भवेत् । तदालभ्याप्यनध्यायः पाण्यास्यो हि द्विजः स्मृतः ।
११७ । चौरैरुपप्लुते ग्रामे संभ्रमे चाग्निकारिते । आकालिकमनध्यायं विद्यात्सर्वाद्भुतेषु च । ११८ ।
उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षेपणं स्मृतम् । अष्टकासु त्वहोरात्रमृत्वन्तासु च रात्रिषु । ११९ ।

जन करके और सूते हुए आसन पर पांव को राखे हुए दोनों ठेहुनों को नीचे किए हुए वेद को न पढ़ना । ११२ । कुहिरा बाण का द दोनों संध्या अमावास्या चतुर्दशी पूर्णमासी अष्टमी इन सभों में वेद को न पढ़ना । ११३ । अमावास्या गुरु का नाश करती चतुर्दशी शिष्य का नाश करती है अष्टमी पूर्णमासी ये दोनों वेद का नाश करती हैं इस लिये इन को वर्जन करना । ११४ । ी की वृष्टि दिशा का दाह सियारिनी कुत्ता गदहा ऊंट इन्हों का रोना पंगति इन सभों में न पढ़ना । ११५ । श्मशान ग्राम का स्थान इन्हों के समीप में और मैथुन समय के वस्त्र को पहिर के और श्राद्ध के अन्न को प्रतिग्रह करके न पढ़ना । ११६ । ण सहित जो वस्तु अथवा प्राण रहित जो वस्तु श्राद्ध की है उस को ग्रहण करके अनध्याय करना क्योंकि ब्राह्मण पाण्यास्य (अर्थात् उस का मुख हाथ है) । ११७ । चोरों से उपद्रव के प्राप्त जो ग्राम है उस में और अग्नि के दाह में अद्भुत कर्म के ने में आकालिक अनध्याय जानना । ११८ । उपाकरण में और उत्सर्ग में त्रिरात्र अष्टका में एक दिन रात्र ऋतु के अंत में एक न रात्र अनध्याय करना इस बात को उसके लिये कहा है जिस को धर्म की निपुणता कामना है और पहिले जो कहि आए उत्सर्ग में पक्षिणी सो दूसरे को जानना इस लिये पुनरुक्ति न हुई । ११९ ।

घोड़ा वृक्ष हाथी नौका गदहा ऊंट ऊसर भूमि सवारी इन्हों पर स्थित होके न पढ़ना । १२० । विवाद कलह सेना संग्राम अजीर्ण वमन (अर्थात् उलटी) इन्हों में अनध्याय जानना भोजन करके भी न पढ़ना । १२१ । अति वायु चलने में शरीर से रुधिर निकलने में शस्त्र से घाव होने में अतिथि की बिना आज्ञा में अनध्याय करना । १२२ । साम वेद को सुन के ऋग्वेद को और यजुर्वेद को न पढ़े वेद का अन्त और आरण्यक प्रकरण इन दोनों में से कोई एक को पढ़ के अनध्याय करना । १२३ । ऋग्वेद का देवता देवै हैं यजुर्वेद का देवता मनुष्य हैं सामवेद का देवता पितर हैं इस लिये सामवेद का शब्द अपवित्र है । १२४ । इस बात के जानने वाले जो पुरुष हैं सो नित्य ही तीनों वेदों का सारभूत प्रणव (अर्थात् ओंकार) व्याहृति (अर्थात् भूः भुवः स्वः इत्यादि) गायत्री इन तीनों को क्रम से पढ़के पीछे वेद को पढ़ते हैं । १२५ । पशु मेंडुक बिलारि कुत्ता सर्प नेउर मूसा इन सभों में से कोई एक गुरु शिष्य के बीच से निकल जावे तो एक रात्रि दिन अनध्याय करना । १२६ । पढ़ने की भूमि अशुद्ध हो और अपनी शरीर अपवित्र हो तो न पढ़ना इन दोनों अनध्याय को यत्न से त्याग करना । १२७ । स्नातक जो ब्राह्मण है सो ऋतु काल में भी अमावास्या अष्टमी पूर्णमासी चतुर्दशी इन तिथियों में ब्रह्म चारी होवे (अर्थात् स्त्री के साथ संभोग न करै) । १२८ । भोजन किए हो

नाधीयीताश्वमारूढ़ो न वृक्षं न च हस्तिनम् । न नावं न खरं नोष्ट्रं नेरिणस्थो न यानगः । १२० ।
न विवादे न कलहे न सेनायां न सङ्गरे । न भुक्तमात्रे नाजीर्णे न वमित्वा न सूतके । १२१ ।
अतिथिञ्चाननुज्ञाप्य मारुते वाति वा भृशम् । रुधिरे च स्रुते गात्राच्छस्त्रेण च परिक्षते । १२२ ।
सामध्वनावृग्यजुषीनाधीयीत कदा च न । वेदस्याधीत्य वाप्यन्तमारण्यकमधीत्य च । १२३ ।
ऋग्वेदो देवदैवत्यो यजुर्वेदस्तु मानुषः । सामवेदः स्मृतः पित्र्यस्तस्मात्तस्याशुचिर्ध्वनिः । १२४ ।
एतद्विदन्तो विद्वांसस्त्रयी निष्कर्षमन्वहम् । क्रमतः पूर्वमभ्यस्य पश्चाद्वेदमधीयते । १२५ ।
पशुमण्डूकमार्जारश्वसर्पनकुलाखुभिः । अन्तरागमने विद्यादनध्यायमहर्निशम् । १२६ ।
द्वावेव वर्जयेन्नित्यमनध्यायौ प्रयत्नतः । स्वाध्यायभूमिञ्चाशुद्धामात्मानं चाशुचिन्द्विजः । १२७ ।
अमावास्यामष्टमीञ्च पौर्णमासीञ्चतुर्दशीम् । ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमप्यृतौ स्नातको द्विजः । १२८ ।
न स्नानमाचरेद्भुक्त्वा नातुरो न महा निशि । न वासोभिस्सहाजस्रं नाविज्ञाते जलाशये । १२९ ।
देवतानां गुरो राज्ञः स्नातकाचार्ययोस्तथा । नाक्रामेत्कामतश्छायाम्बभ्रुणो दीक्षितस्य च । १३० ।
मध्यन्दिने ऽर्द्धरात्रे च श्राद्धम्भुक्त्वा च सामिषम् । सन्ध्ययोरुभयोश्चैव न सेवेत चतुष्पथम् । १३१ ।
उद्वर्तनमपस्नानम्विण्मूत्रे रक्तमेव च । श्लेष्मनिष्ठ्यूतवान्तानि नाधितिष्ठेत्तु कामतः । १३२ ।
वैरिणन्नोपसेवेत सहायञ्चैव वैरिणः । अधार्मिकन्तस्करञ्च परस्यैव च योषितम् । १३३ ।
न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्च न विद्यते । यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् । १३४ ।
क्षत्रियञ्चैव सर्पञ्च ब्राह्मणञ्च बहुश्रुतम् । नावमन्येत वै भूष्णुः कृशानपि कदा च न । १३५ ।
एतत्त्रयं हि पुरुषन्निर्दहेदवमानितम् । तस्मादेतत्त्रयन्नित्यन्नावमन्येत बुद्धिमान् । १३६ ।

और आतुर हो तो स्नान न करै वस्त्र सहित वारंवार भी स्नान न करना अर्द्ध रात्र में और जो जलाशय जाना नहीं गया है उस में स्नान को न करै । १२९ । देवता गुरु राजा स्नातक आचार्य कपिल वर्ण यज्ञ करने की दीक्षा को प्राप्त जो मनुष्य है इन सभों में किसी की छाया पर इच्छा पूर्वक स्थित न रहै । १३० । मध्य दिन अर्द्ध रात्र दोनों संध्या इन सभों में चौरहा स्थान में न जाना श्राद्ध की मांस को भोजन करके भी चौरहा में न स्थित हो । १३१ । अबटन की लीझी के ऊपर स्नान करने से जो जल भूमि में पड़ा है उस में विष्ठा मूत्र वीर्य्य खंखार थूक बांत (अर्थात् उलटी हुई बस्तु) इन सभों पर इच्छा पूर्वक स्थित न हो । १३२ । वैरी बैरी का सहाई अधार्मिक चोर परस्त्री इन सभों का सेवन न करै । १३३ । परस्त्री सेवन के सदृश आयुष की घटाने वाली दूसरी कोई बस्तु नहीं है पुरुष को । १३४ । क्षत्रिय सर्प बहुत सुने हुए जो ब्राह्मण ये सब दुर्बल भी हों तो इन्हों का अपमान न करै सब बस्तुओं से बढ़ने की इच्छा करने वाला जो हो सो । १३५ । ये तीनों अपमान पाने से दहन कर डालते हैं इस लिये बुद्धिमान इन तीनों का अपमान न करै । १३६ ।

रिद्रता से अपनी आत्मा का अपमान न करै मरने तक लक्ष्मी की इच्छा करता रहै लक्ष्मी को दुर्लभ न मानै । १३७ । सत्य
ोलना प्रिय बोलना सत्य भी हो और प्रिय न हो तो उस को न बोलना प्रिय भी हो और सत्य न हो तो उस को भी न बोलना
ह नित्य धर्म है । १३८ । अभद्र को भी भद्र बोलना अथवा भद्र ऐसा ही बोलना सूखा बैर और विवाद किसी से न करना भद्र
ब्द कल्याण को कहता है । १३९ । अति प्रातः काल अति मध्याह्न काल अति सायं काल में गमन न करना बिना जाना मनुष्य
ौर शूद्र इन्हों के साथ भी गमन न करना अकेला न गमन करना । १४० । हीन अंग वाला अधिक अंग वाला मूर्ख वृद्ध कुरूप हीन जात हीन
व्य वाला इन सभों का निंदा न करना (अर्थात् कांणा है उसको कांणा कहिके न पुकारना) । १४१ । जूठा हुआ ब्राह्मण अपने
ाथों से ब्राह्मण गौ अग्नि इन को न छूवे जो आतुर नहीं है और अपवित्र है सो चंद्र सूर्य आदि तारा को न देखै । १४२ ।
दाचित् जिन को छूने को नहीं कहा है उन को छूवे तो आचमन करके हाथ में जल रखके उस जल से इन्द्रियों को और सब
रीर को छूवे नाभी को हथेली से छूवे । १४३ । आतुर जो नहीं है सो कारण बिना अपने इन्द्रियों को न छूवे एकांत के जो

नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः । आमृत्योः श्रियमन्विच्छेन्नैनाम्मन्येत दुर्लभाम् । १३७ ।
सत्यम्ब्रूयात्प्रियम्ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् । प्रियञ्च नानृतम्ब्रूयादेष धर्म्मस्सनातनः । १३८ ।
भद्रम्भद्रमिति ब्रूयाद्भद्रमित्येव वा वदेत् । शुष्कवैरंविवादञ्च न कुर्यात्केनचित्सह । १३९ ।
नातिकल्यन्नाति सायन्नातिमध्यन्दिने स्थिते । नाज्ञातेन समङ्गच्छेन्नैको न वृषलैस्सह । १४० ।
हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान्विद्याहीनान्वयोधिकान् । रूपद्रव्यविहीनांश्च जातिहीनांश्च नाक्षिपेत् । १४१ ।
नस्पृशेत्पाणिनोच्छिष्टो विप्रोगोब्राह्मणानलान् । न चापि पश्येदशुचिः सुस्थो ज्योतिर्गणान्दिवि ।
१४२ । स्पृष्ट्वैतानशुचिर्नित्यमद्भिः प्राणानुपस्पृशेत् । गात्राणि चैव सर्वाणि नाभिम्पाणितलेन तु ।
१४३ । अनातुरः स्वानि खानि न स्पृशेदनिमित्ततः । रोमाणि च रहस्यानि सर्वाण्येव विवर्ज-
येत् । १४४ । मङ्गलाचारयुक्तः स्यात्प्रयतात्मा जितेन्द्रियः । जपेच्च जुहुयाच्चैव नित्यमग्निमतन्द्रितः ।
१४५ । मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यञ्च प्रयतात्मनाम् । जपताञ्जुह्वताञ्चैव विनिपातो न विद्यते । १४६ ।
वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं यथा कालमतन्द्रितः । तं ह्यस्याहुः परन्धर्ममुपधर्मोन्य उच्यते । १४७ ।
वेदाभ्यासेन सततं शौचेन तपसैव च । अद्रोहेण च भूतानां जातिं स्मरति पौर्विकीम् । १४८ ।
पौर्विकीं संस्मरन् जातिं ब्रह्मैवाभ्यसते पुनः । ब्रह्माभ्यासेन चाजस्रमनन्तं सुखमश्नुते । १४९ ।
सावित्रान् शान्तिहोमांश्च कुर्यात्पर्वसु नित्यशः । पितॄंश्चैवाष्टकास्वर्चेन्नित्यमन्वष्टकासु च । १५० ।
दूरादावसथान्मूत्रं दूरात्पादावसेचनम् । उच्छिष्टान्ननिषेकञ्च दूरादेव समाचरेत् । १५१ ।
मैत्रम्प्रसाधनं स्नानं दंतधावनमञ्जनम् । पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानाञ्च पूजनम् । १५२ ।

म हैं (अर्थात् लिंग संबंधी कांख संबंधी) उसको भी न छूवे । १४४ । मंगल आचार से युक्त रहै भीतर बाहर से शुद्ध रहै
ितेन्द्रिय होके जप और होम को करै आलस को छोड़ देवै । १४५ । इन सब कर्म को करै और शास्त्र कथित रीति से रहै तो
वता और मनुष्य इन दोनों का किया उपद्रव उस पुरुष को न होवे । १४६ । आलस को छोड़ कर अपने काल में नित्य हीं
द ही का अभ्यास करै यह परम धर्म है दूसरा उप धर्म है । १४७ । निरन्तर वेदाभ्यास पवित्रता तप जीवों का अद्रोह यह
ब करने से पूर्व जन्म की जाति का स्मरण होता है । १४८ । पूर्व जन्म की जाति को स्मरण करत फेर वेद ही का अभ्यास
रता रहै वेदाभ्यास से निरंतर अनंत सुख को पाता है । १४९ । पर्व में नित्य ही गायत्री देवता का होम और अरिष्ट निरास
 लिये शांति होम को करै अष्टका अन्वष्टका में पितरों का नित्य ही पूजा करै । १५० । अग्नि के गृह से दूर देस में मूत्र पाद
ालन जूठ अन्न बीर्य इन सब को त्याग करै । १५१ । विष्ठा त्याग देह प्रसाधन (अर्थात् शृंगार आदि) प्रातः स्नान दंत धावन
ञ्जन देवता का पूजन इन सब कर्म को पूर्वाह्ण काल (अर्थात् दिन का पूर्व भाग) में करना । । १५२ ।

रक्षा के लिये देवता धार्मिक ब्राह्मण गुरु राजा आदि इन सभों का दर्शन पर्वकाल में करना । १५३ । अपने गृह में आए हुए जो वृद्ध उन को प्रणाम करें अपना आसन बैठनें के लिये देवे हाथ जोड़ के संमुख ठाढ़ रहे चलने लगें तो पीछे होके आप भी चले । १५४ । वेद और धर्म शास्त्र इन दोनों में कहा हुआ जो भले लोगों का आचार सो धर्म का कारण है उस को आलस छोड़ के नित्य ही सेवन करें । १५५ । आयुष अच्छी संतति अक्षय धन ये सब आचार से मिलता है और अशुभ फल का जनाने वाला जो देह में स्थित अलक्षण है उस को आचार नाश करता है । १५६ । दुराचारी पुरुष लोक में निंदित होता है और सर्व काल में दुःखी रहता है व्याधी रहता है थोड़े दिन तक जीता है । १५७ । जो सब लक्षण से हीन है निंदा किसी की नहीं करता है श्रद्धा से और भले लोगों के आचार से युक्त है सो सौ वर्ष तक जीता है । १५८ । जो जो कर्म दूसरे के अधीन है उस उस कर्मों को यत्न से वर्जन करे और जो जो कर्म अपने अधीन है उस उस कर्मों को यत्न से सेवन करे । १५९ । पर वश जो कर्म है सो दुःख है अपने वश जो कर्म है सो सुख है संक्षेप से सुख दुःख का यह लक्षण जानो । १६० । जिस कर्म को करते हुए पुरुष के अंतरात्मा को संतोष होवे उस कर्म को यत्न से करे विपरीत (अर्थात् संतोष न होवे) को वर्जन करे । १६१ ।

दैवतान्यभिगच्छेत्तु धार्मिकांश्च द्विजोत्तमान् । ईश्वरञ्चैव रक्षार्थं गुरूनेव च पर्वसु । १५३ ।
अभिवादयेद्वृद्धांश्च दद्याच्चैवासनं स्वकम् । कृताञ्जलिरुपासीत गच्छतः पृष्ठतोऽन्वियात् । १५४ ।
श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यङ्निबद्धं स्वेषु कर्मसु । धर्ममूलन्निषेवेत सदाचारमतन्द्रितः । १५५ ।
आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः । आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् । १५६ ।
दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः । दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च । १५७ ।
सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः । श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतम्वर्षाणि जीवति । १५८ ।
यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् । यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः । १५९ ।
सर्वम्परवशन्दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् । एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः । १६० ।
यत्कर्म कुर्वतोऽस्य स्यात्परितोषोऽन्तरात्मनः । तत्प्रयत्नेन कुर्वीत विपरीतन्तु वर्जयेत् । १६१ ।
आचार्यञ्च प्रवक्तारं पितरम्मातरं गुरुम् । न हिंस्याद्ब्राह्मणान् गांश्च सर्वांश्चैव तपस्विनः । १६२ ।
नास्तिक्यम्वेदनिन्दाञ्च देवतानाञ्च कुत्सनम् । द्वेषन्दम्भञ्च मानञ्च क्रोधन्तैक्ष्ण्यञ्च वर्जयेत् । १६३ ।
परस्य दण्डन्नोद्यच्छेत्क्रुद्धो नैव निपातयेत् । अन्यत्र पुत्राच्छिष्याद्वा शिष्ट्यर्थन्ताडयेत्तु तौ । १६४ ।
ब्राह्मणायावगुर्य्यैव द्विजातिर्वधकाम्यया । शतम्वर्षाणि तामिस्रे नरके परिवर्त्तते । १६५ ।
ताडयित्वा तृणेनापि संरम्भान्मतिपूर्वकम् । एकविंशतमाजातीः पापयोनिषु जायते । १६६ ।
अयुध्यमानस्योत्पाद्य ब्राह्मणस्यासृगन्ततः । दुःखं सुमहदाप्नोति प्रेत्याप्राज्ञतया नरः । १६७ ।
शोणितम्यावतः पांशून्संगृह्णाति महीतलात् । तावतोऽब्दानमुत्रान्यैः शोणितोत्पादकोऽद्यते । १६८ ।

आचार्य वेदाध्याय का कहने वाला पिता माता गुरु ब्राह्मण गौ तपस्वी इन सभों में से कोई एक को भी न मारै । १६२ । नास्तिकपना वेद और देवता इन्हों की निंदा शत्रुता दंभ मान क्रोध तीक्ष्णता इन सभों को न करना । १६३ । क्रोध पाके दूसरे के मारने के लिये दंड को न फेंके और पराये के शरीर में ताड़न को न करै पुत्र और शिष्य इन दोनों को सिखाने के लिये ताड़न करै । १६४ । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये सब ब्राह्मण वध की इच्छा करके हथियार को उठावें और मारै नहीं तो भी तामिस्र नाम नरक में सौ वर्ष तक रहते हैं । १६५ । क्रोध से इच्छा पूर्वक तृण से भी ताड़न करके एक्कैस जन्म पाप योनि (अर्थात् कुत्ता आदि) में उत्पन्न होता है । १६६ । युद्ध जो नहीं करता है ब्राह्मण उस के अंग से रुधिर को निकाल कर अपनी बुद्धि की हीनता से परलोक में बड़े दुःख को पाता है । १६७ । युद्ध को नहीं करने वाला जो ब्राह्मण उस के अंग में शस्त्र से रुधिर निकालने वाला परलोक में महा दुःख को पाता है खड्ग आदि करके ब्राह्मण के अंग से निकला रुधिर भूमि पर गिरा हुआ जितने धूली का द्व्यणुक (अर्थात् दूष परमाणु पर्यंत) को पिण्डी करता है तितने वर्ष तक परलोक में रुधिर निकालने वाला कुत्ता सियार आदि से भोजन किया जाता है । १६८ ।

स लिये जानने वाला कधी भी ब्राह्मण को मारने के लिये शस्त्र को न उठावे तृण से भी ताड़न न करै शरीर से रुधिर को निकाले । १६९ । जो अधार्मिक हैं और जिस को असत्य धन है जो नित्य ही हिंसा में रत हैं सो इस लोक में सुख को नहीं ते । १७० । अधार्मिकों का और पापियों का धन आदि का शीघ्र नाश देखते हुए धर्म से कष्ट को पाके भी अधर्म में प्रवृत्त न वे । १७१ । अधर्म शीघ्र ही नहीं फलता गौ (अर्थात् पृथिवी की नाईं जैसे पृथिवी बीज बोने से शीघ्र फल को नहीं देती किंतु काल पाके ती है यह दृष्टान्त समान धर्म का है और दूसरा अर्थ गौ (अर्थात् पशु) जैसे वाहन दोहन से फल को शीघ्र देता है पशु तैसा अधर्म हीं फल को देता किंतु काल पाके फलता है यह दृष्टान्त असमान धर्म का है अधर्म करने वाले का सर्व नाश होता है यही ल अधर्म्म का है । १७२ । जब अधर्म का फल अधर्म करने वाले को न भया तो उस के पुत्र को होता है उस को भी न भया पौत्र को होता है उस को भी न भया तो नाती को होता है अधर्म बे फले नहीं रहता । १७३ । अधर्म करने से पहिले ढ़ता है फेर कल्याण को देखता है फेर शत्रुन्ह को जीतता है पश्चात मूल सहित नाश को पाता है । १७४ । भले लोगों का चार सत्य धर्म पवित्रता इन सभों में सर्व काल रति को करै भार्या पुत्र दास छात्र इन सब को रसरी और बांस का फलटा

न कदाचिद्द्विजे तस्माद्विद्वानवगुरेदपि । न ताडयेत्तृणेनापि न गात्रात्स्रावयेदसृक् । १६९ ।
अधार्म्मिको नरो यो हि तस्य चाप्यनृतन्धनम् । हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते । १७० ।
न सीदन्नपि धर्म्मेण मनोऽधर्म्मे निवेशयेत् । अधार्म्मिकाणाम्पापानामाशु पश्यन्विपर्य्ययम् । १७१ ।
नाधर्म्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव । शनैरावर्त्तमानस्तु कर्त्तुर्मूलानि कृन्तति । १७२ ।
यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत्पुत्रेषु नप्तृषु । न त्वेवन्तु कृतोऽधर्म्मः कर्त्तुर्भवति निष्फलः । १७३ ।
अधर्म्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति । ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति । १७४ ।
सत्यधर्म्मार्य्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा । शिष्यांश्च शिष्याद्धर्म्मेण वाग्बाहूदरसंयतः । १७५ ।
परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्म्मवर्जितौ । धर्म्मञ्चाप्यसुखोदर्कं लोकविक्रुष्टमेव च । १७६ ।
न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलोऽनृजुः । न स्याद्वाक्चपलश्चैव न परद्रोहकर्म्मधीः । १७७ ।
येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः । तेन यायात्सतां मार्गन्तेन गच्छन्नरिष्यते । १७८ ।
ऋत्विक् पुरोहिताचार्य्यैर्म्मातुलाऽतिथिसंश्रितैः । बालवृद्धाऽतुरैर्वैद्यैर्ज्ञातिसम्बन्धिबांधवैः । १७९ ।
मातापितृभ्यां यामीभिर्भ्रात्रा पुत्रेण भार्य्यया । दुहित्रा दासवर्गेण विवादन्न समाचरेत् । १८० ।
एतैर्विवादान्सन्त्यज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते । एभिर्जितैश्च जयति सर्वान् लोकानिमान् गृही । १८१ ।
आचार्य्यो ब्रह्मलोकेशः प्राजापत्ये पिता प्रभुः । अतिथिस्त्विन्द्रलोकेशो देवलोकस्य चर्त्विजः । १८२ ।

दोनों से शासन (अर्थात् ताड़न) को करै वाणी बांहु उदर इन्हों का संयम करै वाणी का संयम सत्यभाषण से होता है हु के बल से किसी को पीड़ा न करै तब वाहु का संयम होता है जो कुछ मिला थोड़ा वस्तु उसी के भोजन से उदर का म होता है । १७५ । धर्म से वर्जित जो अर्थ काम है उस का त्याग करना जो है तो धर्म परंतु लोक से विरुद्ध है और आने ला काल में सुख का देने वाला नहीं है उस का भी त्याग करना । १७६ । हाथ पांव आंख वाणी इन सभों करके चंचल न वे टेढ़ा न रहै पर द्रोह कर्म में बुद्धि को न राखै । १७७ । बहुत प्रकार का शास्त्रार्थ संभव संते पितृ पितामहादि करके हीत जो शास्त्रार्थ है उसी का अनुष्ठान करना उस करके अधर्म से मारा नहीं जाता । १७८ । ऋत्विक् पुरोहित आचार्य्य मा अतिथि आश्रित बाल वृद्ध आतुर वैद्य जाति (अर्थात् पितृ पक्ष वाले) संबंधी (अर्थात् साला आदि) बांधव (अर्थात् मातृ वाले) । १७९ । यामि (अर्थात् भगिनी पतोहू आदि) माता पिता भाई पुत्र भार्या बेटी दास वर्ग इन्हों के साथ विवाद न ना । १८० । इन्हों से विवाद को वर्जन करके सब पाप से छूटता है इन सभों से हारने से सब लोक को गृहस्थ जीतता है ८१ । आचार्य्य पिता अतिथि ऋत्विक् ये सब क्रम करके ब्रह्म लोक प्रजापति लोक इंद्र लोक देव लोक के स्वामी हैं । १८२ ।

बहिन पतोहू आदि बांधव संबंधी माता और मामा ये दोनों ये सब क्रम करके अप्सरा लोक वैश्व देव लोक वरुण लोक मृत्यु लोक के स्वामी हैं । १८३ । बाल वृद्ध कृश आतुर ये चारो आकाश लोक के स्वामी हैं ज्येष्ठ भाई पिता के समान है भ्राता पुत्र अपनी शरीर है । १८४ । दास वर्ग अपनी जाया है लड़की गरीब है इस लिये इन सभों की बात को सहन करना मन में हीनता और दुःख को न लाना सर्व काल में । १८५ । दान लेने में समर्थ हो तो भी न लेवे दान लेने से ब्रह्म तेज शांत होता है । १८६ । आपत काल में क्षुधा करके दुःखित हो तो भी प्रतिग्रह में द्रव्यों का विधान जो धर्म करिके युक्त है (अर्थात् ग्रहण की जो बस्तु है उस का देवता और मंत्र है) उस को बिना जाने अच्छे लोग जो हैं सो प्रतिग्रह को न करें । १८७ । हिरण्य भूमि घोड़ा गौ अन्न वस्त्र तिल घृत इन सभों में से कोई एक बस्तु को प्रतिग्रह करने से मूर्ख ब्राह्मण लकड़ी की नाईं भस्म हो जाता है । १८८ । हिरण्य और अन्न इन दोनों में से कोई एक बस्तु का प्रतिग्रह मूर्ख ब्राह्मण करै तो आयुष का दहन होता हैं इसी रीति से गौ भूमि शरीर को दहन करते हैं घोड़ा नेत्र को वस्त्र त्वचा को घृत तेज को तिल संतति को दहन करते हैं । १८९ । तप और वेद से रहित है प्रतिग्रह में रुचि रखता है ऐसा ब्राह्मण दाता सहित डूबता है जैसे जल में पत्थर की बनाई नौका ।

यामयोऽप्सरसां लोके वैश्वदेवस्य बांधवाः। सम्बन्धिनो ह्यपांलोके पृथिव्यां मातृमातुलौ । १८३ ।
आकाशेशास्तु विज्ञेया बालवृद्धकृशातुराः। भ्राताज्येष्ठः समः पित्रा भार्य्या पुत्रः स्वकातनूः । १८४ ।
छाया स्वोदासवर्गश्च दुहिता कृपणम्परम् । तस्मादेतैरधिक्षिप्तः सहेता संज्वरस्सदा । १८५ ।
प्रतिग्रहसमर्थोपि प्रसङ्गन्तत्र वर्जयेत् । प्रतिग्रहेण ह्यस्याशु ब्राह्मन्तेजः प्रशाम्यति । १८६ ।
न द्रव्याणामविज्ञाय विधिन्धर्म्यं प्रतिग्रहे । प्राज्ञः प्रतिग्रहं कुर्यादवसीदन्नपि क्षुधा । १८७ ।
हिरण्यम्भूमिमश्वङ्गामन्नम्वासस्तिलान्घृतम् । प्रतिगृह्णन्नविद्वांस्तु भस्मी भवति दारुवत् । १८८ ।
हिरण्यमायुरन्नञ्च भूर्गौश्चाप्योषतस्तनुम् । अश्वश्चक्षुस्त्वचम्वासो घृतन्तेजस्तिलाः प्रजाः । १८९ ।
अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः । अम्भस्यश्मप्लवेनेव सह तेनैव मज्जति । १९० ।
तस्मादविद्वान्बिभियाद्यस्मात्तस्मात्प्रतिग्रहात् । स्वल्पकेनाप्यविद्वान्हि पङ्के गौरिव सीदति । १९१ ।
न वार्य्यपि प्रयच्छेतु वैडालव्रतिके द्विजे । न बकव्रतिके विप्रे नावेदविदि धर्मवित् । १९२ ।
त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितन्धनम् । दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च । १९३ ।
यथाप्लवेनौपलेन निमज्जत्युदकेतरन् । तथा निमज्जतोधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ । १९४ । धर्मध्वजी
सदा लुब्धश्छाद्मिको लोकदंभकः । वैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसंधकः । १९५ ।
अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः । शठो मिथ्याविनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः । १९६ ।

१९० । इस लिये मूर्ख ब्राह्मण थोड़े प्रतिग्रह से भी डरता रहै नहीं तो जैसे गौ कांदो में फंसी हुई कष्ट को पाती है तैसा वह भी कष्ट को पाता है । १९१ । वैडाल व्रतिक बक व्रतिक मूर्ख ये तीनों ब्राह्मणों को धर्म जानने वाला पुरुष जल मात्र भी न करे । १९२ । विधि से अर्जित धन को इन तीनों को जब देवै तब परलोक में वह दान दाता प्रतिग्रहीता को अनर्थ के लिये होता है । १९३ । जिस प्रकार से पत्थर की बनाई हुई नाव पर चढ़ कर जल में डूबता है तिसी प्रकार से दाता प्रतिग्रहीता दोनों नरक में डूबते हैं । १९४ । धर्म ध्वजी (अर्थात् जो बहुत मनुष्य के समीप धर्म का आचरण करता है आप से अथवा दूसरे से जनाता है उसका धर्म जो है सोई ध्वज कहिए चिन्ह है इस लिये वह धर्म ध्वजी कहाता है) लोभी बहाने से चलने वाला बंचना करने वाला धातुक (अर्थात् घात करने वाला) सब का निंदा करने वाला ऐसा जो है सो वैड़ालव्रतिक कहाता है (अर्थात् बिलारि की नाईं व्रत कहिए आचरण है जिसका सो) । १९५ । नीच ही देखने वाला निष्ठुर (अर्थात् दया शून्य) अपने अर्थ के साधन में तत्पर टेढ़ाई से रहने वाला झूठ ही नम्रता से रहने वला ऐसा जो है सो बक वृत्तिक कहाता है (अर्थात् बकुला की नाईं व्रत कहिए आचरण है जिस का सो) । १९६ । * * * * *

कव्रतिक वैड़ालव्रतिक ये दोनों ग्रपने पाप से ग्रंधतामिस्र नाम नरक में जाते हैं। १९७। पाप करके धर्म के बहाने से व्रत
ा न करै (ग्रर्थात् करता है प्रायश्चित्त ग्रौर स्त्री शूद्र को दंभ देखाता है कि मैं ने धर्म किया है)। १९८। वेद पढ़ने वाले
लप इस लोक में परलोक में ऐसे ब्राह्मणों की निंदा करते हैं कपट से व्रत जो है सो राक्षसों के पास जाता है। १९९।
ह्मचारी नहीं है ग्रौर ब्रह्मचारी के वेष से जीवन करता है सो ब्रह्मचारी के पाप को पाता है ग्रौर कीट पतंग ग्रादि योनि
जाता है इसी रीति से सब ग्राश्रम को जानना। २२०। जो बिना उत्सर्ग किया हुग्रा पर का खनाया बाउली कूंग्रां तलाव
ादि हैं उस में नहाना नहीं क्योंकि खनाने वाले के पाप को पाता है। २०१। सवारी शय्या कूप बगीचा गृह यह सब जिसका
उसके ग्राज्ञा बिना इन सभों का भोग जो करता है सो जिस के ये सब हैं उस के पाप का चतुर्थांश भागी होता है।
०२। नदी देवतों का खनाया हुग्रा तलाव सर (ग्रर्थात् चार हाथ का धनुष होता है ग्राठ हजार धनुष तक जिस की गति
हीं है सो) झरना गड़हा इन सभों में नित्य ही स्नान करै इस स्थल में ऐसा संदेह हो सकता है कि इसी वचन करके पराये
नाया हुग्रा बाउली ग्रादि का निषेध सिद्ध रहा फेर पूर्व वचन काहे को कहा तो इस का उत्तर यह है कि ग्रपना खनाया

ये बक व्रतिनो विप्रा ये च मार्जारलिङ्गिनः। ते पतन्त्यन्धतामिस्रे तेन पापेन कर्म्मणा। १९७।
न धर्म्मस्यापदेशेन पापं कृत्वा व्रतञ्चरेत्। व्रतेन पापम्प्रच्छाद्य कुर्वन् स्त्रीशूद्रदम्भनम्। १९८।
प्रेत्येह चेदृशा विप्रा गर्ह्यन्ते ब्रह्मवादिभिः। छद्मना चरितं यच्च व्रतं रक्षांसि गच्छति। १९९।
ग्रलिङ्गी लिङ्गिवेषेण यो वृत्तिमुपजीवति। स लिङ्गिनां हरत्येनस्तिर्य्यग्योनैा च जायते। २००।
परकीय निपानेषु न स्नायाच्च कदा च न। निपानकर्त्तुः स्नात्वा तु दुष्कृतांशेन लिप्यते। २०१।
यानशय्यासनान्यस्य कूपोद्यानगृहाणि च। ग्रदत्तान्युपभुञ्जान एनसः स्यात्तुरीय भाक्। २०२।
नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरस्सु च। स्नानं समाचरेन्नित्यङ्गर्त्तप्रस्रवणेषु च। २०३। यमान्सेवेत
सततन्न नित्यन्नियमान्बुधः। यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान्केवलान्भजन्। २०४। नाश्रोत्रिय-
तते यज्ञे ग्रामयाजिकृते तथा। स्त्रिया क्लीबेन च हुते भुञ्जीत ब्राह्मणः क्वचित्। २०५।
ग्रश्लीकमेतत्साधूनां यत्र जुहृत्यमी हविः। प्रतीपमेतद्देवानां तस्मात्तत्परिवर्ज्जयेत्। २०६।
मत्तक्रुद्धातुराणाञ्च न भुञ्जीत कदा च न। केशकीटावपन्नञ्च पदास्पृष्टञ्च कामतः। २०७।
भ्रूणघ्नावेक्षितञ्चैव संस्पृष्टञ्चाप्युदक्यया। पतत्रिणावलीढञ्च शुना संस्पृष्टमेव च। २०८।
गवाचान्नमुपघ्रातं घुष्टान्नञ्च विशेषतः। गणान्नङ्गणिकान्नञ्च विदुषाञ्च जुगुप्सितम्। २०९।
स्तेनगायनयोश्चान्नन्तक्ष्णोवर्द्धिषिकस्य च। दीक्षितस्य कदर्य्यस्य बद्धस्य निगडस्य च। २१०।
ग्रभिशस्तस्य षण्ढस्य पुंश्चल्या दाम्भिकस्य च। शुक्तं पर्युषितञ्चैव शूद्रस्योच्छिष्टमेव च। २११।

ग्रौर सब जीवों के लिये उत्सृष्ट हो (ग्रर्थात् त्याग किया गया हो) तो उसमें स्नान करने की ग्राज्ञा है सो भी नदी ग्रादि
ग्रभाव में जानना। २०३। यम नियम इन दोनों का लक्षण ग्रागे कहैंगे तिस में यम को नित्य ही सेवन करै नियम को
हीं यम को छोड़ के केवल नियम के सेवन करने से पतित होता है। २०४। मूर्ख ग्राम के याग कराने वाला स्त्री नपुंसक
न सभों की यज्ञ में ब्राह्मण कधी न भोजन करै। २०५। इन सभों को यज्ञ कराना भले लोगों को ग्रश्लीक है (ग्रर्थात् लक्ष्मी
हित है) ग्रौर देवतों के ग्रप्रतिकूल है (ग्रर्थात् ग्रच्छा नहीं है) इस लिये उस कर्म्म को वर्जन करना। २०६। मत्त क्रुद्ध ग्रातुर
हों का ग्रन्न भोजन न करना केश कीट करके मिले ग्रन्न को ग्रौर इच्छा से पांव करके छूग्रा गया जो ग्रन्न है उसको भोजन
हीं करना। २०७। गर्भ के नाश करने वाले से देखा गया रजस्वला से छूग्रा गया चिड़िग्रा के चंचु से फोड़ा गया कुत्ता से
ग्रा गया। २०८। गैा के सूंघे को भोजन करेगा ऐसा भारी शब्द करके यज्ञ ग्रादि में जो दिया गया ऐसा जो ग्रन्न ग्रौर समुदाय
ग्रन्न वेश्यों का ग्रन्न इन सब ग्रन्नों का निंदा करते हैं पण्डित लोग। २०९। चोर गाने वाला बढ़ई ब्याज से जीने वाला यज्ञ में
क्षित (ग्रर्थात् यज्ञ करता है ग्रौर यज्ञ समाप्ति नहीं हुई है) कृपण बेड़ी में जो पड़ा है। २१०। दोषी नपुंसक व्यभिचारिणी
भी इन सभों का ग्रन्न शुक्त (ग्रर्थात् काल बीते से ग्रौर दूसरी बस्तु मिलाये बिना जो ग्रामिल होगया है) बासी शूद्र का जूटा। २११।

वैद्य व्याधा क्रूर जूठा भोजन कराने वाला कठोर कर्म करने वाला इन सभों का अन्न सूतिका (अर्थात् सौरी में जो स्त्री है) कर्म्म के लिये किया गया जो अन्न एक पंघति में बैठा पुरुष है उस का अपमान करके भोजन करने लगे और दूसरे ने भोजन के समाप्ति की आचमन की उस समय का अन्न सूतकी का अन्न । २१२ । पूजा के योग्य है उस को अनादर कर के दिया गया जो अन्न देवता आदि के लिये जो मांस नहीं बनी सो मांस पति पुत्र रहित स्त्री शत्रु नगरी पतित इन्हों का अन्न छीक जिस पर पड़ी ऐसा जो अन्न । २१३ । चुगुल झूठा यज्ञ का बेचने वाला (अर्थात् मैंने जो याग की है उस का फल तुम को होवे ऐसा कह के उस सों रुपैया लेने वाला) नट दरजी उपकार को न मानने वाला । २१४ । लोहार निषाद (अर्थात् जो दशईं अध्याय में कहेंगे) नट गायन इन को छोड़कर इन्हों के कर्म से जीने वाले सोनार बंस फोर हथियार के बेचने वाले । २१५ कुत्ता से जीनेवाले कलार धोबी रंगरेज घातुक जिस के गृह में उपपति (अर्थात् दूसरा पति है) । २१६ । जो उपपति को सहते हैं और जो स्त्रियों से जीते गए हैं मरन दिन से दश दिन जिसका बीता नहीं है इन्हों का अन्न और जो अन्न तुष्टि को नहीं करता है सो इन सब अन्नों को भोजन नहीं करना । २१७ । राजा शूद्र सोनार चमार इन्हों का अन्न क्रम से तेज ब्रह्मतेज

चिकित्सकस्य मृगयोः क्रूरस्योच्छिष्टभोजिनः। उग्रान्नं सूतिकान्नञ्च पर्य्याचान्तमनिर्द्दशम् । २१२ ।
अनर्चितं वृथा मांसमवीरायाश्च योषितः । द्विषदन्नन्नगर्य्यन्नं पतितान्नमवक्षुतम् । २१३ ।
पिशुनानृतिनोश्चान्नं क्रतुविक्रयिणस्तथा । शैलूषतन्तुवायान्नं कृतघ्नस्यान्नमेव च । २१४ ।
कर्म्मारस्य निषादस्य रङ्गावतारकस्य च । सुवर्णकर्त्तुर्वैणस्य शस्त्रविक्रयिणस्तथा । २१५ ।
श्ववतां शौण्डिकानाञ्च चैलनिर्णेजकस्य च । रजकस्य नृशंसस्य यस्य चोपपतिर्गृहे । २१६ ।
मृष्यन्ति ये चोपपतिं स्त्रीजितानाञ्च सर्वशः । अनिर्द्दशञ्च प्रेतान्नमतुष्टिकरमेव च । २१७ ।
राजान्नन्तेज आदत्ते शूद्रान्नम्ब्रह्मवर्चसम् । आयुः सुवर्णकारान्नं यशश्चर्मावकर्तिनः । २१८ ।
कारुकान्नम्प्रजां हन्ति बलन्निर्णेजकस्य च । गणान्नङ्गणिकान्नञ्च लोकेभ्यः परि कृन्तति । २१९ ।
पूयञ्चिकित्सकस्यान्नं पुंश्चल्यास्त्वन्नमिंद्रियम् । विष्ठा वार्द्धुषिकस्यान्नं शस्त्रविक्रयिणो मलम् । २२० ।
य एते न्येत्वभोज्यान्नाः क्रमशः परिकीर्तिताः । तेषान्त्वगस्थिरोमाणिवदन्त्यन्नम्मनीषिणः । २२१ ।
भुक्त्वाऽतोऽन्यतमस्यान्नममत्या क्षपणंत्र्यहम् । मत्या भुक्त्वा चरेत्कृच्छ्रं रेतो विण्मूत्रमेव च । २२२ ।
नाद्याच्छूद्रस्य पक्वान्नं विद्वानश्राद्धिनो द्विजः । आददितामम्मेवास्मादवृत्तावेक रात्रिकम् । २२३ ।
श्रोत्रियस्य कदर्यस्य वदान्यस्य च वार्द्धुषेः । मीमांसित्वोभयन्देवास्सममन्नमकल्पयन् । २२४ ।
तान्प्रजापतिराहेत्य माकृढ्वं विषमं समम् । श्रद्धापूतं वदान्यस्य हतमश्रद्धये तरत् । २२५ ।

आयुष यश इन को नाश करता है । २१८ । कारुक (अर्थात् दाल बनाने वाला) धोबी इन दोनों का अन्न क्रम से संतति बल इन्हों का नाश करता है समुदाय और वेश्या इन दोनों का अन्न दूसरे कर्म से मिलने वाला जो स्वर्गादि लोक उस को नाश करता है । २१९ । वैद्य व्यभिचारिणी व्याज से जीने वाला हथिआर का बेंचने वाला इन्हों का अन्न क्रम करके पीब बीज विष्ठा खंखार आदि मल कहाता है । २२० । जितने ये सब क्रम से अभोज्यान्न (अर्थात् जिन का अन्न भोजन के योग्य नहीं है) कहि आए हैं हर एक पद में इन से भिन्न जो इस प्रकरण में अभोज्यान्न पठित हैं तिन का अन्न त्वचा हाड़ रोम कहाता है यह पंडित लोग कहते हैं अर्थात् रोम आदि के भोजन करने से जो दोष होता है सो दोष इन्हों के अन्न को भोजन करने से होता है । २२१ । इन्हों में किसी के अन्न को बिना जाने भोजन करे तो तीन दिन उपवास करे और जान के भोजन करे तो कृच्छ्र व्रत जो आगे कहेंगे सो करे और विष्ठा मूत्र के भोजन करने में भी पृथक् पृथक् वही व्रत करे । २२२ । पण्डित जो ब्राह्मण हैं सो शूद्र का पक्वान्न भोजन न करे कदाचित् गृह में अन्न न हो तो एक रात्रि के भोजन योग्य कच्चा अन्न को ग्रहण करे । २२३ । कृपण वेद पाठी दाता व्याज लेके जीने वाला इन दोनों के अन्न को देवतों ने बिचार कर के सम कहा है । २२४ । उन देवतों के समीप ब्रह्मा ने आके कहा कि विषम को सम मति करो दाता का अन्न श्राद्ध से पवित्र है कृपण का अन्न अश्रद्धा से हत है । २२५ ।

लस को छोड़ कर श्रद्धा से नित्य ही इष्ट (अर्थात् यज्ञ) पूर्त्त (अर्थात् बाउली कूप तड़ागादि) को करै न्याय से र्जित धन करके श्रद्धा से किए गए ये दोनों कर्म अक्षय होते हैं। २२६। अच्छे ब्राह्मणों को पाके शक्ति पूर्वक संतुष्ट भाव से त्य ही दान इष्ट पूर्त्त इन्हीं को करें। २२७। असूया (अर्थात् गुण में दोष का प्रकट करना) से रहित हो के मांगने वालों । यथा शक्ति अन्न दिया करे क्योंकि नित्य ही जब दिया करेगा तो कोई समय में ऐसा पात्र आवेगा जो चारों ओर से तारेगा। २८। अन्न तिल दीप इन्हीं का देने वाला क्रम से तृप्ति अक्षय सुख अच्छी संतति उत्तम नेत्र इन को पाता है। २२९। भूमि हरण्य गृह रूपा इन्हीं का देने वाला क्रम से भूमि बड़ी आयुष अच्छा गृह उत्तम रूप इन्हीं को पाता है। २३०। वस्त्र घोड़ा ल गौ इन्हीं का देने वाला क्रम से चंद्र लोक अश्विनी कुमार लोक पुष्ट लक्ष्मी सूर्य लोक इन्हीं को पाता है। २३१। सवारी य्या अभय धान्य वेद इन्हीं को देने वाला क्रम से भार्य्या ऐश्वर्य्य निरंतर सुख ब्रह्म लोक के समान गति इन्हीं को पाता है। ३२। जल अन्न गौ भूमि वस्त्र तिल हिरण्य घी इन सब दानों में वेद दान बड़ा है। २३३। जिस जिस भाव से जो जो दान

श्रद्धयेष्टञ्च पूर्तञ्च नित्यं कुर्यादतंद्रितः । श्रद्धाकृते ह्यक्षयेते भवतः स्वागतैर्धनैः । २२६ ।
दानधर्मन्निषेवेत नित्यमैष्टिकपौर्तिकम् । परितुष्टेन भावेन पात्रमासाद्य शक्तितः । २२७ ।
यत्किञ्चिदपि दातव्यं याचितेनानसूयया । उत्पत्स्यते हि तत्पात्रं यत्तारयति सर्वतः । २२८ ।
वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः । तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम् । २२९ ।
भूमिदो भूमिमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः । गृहदोऽग्र्याणि वेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम् । २३० ।
वासोदश्चंद्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः । अनडुहः श्रियम्पुष्टाङ्गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम् । २३१ ।
यानशय्याप्रदो भार्य्यामैश्वर्य्यमभयप्रदः । धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्मसार्ष्टिताम् । २३२ ।
सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानम्विशिष्यते । वार्य्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्प्पिषाम् । २३३ ।
येन येन तु भावेन यद्यद्दानं प्रयच्छति । तत्तत्तेनैव भावेन प्राप्नोति प्रतिपूजितः । २३४ ।
योऽर्चितं प्रतिगृह्णाति ददात्यर्चितमेव च । तावुभौ गच्छतः स्वर्गं नरकन्तु विपर्य्यये । २३५ ।
न विस्मयेन तपसा वदेदिष्ट्वा च नानृतम् । नार्त्तोप्यपवदेद्विप्रान्न दत्वा परिकीर्त्तयेत् । २३६ ।
यज्ञोऽनृतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात् । आयुर्विप्रापवादेन दानञ्च मरिकीर्तनात् । २३७ ।
धर्म्मं शनैः सञ्चिनुयाद्वल्मीकमिव पुत्तिकाः । परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीड़यन् । २३८ ।
नामुत्र हि सहायार्थं पितामाता च तिष्ठतः । न पुत्रदारन्न ज्ञातिर्धर्म्मस्तिष्ठति केवलः । २३९ ।
एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते । एकोऽनुभूङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् । २४० ।
मृतं शरीरसुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ । विमुखा बान्धवा यान्ति धर्म्मस्तमनु गच्छति । २४१ ।
तस्माद्धर्म्मं सहायार्थं नित्यं सञ्चिनुयाच्छनैः । धर्म्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् । २४२ ।

ता है उस उस को उसी भाव से जन्मांतर में पाता है। २३४। जो पूजित बस्तु को देता है और पूजित बस्तु को लेता दोनों स्वर्ग में जाते हैं। २३५। तप करके गर्व को न करै यज्ञ करके झूठ न बोलै दुःखित होके ब्राह्मण को अपवाद न करै ान देके न कहै। २३६। झूठ बोलना गर्व करना ब्राह्मण का अपमान करना कहना इन सभों से क्रम करके यज्ञ तप आयुष ान इन्हीं का नाश होता है। २३७। सब जीव को पीड़ा न होने पावै ऐसी रीति से पर लोक के सहाय के लिये धर्म को टोरै जैसे चिउंटी बेमउट को बटोरती है। २३८। माता पिता पुत्र भार्या ज्ञाति ये सब परलोक में सहाय के लिये नहीं रहते वल धर्म्म ही रहता है। २३९। एकै उत्पन्न होता है एक ही लीन होता है एक सुकृत (अर्थात् पुण्य) को भोग करता है एक ष्कृत (अर्थात् पाप) को भोग करता है। २४०। काठ ढेला के सदृश मृत शरीर को पृथिवी में त्याग करके बांधव लोग वमुख होते हैं धर्म उस के पीछे चला जाता है। २४१। इस लिये सहाय के अर्थ नित्य ही धीरे धीरे धर्म को बटोरै धर्म की हायता से दुस्तर नरक को तरता है। २४२। * * * * * *

धर्म है प्रधान जिस को ऐसा जो पुरुष है और तप करके जिस का पाप क्षय है वह ब्रह्म स्वरूप है उस को वही धर्म उत्कृष्ट स्वर्ग आदि लोक में झट पट ले जाता है । २४३ । कुल को बड़ाई देने के लिये उत्तम उत्तम पुरुषों के साथ संबंध को करे अधमों के साथ संबंध को त्याग करै । २४४ । उत्तम उत्तम से संबंध को करते हुए हीन हीन से संबंध को छोड़ते हुए श्रेष्ठता को ब्राह्मण पाता है और दोष से शूद्रता को पाता है । २४५ । जिस कार्य का आरंभ किया उस कार्य को समाप्ति करने वाले कोमल स्वभाव वाला शीत घाम आदि जोड़ा जोड़ा जो वस्तु है उस को सहने वाला इंद्रियों को विषयों से रोकने वाला क्रूराचार वाले पुरुषों के साथ संबंध को छोड़ने वाला हिंसा से निवृत्त रहने वाला दान करने वाला स्वर्ग को पाता है । २४६ । लकड़ी जल मूल फल अन्न मधु अभय ये सब बिना मांगे जब मिलैं तो उस को और व्यभिचारिणी नपुंसक पतित शत्रु इन को छोड़ के सब से अर्थात् शूद्र आदि से) लेना । २४७ । यह वस्तु तुम को देंगे ऐसा देने वाले ने पहिले न कहा हो और लेने वाले के समीप में स्थापित हो बिना मांगे प्राप्त हो ऐसा जो सुवर्ण आदि वस्तु उस को पतित आदि को छोड़ कर दुष्कृत कर्म वाले से भी लेना ऐसा ब्रह्मा मानते हैं । २४८ । ऐसी भिक्षा को जो ग्रहण नहीं करता है उस का दिया हुआ हव्य कव्य को देवता पितर पंद्रह वर्ष तक

धर्मप्रधानम्पुरुषन्तपसा हतकिल्बिषम् । परलोकन्नयत्याशु भास्वन्तं खशरीरिणम् । २४३ ।
उत्तमैरुत्तमैर्न्नित्यं सम्बन्धानाचरेत्सह । निनीषुः कुलमुत्कर्षमधमानधमांस्त्यजेत् । २४४ ।
उत्तमानुत्तमान् गच्छन् हीनान् हीनांश्च वर्जयन् । ब्राह्मणः श्रेष्ठतामेति प्रत्यवायेन शूद्रताम् । २४५ ।
दृढकारी मृदुर्द्दान्तः क्रूराचारैरसंवसन् । अहिंस्रो दमदानाभ्यां जयेत्स्वर्गन्तथाव्रतः । २४६ ।
एधोदकम्मूलफलमन्नमभ्युद्यतञ्च यत् । सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्मध्वथा भयदक्षिणाम् । २४७ ।
आहृताभ्युद्यतां भिक्षां पुरस्तादप्रचोदिताम् । मेने प्रजापतिर्ग्राह्यामपि दुष्कृतकर्मणः । २४८ ।
नाश्नन्ति पितरस्तस्य दशवर्षाणि पञ्च च । न च हव्यम्वहत्यग्निर्यस्तामभ्यवमन्यते । २४९ ।
शय्यां गृहान्कुशान् गंधानपः पुष्प मणीन्दधि । धाना मत्स्यान् पयो मांसं शाकञ्चैव न निर्णुदेत् २५० ।
गुरून्भृत्यांश्चोज्जिहीर्षन्नर्च्चिष्यन्देवतातिथीन् । सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्न तु तृप्येत्स्वयन्ततः । २५१ ।
गुरुषु त्वभ्यतीतेषु विना वातैर्गृहेवसन् । आत्मनो वृत्तिमन्विच्छन् गृह्णीयात्साधुतः सदा । २५२ ।
आर्द्धिकः कुलमित्रञ्च गोपालो दास नापितौ । एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानन्निवेदयेत् । २५३ ।
यादृशोस्य भवेदात्मा यादृशञ्च चिकीर्षितम् । यथा चोपचरेदेनन्तथात्मानन्निवेदयेत् । २५४ ।
योन्यथा संतमात्मानमन्यथा सत्सु भाषते । स पापकृत्तमो लोके स्तेन आत्मापहारकः । २५५ ।
वाच्यर्था नियतास्सर्वे वङ्मूला वाग्विनिःसृताः । तान्तु यः स्ते नयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः । २५६ ।

ग्रहण नहीं करते । २४९ । शय्या गृह कुश गंध जल पुष्प मणि दधि लाई मछली दूध मांस शाक इन सभों को त्याग न करना । २५० । माता पिता सेवक भार्या आदि ये सब क्षुधा से पीड़ित हों तो इन्हों का उद्धार करने की इच्छा करता और देवता अतिथि के पूजने की इच्छा करत पतित आदि को छोड़ कर सब से प्रतिग्रह करै उस को आप भोजन न करै । २५१ । माता पिता आदि के मरे हुए अथवा जीते हुए को छोड़ कर दूसरे स्थान में बास करत अपने जीविका के लिये साधु लोगों से ग्रहण करै । २५२ । जो शूद्र जिस की खेती करता है उस शूद्र का अन्न उस के भोजन करने योग्य है जो शूद्र कुल का मित्र है और गोपाल दास नाऊ और जिस शूद्र ने अपनी आत्मा को समर्पण की है इन सभों का अन्न भोजन करने के योग्य है । २५३ । जिस शूद्र का कुल शील आदि करके जैसा स्वरूप है और जैसी करने की इच्छा है जिस प्रकार से सेवा करना योग्य है तैसा वह शूद्र अपने को कहै । २५४ । जो सज्जनों के मध्य में अपने को छिपाता है (अर्थात् जैसा है तैसा नहीं कहता है) सो लोक में बड़ा पाप करने वाला है और चोर है (अर्थात् अपने आत्मा को चोराया है) । २५५ । जितने अर्थ हैं सो सब वाणी में रहते है और उस का वाणी मूल है वाणी से निकलते हैं उस वाणी को जिस ने चोराया सो सब वस्तु का चोराने वाला हुआ । २५६ । * * * * * * * *

व ऋषि पितर इन तीनों की ऋण से यथा विधि छूट के सब वस्तु को पुत्र के अधीन करके मध्यस्थ (अर्थात् पुत्र स्त्री धन ादि में ममता को छोड़ कर ब्रह्म बुद्धि करके सर्वत्र सम दर्शन) को आश्रित होकर गृहई में बास करै। २५७। एकांत में नित्य ी अकेला अपनी आत्मा के हित को चिंतन करै इस में परम कल्याण को पाता है। २५८। ब्राह्मण गृहस्थ का यह नित्य ृत्ति कहा जो बुद्धि का बढ़ाने वाला स्नातक का व्रत वह भी कहा। २५९। वेद शास्त्र का जानने वाला ब्राह्मण पूर्व कथित ीति से रहै तो सब पाप से छूट कर नित्य ही ब्रह्म लोक में पूजित होवे। २६०। * । इति श्री मनुस्मृति भाषा टीकायां ुल्लूक भट्ट व्याख्या नुसारिण्यां श्री बाबू देवीदयाल सिंह कारितायां श्री मत्कम्पनी संस्कृत पाठ शालीय धर्म्म शास्त्रि गुलजार र्म्म पण्डित कृतायां चतुर्थो ऽध्यायः ॥ ४ ॥ * * * * * * * * *

स्नातक के धर्मों को सुन के ऋषि लोगों ने अग्नि से उत्पन्न महात्मा भृगु जी से इस बात को पूछा इस स्थल में यह देह है कि प्रथमाध्याय में मनु जी के पुत्र भृगु को कहि आए हैं और यहां अग्नि से उत्पन्न यह कहा सो कैसे बने तो इस का र्णय ऐसा है कि कोई कल्प में अग्नि से भी उत्पन्न हैं इस बात के जानने वाले ऋषियों ने कहा। १। धर्म शास्त्र में कथित

महर्षिपितृदेवानां गत्वान्टण्यं यथा विधि। पुत्रे सर्वं समासज्य वसेन्माध्यस्थमाश्रितः। २५७।
एकाकी चिंतयेन्नित्यं विविक्ते हितमात्मनः। एकाकी चिन्तयानो हि परं श्रेयोधिगच्छति। २५८।
एषोदिता गृहस्थस्य वृत्तिर्विप्रस्य शाश्वती। स्नातकव्रतकल्पश्च सत्ववृद्धिकरः शुभः। २५९।
अनेन विप्रो वृत्तेन वर्त्तयन्वेदशास्त्रवित्। व्यपेत कल्मषो नित्यम्ब्रह्मलोके महीयते। २६०।
इति मानवे धर्म्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां चतुर्थोऽध्यायः॥ ४ ॥ * * *

श्रुत्वैतान् ऋषयो धर्मान् स्नातकस्य यथोदितान्। इदमूचुर्महात्मानमनलप्रभवम्भृगुम्। १।
एवं यथोक्तम्विप्राणां स्वधर्ममनुतिष्ठताम्। कथं मृत्युः प्रभवति वेदशास्त्रविदाम्प्रभो। २।
सतानुवाच धर्म्मात्मा महर्षीन्मानवो भृगुः। श्रूयतां येन दोषेण मृत्युर्विप्रान् जिघांसति। ३।
अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात्। आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्रान् जिघांसति। ४।
लशुनं गृञ्जनञ्चैव पलाण्डुङ्कवकानि च। अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवानि च। ५।
लोहितान् वृक्षनिर्यासान् व्रश्चनप्रभवां स्तथा। शेलुङ्गव्यञ्च पेयूषं प्रयत्नेन विवर्जयेत्। ६।
वृथाकृसरसंयावस्पायसा पूपमेव च। अनुपाकृतमांसानि देवान्नानि हवींषि च। ७।
अनिर्दशाया गोः क्षीरमौष्ट्रमैकशफन्तथा। आविकं सन्धिनी क्षीरं विवत्सायाश्च गोः पयः। ८।

र्मों को करने वाले ब्राह्मणों को मारने में किस प्रकार से समर्थ मृत्यु होती है। २। धर्मात्मा भृगु जी ने उन महर्षियों से कहा ि जिस दोष करके ब्राह्मणों को मृत्यु मारती है सो सुनिए। ३। वेद के अनभ्यास से आलस करके आचार को छोड़ने से ाह्मणों को मृत्यु मारती है। ४। लहसुन गाजर पिआज छत्राक (अर्थात् कुकुर मुत्ता) विष्ठा आदि अपवित्र वस्तु से उत्पन्न ुलीय आदि (अर्थात् चवराई आदि) इन सब को ब्राह्मण भोजन न करै। ५। वृक्ष का लासा लालवर्ण काटने से उत्पन्न ासा कोई वर्ण हो शेलु (अर्थात् इन्दरि) जो नवप्रसूत गौ का दूध अग्नि संयोग से कड़ाई के प्राप्त है इन सब को यत्न पूर्वक ाना (अर्थात् इन्हें का भोजन न करना)। ६। देवता पितरों को छोड़ कर अपने अर्थ तिल सहित भात जो बना है पक्का ध से बना हुआ गुड़ सहित गोहूं का चूर्ण जो है दूध चाउर से जो वस्तु बनी है मालपूआ मंत्र से जिस पशु का स्पर्श नहीं आ उस की मांस देवतों के निमित्त अन्न बना है और उन्हें को निवेदन नहीं किया गया होम के निमित्त हवी बना है और म नहीं भया ऐसा हवि इन सब को देवता पितरों के निवेदन किए बिना भोजन नहीं करना। ७। बिआने से दश दिन के ंतर गौ का दूध ऊंटिनी का दूध एक खुर वाली (अर्थात् घोड़ी आदि) का दूध गार्भिन गौ का दूध बछरू जिस का मरि गया ऐसी गौ का दूध। ८। * * * * * * * *

भैंसि को छोड़ के बन में रहने वाले जितने जीव हैं तिन्हों का दूध स्त्री का दूध और शुक्त (अर्थात् काल पाके दूसरी वस्तु मिलाये बिना जो आमिल हो) इन सब को वर्जन करना। ९। शुक्त में दही और दही से बनी जो वस्तु जल से बना हुआ जो पुष्प मूल फल इन सब को भोजन करना। १०। कच्ची मांस के भोजन करने वाले जो पक्षी गीधं आदि गांव में रहने वाले जो पक्षी कबूतर आदि शास्त्र में जो कहे हैं भोजन के योग्य एक खुर वाले उन्हों को छोड़ कर जो एक खुर वाले हैं और टिट्टिभ (अर्थात् टिटिहिरी) इन को भोजन न करना। ११। गवरा प्लव (अर्थात् जल में पैरने वाले) हंस चकवा ग्रामवासी मुरगा सारस रज्जुवाल (अर्थात् पक्षि विशेष) दात्यूह (अर्थात् जल काक सुगा मैना)। १२। चंचु से जो भक्षण करते हैं दार्वाघाट आदि (अर्थात् बट फोर) जाला कार पाद शरारी आदि (अर्थात् आड़ी) कोयष्टि (अर्थात् टिटिहिरी) नख से विकिरण करके जो भक्षण करते हैं बाज आदि जल में डूब के जो मछली को भोजन करते हैं मद्गु आदि मारण स्थान की जो मांस (अर्थात् कसाई के घर की मांस) सूखी मांस। १३। बकुला बलाका (अर्थात् बक भेद) बहुत काला कौआ खिड़रिच मछली भक्षण करने वाले पक्षी ग्रामशूकर मछली इन सब को भोजन न करना। १४। जिस की मांस को जो भोजन करता है

आरण्यानां च सर्वेषां मृगाणां माहिषम्विना। स्त्रीक्षीरञ्चैव वर्ज्यानि सर्वशुक्तानि चैव हि। ९।

दधि भक्ष्यञ्च शुक्तेषु सर्वञ्च दधिसम्भवम्। यानि चैवाभिषूयंते पुष्पमूलफलैः शुभैः। १०।

क्रव्यादान् शकुनीन्सर्वान् तथा ग्रामनिवासिनः। अनिर्दिष्टांश्चैकशफां ष्टिट्टिभञ्च विवर्जयेत्। ११।

कलविङ्कम्प्लवं हंसं चक्राङ्गङ्ग्रामकुक्कुटम्। सारसं रज्जुवालञ्च दात्यूहं शुकसारिके। १२।

प्रतुदान् जालपादांश्च कोयष्टि नखविष्किरान्। निमज्जतश्च मत्स्यादान् शौनम्वल्लूरमेव च। १३।

बकञ्चैव बलाकाञ्च काकोलं खञ्जरीटकम्। मत्स्यादान्विड्वराहांश्च मत्स्यानेव च सर्वशः। १४।

यो यस्य मांसमश्नाति स तन्मांसाद उच्यते। मत्स्यादः सर्वमांसादस्तस्मान्मत्स्यान्विवर्जयेत्। १५।

पाठीनरोहितावाद्यौ नियुक्तौ हव्यकव्ययोः। राजीवान्सिंहतुण्डांश्च सशल्कांश्चैव सर्वशः। १६।

न भक्षयेदेकचरानज्ञातांश्च मृगद्विजान्। भक्ष्येष्वपि समुद्दिष्टान्सर्वान्पञ्चनखांस्तथा। १७।

श्वाविधं शल्यकं गोधां खड्गकूर्मशशांस्तथा। भक्ष्यान्पञ्चनखेष्वाहुरनुष्ट्रांश्चैकतोदतः। १८।

छत्राकम्विड्वराहञ्च लशुनङ्ग्रामकुक्कुटम्। पलाण्डुङ्गृञ्जनञ्चैव मत्या जग्ध्वा पतेद्द्विजः। १९।

अमत्यैतानि षड्जग्ध्वा कृच्छ्रं सान्तपनञ्चरेत्। यतिचान्द्रायणम्वापि शेषेषूपवसेदहः। २०।

सम्वत्सरस्यैकमपि चरेत्कृच्छ्रन्द्विजोत्तमः। अज्ञातभुक्तशुध्यर्थं ज्ञातस्य तु विशेषतः। २१।

यज्ञार्थम्ब्राह्मणैर्वध्याः प्रशस्ता मृगपक्षिणः। भृत्यानाञ्चैव वृत्यर्थमगस्त्यो ह्याचरत्पुरा। २२।

सो उस के मांस का भोजन करने वाला कहाता है मछली सब की मांस को भोजन करती है उस को जिस ने भोजन किया सो सब की मांस को भोजन कर चुका इस लिये मछली को भोजन न करना। १५। राजीव सिंह तुण्ड सशल्क पहिना रोहू इन सब को देवता पितरों को निवेदन करके भोजन करना। १६। जो बहुधा अकेलही चरते हैं सर्प आदि और जो बिना जाने हैं मृग पक्षी और पांच नख वाले बानर आदि इन सब को भक्षण न करना। १७। श्वाविध गोधा शल्यक खड्ग कूर्म शश (अर्थात् साली गोह साही गैंड़ा कछुआ खरहा) ये सब पंच नख वालों में भक्षण के योग्य हैं ऊंट को छोड़ कर एक ओर दांत वाले भक्षण के योग्य हैं निषिद्ध बिना। १८। छत्राक (अर्थात् कुकुर मुत्ता) ग्राम शूकर लहसुन ग्राम का मुरगा पिआज गाजर इन सभों को जानि के भोजन करै तो पतित होता है। १९। बे जाने इन छवों को भोजन करै तो सांतपन नाम का कृच्छ्र व्रत को करै अथवा यति चांद्रायण व्रत को करै बाक़ी में (अर्थात् वृत के लासा आदि के भक्षण में एक दिन उपवास करै)। २०। भोजन करने के योग्य जो बस्तु नहीं है उस को बिना जाने भोजन करने में जो दोष है उस दोष को नाश करने के लिये एक वर्ष में एक कृच्छ्र व्रत को करै और जो जानि के भोजन किही गई है उस के लिये तो विशेष करके कृच्छ्र व्रत करना। २१। यज्ञ के अर्थ और भृत्यों के भोजनार्थ प्रशस्त जो मृग और पक्षी हैं तिन को मारना अगस्त्य ऋषि ने पूर्व काल में वैसा किया है। २२।

पूर्व काल में ऋषियों ने यज्ञ के लिये भक्षण के योग्य मृग पक्षियों का वध किया है । २३ । जो कुछ बस्तु घृत तेल से पक्का हो और भोजन के योग्य हो सो बासी भी हो तो उस को भोजन करना और हवि का शेष बासी हो तो उस को भी भोजन करना । २४ । यव गोंहू से बनी जो बस्तु हैं और घृत तेल से पक्की नहीं है बासी है और दूध से जो बना है बासी है तो उस को भोजन करना । २५ । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों के जो भोजन करने के योग्य अयोग्य बस्तु है उस को कहा अब मांस के भक्षण वर्जन विधि को कहेंगे । २६ । प्रोक्षण नाम संस्कार से संस्कृत जो मांस है और यज्ञ में होम का जो शेष मांस है इन दोनों मांस को भोजन करना और ब्राह्मणों को मांस भोजन की इच्छा जब हो तब यथा विधि से मांस को भोजन करना प्राण नाश में भी मांस को भोजन करना । २७ । स्थावर जङ्गम जितनी बस्तु है सो सब प्राण का अन्न है इस बात को ब्रह्मा ने कल्पना की है । २८ । चर का अन्न अचर है डाढ़ वालों का अन्न बिना डाढ़ वाले हैं हस्त वालों का अन्न बे हस्त वाले हैं शूरों का अन्न डेराहुक हैं । २९ । दिन दिन में भोजन योग्य जीव को भोजन करत भोजन करने वाला दोष को प्राप्त नहीं होता क्योंकि भोजन करने योग्य जीव को और भोजन करने वाले जीव को ब्रह्मै ने उत्पन्न किया है । ३० । यज्ञ के निमित्त मांस को

बभुर्वुर्हि पुरोडाशा भक्ष्याणां मृगपक्षिणाम् । पुराणेष्वपि यज्ञेषु ब्रह्मक्षत्रसवेषु च । २३ ।
यत्किञ्चित्स्नेहसंयुक्तम्भक्ष्यम्भोज्यञ्च गर्हितम् । तत्पर्युषितमप्याद्य हविश्शेषञ्च यद्भवेत् । २४ ।
चिरस्थितमपि त्वाद्यमस्नेहाक्तं द्विजातिभिः । यवगोधूमजं सर्वं पयसश्चैव विक्रिया । २५ ।
एतदुक्तं द्विजातीनां भक्ष्याभक्ष्यमशेषतः । मांसस्यातः प्रवक्ष्यामि विधिम्भक्षणवर्जने । २६ ।
प्रोक्षितम्भक्षयेन्मांसम्ब्राह्मणानाञ्च काम्यया । यथा विधि नियुक्तस्तु प्राणानामेव चात्यये । २७ ।
प्राणस्यान्नमिदं सर्वम्प्रजापतिरकल्पयत् । स्थावरञ्जङ्गमञ्चैव सर्वम्प्राणस्य भोजनम् । २८ ।
चराणामन्नमचरा दंष्ट्रिणामप्यदंष्ट्रिणः । अहस्ताश्च सहस्तानां शूराणाञ्चैव भीरवः । २९ ।
नात्तादुष्यत्यदन्नाद्यान्प्राणिनोहन्यहन्यपि । धात्रैव सृष्टाह्याद्याश्च प्राणिनोऽत्तार एव च । ३० ।
यज्ञाय जग्धिर्मांसस्येत्येष दैवो विधिःस्मृतः । अतोन्यथा प्रवृत्तिस्तु राक्षसो विधिरुच्यते । ३१ ।
क्रीत्वा स्वयम्वाप्युत्पाद्य परोपकृतमेववा । देवान्पितॄश्चार्चयित्वा खादन्मांसं न दुष्यति । ३२ ।
नाद्यादविधिना मांसं विधिज्ञो नापदि द्विजः । जग्ध्वा ह्यविधिना मांसं प्रेत्य तैरद्यते वशः । ३३ ।
न तादृशम्भवत्येनो मृगहन्तुर्धनार्थिनः । यादृशम्भवति प्रेत्य वृथा मांसानि खादतः । ३४ ।
नियुक्तस्तु यथा न्यायं यो मांसं नात्ति मानवः । स प्रेत्य पशुतां याति सम्भवानेकविंशतिम् । ३५ ।
असंस्कृतान् पशून्मन्त्रैर्नाद्याद्विप्रः कदा च न । मंत्रैस्तु संस्कृता नद्याच्छाश्वतं विधिमास्थितः । ३६ ।
कुर्याद्घृतपशुं सङ्गे कुर्यात्पिष्टपशुन्तथा । न त्वेव तु वृथा हन्तुम्पशुमिच्छेत्कदा च न । ३७ ।
यावन्ति पशुरोमाणि तावत्कृत्वोह मारणम् । वृथा पशुघ्नः प्राप्नोति प्रेत्य जन्मनि जन्मनि । ३८ ।

भक्षण करना यह विधि है इस को छोड़ कर मांस भक्षण करना यह राक्षस विधि है । ३१ । मोल लिही अथवा दूसरे की आनी हुई मांस को देवता पितरों को निवेदन करके जो शेष मांस है उस को भोजन करने से पाप नहीं होता । ३२ । बिना आपत काल में विधि को जानने वाला जो ब्राह्मण है और विधि से रहित मांस को भक्षण किया तो उस की मांस को परलोक में वह भक्षण करता है कि जिस की मांस इस लोक में भक्षित हुई है । ३३ । धन के अर्थ मृग के मारने वाले को तैसा पाप नहीं होता जैसा पाप परलोक में वृथा मांस भक्षण करने वाले को होता है । ३४ । शास्त्रोक्त विधि से सिद्ध जो मांस है उस को जो मनुष्य भक्षण नहीं करता सो परलोक में एक्कीस जन्म तक पशु योनि में प्राप्त होता है । ३५ । संस्कार रहित मांस को ब्राह्मण कधी न भोजन करै और नित्य विधि में स्थित हो कर मंत्र से संस्कृत मांस को भक्षण करै । ३६ । अशक्य संते जब पशु के भक्षण का अनुराग होवे तो घृत का अथवा पिष्ट का पशु बना कर भक्षण करै परंतु पशु मारने की इच्छा न करै । ३७ । पशु को वृथा जो मारता है सो परलोक में कई जन्म तक जितने रोम हैं पशु के तितने बेर मारा जाता है । ३८ । * *

ब्रह्मा ने आप से आप यज्ञ के अर्थ पशु को उत्पन्न किया इस लिये यज्ञ में जो वध है सो वध नहीं कहाता है। ३९। अन्न पशु वृक्ष पक्षी कछुआ आदि ये सब यज्ञ के लिये मारे जाने से उत्तम जाति को पाते हैं। ४०। मधुपर्क यज्ञ देव पितृ कर्म इतने ही में पशु को मारना और कर्म में न मारना यह बात मनु जी ने कहा है। ४१। इन कर्मों में पशु की हिंसा करते संते वेद के तुल्य अर्थ को जानने वाला द्विज अपने को और पशु को उत्तम गति प्राप्त करता है। ४२। गृह में गुरु के स्थान में अथवा वन में बास करते संते ब्राह्मण वेद से अविहित हिंसा को आपत काल में भी न करे। ४३। वेद से कथित जो निश्चित हिंसा है इस चरा चर में उस को हिंसा न जानना क्योंकि वेद ही से धर्म निकला है। ४४। जो मारने के योग्य जीव नहीं है और उस को मारता हैं अपने सुख के लिये सो जीवते मरा है कहीं सुख नहीं पाता। ४५। जो सब जीवों का बंधन वध क्लेश को करने की इच्छा नहीं करता सो सभों का हितकारी है अति सुख को पाता है। ४६। जो मनुष्य किसी को नहीं मारता सो जिस बात का ध्यान करता है और जो करने की इच्छा करता है सो सब को यत्न बिना ही पाता है। ४७। प्राणियों की हिंसा बिना मांस उत्पन्न नहीं होती और प्राणियों का वध तो स्वर्ग के हित नहीं है इस लिये मांस को वर्जन

यज्ञार्थम्पशवस्सृष्टाः स्वयमेव स्वयम्भुवा। यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञेवधोऽवधः। ३९।
ओषध्यः पशवो वृक्षास्तिर्य्यञ्चः पक्षिणस्तथा। यज्ञार्थन्निधनं प्राप्ताः प्राप्नुवन्त्युत्सृतीः पुनः। ४०।
मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्म्मणि। अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्य ब्रवीन्मनुः। ४१।
एष्वर्थेषु पशून् हिंसन् वेदतत्वार्थविद्द्विजः। आत्मानञ्च पशुञ्चैव गमयत्युत्तमां गतिम्। ४२।
गृहे गुरावरण्ये वा निवसन्नात्मवान्द्विजः। नावेदविहितां हिंसामापद्यपि समाचरेत्। ४३।
या वेदविहिता हिंसा नियतास्मिंश्चराचरे। अहिंसामेव तान्विद्याद्वेदाद्धर्म्मो हि निर्बभौ। ४४।
योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया। सं जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित्सुखमेधते। ४५।
यो बन्धनवधक्लेशान्प्राणिनान्न चिकीर्षति। स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते। ४६।
यद्ध्यायति यत्कुरुते रतिम्बध्नाति यत्र च। तदवाप्नोत्ययत्नेन यो हिनस्ति न किञ्च न। ४७।
न कृत्वा प्राणिनां हिंसाम्मांसमुत्पद्यते क्वचित्। न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसम्विवर्जयेत्। ४८।
समुत्पत्तिञ्च मांसस्य वधबंधौ च देहिनाम्। प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात्। ४९।
न भक्षयति यो मांसं विधिं हित्वा पिशाच वत्। स लोके प्रियतां याति व्याधिभिश्च न पीड्यते। ५०।
अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी। संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः। ५१।
स्वमांसं परमांसेन यो वर्द्धयितुमिच्छति। अनभ्यर्च्य पितृन्देवां स्ततोन्यो नास्त्यपुण्यकृत्। ५२।
वर्षे वर्षेश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः। मांसानि च न खादेद्यस्तयोः पुण्यफलं समम्। ५३।
फलमूलाशनैर्मेध्यैर्मुन्यन्नानाञ्च भोजनैः। न तत्फलमवाप्नोति यन्मांसपरिवर्जनात्। ५४।

करना। ४८। मांस की उत्पत्ति और प्राणियों का बध बंधन इन सब को देख कर सर्व मांस के भक्षण से निवृत्त होवे। ४९। विधि को छोड़ कर पिशाच की नाईं जो मांस को भक्षण नहीं करता सो लोक में सब का प्रिय होता है और व्याधि से पीड़ित नहीं होता। ५०। अनुमंता (अर्थात् जिस की संमति बिना हनन न हो सके) विशसिता (अर्थात् शस्त्र से मांस को काटने वाला) और मारने वाला मांस को बेचने वाला मांस को मोल लेने वाला मांस का बनाने वाला ले आने वाला भोजन करने वाला ये आठो मारने वाले ही कहाते हैं। ५१। पराये की मांस से अपनी मांस को बढाने की इच्छा जो पुरुष करता है उस से अधिक दूसरा कोई पापी नहीं है। ५२। सौ वर्ष तक वर्ष वर्ष में अश्वमेध यज्ञ को जो करता है और जो मांस को भक्षण नहीं करता है दोनों के पुण्य का फल सम है। ५३। मांस के त्याग करने से जो फल होता है सो फल पवित्र जो मुनि का अन्न है तीनी आदि और मूल फल इन्हों के भक्षण से नहीं होता। ५४। * * * *

जिस को मांस को मैं इस लोक में भक्षण करता हूं वह मुझ को परलोक में भक्षण करेगा मांस शब्द का अर्थ यही है इस बात को पण्डित लोग कहते हैं । ५५ । मांस और मदिरा इन दोनों के भक्षण में दोष नहीं है और मैथुन में भी दोष नहीं है क्योंकि यह तो जीवों की प्रवृत्ति ही है (अर्थात् स्वभाव ही है) परंतु इन्हों से निवृत्ति होना तो महा फल है अब इस का तात्पर्यार्थ वर्णन करते हैं कि मांस भक्षण मैथुन मदिरापान इन तीनों की जो विधि वाक्य है सो प्रवृत्ति कराने वाली नहीं है क्योंकि प्रवृत्ति तो इच्छा ही से होती है तब यह सब वाक्य व्यर्थ हो के यज्ञ में मांस भक्षण विवाह में मैथुन सौत्रामणी नाम की यज्ञ में मदिरापान इन सभों के करने से दोष का अभाव जनाती हैं और उन सब वाक्यों का तात्पर्य इन तीनों की निवृत्ति ही में है । ५६ । चारों वर्णों का क्रम से ज्यों का त्यों प्रेत शुद्धि और द्रव्य शुद्धि को कहैंगे । ५७ । दांत उत्पन्न भए चूडाकरण भए जनेऊ भए संते मरणे में और जन्म में सपिण्ड (अर्थात् सात पुरुष तक) और समानोदक (अर्थात् सात पुरुष के ऊपर) जन्म नाम ज्ञान तक अशुद्ध होते हैं । ५८ । ब्राह्मण को मरण निमित्तक आशौच १० । ४ । ३ । १ दिन तक होता है इस प्रकरण में दिन शब्द रात्रि दिन का जनाने वाला है और रात्रि शब्द दिन रात्रि का जनाने वाला हैं वेद के दो भाग हैं एक मंत्र दूसरा ब्राह्मण इन दोनों भागों को संपूर्ण पढ़े हो और अग्नि होत्र करता हो तो उस को एक दिन आशौच होता है केवल वेद ही को पढ़े हो और अग्नि होत्र न करता हो तो उस को तीन दिन तक आशौच होता है वेद पठन और अग्नि होत्र इन दोनों से रहित हो परंतु

मांसभक्षयिता मुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम् । एतन्मांसस्य मांसत्वम्प्रवदन्ति मनीषिणः । ५५ ।
न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने । प्रवृत्तिरेषा भूतानान्निवृत्तिस्तु महाफला । ५६ ।
प्रेतशुद्धिम्प्रवक्ष्यामि द्रव्यशुद्धिन्तथैव च । चतुर्णामपि वर्णानां यथावदनुपूर्वशः । ५७ ।
दन्तजातेऽनुजाते च कृतचूड़े च संस्थिते । अशुद्धा बांधवास्सर्वे सूतके च तथोच्यते । ५८ ।
दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते । अर्वाक्सञ्चयनादस्थ्नां त्र्यहमेकाहमेव च । ५९ ।
सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्त्तते । समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने । ६० ।
यथेदं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते । जननेप्येवमेव स्यान्निपुणां शुद्धिमिच्छताम् । ६१ ।
सर्वेषां शावमाशौचम्मातापित्रोस्तु सूतकम् । सूतकम्मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः । ६२ ।
निरस्य तु पुमान् शुक्रमुपस्पृश्यैव शुध्यति । बैजिका दभिसम्बन्धादनुरुन्ध्यादघं त्र्यहम् । ६३ ।
अन्हा चैकेन राज्या च त्रि रात्रैरेव च त्रिभिः । शावस्पृशो विशुध्यन्ति त्र्यहात्तूदकदायिनः । ६४ ।
गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन् । प्रेतहारैस्समन्तत्र दशरात्रेण शुध्यति । ६५ ।
रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुध्यति । रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला । ६६ ।

स्मार्ताग्नि (अर्थात् स्मृति से कथित अग्नि) सहित हो तो उस को चार दिन आशौच होता है सर्व गुण से हीन हो तो उस को दश दिन आशौच होता है । ५९ । सतयें पुरुष में सपिण्डता की निवृत्ति होती है (अर्थात् जिस पुरुष से गणना करें उस का पिता आदि छ पुरुष के ऊपर) अपने गोत्र में जन्म नाम को ज्ञान नहीं है तब समानोदकता की निवृत्ति होती है । ६० । सपिण्ड में निपुण शुद्धि की इच्छा करने वाले पुरुषों के जैसा मरण में आशौच तैसा जन्म में आशौच है । ६१ । मरण निमित्तक आशौच (अर्थात् जिस में किसी को छूना नहीं होता) तो सब को होता है और सूतक तो (अर्थात् जन्म निमित्तक आशौच तो) माता पिता इसी दो को छूना नहीं होता तिस में भी माता ही को छूना नहीं होता पिता तो स्नानोत्तर छूने के योग्य होता है । ६२ । मैथुन बिना भी इच्छा से वीर्य पात करके स्नान से शुद्ध होता है और प्रथम पति को छोड़ कर दूसरा पति जिस स्त्री ने किया उस स्त्री में दूसरे पति से उत्पन्न अपत्य भए से दूसरे पति को तीन दिन का आशौच होता है । ६३ । सपिण्ड दश रात्रि दिन में शुद्ध होते हैं और जो पूर्व कथित गुण सहित सपिण्ड एक दिन आशौच के योग्य हैं सो जब मुरदा को छूवे तो तीन दिन में शुद्ध होते हैं और जो समानोदक हैं सो भी तीनै दिन में शुद्ध होते हैं । ६४ । गुरु का दाह करने से शिष्य भी गुरु के सपिण्ड सदृश आशौच को पाता है । ६५ । गर्भ के पात में जै मास का गर्भ है तै रात्रि आशौच होता है रज के बीतने से स्नान करके रजस्वला स्त्री शुद्ध होती है । ६६ ।

चूडा करण भये बिना मरण में एक रात्रि दिन आशौच होता है और चूड़ा करण के उत्तर मरण में तीन रात्र आशौच होता है। ६७। दो मास होने के भीतर मरण में उस मुरदे को अलंकार कर के ग्राम से बाहर बन में गाड़ना अस्थि संचयन न करना। ६८। उस का अग्नि से संस्कार न करना जल भी न देना बन में काठ की नाईं त्याग करके तीन दिन आशौच मानना। ६९। तीन वर्ष जिस का पूरा नहीं भया उस के मरने में जल देना और अग्नि से दाह न करना अथवा दांत उत्पन्न भए पूरा हो या नामकरण के उत्तर मरा हो तो दाह करना जल देना इस में मरे हुए को आनंद होता है और न करै तो दोष भी नहीं होता है। ७०। सहाध्यायी (अर्थात् साथ पढ़ने वाला) के मरण में एक दिन आशौच होता है जन्म में समानोदक को त्रिरात्र आशौच होता है। ७१। विवाह के पूर्व वाग्दान के उत्तर स्त्री के मरण में बांधव (अर्थात् पति आदि) तीन दिन में शुद्ध होते हैं और विवाह भये मरने में पिता आदि सब तीन दिन में शुद्ध होते हैं। ७२। क्षारलवण (अर्थात् बनाया लवण) को न भोजन करना नदी आदि में तीन दिन तक स्नान करना मांस को न भक्षण करना पृथक् पृथक् भूमि में शयन करना। ७३। सन्निधि में यह शावाशौच (अर्थात् मरण निमित्तक आशौच) को कहा असन्निधि में सम्बन्धी और बान्धवों को आगे जो कहैंगे सो जाना चाहिए। ७४।

नृणामकृतचूड़ानां विशुद्धिर्नैशिकी स्मृता। निर्वृत्तचूड़कानान्तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते। ६७।
ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं निदध्युर्बान्धवा बहिः। अलंकृत्य शुचौ भूमावस्थिसंचयनादृते। ६८।
नास्य कार्य्योऽग्निसंस्कारो न च कार्य्योदकक्रिया। अरण्ये काष्ठवत्त्यक्त्वा क्षपेयुस्त्र्यहमेव च। ६९।
नात्रि वर्षस्य कर्तव्या बांधवैरुदकक्रिया। जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाम्नि वापि कृते सति। ७०।
सब्रह्मचारिण्येकाहमतीते क्षपणं त्र्यहम्। जन्मन्येकोदकानान्तु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते। ७१।
स्त्रीणामसंस्कृतानान्तु त्र्यहाच्छुध्यन्ति बान्धवाः। यथोक्तेनैव कल्पेन शुध्यन्ति तु सनाभयः। ७२।
अक्षारलवणान्नाः स्युर्निमज्जेयुश्च ते त्र्यहम्। मांसाशनञ्च नाश्नीयुः शयीरंश्चपृथक्क्षितौ। ७३।
सन्निधावेष वै कल्पः शावाशौचस्य कीर्त्तितः। असन्निधावयं ज्ञेयो विधिः सम्बन्धिबान्धवैः। ७४।
विगतन्तु विदेशस्थं शृणुयाद्योह्यनिर्दशम्। यच्छेषन्दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत्। ७५।
अतिक्रान्ते दशाहे च त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्। सम्वत्सरेव्यतीते तु स्पृष्ट्वैवापो विशुध्यति। ७६।
निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च। सवासा जलमाप्लुत्य शुद्धो भवति मानवः। ७७।
बाले देशान्तरस्थे च पृथक् पिण्डे च संस्थिते। सवासा जलमाप्लुत्य सद्य एव विशुध्यति। ७८।
अन्तर्दशाहे स्यातान्चेत्पुनर्मरणजन्मनी। तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तत्स्यादनिर्दशम्। ७९।
त्रिरात्रमाहुराशौचमाचार्य्ये संस्थिते सति। तस्य पुत्रे च पत्न्याञ्च दिवारात्रमिति स्थितिः। ८०।
श्रोत्रिये तूपसम्पन्ने त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्। मातुले पक्षिणीं रात्रिं शिष्यर्त्विग्बांधवेषु च। ८१।

विदेश में मरे हुए की बात दश दिन के भीतर सुनने में आवे तो जै दिन शेष रहै दश दिन में तै दिन आशौच मानना। ७५। दश दिन के ऊपर सुनने में आवै तो तीन दिन रात्रि आशौच जानना वर्ष भर के ऊपर सुनने में आवै तो जल का स्पर्श करके शुद्ध होता है। ७६। दश दिन के ऊपर जाति का मरण और पुत्र का जन्म सुनने में आवै तो वस्त्र सहित स्नान करके शुद्ध होता है। ७७। विदेश में समानोदक बालक का मरण सुनने से वस्त्र सहित स्नान करके उसी समय में शुद्ध होता है। ७८। एक का जन्म भये से दश दिन के भीतर दूसरे का जन्म हो और एक के मरण से दश दिन के भीतर दूसरे का मरण हो तो प्रथम आशौच बीते से दूसरा भी आशौच बीत जाता है। ७९। आचार्य के मरण में शिष्य को त्रिरात्रि आशौच होता है आचार्य की पत्नी और पुत्र के मरण में एक दिन रात्रि आशौच होता है यह शास्त्र की मर्यादा है। ८०। वेद शास्त्र का पढ़ने वाला मरा हो तो स्नेह आदि करके उसके समीप रहने वाले को अथवा उस के गृह में रहने वाले को त्रिरात्रि आशौच होता है मामा शिष्य ऋत्विक् बांधव के मरण में पक्षिणी (अर्थात् पूर्व पर दिन सहित रात्रि) आशौच होता है। ८१। * *

राजा दिन में मर गया हो तो दिन भर और रात्रि को मर गया हो तो रात्रि भर आशौच होता है उस राजा के राज्य में रहने वाले प्रजों को मूर्ख ब्राह्मण के मरने में उस के गृह में रहने वालों को एक दिन आशौच होता है (अर्थात् दिन में मरा हो तो दिन भर रात्रि में मरा हो तो रात्रि भर) सहाध्यायी (अर्थात् जिस के साथ पढ़े हैं) के मरण में गुरु (अर्थात् वेद और शास्त्र का थोड़ा उपकार करने वाला) के मरण में एक दिन आशौच होता है पूर्व कथित की नाईं । ८२ । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये सब क्रम करके । १० । १२ । १५ । ३० । दिन में शुद्ध होते हैं । ८३ । पाप के दिन को न बढ़ाना अग्नि क्रिया (अग्नि होत्र) को न त्याग करना अग्नि होत्री अशक्त हो तो उस का पुत्र आदि अग्नि होत्र को करै उस कर्म करने में अशुद्धता उस को नहीं रहती । ८४ । चाण्डाल रजस्वला पतित सूतिका (अर्थात् जिस स्त्री के पुत्र अथवा पुत्री भई हो और दश दिन बीता न हो) मुरदा मुरदा को छूने वाला इन सभों को छूने से स्नान करके शुद्ध होता है । ८५ । अशुचि के दर्शन में आचमन करके यत्न से शक्ति पूर्वक नित्य ही जैसा उत्साह हो तैसा सूर्य की मंत्र और पवित्र करनहार मंत्र को जप करै । ८६ । मनुष्य का गीला हाड़ को छूकर स्नान से ब्राह्मण शुद्ध होता है और सूखा हाड़ को छूकर आचमन करके गौ को छूकर अथवा सूर्य को देख कर शुद्ध होता है । ८७ । आदिष्टी (अर्थात् ब्रह्मचारी) किसी के मरने में जल को न देवे जब तक व्रत समाप्त न होवे व्रत समाप्त भये संते

प्रेते राजनि स ज्योतिर्यस्य स्याद्विषये स्थितिः । अश्रोत्रिये त्वहः कृत्स्नमनूचाने तथा गुरौ । ८२ ।
शुध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः । वैश्यः पञ्च दशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति । ८३ ।
न वर्द्धयेदघाहानि प्रत्यूहेन्नाग्निषु क्रियाः । न च तत्कर्मकुर्वाणः सनाभ्योप्यशुचिर्भवेत् । ८४ ।
दिवाकीर्त्तिमुदक्याञ्च पतितं सूतिकान्तथा । शवन्तत्स्पृष्टिनञ्चैव स्पृष्ट्वा स्नानेन शुध्यति । ८५ ।
आचम्य प्रयतो नित्यं जपेदशुचि दर्शने । सौरान्मंत्रान् यथोत्साहम्पावमानीश्च सर्वशः । ८६ ।
नारं स्पृष्ट्वास्थि सस्नेहं स्नात्वा विप्रो विशुध्यति । आचम्यैव तु निस्नेहं गामालभ्यार्कमीक्ष्य वा । ८७ ।
आदिष्टीनोदकङ्कुर्य्यादाव्रतस्य समापनात् । समाप्ते तूदकं कृत्वा त्रिरात्रेणैव शुध्यति । ८८ ।
वृथा सङ्करजातानां प्रव्रज्यासु च तिष्ठताम् । आत्मनस्त्यागिनाञ्चैव निवर्त्तेतोदकक्रिया । ८९ ।
पाखण्डमाश्रितानाञ्च चरन्तीनाञ्च कामतः । गर्भभर्तृद्रुहाञ्चैव सुरापीनाञ्च योषिताम् । ९० ।
आचार्यं स्वमुपाध्यायं पितरम्मातरङ्गुरुम् । निर्हृत्य तु व्रती प्रेतान्न व्रतेन वियुज्यते । ९१ ।
दक्षिणे न मृतं शूद्रं पुरद्वारेण निर्हरेत् । पश्चिमोत्तरपूर्वैस्तु यथासंख्यं द्विजातयः । ९२ ।
न राज्ञामघदोषोऽस्ति व्रतिनान्न च सत्रिणाम् । ऐन्द्रं स्थानमुपासीना ब्रह्मभूता हि ते सदा । ९३ ।
राज्ञो माहात्मिके स्थाने सद्यः शौचम्विधीयते । प्रजानाम्परिरक्षार्थमासनं चात्र कारणम् । ९४ ।
डिंबाहवहतानां च विद्युता पार्थिवेन च । गोब्राह्मणस्य चैवार्थे यस्य चेच्छति पार्थिवः । ९५ ।

जल को देकर तीन रात्रि में शुद्ध होता है । ८८ । अपने धर्म को त्याग करने वाला हीन वर्ण से उत्कृष्ट वर्ण की स्त्री में उत्पन्न झूठ ही सन्यास लेने वाला व्यर्थ (अर्थात् शास्त्र से प्रतिषिद्ध आत्मा का त्याग करने वाला) इन सबों के मरने में जल को न देना । ८९ । पाखण्ड धर्म (अर्थात् वेद से अविहित धर्म) को करने वाली इच्छा पूर्वक जहां चाहे तहां जाने वाली गर्भ और भर्ता इन्हों से द्रोह करने वाली सुरा को पीने वाली जो स्त्री है उस के मरने में जल को न देना । ९० । आचार्य उपाध्याय माता पिता गुरु इन सभों को दाह आदि करने से व्रती (अर्थात् ब्रह्मचारी) अपने व्रत से भ्रष्ट नहीं होता । ९१ । पुर के पश्चिम उत्तर पूर्व दक्षिण द्वार से क्रम करके मरे हुए ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र को ले जाना । ९२ । राजा व्रती (अर्थात् ब्रह्मचारी और चांद्रायण आदि का करने वाला) यज्ञ को जो करता है इन तीनों को आशौच नहीं लगता क्योंकि राजा तो इंद्र के स्थान पर बैठा है और ब्रह्मचारी व्रती यज्ञ करने वाला ये सब ब्रह्म स्वरूप हैं सर्व काल में । ९३ । राजा न्याय कार्य करने में शुद्ध रहता है और कार्य में नहीं क्योंकि प्रजों का रक्षण अपने स्थान (अर्थात् सिंहासन) पर बैठे बिना नहीं होता । ९४ । राजा के बिना जो युद्ध होते हैं उस में जो मर गए हैं और बिजुली से जो मरे हैं राजा की आज्ञा से वध के योग्य जो मारे गए हैं गौ और ब्राह्मण इन दोनों के अर्थ जो मरे हैं इस में आशौच नहीं होता और अपने कार्य के होने के लिये जिस को राजा आशौच की इच्छा नहीं करता है उस को आशौच नहीं होता है । ९५ ।

चंद्र अग्नि सूर्य वायु इंद्र कुवेर वरुण यम इन सभों की शरीर को राजा धारण करता है। ९६। राजा सब लोकपालों का अंश है इस लिये उस को आशौच नहीं होता लोक का ईश राजा है इस कारण से मनुष्यों के शौच आशौच को नाश करने सकता है। ९७। संग्राम में क्षत्रियों के धर्म से शस्त्र करके जो मरे हैं उस को उसी समय में पवित्रता और यज्ञ स्थित होता है। ९८। संपूर्ण क्रिया करके आशौच के अंत में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये सब क्रम करके जल वाहनायुध पैंना अथवा रसरी लाठी इन सभों को स्पर्श करके शुद्ध होते हैं। ९९। हे ऋषियों आप सब से सपिण्डों का आशौच हम ने कहा अब असपिण्डों का प्रेत शुद्धि को जानिये। १००। मरे हुए असपिण्ड ब्राह्मण को बंधु की नाईं निर्हरण करके (अर्थात् श्मशान तक ले जाके) तीन रात्रि में शुद्ध होता है और मामा मौसी आदि को भी श्मशान तक लेजा के तीन रात्रि में शुद्ध होता है। १०१। जब मरे हुए के सपिण्ड का अन्न को भोजन करै तो दश दिन में शुद्ध होता है और अन्न को भोजन न करै और उस के गृह में बास भी न करै तो एक दिन में शुद्ध होता है। १०२। मरा हुआ मनुष्य अपनी जाति हो किम्वा दूसरी जाति हो और उस के पीछे अपनी इच्छा से गमन करके वस्त्र सहित स्नान करै घी भोजन करै अग्नि को छूवे तब शुद्ध होता है। १०३। अपनी जाति रहत संते मरे हुए

सोमाग्न्यर्कानिलेंद्राणां वित्ताप्पत्योर्यमस्य च। अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः। ९६।

लोकेशाधिष्ठितो राजा नास्याशौचम्विधीयते। शौचाशौचं हि मर्त्यानां लोकेशप्रभवाप्ययम्। ९७।

उद्यतैराहवे शस्त्रैः क्षत्रधर्महतस्य च। सद्यः सन्तिष्ठते यज्ञस्तथा शौचमितिस्थितिः। ९८।

विप्रः शुध्यत्यपः स्पृष्ट्वा क्षत्रियो वाहनायुधम्। वैश्यः प्रतोदं रश्मीन्वा यष्टिं शूद्रः कृतक्रियः। ९९।

एतद्वोऽभिहितं शौचं सपिण्डेषु द्विजोत्तमाः। असपिण्डेषु सर्वेषु प्रेतशुद्धिन्निबोधत। १००।

असपिण्डं द्विजं प्रेतं विप्रो निर्हृत्य बन्धुवत्। विशुध्यति त्रिरात्रेण मातुराप्तांश्च बान्धवान्। १०१।

यद्यन्नमत्ति तेषान्तु दशाहेनैव शुध्यति। अनदन्नन्नमह्नैव न चेत्तस्मिन् गृहे वसेत्। १०२।

अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव च। स्नात्वा सचैलः स्पृष्ट्वाग्निं घृतम्प्राश्य विशुध्यति। १०३।

न विप्रं स्वेषु तिष्ठत्सु मृतं शूद्रेण नाययेत्। अस्वर्ग्या ह्याहुतिस्सा स्याच्छूद्रसंस्पर्शदूषिता। १०४।

ज्ञानन्तपोऽग्निराहारो मृण्मनो वार्युपाञ्जनम्। वायुः कर्मार्ककालौ च शुद्धेः कर्तॄणि देहिनाम्। १०५।

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचम्परं स्मृतम्। योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारि शुचिः शुचिः। १०६।

क्षान्त्या शुध्यन्ति विद्वांसो दानेनाकार्य्यकारिणः। प्रच्छन्न पापा जप्येन तपसा वेदवित्तमाः। १०७।

मृत्तोयैः शुध्यते शोध्यन्नदी वेगेन शुध्यति। रजसा स्त्री मनोदुष्टा संन्यासेन द्विजोत्तमः। १०८।

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनस्सत्येन शुध्यति। विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति। १०९।

एष शौचस्यवः प्रोक्तः शारीरस्य विनिर्णयः। नानाविधानां द्रव्याणां शुद्धेः शृणुत निर्णयम्। ११०।

ब्राह्मण को शूद्र न ले जावे शूद्र के छूने से उस के शरीर का अग्नि में आहुति स्वर्ग के हित नहीं होती। १०४। ज्ञान तप अग्नि आहार माटी मन जल लेप वायु कर्म सूर्य काल ये सब मनुष्यों के शुद्धि करने वाले हैं। १०५। सब शौच में अर्थ शौच (अर्थात् न्याय से धन का अर्जन) बड़ा है जिस का अर्थ शुद्ध है सोई शुद्ध है और माटी जल से जो शुद्ध है और अर्थ से अशुद्ध है सो शुद्ध नहीं है। १०६। पण्डित क्षमा करके करने के योग्य जो कार्य नहीं है उस के करने वाले दान करके और जिस का पाप छिपा है सो जप करके वेद के पढ़ने वाले तप करके शुद्ध होते हैं। १०७। शुद्धि करने के योग्य जो वस्तु है सो माटी जल से नदी वेग करके पर पुरुष में मन जिस का लगा है ऐसी स्त्री रज से संन्यास (अर्थात् छटएं अध्याय में जो कहेंगे) उस से ब्राह्मण शुद्ध होता है। १०८। जल करके शरीर सत्य करके मन ब्रह्म विद्या और तप करके भूतात्मा (अर्थात् लिंग शरीर सहित जीवात्मा) ज्ञान करके बुद्धि शुद्धि होती है। १०९। भृगु जी कहते हैं कि हे ऋषियों यह शरीर शुद्धता के निर्णय को आप लोगों से कहा अब नाना प्रकार के जो द्रव्य हैं उस के शुद्धि का निर्णय सुनिए। ११०।

तैजसपात्र (अर्थात् सुवर्ण आदि का पात्र) मरकत आदि मणि का पात्र पत्थर का पात्र ये सब भस्म जल माटी इन करके शुद्ध होते हैं इस बात को मनु आदि ऋषियों ने कहा । १११ । उच्छिष्ट आदि लेप से रहित जो भाण्ड है सोना शंख मोती पत्थर का और रेखा रहित रूपे का जो भाण्ड है सो सब केवल जल करके शुद्ध होते हैं । ११२ । अग्नि और जल के संयोग से सोना और रूपा हुआ है इस लिये अपनी योनि करके दोनों की शुद्धि बहुत अच्छी है । ११३ । तामा लोहा कांसा पीतल रांगा सीसा इन सभों का शौच यथा योग्य रेह अमिली जल इन सभों से करना । ११४ । जितने द्रव वस्तु हैं (अर्थात् चूनें के योग्य घृत तैल आदि) सो कौआ कीडा आदि से हत हो और प्रमाण से पसर भर हो तो प्रादेश (अर्थात् अंगूठा और तर्जनी के फैलाने भर) प्रमाण कुश पत्र दो करके ऊपर उच्छालने से शुद्ध होते हैं शय्या आदि को उच्छिष्ट आदि करके उप घात भया हो तो प्रोक्षण (अर्थात् जल का छींटा) से काठ का पात्र जब उच्छिष्ट आदि से अत्यंत उप हत भया हो तो काटने से शुद्ध होता है । ११५ । यज्ञ पात्रों का मार्जन हाथ से करना यज्ञ कर्म में चमस और ग्रह इन दोनों की शुद्धि धोने से होती है । ११६ । चरु स्रुक् स्रुवा स्फ्य सूप गाड़ी मूसर ओखरी इन सभों की शुद्धि गरम जल से होती है । ११७ । बहुत धान्य वस्त्र की राशि हो तो जल के छींटा

तैजसानां मणीनाञ्च सर्वस्याश्ममयस्य च । भस्मनाद्भिर्मृदाचैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः । १११ ।
निर्लेपङ्काञ्चनम्भाण्डमद्भिरेव विशुध्यति । अब्जमश्ममयञ्चैव राजतञ्चानुपस्कृतम् । ११२ ।
अपामग्नेश्च संयोगाद्धैमं रौप्यञ्च निर्बभौ । तस्मात्तयोः स्वयोन्यैव निर्णेको गुणवत्तरः । ११३ ।
ताम्रायः कांस्यरैत्यानां त्रपुणः सीसकस्य च । शौचं यथार्हं कर्तव्यं क्षाराम्लोदकवारिभिः । ११४ ।
द्रवाणाञ्चैव सर्वेषां शुद्धिराप्लवनं स्मृतम् । प्रोक्षणं संहतानाञ्च दारवाणाञ्च तक्षणम् । ११५ ।
मार्जनं यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि । चमसानां ग्रहाणाञ्च शुद्धिः प्रक्षालनेन तु । ११६ ।
चरूणां स्रुक् स्रुवाणाञ्च शुद्धिरुष्णेन वारिणा । स्फ्यशूर्पशकटानाञ्च मुसलोलूखलस्य च । ११७ ।
अद्भिस्तु प्रोक्षणं शौचं बहूनां धान्यवाससाम् । प्रक्षालनेन त्वल्पानामद्भिः शौचम्विधीयते । ११८ ।
चैलवच्चर्म्मणां शुद्धिर्वैदलानान्तथैव च । शाकमूलफलानाञ्च धान्यवच्छुद्धिरिष्यते । ११९ ।
कौशेयाविकयोरूषैः कुतपानामरिष्टकैः । श्रीफलैरंशुपट्टानां क्षौमाणां गौरसर्षपैः । १२० ।
क्षौमवच्छंखशृङ्गाणामस्थिदन्तमयस्य च । शुद्धिर्विजानता कार्या गोमूत्रेणोदकेन वा । १२१ ।
प्रोक्षणात्तृणकाष्ठञ्च पलालञ्चैव शुध्यति । मार्जनोपाञ्जनैर्वेश्म पुनः पाकेन मृण्मयम् । १२२ ।
मद्यैर्मूत्रैः पुरीषैर्वा ष्ठीवनैः पूयशोणितैः । संस्पृष्टं नैव शुध्येत पुनः पाकेन मृण्मयम् । १२३ ।
सम्मार्जनोपाञ्जनेन सेकेनोल्लेखनेन च । गवाञ्च परिवासेन भूमिः शुध्यति पञ्चभिः । १२४ ।
पक्षिजग्धङ्गवाघ्रातमवधूतमवक्षुतम् । दूषितं केशकीटैश्च मृत्प्रक्षेपेण शुध्यति । १२५ ।

से शुद्धि जानना और थोड़ा हो तो जल के धोने से शुद्धि जानना । ११८ । स्पर्श के योग्य पशु के चर्म का पात्र और बांस का पात्र इन दोनों की शुद्धि वस्त्र शुद्धि की नाईं जानना शाक मूल फल इन्हों की शुद्धि धान्य शुद्धि की नाईं । ११९ । कीड़े के पेट के सूत्र का जो वस्त्र भेड़ के रोम का वस्त्र खारी माटी से नैपाली कम्बल रीठी से पट्ट वस्त्र बेल के फल से तीसी का वस्त्र श्वेत सरसव से शुद्ध होते हैं । १२० । शंख का पात्र छूने के योग्य जो पशु हाथी आदि तिस के दांत सींग हाड़ का जो पात्र तिसकी शुद्धि तीसी के वस्त्र की नाईं जानना (अर्थात् श्वेत सरसव का कल्क और गौ का मूत्र जल इन दोनों में से एक करके) । १२१ । जल छिड़कने से तृण काष्ठ पुआरा बढ़नी से मार्जन और लेप से गृह फेर पाक से माटी का पात्र शुद्ध होता है । १२२ । मदिरा मूत्र विष्ठा खंखार पीब रुधिर इन्हों में से कोई एक करके युक्त जो माटी का पात्र सो फेर पाक करके शुद्ध नहीं होता । १२३ । बढ़नी से मार्जन लेपन सींचन ऊपर की माटी का छीलन गौ का बास इन पांचों करके भूमि शुद्ध होती है । १२४ । भक्षण योग्य पक्षी से जिस बस्तु का एक देश भक्षित है और जो बस्तु गौ से सूंघी गई है जो बस्तु पांव से कंपित हुई है जिस बस्तु के ऊपर छींक पड़ी है बाल और छोटे कीड़े से दूषित जो बस्तु है सो अपने ऊपर माटी पाने से शुद्ध होती है । १२५ ।

अपवित्र बस्तु करके मिली हुई बस्तु से अपवित्र बस्तु का गंध और लेप जब तक न छूटे तब तक माटी जल देना सब द्रव्य की शुद्धि में । १२६ । देवतों ने ब्राह्मणों के लिये तीन बस्तु पवित्र किए हैं एक तो बिना देखी बस्तु (अर्थात् जिस बस्तु का उप घात देखने में न आया हो) दूसरा जल से जो धोया गया है तीसरा वाणी से जो प्रशस्त है । १२७ । जो जल एक गौ की तृषा शांति करने भर हो और अपवित्र बस्तु से मिला न हो गंध वर्ण रस करके युक्त हो और भूमि में स्थित हो सो पवित्र है । १२८ । कारीगर का हाथ हट्टा में पसारी बस्तु ब्रह्मचारी की भिक्षा ये तीनों नित्य ही शुद्ध हैं यह शास्त्र की मर्यादा है । १२९ । रति समय में स्त्री का मुख फल गिराने में पक्षी दोहन काल में बछरू मृग के ग्रहण करने में कुक्कुर पवित्र है । १३० । कुक्कुर व्याघ्र बाज व्याध आदि मृग वध से जीविका करने वाले इन सबों से मारा गया जो भक्षण के योग्य जीव उस की मांस पवित्र है श्राद्ध आदि अतिथि भोजन कर्म में यह मनुजी ने कहा । १३१ । नाभी के ऊपर की इंद्रिय पवित्र हैं नाभी के हेठे की इंद्रिय अपवित्र हैं और देह से गिरा जो मल सो अपवित्र है । १३२ । माछी जल बिंदु छाया गौ अश्व सूर्य की किरण धूलि पृथिवी ये सब छूने में

यावन्नापैत्यमेध्याक्ताद्गन्धो लेपश्च तत्कृतः । तावन्मृद्वारि चादेयं सर्वासु द्रव्यशुद्धिषु । १२६ ।
त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन् । अदृष्टमद्भिर्निर्णिक्तं यच्च वाचा प्रशस्यते । १२७ ।
आपः शुद्धा भूमिगता वै तृष्णं यासु गोर्भवेत् । अव्याप्ताश्चेदमेध्येन गन्धवर्णरसान्विताः । १२८ ।
नित्यं शुद्धः कारुहस्तः पण्ये यच्च प्रसारितम् । ब्रह्मचारिगतम्भैक्ष्यं नित्यम्मेध्यमिति स्थितिः । १२९ ।
नित्यमास्यं शुचि स्त्रीणां शकुनिः फलपातने । प्रस्नवे च शुचिवत्सः श्वामृगग्रहणे शुचिः । १३० ।
श्वभिर्हतस्य यन्मांसं शुचि तन्मनुरब्रवीत् । क्रव्याद्भिश्च हतस्यान्यैश्चाण्डालाद्यैश्च दस्युभिः । १३१ ।
ऊर्द्धं नाभेर्यानि खानि तानि मेध्यानि सर्वशः । यान्यधस्तान्यमेध्यानि देहाच्चैव मलाश्च्युताः । १३२ ।
मक्षिका विप्रुषश्छाया गौरश्वः सूर्यरश्मयः । रजो भूर्वायुरग्निश्च स्पर्शेमेध्यानि निर्दिशेत् । १३३ ।
विण्मूत्रोत्सर्गशुध्यर्थं मृद्वार्यादेयमर्थवत् । दैहिकानां मलानां च शुद्धिषु द्वादशस्वपि । १३४ ।
वसा शुक्रमसृङ्मज्जा मूत्रविट् घ्राणकर्णविट् । श्लेष्माश्रु दूषिका स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः । १३५ ।
एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथैकत्र करे दश । उभयोः सप्त दातव्या मृदः शुद्धिमभीप्सता । १३६ ।
एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् । त्रिगुणं स्याद्वनस्थानां यतीनान्तु चतुर्गुणम् । १३७ ।
कृत्वा मूत्रम्पुरीषम्वा खान्याचान्त उपस्पृशेत् । वेदमध्येष्यमाणश्च अन्नमश्नंश्च सर्वदा । १३८ ।
त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्या ततो मुखम् । शारीरं शौचमिच्छन् हि स्त्रीशूद्रश्च सकृत्सकृत् । १३९ ।
शूद्राणां मासिकङ्कार्य्यं वपनं न्यायवर्त्तिनाम् । वैश्यवच्छौचकल्पश्च द्विजोच्छिष्टञ्च भोजनम् । १४० ।
नोच्छिष्टङ्कुर्वते मुख्या विप्रुशोऽङ्गे पतन्ति याः । न श्मश्रूणि गतान्यास्यन्नदन्तान्तरधिष्ठितम् । १४१ ।

पवित्र हैं । १३३ । विष्ठा और मूत्र को शरीर से त्याग करके देह से गिरे बारह मलों को छूके शुद्धि के लिये जल और माटी को प्रयोजन भर लेवै । १३४ । चरबी वीर्य्य रक्त मज्जा मूत्र विष्ठा नाक खूंटि खंखार आंसू कींचर पसीना ये बारह मनुष्यों के मल हैं । १३५ । माटी से शुद्धि की इच्छा करने वाला पुरुष एक बेर लिङ्ग में लगावे पांच बेर मार्ग में बांए हाथ में दश बेर दोनों हाथ में सात बेर । १३६ । गृहस्थों के यह शौच है ब्रह्मचारियों के इस का दूना बानप्रस्थों के तिगुना संन्यासियों को चौगुना । १३७ । विष्ठा मूत्र करके हाथ पांव धोके आचमन करके इंद्रियों को छूवै वेद के पठन समय में और भोजन समय में भी आचमन करके इंद्रियों को छूवे । १३८ । शरीर की पवित्रता को इच्छा करत पुरुष प्रथम तीन बेर आचमन करे तब दो बेर मुख धोवे स्त्री और शूद्र तो एक ही बेर मुख धोवे और आचमन करे । १३९ । न्याय से रहने वाले शूद्र को मास में एक बेर क्षौर कर्म है वैश्य की नाईं पवित्रता है ब्राह्मण का जूठा भोजन है । १४० । मुख से थूंक का बिंदु अंग में पड़े और मोछ के बाल मुख में जाय और दांत में लगी जो बस्तु ये सब अशुद्धि नहीं करते । १४१ ।

किसी को आचमन कोई कराता हो और आचमन करने वाले के मुख से जल बिंदु भूमि में गिरके आचमन कराने वाले के पांव
र पड़े तो वह भूमि के जल के समान है उस से अपवित्र नहीं होता । १४२ । कोई वस्तु को हाथ में लिये हुए पुरुष जूठे
नुष्य से छूआ जाय तो उस वस्तु को लिए हुए ही आचमन करके शुद्ध होता है । १४३ । वमन और विरेचन को करने वाला
ान करके घी भोजन करै और अन्न आदि भोजन करके आचमन करै मैथुन करके स्नान करै । १४४ । सूति के छींकि के भोजन
रके खंखारि के झूठ बोलके जल पीके पवित्र रहत संते भी आचमन करैं । १४५ । भृगु जी कहते हैं कि हे ऋषियों आप लोगों
सब वर्णों का शौच विधि संपूर्ण कहा और द्रव्य शुद्धि भी कहा इस के अनन्तर स्त्रीयों के धर्म्म को जानो । १४६ । स्त्री बाला
ो चाहे युवती हो अथवा वृद्धा हो परंतु गृह में कोई कार्य्य को स्वतंत्रता से न करै । १४७ । बालावस्या में पिता के आधीन
हे युवावस्या में पति के वश रहे विधवा भए संते पुत्रों के अधीन रहै स्वतंत्रा (अर्थात् अपने अधीन हो के कभी न रहै) । १४८ ।
पिता भाई पुत्र इन के साथ अपने वियोग की इच्छा न करै इन्हों के वियोग से स्त्री दोनों कुल को निंदित करती है । १४९ ।
र्व काल में हृष्ट और गृह कार्य में दक्ष रहै गृह की सामग्री को सुंदर प्रकार से बनाए राखै उदार न रहै । १५० । जिस पुरुष

स्पृशन्ति बिन्दवः पादौ य आचामयतः परान्। भौमिकैस्ते समाज्ञेया न तैरप्रयतो भवेत्। १४२।
उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टो द्रव्यहस्तः कथञ्चन। अनिधायैव तद्द्रव्यमाचान्तः शुचितामियात्। १४३।
वान्तो विरिक्तः स्नात्वा तु घृतप्राशनमाचरेत्। आचामेदेव भुक्त्वान्नं स्नानम्मैथुनिनः स्मृतम्। १४४।
सुप्त्वा क्षुत्वा च भुक्त्वा च निष्ठीव्योक्त्वा नृतानि च। पीत्वापोध्येष्यमाणश्च ह्याचामेत्प्रयतोपि सन्।
१४५। एष शौचविधिः कृत्स्नो द्रव्यशुद्धिस्तथैव च। उक्तो वः सर्ववर्णानां स्त्रीणां धर्म्मान्निबोधत।
१४६। बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता। न स्वातन्त्र्येण कर्त्तव्यङ्किञ्चित्कार्य्यङ्गृहेष्वपि।
१४७। बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने। पुत्राणां भर्त्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतन्त्रताम्।
१४८। पित्रा भर्त्रा सुतैर्वापि नेच्छेद्विरहमात्मनः। एषां हि विरहेण स्त्री गर्ह्ये कुर्य्यादुभे कुले। १४९।
सदा प्रहृष्टया भाव्यङ्गृहकार्य्येषु दक्षया। सुसंस्कृतोपस्करया व्ययेचामुक्तहस्तया। १५०।
यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता चानुमते पितुः। तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितञ्च न लंघयेत्। १५१।
मङ्गलार्थं स्वस्त्ययनं यज्ञश्चासां प्रजापतेः। प्रयुज्यते विवाहेषु प्रदानं स्वाम्यकारणम्। १५२।
अनृतावृतुकाले च मंत्रसंस्कारकृत्पतिः। सुखस्य नित्यन्दातेह परलोके च योषितः। १५३।
विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः। उपचर्य्यः स्त्रिया साध्व्या सततन्देववत्पतिः। १५४।
नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतन्नाप्युपोषितम्। पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते। १५५।
पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा। पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत्किञ्चिदप्रियम्। १५६।
कामन्तु क्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः। न तु नामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु। १५७।

ा पिता देवे अथवा पिता की आज्ञा पाके पुत्र देवे उस पुरुष की सेवा करे उस के मरे पीछे दूसरे पुरुष के साथ रति न करै ।
५१ । विवाह में स्वस्त्ययन (अर्थात् शांति मंत्र पठन) और ब्रह्मा के निमित्त याग जो होता है स्त्रीयों के सो मंगल के अर्थ है
अर्थात् इष्ट संपत्यर्थ कर्म रहै) और दान जो है सो भर्ता के स्वामित्व का कारण है । १५२ । ऋतु काल में अथवा अनृतु काल
मंत्र संस्कार करने वाला पति इस लोक में पर लोक में स्त्रीयों को सुख देने वाला है । १५३ । शील से रहित पति हो अथवा
सरी स्त्री के साथ प्रेम रखता हो किम्वा गुणों करके वर्जित हो तो भी जो साध्वी स्त्री है सो नित्य ही देवता की नाईं पति की
वा करै । १५४ । स्त्रीयों के यज्ञ व्रत उपवास पृथक् नहीं है केवल पति के सेवा ही से स्वर्ग में पूजित होती हैं । १५५ । पति
ाक की इच्छा करने वाली स्त्री साध्वी जीवते अथवा मरे हुए पति का कुछ भी अप्रीय वस्तु न करै । १५६ । पति के मरे संते
सरे पति का नाम ग्रहण भी न करै सुंदर मूल पुष्प फल करके इच्छा पूर्वक थोड़ा आहार कर के देह को राखत काल
ा काटै । १५७ । * * * * * * * * * *

एकै है पति जिस को ऐसी जो स्त्री उस के धर्म को आकांक्षा करती हुई मरण तक नियम सहित ब्रह्मचारिणी होकर दुर्बल शरीर से रहै । १५८ । कदाचित् कहो कि वंश बिना स्वर्ग नहीं होता इस लिये वंश के अर्थ दूसरे पति के साथ रति करना चाहिए तिस पर कहते हैं कि नहीं कुमार ब्रह्मचारि ब्राह्मण कई सहस्र स्वर्ग गए बिना संतति किए इस बात को समुझ कर बिना संतति नियम से रहै । १५९ । पति के पीछे साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्य में स्थित रहे तो पुत्र रहित भी स्वर्ग जाती है जैसे कुमार ब्रह्मचारी स्वर्ग गए । १६० । पुत्र होने के लोभ से जो स्त्री दूसरे पति के साथ रति करती है सो इस लोक में निन्दा पाती है और पति लोक को पर लोक में नहीं पाती है । १६१ । दूसरे पति से उत्पन्न प्रजा शास्त्र की रीति से अपना नहीं कहाता साध्वी स्त्रीयों के कहीं दूसरा भर्त्ता शास्त्र में नहीं लिखा है । १६२ । अपना निकृष्ट पति को छोड़ कर दूसरे के उत्कृष्ट पति का जो सेवन करती है सो लोक में निन्दित कहाती है और दूइ पति वाली कहाती है । १६३ । भर्ता के व्यभिचार से लोक में स्त्री निन्दित कहाती है शृगाल योनि को प्राप्त होती है पाप रोगों से पीडित होती है । १६४ । जो दूसरे पति के साथ रति नहीं

आसीतामरणात्क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी । या धर्म्म एकपत्नीनां कांक्षन्ती तमनुत्तमम् । १५८ ।
अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम् । दिवङ्गतानि विप्राणामकृत्वा कुलसन्ततिम् । १५९ ।
मृते भर्त्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्य्ये व्यवस्थिता । स्वर्गङ्गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः । १६० ।
अपत्यलोभाद्यातु स्त्री भर्तारमति वर्तते । सेह निन्दामवाप्नोति परलोकाच्च हीयते । १६१ ।
नान्योत्पन्ना प्रजास्तीह न चाप्यन्य परिग्रहे । न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद्भर्तोपदिश्यते । १६२ ।
पतिं हित्वापकृष्टं स्वमुत्कृष्टं यानिषेवते । निंद्यैव सा भवेल्लोके परपूर्वेति चोच्यते । १६३ ।
व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निंद्यताम् । शृगालयोनिम्प्राप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते । १६४ ।
पतिं यानाभिचरति मनोवाग्देहसंयता । सा भर्तृलोकमाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते । १६५ ।
अनेन नारीवृत्तेन मनोवाग्देहसंयता । इहाग्र्यां कीर्तिमाप्नोति पतिलोकम्परत्र च । १६६ ।
एवं वृत्तां सवर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वमारिणीम् । दाहयेदग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् । १६७ ।
भार्यायै पूर्वमारिण्यै दत्वा ग्नीनंत्यकर्म्मणि । पुनर्दारक्रियां कुर्य्यात्पुनराधानमेव च । १६८ ।
अनेन विधिना नित्यं पञ्चयज्ञान्न हापयेत् । द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत् । १६९ । *
इति मानवे धर्म्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां शौचविधिः पञ्चमोऽध्यायः ॥ । ५ । * *

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः । वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः । १ ।
गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः । अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् । २ ।

करती मन वाणी देह से संयत रहती है सो परलोक में पति लोक को पाती है भले लोग उस को साध्वी कहते हैं । १६५ । इस रीति करके मन वाणी देह से संयत रहने से इस लोक में श्रेष्ठ कीर्ति को और परलोक में पति लोक को पाती है । १६६ । धर्म्म के जानने वाले ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ऐसी अपने वर्ण की स्त्री मरि जाय तो उस को अग्नि होत्र की अग्नि से और यज्ञ पात्र से दाह करै । १६७ । तदनन्तर अंत्य कर्म करके पुनः विवाह करै और अग्नि का स्थापन करै । १६८ । इस विधि से नित्य ही पंच यज्ञ का त्याग न करै आयुष का दूसरा भाग तक विवाह करके गृह में बास करै । १६९ । * । इति श्री मनु स्मृति भाषा टीकायां कुल्लूक भट्ट व्याख्याऽनुसारिण्यां श्री बाबू देवीदयाल सिंह कारितायां श्री कम्पनी संस्कृत पाठशालीय धर्म्म शास्त्रि गुलज़ार शर्म्म पण्डित कृतायां शौचविधिः पञ्चमो ऽध्यायः ॥ ५ ॥ * * * * * *

इस रीति से गृहाश्रम में रहि के स्नातक द्विज निश्चित इंद्रियों को जीत कर ज्यों का त्यों वन में वास करै । १ । जब गृहस्थ अपने को वृद्धावस्था देखै और पुत्र के पुत्र को देखै तब वन में वास करै । २ । * * * *

ग्राम के आहार को त्याग कर और गृह की सामग्री को त्याग कर भार्या को पुत्र के अधीन कर बन में जाय अथवा स्त्री सहित बन में जाय। ३। अग्नि होत्र को लेकर और सामग्री सहित गृह की अग्नि को लेकर इंद्रियों को रोक कर ग्राम से निकल कर बन में रहै। ४। नाना प्रकार के जो मुनि के अन्न हैं और पवित्र जो शाक मूल फल है तिस करके विधि पूर्वक पंच महायज्ञों को करै। ५। चर्म अथवा वस्त्र का खंड इस को पहिरै सायं प्रातः स्नान करै जटा मोंछ लोम नख को धारण करे। ६। जिस बस्तु को भोजन करै उसी बस्तु से बलि कर्म करै और उसी बस्तु को भिक्षा देवै शक्ति पूर्वक अपने स्थान में कोई आवे तो जल मूल फल से उसका पूजन करै। ७। नित्य ही वेद को पढै एकाग्रचित्त रहै सब का मित्र होकर रहै शीत घाम काम क्रोध आदि जो जोड़ा बस्तु हैं तिन को सहन करै देव ही करै किछु ग्रहण न करै सर्व जीव पर दया राखै। ८। यथा विधि अग्नि होत्र को करै दर्श पौर्णमास याग को करै। ९। नक्षत्र याग आग्रयण चातुर्मास्य उत्तरायण दक्षिणायन कर्म को क्रम से करै। १०। बसंत काल में शरद काल में भए जो मुनि के अन्न हैं पवित्र उन को आप से लाके उसी से विधि पूर्वक पृथक् पृथक् पुरोडाश चरु देवतों को देवै याग सिद्धि के लिये। ११। अति पवित्र हवि देवतों को देकर जो बचै सो आप भोजन करै अपने बनाये लवण को भोजन करै। १२।

सन्त्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वञ्चैव परिच्छदम्। पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनङ्गच्छेत्सहैव वा। ३।
अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम्। ग्रामादरण्यन्निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः। ४।
मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा। एतानेव महायज्ञान्निर्वपेद्विधिपूर्वकम्। ५।
वसीत चर्मचीरम्वा सायं स्नायात्प्रगे तथा। जटांश्च विभृयान्नित्यं श्मश्रुलोमनखानि च। ६।
यद्भक्ष्यं स्यात्ततो दद्याद्बलिं भिक्षाञ्च शक्तितः। अम्मूलफलभिक्षाभिरर्चयेदाश्रमागतान्। ७।
स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः। दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः। ८।
वैतानिकञ्च जुहुयादग्निहोत्रं यथा विधि। दर्शमस्कन्दयन् पर्व पौर्णमासं च योगतः। ९।
ऋक्षेष्ट्याग्रयणञ्चैव चातुर्मास्यानि चाहरेत्। उत्तरायणञ्च क्रमशो दक्षस्यायनमेव च। १०।
वासन्तशारदैर्मेध्यैर्मुन्यन्नैः स्वयमाहृतैः। पुरोडाशांश्चरूंश्चैव विधिवन्निर्वपेत्पृथक्। ११।
देवताभ्यस्तु तद्धुत्वा वन्यं मेध्यतरं हविः। शेषमात्मनि युंजीत लवणञ्च स्वयं कृतम्। १२।
स्थलजौदकशाकानि पुष्पमूलफलानि च। मेध्यवृक्षोद्भवान्यद्यात्स्नेहांश्च फलसम्भवान्। १३।
वर्जयेन्मधुमांसञ्च भौमानि कवकानि च। भूस्तृणं शिग्रुकञ्चैव श्लेष्मान्तकफलानि च। १४।
त्यजेदाश्वयुजे मासि मुन्यन्नं पूर्वसंचितम्। जीर्णानि चैव वासांसि शाकमूलफलानि च। १५।
न फालकृष्टमश्नीयादुत्सृष्टमपि केन चित्। न ग्रामजातान्यार्तोपि मूलानि च फलानि च। १६।
अग्निपक्वाशनो वा स्यात्कालपक्वभुगेव वा। अश्मकुट्टो भवेद्वापि दन्तोलूखलिकोपि वा। १७।
सद्यः प्रक्षालको वा स्यान्मासंसञ्चयिकोपि वा। षण्मासनिचयो वा स्यात्समानिचय एव वा। १८।
नक्तञ्चान्नं समश्नीयाद्दिवा वाहृत्य शक्तितः। चतुर्थकालिको वा स्यात्स्याद्वाप्यष्टमकालिकः। १९।

स्थल जल पवित्र वृक्ष इन्हों से उत्पन्न जो शाक मूल पुष्प फल उस को भोजन करै फल से उत्पन्न तेल को भोजन करै। १३। मधु मांस और भूमि में उत्पन्न जो छत्राकार और भूस्तृण जो मालव देश में प्रसिद्ध है शिग्रुशाक जो वाह्लीक देश में प्रसिद्ध है और बहेड़ा इन सब को त्याग करै। १४। मुनि का अन्न जो बटुरा है और जीर्ण वस्त्र शाक मूल फल इन सब को आश्विन मास में त्याग करै। १५। हल से उत्पन्न जो बस्तु है खेत के समीप में जो बस्तु है और उस को स्वामी ने त्याग भी क्रिया हो तौ भी उस को भोजन न करै और दुःखित हो तो भी बिना हल से उत्पन्न ग्राम का फल मूल को भोजन न करै। १६। अग्नि करके जो पका है अथवा काल करके जो पका है उस को भोजन करै पत्थर से कूट करके अथवा दांत ही को ओखरी बनाकर भोजन करै। १७। एक दिन भर के भोजन को राखै अथवा मास भर के किम्वा छ मास भर के भोजन को राखै अथवा एक वर्ष भर के। १८। शक्ति पूर्वक दिन में लाकर रात्रि को भोजन करै अथवा एक दिन उपवास करै दूसरे दिन में एक बेर भोजन करै किम्वा तीन दिन उपवास करै चौथे दिन में एक बेर भोजन करै। १९।

चांद्रायण व्रत करै अथवा अमावास्या पूर्णमासी के दिन एक बेर यव की लपसी को भोजन करै। २०। काल से पक्क आप से गिरे जो पुष्प मूल फल तिस करके जीवन करै। २१। वैखानस (अर्थात् वानप्रस्थ) के मत में स्थित हो कर केवल भूमि ही में लोटा करै अथवा पांव के अग्रभाग से ठाढ़ होकर दिन भर रहे स्थान आसन इसी में विहार करै त्रिकाल में स्नान करै। २२। क्रम से तप को बढ़ावत संते ग्रीष्म काल में पञ्चाग्नि तापै वर्षा काल में आवरण रहित स्थान में रहै हेमंत काल में गीला वस्त्र परिधान किए रहै। २३। त्रिकाल स्नान करके देवता पितरों का तर्पण करै बड़ी भारी तप करत संते देह को सुखावे। २४। यथा विधि अग्नि होत्र की अग्नि को अपनी आत्मा में समारोप करै पश्चात् अग्नि रहित स्थान रहित मूल फल को भोजन करत शास्त्र को बिचरै। २५। सुख के अर्थ यत्न न करै ब्रह्मचारी हो कर भूमि शयन करै वृक्ष के मूल में गृह करै निवास स्थान में ममता न राखै। २६। तपस्वी ब्राह्मण से भिक्षा मांगै और जो गृहस्थ वन वासी द्विज हैं उन से भी भिक्षा मांगै। २७। अथवा ग्राम से भिक्षा मांगकर आठ ग्रास भोजन करै वन में रहत संते दोना

चान्द्रायणविधानैर्वा शुक्लेकृष्णे च वर्त्तयेत्। पक्षान्तयोर्वाप्यश्नीयाद्यवागूं क्वथितां सकृत्। २०।
पुष्पमूलफलैर्वापि केवलैर्वर्त्तयेत्सदा। कालपक्वैः स्वयं शीर्णैर्वैखानसमतेस्थितः। २१।
भूमौ विपरिवर्तेत तिष्ठेद्वा प्रपदैर्दिनम्। स्थानासनाभ्यां विहरेत्सवनेषूपयन्नपः। २२।
ग्रीष्मे पञ्च तपास्तु स्याद्वर्षास्वभ्रावकाशिकः। आर्द्रवासास्तु हेमंते क्रमशो वर्द्धयंस्तपः। २३।
उपस्पृशं स्त्रिषवणम्पितॄन्देवांश्च तर्पयेत। तपश्चरं श्चोग्रतरं शोषयेद्देहमात्मनः। २४।
अग्नीनात्मनि वै वैतान्समारोप्य यथाविधि। अनग्निरनिकेतः स्यान्मुनिर्मूलफलाशनः। २५।
अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः। शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः। २६। तापसेष्वेव
विप्रेषु याचिकं भैक्षमाहरेत्। गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु। २७। ग्रामादाहृत्य वा
श्नीयादष्टौ ग्रासान्वने वसन्। प्रतिगृह्य पुटेनैव पाणिना शकलेनवा। २८। एताश्चान्याश्च
सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन्। विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः। २९। ऋषिभिर्ब्राह्म-
णैश्चैव गृहस्थैरेव सेविताः। विद्या तपो विवृद्ध्यर्थं शरीरस्य च शुद्धये। ३०। अपराजितां
वा स्थाय व्रजेद्दिशमजिह्मगः। आनिपाताच्छरीरस्य युक्तो वार्यनिलाशनः। ३१। आसां
महर्षिचर्य्याणां त्यक्त्वान्यतमया तनुम्। वीतशोकभयो विप्रो ब्रह्मलोके महीयते। ३२।
वनेषु तु विहृत्यैवन्तृतीयम्भागमायुषः। चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा संगान्परिव्रजेत्। ३३।
आश्रमादाश्रमङ्गत्वा हुतहोमो जितेन्द्रियः। भिक्षाबलिपरिश्रान्तः प्रव्रजन्प्रेत्य वर्द्धते। ३४।
ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्। अनपाकृत्य मोक्षन्तु सेवमानो व्रजत्यधः। ३५।
अधीत्य विधिवद्वेदान् पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः। इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत्। ३६।

में अथवा हाथ में किम्वा माटी के बरतन के टुकड़ा में भिक्षा लेवे। २८। वन में वास करत संते यह संपूर्ण दीक्षा का और दूसरी दीक्षा का भी सेवन करै नाना प्रकार की उपनिषद में भई जो श्रुति हैं उन्हों का सेवन करै आत्मा की सम्यक् सिद्धि के लिये। २९। शरीर की शुद्धि और तप की वृद्धि के लिये उस विद्या का सेवन करै जिस विद्या का सेवन ऋषि और गृहस्थ ब्राह्मणों ने किया है। ३०। अथवा जल वायु को भक्षण करत ईशान कोण में सीधा चला जाय जब तक शरीर का पात न हो। ३१। ये सब आचरण बड़े बड़े ऋषि लोगों का कहा है उस में कोई आचरण से शरीर का त्याग करके शोक भय को छोड़ कर ब्रह्म लोक में पूजित होता है। ३२। इस रीति से आयुष का तीसरा भाग वन में बिताय कर संग को छोड़े हुए आयुष के चौथे भाग में संन्यास ग्रहण करै। ३३। इंद्रियों को जीतकर होम को समाप्त कर एक आश्रम से दूसरे आश्रम में जाकर भिक्षा और बलि कर्म से थका हुआ संन्यास करता संते परलोक में बढ़ता है। ३४। तीन ऋण को दूर करके मन को मोक्ष में लगावे बिना तीनों ऋण के दूर किये मोक्ष को जो सेवन करता है सो नरक में जाता है। ३५। विधि पूर्वक वेद को पढ़ कर धर्म से पुत्रोत्पत्त करके शक्ति पूर्वक यज्ञ को करत मोक्ष में मन को लगावे। ३६।

ये तीनों काम के किये बिना मोक्ष की इच्छा करते संते नरक में जाता है । ३७ । प्रजापति देवता की यज्ञ करके संपूर्ण को दक्षिणा देकर अग्नियों को अपनी आत्मा में रख कर ब्राह्मण गृह से निकले (अर्थात् संन्यास ग्रहण करै) । ३८ । वेद का पढ़ने वाला जो पुरुष संपूर्ण जीवों को अभय देकर गृह से निकलता है उस को तेज रूप लोक मिलता है । ३९ । जिस ब्राह्मण से सब जीवों को थोड़ा भी भय नहीं है उस को परलोक में किसी से भय नहीं होती है । ४० । गृह से निकला हुआ पवित्रता से बढा हुआ विचार करने वाला कोई से प्राप्त जो सुंदर अन्न आदि तिस में इच्छा रहित संन्यास ग्रहण करै । ४१ । सहाय रहित अकेला नित्य ही बिहरै सिद्धि के लिये एक ही को सिद्धि होती है इस बात को देखता हुआ किसी को त्याग नहीं करता है और उस को भी कोई त्याग नहीं करते । ४२ । अग्नि और गृह इन दोनों से रहित सब वस्तुओं का त्याग करते स्थिर मति ब्रह्म में चित्त लगाए हुए अन्न के अर्थ ग्राम का आश्रय करै । ४३ । मुक्त का लक्षण यह है कि जो भिक्षा के अर्थ माटी का पात्र राखै वृक्ष के मूल में शयन करै निकाम वस्त्र राखै सहायता से रहित हो सब जीवों में सम भाव राखै । ४४ । मरण और जीवन इन दोनों में कोई की इच्छा न करै केवल काल ही की प्रतीक्षा करै जिस रीति से भृत्य स्वामी की आज्ञा की प्रतीक्षा करता है । ४५ ।

अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान् । अनिष्ट्वाचैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः । ३७ ।
प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् । आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात् । ३८ ।
यो दत्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात् । तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः । ३९ ।
यस्मादण्वपि भूतानां द्विजान्नोत्पद्यते भयम् । तस्य देहाद्विमुक्तस्य भयन्नास्ति कुतश्च न । ४० ।
आगारादभिनिष्क्रान्तः पवित्रोपचितो मुनिः । समुपोढेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत् । ४१ ।
एक एव चरेन्नित्यं सिद्ध्यर्थमसहायवान् । सिद्धिमेकस्य संपश्यन्न जहाति न हीयते । ४२ ।
अनग्निरनिकेतः स्याद्ग्राममन्नार्थमाश्रयेत् । उपेक्षकोऽशंकुसुको मुनिर्भावसमाहितः । ४३ ।
कपालं वृक्षमूलानि कुचेलमसहायता । समता चैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम् । ४४ ।
नाभिनन्देत मरणन्नाभिनन्देत जीवितम् । कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशम्भृतको यथा । ४५ ।
दृष्टिपूतन्न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलम्पिबेत् । सत्यपूतां वदेद्वाचं मनः पूतं समाचरेत् । ४६ ।
अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कञ्च न । न चेमन्देहमाश्रित्य वैरङ्कुर्वीत केन चित् । ४७ ।
क्रुध्यन्तन्न प्रतिक्रुध्येदाक्रुष्टः कुशलम्वदेत् । सप्तद्वारावकीर्णाञ्च न वाचमनृताम्वदेत् । ४८ ।
अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः । आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह । ४९ ।
न चोत्पातनिमित्ताभ्यान्न नक्षत्राङ्गविद्यया । नानुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हि चित् । ५० ।
न तापसैर्ब्राह्मणैर्वा वयोभिरपि वाश्वभिः । आकीर्णम्भिक्षुकैर्वान्यैरागारमुपसंव्रजेत् । ५१ ।

केश हाड़ आदि का त्याग करने के लिये देख के पांव राखै छोटे छोटे जीवों को वारण के लिये छानि के जल को पीवै सत्य करके पवित्र वाणी को बोलै संकल्प से शून्य मन करके सर्व काल पवित्र आत्मा होवै । ४६ । दूसरे मनुष्यों की निकाम वाणी को सहन करै किसी का अपमान न करै किसी से वैर न करै । ४७ । अपने ऊपर कोई क्रोध भी करै तो उस पर आप क्रोध न करै अपनी निन्दा भी करै कोई तो आप उस को अच्छी वाणी से बोलै पांच ज्ञानेन्द्रिय और मन बुद्धि इन सातो से गृहीत जो वस्तु है उसी में वाणी की प्रवृत्ति है इन सातो द्वार करके गृहीत जो अर्थ तद्विषयक वाणी को न बोलै किन्तु ब्रह्म मात्र विषयक वाणी को बोलै ब्रह्म विषय से रहित जो वाणी सो असत्य है इस लिये सत्य बोलै सत्य तो ब्रह्म ही है इस लिये ब्रह्म विषयक वाणी बोलै । ४८ । आत्मा में रति करते रहै कोई वस्तु की इच्छा न करै आमिष का त्याग करै केवल अपनी आत्मा ही सहायक कर सुख के अर्थ इस लोक में विचरै । ४९ । भूमि कंप आदि उत्पात नेत्र फरकना आदि निमित्त नक्षत्र हस्त रेखा इन्हों का फल कथन करके नीति शास्त्र का उपदेश करके कभी भिक्षा लेने की इच्छा न करै । ५० । तपस्वी ब्राह्मण कुकुर भिक्षुक इन्हों से युक्त जो गृह है उस का त्याग करै । ५१ ।

केश नख मोछ को छोटा किए रहै पात्र दंड कमंडलु से युक्त रहै संपूर्ण जीवों को पीड़ा न देवे निचिन्त होकर नित्य ही बिचरै । ५२ । छिद्र रहित अतैजस पात्र राखै तिन का शौच जल माटी से करै जैसे यज्ञ में चमस पात्र का शौच होता है । ५३ । लौकी काठ माटी बांस इन्हों का पात्र राखै इतने ही यती के पात्र हैं यह मनु जी ने कहा । ५४ । एक काल में भिक्षा चरण करै विस्तार में प्रसक्त न होवे भिक्षा में प्रसक्त होने से विषयों में भी प्रसक्त यती हो जायगा । ५५ । धूम मूसर शब्द अंगार इन्हों से रहित गृह जब होवे और सब मनुष्य भोजन कर चुके पुरवा पत्तल जूठी निकाली जाय तब यती भिक्षा के लिये नित्य ही जावे । ५६ । भिक्षा न मिले तो विषाद न करै और मिले तो हर्ष न करै जिस में प्राण रहै सो करै दंड आदि जो सामग्री है उस में आसक्त न होवे (अर्थात् यह दंड अच्छा नहीं है इस को त्याग करै यह दंड अच्छा है इस को ग्रहण करै) । ५७ । पूजा से जो बस्तु मिलै उस की निंदा करै पूजा में प्रसन्न होने से मुक्त जो यती है सो बद्ध हो जाता है । ५८ । थोड़ा भोजन करना एकांत में रहना इस से विषयों से हरी गई इन्द्रियों को निवृत्त करै । ५९ । इंद्रियों का निरोध राग द्वेष का क्षय सब

क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुसुम्भवान् । विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन् । ५२ ।
अतैजसानि पात्राणि तस्य स्युर्न्निर्व्रणानि च । तेषामद्भिः स्मृतं शौचञ्चमसानामिवाध्वरे । ५३ ।
अलाबुन्दारुपात्रञ्च मृण्मयम्वैदलन्तथा । एतानि यतिपात्राणि मनुः स्वायम्भुवो ब्रवीत् । ५४ ।
एककालञ्चरेद्भैक्षन्न प्रसज्येत विस्तरे । भैक्षे प्रसक्तो हि यतिर्विषये ष्वपि सज्जति । ५५ । विधूमे
सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने । वृत्ते शरावसम्पाते भिक्षान्नित्यं यतिश्चरेत् । ५६ । अलाभेन
विषादी स्याल्लाभे चैव न हर्षयेत् । प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रा संगाद्विनिर्गतः । ५७ ।
अभिपूजितलाभांस्तु जुगुप्सेतैव सर्वशः । अभिपूजितलाभैश्च यतिर्मुक्तोऽपि बध्यते । ५८ ।
अल्पान्नाभ्यवहारेण रहः स्थानासनेन च । ह्रियमाणानि विषयैरिंद्रियाणि निवर्त्तयेत् । ५९ ।
इन्द्रियाणान्निरोधेन रागद्वेषक्षयेन च । अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते । ६० ।
अवेक्षेत गतीर्नृणां कर्मदोषसमुद्भवाः । निरये चैव पतनं यातनाश्च यमक्षये । ६१ । विप्रयोग-
म्प्रियैश्चैव संयोगञ्च तथा प्रियैः । जरया चाभिभवनं व्याधिभिश्चोपपीडनम् । ६२ ।
देहादुत्क्रमणञ्चास्मात्पुनर्गर्भे च सम्भवम् । योनिकोटिसहस्रेषु सृतीश्चास्यान्तरात्मनः । ६३ ।
अधर्मप्रभवञ्चैव दुःखयोगं शरीरिणाम् । धर्मार्थप्रभवञ्चैव सुखसंयोगमक्षयम् । ६४ । सूक्ष्मता-
ञ्चान्ववेक्षेत योगेन परमात्मनः । देहेषु च समुत्पत्तिमुत्तमेष्वधमेषु च । ६५ । दूषितोऽपि चरेद्धर्मं
यत्र तत्राश्रमे रतः । समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गन्धर्मकारणम् । ६६ । फलङ्कतकवृक्षस्य यद्यप्य-
म्बुप्रसादकम् । न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति । ६७ । संरक्षणार्थञ्जन्तूनां रात्रावहनि
वा सदा । शरीरस्यात्यये चैव समीक्ष्य वसुधाञ्चरेत् । ६८ । * * *

जीवों का अहिंसा इन्हों से मोक्ष के योग्य होता है । ६० । कर्म दोष से उत्पन्न मनुष्यों की गति नरक में पतन यमस्थान में बड़ा दुःख इन्हों को देखै । ६१ । प्रिय का वियोग अप्रिय का संयोग वृद्धावस्था से अनादर व्याधि से पीड़ा । ६२ । देह से जीव का निकलना फेर गर्भ में वास कड़ोर योनि में अंतरात्मा जीव का गमन । ६३ । देहवान् पुरुषों के अधर्म से उत्पन्न दुःख योग धर्म अर्थ से उत्पन्न अक्षय सुख योग । ६४ । योग करके परमात्मा की सूक्ष्मता शुभ अशुभ फल के भोग के लिये उत्तम मध्यम अधम योनि में जीवों की उत्पत्ति इन्हों को देखै । ६५ । कोई आश्रम में रहै और उस आश्रम के धर्म से रहित भी हो परंतु सर्व भूत में ब्रह्मबुद्धि करके समदृष्टि रूप जो धर्म है उस को करै काषायांबर आदि धारण जो चिन्ह है सो धर्म का कारण नहीं है । ६६ । कनक वृक्ष का फल (अर्थात् निर्मली) यद्यपि जल को स्वच्छ करती है तथापि नाम ग्रहण से जल स्वच्छ नहीं होता जब घसिके निर्मली जल में डालेंगे तब स्वच्छ होगा । ६७ । जंतुओं के रक्षार्थ रात्रि दिन सर्व काल में भूमि को देख कर चलै जिस में कोई जीव न मरै और शरीर को पीड़ा भी न हो । ६८ । * * * * *

जो यती बिना जाने जितने जीवों को मारता है उस के निमित्त स्नान करके छ प्राणायाम करै तब शुद्ध होता है। ६९। व्याहृति प्रणव करके युक्त प्राणायाम तीन भी विधि पूर्वक करै तो वह परम तप है ब्राह्मण का। ७०। जिस रीति से अग्नि में तपाने से धातुओं का मल दूर होता है तिसी रीति से प्राणायाम करके इंद्रियों का दोष दग्ध होता है। ७१। प्राणायाम करके राग द्वेष आदि दोष को दहन करना धारणा (अर्थात् ब्रह्म में मन लगाना) से पाप को नाश करना प्रत्याहार (अर्थात् विषयों से इंद्रियों का रोकना) से विषय मिलाप को दूर करना ध्यान करके ईश्वर संबंधी जो गुण नहीं है (अर्थात् क्रोध लोभ निंदा आदि) इन को वारण करना। ७२। ऊंच नीच भूतों में इस अंतरात्मा की गति को ध्यान योग करके देखै जिस गति को शास्त्रोक्त संस्कार से रहित अंतःकरण वाले पुरुष कष्ट से भी नहीं देख सकते। ७३। तत्त्व पूर्वक ब्रह्म को देखने वाला पुरुष कर्मों से बद्ध नहीं होता और जो ऐसा नहीं है सो संसार को पाता है। ७४। अहिंसा इन्द्रियों का असंग वेदोक्त कर्म बड़ी तपस्या इन्हों करके बुद्धिमान लोग ब्रह्म पद को साधन करते हैं। ७५। अब शरीर का वर्णन करते हैं हाड़ का खंभा नस से वेष्ठित रक्त मांस से लेपित चर्म से बंधा दुर्गंध सहित मूत्र और विष्ठा से पूर्ण। ७६। जरा और शोक से युक्त रोग का घर आतुर (अर्थात् क्षुधा पिपासा शीत उष्ण आदि से

अह्ना रात्र्या च यान् जन्तून् हिनस्त्यज्ञानतो यतिः। तेषां स्नात्वा विशुध्यर्थं प्राणायामान् षडाचरेत्।
६९। प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोपि विधिवत्कृताः। व्याहृति प्रणवैर्युक्ता विज्ञेयम्परमन्तपः। ७०।
दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः। तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।
७१। प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्बिषम्। प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान्
गुणान्। ७२। उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः। ध्यानयोगेन सम्पश्येद्गतिमस्यान्तरात्मनः।
७३। सम्यग्दर्शनसम्पन्नः कर्मभिर्न निबध्यते। दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते। ७४।
अहिंसयेन्द्रियासङ्गैर्वैदिकैश्चैव कर्मभिः। तपसश्चरणैश्चोग्रैः साधयन्तीह तत्पदम्। ७५।
अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम्। चर्मावनद्धं दुर्गंधि पूर्णं मूत्रपुरीषयोः। ७६।
जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम्। रजस्वलमनित्यञ्च भूतावासमिमं त्यजेत्। ७७। नदीकूलं
यथा वृक्षो वृक्षम्वा शकुनिर्यथा। तथा त्यजन्निमन्देहं कृच्छ्राद्ग्राहाद्विमुच्यते। ७८। प्रियेषु स्वेषु
सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम्। विसृज्यध्यानयोगेन ब्रह्माभ्येति सनातनम्। ७९। यदा भावेन भवति
सर्वभावेषु निःस्पृहः। तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम्। ८०। अनेन विधिना
सर्वां स्त्यक्त्वा संगान् शनैः शनैः। सर्वद्वंद्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते। ८१। ध्यानिकं
सर्वमेवैतत् यदेतदभिशब्दितम्। नह्यनध्यात्मवित्कश्चित्क्रियाफलमुपाश्नुते। ८२। अधियज्ञं
ब्रह्मजपेदाधिदैविकमेव च। आध्यात्मिकं च सततं वेदान्ताभिहितञ्च यत्। ८३। * *

आदर) रजोगुण से युक्त अनित्य (अर्थात् नाश के प्राप्त) पृथिवी आदि पंच भूत का गृह ऐसी देह जीव का गृह है इस को त्याग करै (अर्थात् जिस कर्म करके ऐसी देह न मिलै उस कर्म को करै)। ७७। जिस प्रकार से नदी के तीर को वृक्ष त्याग करता है और वृक्ष के पक्षी तिसी प्रकार से इस देह को त्याग करत संते ब्रह्म का उपासना करने वाला कष्ट रूपी ग्राह से छूटता है। ७८। ब्रह्म को जानने वाला हितकारी में सुकृत अहित कारी में दुष्कृत को डालकर ध्यान योग से ब्रह्म में लीन होता है। ७९। जब परमार्थ से विषयों में दोष भावना करके सब वस्तु में इच्छा से रहित होता है तब इस लोक में और पर लोक में सुख को पाता है। ८०। इस विधि से धीरे धीरे सब संगों को त्याग करके काम क्रोध शीत घाम आदि जो जोड़ा जोड़ा वस्तु है तिन्हों से छूटा हुआ ब्रह्म ही में लीन होता है। ८१। जो यह सब कहा है कि पुत्र आदि में ममता का त्याग और मान अपमान जो जोड़ा जोड़ा वस्तु हैं तिन्हों का सहन ये सब वस्तु जीवात्मा को परमात्मता करके ध्यान संते होता है आत्मा को न जानने वाला कोई पुरुष क्रिया फल (अर्थात् ममता का त्याग और जोड़ा जोड़ा वस्तु का सहन और मोक्ष) को नहीं पाता है। ८२। यज्ञ देवता जीव इन सभों के अधिकार करके जो कहा है वेद में और वेदान्त में जो कहा है ब्रह्म का स्वरूप इन सभों का प्रतिपादन करने वाला जो वेद उस का जप करै। ८३। * * * *

ज्ञानी और अज्ञानी स्वर्ग का इच्छा करने वाला और मोक्ष का इच्छा करने वाला इन सभों का शरण (अर्थात् उपाय बताने वाला) वेद ही है । ८४ । इस क्रम करके जो ब्राह्मण संन्यासी होता है सो इस लोक में पाप को छोड़कर परब्रह्म को प्राप्त होता है । ८५ । भृगु जी कहते हैं कि हे ऋषियों आप लोगों को चार प्रकार के जो यती हैं कुटीचर बहूदक हंस परम हंस इन सभों के साधारण धर्म को कहा अब यतिओं में विशेष जो कुटीचर हैं तिन के असाधारण धर्मों को सुनिए । ८६ । ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ यती ये सब चारो आश्रम पृथक् पृथक् गृहस्थ ही से उत्पन्न हैं । ८७ । क्रम से यथा शास्त्र ये चारो आश्रम से वित हो जिस पुरुष करके वह पुरुष परम गति को पाता है । ८८ । वेद और स्मृति इन दोनों के विधान से चारो आश्रम में गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ है क्योंकि तीनों आश्रमों के भोजन वस्त्र से पोषण गृहस्थ ही करता है । ८९ । जिस प्रकार से सब नदी नद समुद्र में जाके स्थिति को पाते हैं तिसी प्रकार से सब आश्रमी गृहस्थ ही में स्थिति को पाते हैं । ९० । चारो आश्रम वाले नित्य ही दश लक्षण वाला जो धर्म उस का सेवन यत्न पूर्वक करैं । ९१ । दश लक्षण कहते हैं धृति (अर्थात् संतोष) क्षमा (अर्थात् किसी से अपकार को पाकर उस पर अपकार न करना) दम (अर्थात् विकार करने वाली विषय को पाकर मन में विकार न होना) चोरी का त्याग

इदं शरणमज्ञानामिदमेव विजानताम् । इदमन्विच्छतां स्वर्गमिदमानन्त्यमिच्छताम् । ८४ । अनेन क्रमयोगेन परिव्रजति यो द्विजः । स विधूयेह पाप्मानम्परम्ब्रह्माधिगच्छति । ८५ । एष धर्मोनुशिष्टो वा यतीनान्नियतात्मनाम् । वेद संन्यासिकानान्तु कर्मयोगन्निबोधत । ८६ । ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा । एते गृहस्थप्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः । ८७ । सर्वेपि क्रमशस्त्वेते यथा शास्त्रन्निषेविताः । यथोक्तकारिणं विप्रं नयन्ति परमाङ्गतिम् । ८८ । सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृति विधानतः । गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान्बिभर्ति हि । ८९ । यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यांति संस्थितिम् । तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यांति संस्थितिम् । ९० । चतुर्भिरपि चैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः । दशलक्षणको धर्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः । ९१ । क्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् । ९२ । दश लक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयते । अधीत्य चानुवर्तन्ते ते यांति परमाङ्गतिम् । ९३ । दश लक्षणकं धर्ममनुतिष्ठन्समाहितः । वेदान्तं विधिवच्छ्रुत्वा संन्यसेदनृणो द्विजः । ९४ । संन्यस्य सर्व कर्माणि कर्मदोषानपानुदन् । नियतो वेदमभ्यस्य पुत्रैश्वर्ये सुखं वसेत् । ९५ । एवं संन्यस्य कर्माणि स्वकार्यपरमोऽस्पृहः । संन्यासेनापहत्यैनः प्राप्नोति परमाङ्गतिम् । ९६ । एष वोभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः । पुण्योऽक्षयफलः प्रेत्यः राज्ञां धर्मन्निबोधत । ९७ । * *

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥

पवित्रता विषयों से इंद्रियों का रोकना शास्त्र आदि का तत्व ज्ञान आत्म ज्ञान सत्य क्रोध का हेतु रहत संते भी क्रोध न करना । ९२ । ये दश धर्म के लक्षण हैं इन्हें को जानकर और सेवन करता है वह परम गति को पाता है । ९३ । निचिन्त होकर इस धर्म को करता हुआ विधि पूर्वक वेदान्त को श्रवण कर तीनों ऋण से रहित हो कर संन्यास करै । ९४ । सब कर्मों को छोड़कर और कर्म दोष को नाश कर नियम सहित वेद का अभ्यास कर पुत्र के ऐश्वर्य में सुख पूर्वक वास करै । ९५ । इस रीति से सब कर्मों को छोड़कर आत्म ज्ञान को प्रधान कर स्वर्ग आदि में इच्छा छोड़कर संन्यास करके पापों को दूर कर परम गति को पाता है । ९६ । भृगु जी कहते हैं कि हे ऋषियो आप लोगों को ब्राह्मणों का चार प्रकार का जो धर्म है उस को कहा वह धर्म पुण्य है और परलोक में इस का फल अक्षय है अब इस के अनन्तर राजों का जो धर्म है उस को जानिए । ९७ । इति श्री मनुस्मृति भाषा टीकायां कुल्लुक भट्ट व्याख्यानुसारिण्यां श्री बाबू देवीदयाल सिंह कारितायां श्री कम्पनी संस्कृत पाठशालीय धर्म शास्त्रि गुलजार शर्म्म पण्डित कृतायां षष्ठोऽध्यायः । ६ । * * * *

जिस प्रकार से राजों की उत्पत्ति और परम सिद्धि और आचरण है उन सब को कहैंगे । १ । विधि पूर्वक यज्ञोपवीत कर क्षत्रिय अपने राज्य वासी सर्व जीव का संरक्षण यथा न्याय करै । २ । चारो ओर के भय सहित राजा रहित लोक के रक्षा लिये राजा को ब्रह्मा ने उत्पन्न किया । ३ । इंद्र वायु यम सूर्य अग्नि वरुण चंद्र कुबेर इन आठों का सारभूत अंश को लेकर जा का निर्माण ब्रह्मा ने किया । ४ । जिस कारण से देवतों के अंश करके राजा उत्पन्न है इसी कारण से अपने तेज करके ब जीवों को पराजय करता है । ५ । सूर्य की नाईं ताप करता है देखने वाले के नेत्र को और मन को पृथिवी में कोई पुरुष जों के संमुख होकर राजा को देख नहीं सकता । ६ । प्रभाव से सोई राजा अग्नि वायु सूर्य सोम धर्मराज कुबेर वरुण इंद्र । ७ । राजा बालक भी हो तो मनुष्य बुद्धि करके उस का अपमान नहीं करता क्योंकि मनुष्य रूप करके बड़ा देवता यह जा स्थित है । ८ । अग्नि के समीप जो पुरुष जाता है उसी को अग्नि जलाता है राज रूपी अग्नि पशु द्रव्य सहित कुल को लाता है । ९ । वह राजा तत्वपूर्वक कार्य शक्ति देश काल इन सभों को देख कर धर्म सिद्धि के लिये नाना रूप को वारंवार

राजधर्मान्प्रवक्ष्यामि यथा वृत्तो भवेन्नृपः । सम्भवश्च यथा तस्य सिद्धिश्च परमा यथा । १ ।
ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथा विधि । सर्वस्यास्य यथा न्यायङ्कर्तव्यम्परिरक्षणम् । २ ।
अराजके हि लोकेस्मिन्सर्वतो विद्रुते भयात् । रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः । ३ ।
इंद्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च । चंद्रवित्तेशयोश्चैव मात्रान्निर्हृत्य शाश्वतीः । ४ ।
यस्मादेषां सुरेन्द्राणां मात्राभ्यो निर्मितो नृपः । तस्मादभिभवत्येष सर्वभूतानि तेजसा । ५ ।
तपत्यादित्यवच्चैव चक्षुंषि च मनांसि च । न चैनम्भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम् । ६ ।
सोग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट् । सकुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः । ७ ।
बालोपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः । महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति । ८ ।
एकमेव दहत्यग्निर्नरन्दुरुपसर्पिणम् । कुलन्दहतिराजाग्निः स पशुद्रव्यसञ्चयम् । ९ । कार्यं
सो वेक्ष्य शक्तिञ्च देशकालौ च तत्वतः । कुरुते धर्मसिद्ध्यर्थम्विश्वरूपम्पुनः पुनः । १० ।
यस्य प्रसादे पद्मा श्रीर्विजयश्च पराक्रमे । मृत्युश्च वसति क्रोधे सर्वतेजो मयो हि सः । ११ ।
तं यस्तु द्वेष्टि सम्मोहात्स विनश्यत्यसंशयम् । तस्य ह्याशु विनाशाय राजा प्रकुरुते मनः । १२ ।
तस्माद्धर्म्मं यमिष्टेषु संव्यवस्येन्नराधिपः । अनिष्टञ्चाप्यनिष्टेषु तन्धर्म्मन्न विचालयेत् । १३ ।
तस्यार्थे सर्वभूतानाङ्गोप्तारन्धर्म्ममात्मजम् । ब्रह्मतेजोमयन्दण्डमसृजत्पूर्वमीश्वरः । १४ । तस्य
सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च । भयाद्भोगाय कल्पन्ते स्वधर्म्मान्न चलन्ति च । १५ ।
तन्देशकालौ शक्तिञ्च विद्याञ्चावेक्ष्य तत्वतः । यथार्हतः सम्प्रणयेन्नरेष्वन्यायवर्त्तिषु । १६ ।
स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः । चतुर्णामाश्रमाणाञ्च धर्म्मस्य प्रतिभूः स्मृतः । १७ ।

रण करता है । १० । जिस राजा के प्रसन्नता में लक्ष्मी बसती है और पराक्रम में विजय और क्रोध में मृत्यु बसती है सो जा सर्व तेजमय है । ११ । मोह से उस राजा का द्वेष जो करता है सो निश्चय विनाश को पाता है उस पुरुष के नाश के लये राजा शीघ्र ही मन को करता है । १२ । इस कारण से इष्ट अनिष्ट में जिस धर्म को स्थापन राजा करै उस धर्म का लंघन हीं करना । १३ । ईश्वर ने उस राजा के लिये सब जीवों के रक्षार्थ अपना पुत्र ब्रह्म तेज रूप दंड को पहिले ही त्पन्न किया । १४ । उस दंड के भय से स्थावर जङ्गम सब जीव भोग के लिये समर्थ होते हैं और अपने धर्म से बिचल नहीं कते । १५ । तत्वपूर्वक (अर्थात् जैसा है तैसा ही) देश काल शक्ति विद्या इन सब को देख कर यथा योग्य अन्याय करने ाले मनुष्यों को उस दंड को देवै । १६ । सोई दंड राजा है और पुरुष है दूसरा सब स्त्री है कार्य प्राप्ति करने वाला वही है र आज्ञा देने वाला भी चारो आश्रमों के धर्म का प्रतिभू (अर्थात् जामिन) वही है । १७ । * * * *

सब प्रजों का रक्षा करने वाला और आज्ञा देने वाला वही दंड है सोते हुए पुरुषों में जागने वाला वही है उसी दंड को पण्डित लोग धर्म कहते हैं। १८। जब विचार करके अच्छे प्रकार से दंड धारण किया जाता है तब संपूर्ण प्रजा को रंजन करता है और जब बिना बिचारे वह दंड धारण किया जाता है तब संपूर्ण प्रजों का चारो ओर से नाश करता है। १९। जब राजा दंड देने योग्य पुरुषों को आलस पाके दंड न देवे तब बलवान लोग दुर्बलों को पकाय डालैं जैसे शूल के ऊपर मछली पकती है। २०। दंड न होवे तो देवतों के भाग को कौआ भोजन कर डालैगा और कुक्कुर हवि को भोजन करैगा स्वामी का भाव किसी में न रहैगा उलटा पलट सब हो जावेगा। २१। जितने जीव हैं सो सब दंड के योग्य हैं पवित्र पुरुष दुर्लभ हैं दंड के भय से सब जीव भोग के लिये समर्थ होते हैं। २२। देव दानव गंधर्व राक्षस पक्षी सर्प ये सब दंड ही करके भोग के अर्थ समर्थ होते हैं। २३। दंड के विभ्रमते (यात् दंड के योग्य को न दंड देने से और दंड के योग्य जो नहीं हैं उन को दंड देने से) संपूर्ण वर्ण दोषी हो जायगा और संपूर्ण मर्यादा टूट जायगी संपूर्ण लोक को क्षोभ हो जावेगा सब बिगड़ जायगा। २४। जहां श्याम वर्ण लाल आंख वाला पाप का नाश करने वाला दंड घूमता है तहां प्रजों को मोह नहीं होता परंतु जब दंड देने वाला पुरुष

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति। दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डन्धर्म्मं विदुर्बुधाः। १८।
समीक्ष्य स धृतः सम्यक् सर्वा रञ्जयति प्रजाः। असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः। १९।
यदि न प्रणयेद्राजा दण्डन्दण्डेष्वतन्द्रितः। शूले मत्स्यानि वा पक्ष्यन् दुर्बलान्बलवत्तराः। २०।
अद्यात्काकः पुरोडाशं श्वावलिह्याद्धविस्तथा। स्वाम्यञ्च न स्यात्कस्मिंश्चित्प्रवर्त्तेताधरोत्तरम्। २१।
सर्वो दण्डजितो लोको दुर्लभो हि शुचिर्नरः। दण्डस्य हि भयात्सर्वञ्जगद्भोगाय कल्पते। २२।
देवदानवगंधर्वा रक्षांसि पतगोरगाः। तेपि भोगाय कल्पन्ते दण्डेनैव निपीडिताः। २३।
दुःष्येयुः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन्सर्वसेतवः। सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात्। २४।
यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा। प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधु पश्यति। २५।
तस्याहुः संप्रणतारं राजानं सत्यवादिनम्। समीक्ष्य कारिणं प्राज्ञं धर्म्मकामार्थकोविदम्। २६।
तं राजा प्रणयन्सम्यक् त्रिवर्गेणाभिवर्द्धते। कामात्मा विषमःक्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते। २७।
दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्द्धरश्चाकृतात्मभिः। धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव स बान्धवम्। २८।
ततो दुर्गञ्च राष्ट्रञ्च लोकञ्च स चराचरम्। अन्तरिक्षगतांश्चैव मुनीन्देवांश्च पीडयेत्। २९।
सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृतबुद्धिना। न शक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेन विषयेषु च। ३०।
शुचिना सत्यसंधेन यथा शास्त्रानुसारिणा। प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता। ३१।
स्वराष्ट्रे न्यायवृत्तः स्याद्भृशदण्डश्च शत्रुषु। सुहृत्स्वजिह्मः स्निग्धेषु ब्राह्मणेषु क्षमान्वितः। ३२।
एवम्वृत्तस्य नृपतेः शिलोञ्छेनापि जीवतः। विस्तीर्यते यशो लोके तैलबिन्दुरिवाम्भसि। ३३।

अच्छी रीति से दंड को देखै। २५। सत्य बोलने वाला विचार करने वाला धर्म अर्थ काम तीनों में पण्डित भले प्रकार से जानने वाला जो राजा है सो उस दंड का देने वाला होता है। २६। उस दंड को देते संते राजा धर्म अर्थ काम से बढ़ता है जितने कामी क्रूर नीच हैं तितने दंड ही से मारे जाते हैं। २७ बड़ा तेजस्वी दंड है जिस का धारण शास्त्र से रहित राजा लोग नहीं कर सकते हैं सो दंड धर्म से चलित जो राजा है उस को और उस के बांधवों को मारता है। २८। तदनंतर किला राज्य स्थावर जंगम रूप लोक अंतरिक्ष में स्थित जो मुनि देवता इन सब को पीड़ा करता है। २९। सहाय से रहित मूढ लोभी मूर्ख विषयों में सक्त जो राजा है सो न्याय पूर्वक उस दंड को नहीं दे सकता। ३०। पवित्र सत्यवादी शास्त्र की रीति से चलने वाला सहाय सहित बुद्धिमान ऐसा जो राजा है सो उस दंड को दे सकता है। ३१। अपने राज्य में न्याय के अनुसार से चलै और शत्रुओं को बड़ा दंड देवै स्वभाव से स्नेह पात्र मित्रों में सीधा रहै थोड़ा अपराध करने वाले ब्राह्मणों में क्षमा सहित रहै। ३२। इसी रीति से रहता हुआ राजा शिल उंछ से भी जीवन करता हो तो उस का यश लोक में फैलता है जैसे जल में तेल का बिंदु फैलता है। ३३।

इस से विपरीत जो राजा है और आत्मा को जीता नहीं है उस का यश लोक में फैलता नहीं जैसे जल में घी का बिंदु फैलता नहीं है। ३४। अपने अपने धर्मों में रहने वाले जो वर्ण और आश्रम हैं उन्हीं के रक्षा के लिये राजा उत्पन्न किए गए। ३५। भृगु जी कहते हैं कि हे ऋषि लोगो भृत्य सहित प्रजों का रक्षा करने वाले राजों के करने योग्य बस्तुओं को ज्यों का त्यों क्रम से आप लोगों से हम कहेंगे। ३६। राजा प्रातः काल उठ के ऋग् यजु साम वेद का अर्थ जानने वाले ब्राह्मणों की उपासना करै और उन की आज्ञा में रहै। ३७। पवित्र वृद्ध वेद के पढ़ने वाले ब्राह्मणों की नित्य ही सेवा करै ऐसा राजा राक्षसों से भी पूजा को जाता है। ३८। नित्य ही स्वभाव से उत्पन्न जो बुद्धि और अर्थ शास्त्र के ज्ञान से उत्पन्न जो बुद्धि इन्हीं करके नम्र आत्मा यद्यपि है तथापि नम्र होकर उन ब्राह्मणों से विनय का अभ्यास करै अधिक विनय के अर्थ ऐसे राजा कभी नष्ट नहीं होता। ३९। राज्य सामग्री सहित बहुत राजा लोग अविनय से भ्रष्ट हुए हैं और वन में रहने वाले राजा लोग विनय से राज्य को पाए हैं। ४०। वेण नहुष यवन का पुत्र सुदास सुमुख निमि ये सब अविनय से नष्ट हुए। ४१। पृथु मनु ये दोनों राज्य को और कुबेर धनैश्वर्य को विश्वामित्र ब्राह्मण जाति को विनय से पाए। ४२। तीन वेद के जानने वाले ब्राह्मणों से तीन वेद का पाठ और अर्थ को

अतस्तु विपरीतस्य नृपतेरजितात्मनः। संक्षिप्यते यशो लोके घृतबिन्दुरिवाम्भसि। ३४।
स्वे स्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषामनुपूर्वशः। वर्णानामाश्रमाणाञ्च राजा सृष्टोभिरक्षिता। ३५।
तेन यद्यत्स भृत्येन कर्तव्यं रक्षता प्रजाः। तत्तदोहं प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः। ३६।
ब्राह्मणान् पर्युपासीत प्रातरुत्थाय पार्थिवः। त्रैविद्यवृद्धान्विदुषस्तिष्ठेत्तेषाञ्च शासने। ३७।
वृद्धांश्च नित्यं सेवेत विप्रान्वेदविदः शुचीन्। वृद्धसेवी हि सततं रक्षोभिरपि पूज्यते। ३८।
तेभ्योधिगच्छेद्विनयं विनीतात्मापि नित्यशः। विनीतात्मा हि नृपतिर्न विनश्यति कर्हिचित्। ३९।
बहवोऽविनयान्नष्टा राजानः सपरिच्छदाः। वनस्था अपि राज्यानि विनयात्प्रतिपेदिरे। ४०।
वेणो विनष्टो विनयान्नहुषश्चैव पार्थिवः। सुदासो यवनश्चैव सुमुखो निमिरेव च। ४१।
पृथुस्तु विनयाद्राज्यमाप्तवान्मनुरेव च। कुबेरश्च धनैश्वर्य्यं ब्राह्मण्यञ्चैव गाधिजः। ४२।
त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दंडनीतिं च शाश्वतीम्। आन्वीक्षिकीञ्चात्मविद्यां वार्तारंभांश्च लोकतः। ४३।
इंद्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम्। जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितु प्रजाः। ४४।
दश कामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च। व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्ज्जयेत्। ४५।
कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः। वियुज्यतेऽर्थधर्म्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैव तु। ४६।
मृगया क्षादिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियोमदः। तौर्य्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दश को गणः। ४७।
पैशून्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम्। वाग्दण्डजञ्च पारुष्यं क्रोधजोपि गणोष्टकः। ४८।

दंड नीति के जानने वाले से नीति (अर्थात् अर्थ शास्त्र) को तर्क विद्या जानने वाले से तर्क विद्या (अर्थात् भूत आदि की उक्ति प्रत्युक्ति के उपयोग वाली) को ब्रह्म विद्या के जानने वाले से ब्रह्म विद्या (अर्थात् उदय में और नाश में हर्ष और विषाद का नाश करने वाली) को धन मिलने की उपाय को जानने वाले खेती हर से कृषि वाणिज्य पशु पालन आदि वार्ता को सीखै। ४३। रात्रि दिन इंद्रियों के जीतने में उद्योग को राखै जितेन्द्रिय राजा संपूर्ण प्रजों को अपने वश रखने सकता है। ४४। काम से उत्पन्न दश वस्तु और क्रोध से उत्पन्न आठ वस्तु इन को यत्न से वर्जन करै। ४५। काम से उत्पन्न वस्तु में प्रसक्त होने से राजा धर्म और अर्थ से रहित होता है और क्रोध से उत्पन्न वस्तु में प्रसक्त होने से आप नष्ट होता है। ४६। शिकार और पासा इन्हीं का खेलना दिन में सोना पर का दोष कहना स्त्री का सेवा सुरा पान से मद नाचना गाना बजाना वृथा घूमना ये दश काम से उत्पन्न हैं। ४७। बिना जाना दोष का कहना बल से काम करना कपट से वध दूसरे के गुण को न सहना पर के गुण में दोष निकालना अर्थ को चोराना अथवा देने योग्य बस्तु को न देना वाणी से कठोर बोलना दंड से ताड़न करना ये आठ क्रोध से उत्पन्न हैं। ४८।

* * * * * * * *

दोनों गणों का मूल लोभ है उस को यत्न से जीतना इस के जीतने से दोनों गण जीते जाते हैं इस बात को कवियों ने कहा है । ४९ । काम से जाय मान दश वस्तु में मदिरा पान पासा खेलना स्त्री सेवन शिकार खेलना ये चार क्रम से अर्थात् पूर्व पूर्व बहुत कष्ट हैं । ५० । क्रोध से जाय मान आठ वस्तु में दंड से मारना गाली देना देने योग्य वस्तु को न देना ये तीन बहुत कष्ट हैं । ५१ । ये सात सर्वत्र रहने वाले हैं इन में पहिला पहिला अति कष्ट है । ५२ । ये अठारहो व्यसन कहाते हैं व्यसन और मृत्यु में व्यसन कष्ट है क्योंकि व्यसन वाला नरक में जाता है और व्यसन से रहित मर के स्वर्ग में जाता है इस लिये व्यसन से मृत्यु अच्छी है । ५३ । कुलीन (अर्थात् पितृ पितामह के क्रम से सेवा करने वाले) शास्त्र के जानने वाले शूर लब्धलक्ष (अर्थात् जिस का फेंका बाण और शूल निशाना को नहीं छोड़ता) शुद्ध कुल में उत्पन्न ऐसे मंत्री परीक्षा लेके सात वा आठ राखे । ५४ । जो सहज काम है सो भी अकेले से नहीं हो सकता और राज्य काज बड़ा भारी है सो किस प्रकार से अकेले से सधै । ५५ । उन मंत्रियों के साथ नित्य ही मंत्र में चोराने योग्य नहीं ऐसा जो मिलाप बिगाड़ स्थान (अर्थात् दंड कोश पुर राज्य) तिस में हाथी घोड़ा रथ प्यादा इन्हीं को दंड कहते हैं तिस का पोषण समुदय (अर्थात् धान्य हिरण्य आदि का

द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः । तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ । ४९ ।
पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथा क्रमम् । एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे । ५० ।
दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थदूषणे । क्रोधजेपि गणे विद्यात्कष्टमेतत्त्रिकं सदा । ५१ ।
सप्तकस्यास्य वर्गस्य सर्वत्रैवानुषंगिणः । पूर्वं पूर्वं गुरुतरं विद्याद्व्यसनमात्मवान् । ५२ । व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते । व्यसन्यधोधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः । ५३ । मौलान् शास्त्रविदः शूरां ल्लब्धलक्षान्कुलोद्गतान् । सचिवान्सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् । ५४ ।
अपि यत्सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम् । विशेषतोसहायेन किंतु राज्यं महोदयम् । ५५ ।
तैस्सार्द्धञ्चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं संधिविग्रहम् । स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशमनानि च । ५६ ।
तेषां स्वंस्वमभिप्रायमुपलभ्य पृथक् पृथक् । समस्तानाञ्च कार्य्येषु विदध्याद्धितमात्मनः । ५७ ।
सर्वेषान्तु विशिष्टेन ब्राह्मणेन विपश्चिता । मंत्रयेत्परमं मंत्रं राजा षाड्गुण्यसंयुतम् । ५८ ।
नित्यं तस्मिन्समाश्वस्तः सर्वकार्याणि निःक्षिपेत् । तेन सार्द्धं विनिश्चित्य ततः कर्म समारभेत् । ५९ ।
अन्यानपि प्रकुर्वीत शुचीन् प्राज्ञानवस्थितान् । सम्यगर्थसमाहर्तॄनमात्यान्सुपरीक्षितान् । ६० ।
निर्वर्तेतास्य यावद्भिरिति कर्तव्यता नृभिः । तावतोऽतंद्रितान् दक्षान् प्रकुर्वीत विचक्षणान् । ६१ ।
तेषामर्थे नियुंजीत शूरान्दक्षान् कुलोद्गतान् । शुचीनाकरकर्म्मान्ते भीरूनन्तर्निवेशने । ६२ ।
दूतञ्चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम् । इङ्गिताकारचेष्टज्ञं शुचिन्दक्षं कुलोद्गतम् । ६३ ।
अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान्देशकालवित् । वपुष्मान् वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते । ६४ ।

उत्पत्ति स्थान) गुप्ति (अर्थात् आत्म रक्षा राज्य रक्षा) मिले धन को सत्पात्र में दान इन सब को चिंतन करै । ५६ । सब मंत्रियों के अभिप्राय को पृथक् पृथक् समझ के अथवा एक ही बेर सबों के अभिप्राय को जानकर कार्य में अपने हित को करै । ५७ । सब मंत्रियों में जो श्रेष्ठ हो उसके साथ छ गुण से युक्त परम मंत्र को चिंतन करै छ गुण कहैंगे । ५८ । विश्वास को पाकर उसी ब्राह्मण के साथ निश्चय करके कार्य का आरंभ करै । ५९ । पवित्र जानने वाले अच्छे प्रकार से द्रव्य को प्राप्त करने वाले सुंदर रीति से परीक्षित ऐसे और भी मंत्री को राखै । ६० । जितने मनुष्यों से अपना अर्थ सिद्ध होवे तितने आलस्य रहित कार्य में दक्ष क्रिया में उत्साह युक्त मनुष्य को राखै । ६१ । उन मंत्रियों में जो चतुर कुलीन पवित्र निःस्पृह हैं उन को धनोत्पत्ति स्थान में राखै जो डर पोकने हैं उन को गृह के भीतर राखै । ६२ । सब शास्त्र को जानने वाला इंगित (अर्थात् अभिप्राय का जनाने वाला जो वचन स्वर आदि) आकार (अर्थात् देह धर्म आदि प्रसन्नता अप्रसन्नता) चेष्टा अर्थात् हाथ पांव का डोलाना इन सबों का जानने वाला पवित्र दक्ष कुलीन ऐसे को दूत करना । ६३ । स्वामी में अनुराग सहित हो पवित्र दक्ष स्मृतिमान् देश काल का जानने वाला अच्छी शरीर वाला डर से रहित बोलने वाला ऐसा दूत राजा को अच्छा है । ६४ । * * *

मंत्री के अधीन दंड है दंड के अधीन विनय है राजा के अधीन कोश (अर्थात् खजाना) और राज्य है दूत के अधीन मिलाप और बिगाड़ है। ६५। दूत ही बिगड़े को मिलाता है और मिले को बिगाड़ता है जिस से मिलाप और बिगाड़ होता है वह काम दूत ही करता है। ६६। राजा का इंगित आकार चेष्टा करके भृत्यों में राजा के करने योग्य वस्तु को दूत ही जानै। ६७। दूसरे राजा के मन की बात बूझ के तैसा यत्न करै जिस से अपने राजा को पीड़ा न होवे। ६८। थोड़ा जल तृण वाला बहुत वायु घाम अन्न वाला जो देश सो जाङ्गल कहाता है धर्म युक्त जन से सहित रोग आदि से रहित फल पुष्प लता आदि से मनोहर चारों ओर के मनुष्य नम्र हैं जिस देश में सुलभ है खेती वाणिज्य आदि धन मिलने की उपाय जिस से ऐसे देश में बास करै। ६९। चारों ओर जल से रहित टेढ़ी भूमि वाला चारों ओर जल से वेष्ठित चारों ओर वृक्ष वाला चारों ओर लड़ांका मनुष्य वाला चारों ओर पर्वत वाला ये छः दुर्ग हैं (अर्थात् किला हैं) ऐसे देश में वास करै जिस में दूसरे राजा की सेना न आसके। ७०। तिस में जो चारों ओर पर्वत वाला है उस देश में प्रयत्न करके वास करै अर्थात् जब से वह मिले तब से दूसरे देश में वास न करै इन सबों में वह बहुत गुण करके बड़ा है। ७१। आदि जो तीन हैं सो मृग मूसक जल चर इन्हीं करके क्रम से आश्रित हैं पर जो तीन हैं सो बानर

अमात्ये दण्ड आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया। नृपतौ कोशराष्ट्रे च दूते सन्धिविपर्ययौ। ६५।
दूत एव हि संधत्ते भिनत्त्येव च संहतान्। दूतस्तत्कुरुते कर्म्म भिद्यन्ते येन वा न वा। ६६।
स विद्यादस्य कृत्येषु निगूढेङ्गितचेष्टितैः। आकारमिङ्गितञ्चेष्टां भृत्येषु च चिकीर्षितम्। ६७।
बुध्वा च सर्वन्तत्त्वेन परराजचिकीर्षितम्। तथा प्रयत्नमातिष्ठेद्यथात्मानं न पीड़येत्। ६८।
जाङ्गलं सस्यसम्पन्नमार्य्यप्रायमनाविलम्। रम्यमानतसामन्तं स्वाजीव्यं देशमावसेत्। ६९।
धनुर्दुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा। नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम्। ७०।
सर्वेण तु प्रयत्नेन गिरिदुर्गं समाश्रयेत्। एषां हि बहुगुण्येन गिरिदुर्गं विशिष्यते। ७१।
त्रीण्याद्यान्याश्रितास्त्वेषां मृगगर्त्ताश्रयाप्सराः। त्रीण्युत्तराणि क्रमशः प्लवंगमनरामराः। ७२।
यथा दुर्गाश्रितानेतान्नोपहिंसन्ति शत्रवः। तथारयो न हिंसन्ति नृपं दुर्गसमाश्रितम्। ७३।
एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्द्धरः। शतं दशसहस्राणि तस्माद्दुर्गं विशिष्यते। ७४।
तत्स्यादायुधसम्पन्नं धनधान्येन वाहनैः। ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च। ७५।
तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेद्गृहमात्मनः। गुप्तं सर्वर्तुकं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम्। ७६।
तदध्यास्योद्वहेद्भार्य्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्। कुले महति संभूतां हृद्यां रूपगुणान्विताम्। ७७।
पुरोहितञ्च कुर्वीत वृणुयादेव चर्त्विजम्। तेस्य गृह्याणि कर्म्माणि कुर्य्युर्वैतानिकानि च। ७८।
यजेत राजा क्रतुभिर्विविधैराप्तदक्षिणैः। धर्म्मार्थञ्चैव विप्रेभ्यो दद्याद्भोगान्धनानि च। ७९।
सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद्बलिम्। स्याच्चाम्नायपरो लोके वर्त्तेत पितृवन्नृषु। ८०।

मनुष्य देवता इन्हीं करके क्रम से आश्रित हैं (अर्थात् इन्हीं का यह किला है)। ७२। जिस प्रकार से मृग आदि अपने किला में रहने से शत्रुओं से पीड़ा को नहीं पाते तिसी प्रकार से किला में रहने से राजा शत्रुओं से पीड़ा को नहीं पाता। ७३। दुर्ग में रहने वाला एक धनुर्द्धर नीचे रहने वाले सौ से और किला में रहने वाला सौ नीचे रहने वाले दश हजार से युद्ध कर सकता है इस लिये दुर्ग करने का उपदेश करते हैं। ७४। आयुध धन धान्य वाहन ब्राह्मण कारीगर यंत्र घास जल इन्हीं करके वह दुर्ग युक्त रहै। ७५। उस के मध्य में पृथक् पृथक् स्त्री देवता हथिआर अग्नि इन्हीं का गृह खाईं से युक्त सब ऋतु का फल पुष्प सहित श्वेत वर्ण वापी आदि जल युक्त वृक्ष सहित अपना गृह बनावे। ७६। उस गृह में बैठ कर अच्छे कुल में उत्पन्न हृदय प्रिय रूप गुण सहित लक्षण युक्त अपने वर्ण की जो स्त्री उस से विवाह करै। ७७। पुरोहित और ऋत्विक् इन्हीं का वरण करै ये दोनों इस राजा का अग्नि होत्र आदि गृह के कर्म को करैं। ७८। बहुत दक्षिणा सहित नाना प्रकार के यज्ञ को करै धर्म के अर्थ ब्राह्मणों के स्त्री गृह शय्या आदि भोग सुवर्ण वस्त्र आदि धन को देवै। ७९। राज्य से अपना भाग वर्ष भर का लेवै यथार्थकारी मनुष्यों करके वेद में जो कहा है उस को करै मनुष्यों में पिता की नाईं रहै। ८०। * * *

तहां तहां एक एक श्रधिकारी पंडित नाना प्रकार का राखै वे सब इस राजा के काम करने वाले के काम को देखें। ८१। गुरु कुल से पढ़के पिता के घर श्राए जो ब्राह्मण हैं तिन की पूजा करै वह ब्राह्मण इस राजा का श्रक्षय निधि है। ८२। ब्राह्मण में स्थापित जो निधि है सो श्रक्षय है श्रौर उस को चोर लोग चोराय नहीं सकते शत्रु लोग हरण नहीं कर सकते इस लिये ऐसे ही स्थान में निधि का स्थापन राजा करै। ८३। ब्राह्मण के मुख में जो होम किया गया सो न स्रवै न व्यथा करै न नष्ट होवे श्रौर वह श्रग्निहोत्र से बड़ा है। ८४। ब्राह्मण से भिन्न क्षत्रिय श्रादि के देने से जितना दे उतना ही मिलता है मूर्ख ब्राह्मण के देने से दूना मिलता है एक शाखा पढ़ने वाले के देने से लक्ष गुण मिलता है समस्त वेद पढ़ने वाले के देने से श्रनन्त फल होता है। ८५। प्रति ग्रह करने वाले की बड़ाई से श्रौर श्रद्धा से दान का फल थोड़ा वा बहुत परलोक में मिलता है। ८६। प्रजा को पालन करत क्षत्रिय धर्म को स्मरण करत युद्ध के श्रर्थ श्रपने से सब उत्तम श्रधम राजा करके बुलाया जाय तो न फिरै। ८७। संग्राम में स्थिर रहना प्रजा का पालन करना ब्राह्मण की सेवा करना यह तीनों कर्म राजों का परम कल्याण करन हार है। ८८। संग्राम में परस्पर

श्रध्यक्षान्विविधान् कुर्यात्तत्र तत्र विपश्चितः। तेस्य सर्वाण्यवेक्षेरन्नृणां कार्याणि कुर्वताम्। ८१।
श्रावृत्तानां गुरुकुलाद्विप्राणां पूजको भवेत्। नृपाणामक्षयो ह्येष निधिर्ब्राह्मोभिधीयते। ८२।
न तंस्तेना न चामित्रा हरन्ति न च नश्यति। तस्माद्राज्ञा निधातव्यो ब्राह्मणेष्वक्षयो निधिः। ८३।
न स्कन्दते नव्यथते न विनश्यति कर्हिचित्। वरिष्ठमग्निहोत्रेभ्यो ब्राह्मणस्य मुखे हुतम्। ८४।
सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे। प्राधीते शतसाहस्रमनंतं वेदपारगे। ८५। पात्रस्य हि
विशेषेण श्रद्दधानतयैव च। श्रल्पं वा बहु वा प्रेत्य दानस्यावाप्यते फलम्। ८६।
समोत्तमाधमै राजा त्वाहूतः पालयन्प्रजाः। न निवर्तेत संग्रामात् क्षात्रन्धर्ममनुस्मरन्। ८७।
संग्रामेष्वनिवर्तित्वम्प्रजानाञ्चैव पालनम्। शुश्रूषा ब्राह्मणानाञ्च राज्ञां श्रेयस्करम्परम्। ८८।
श्राहवेषु मिथोन्योन्यं जिघांसंतो महीक्षितः। युध्यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यांत्यपराङ्मुखाः। ८९।
न कूटैरायुधैर्हन्याद्युध्यमानो रणे रिपून्। न कर्णिभिर्नापि दिग्धैर्नाग्निज्वलिततेजनैः। ९०।
न च हन्यात्स्थलारूढं न क्लीबन्न कृताञ्जलिम्। न मुक्तकेशन्नासीनं न तवास्मीति वादिनम्। ९१।
न सुप्तन्न विसन्नाहन्न नग्नन्न निरायुधम्। नायुध्यमानं पश्यंतं न परेण समागतम्। ९२।
नायुधव्यसनप्राप्तन्नार्तन्नातिपरिक्षतम्। न भीतन्न परावृत्तं सतान्धर्ममनुस्मरन्। ९३। यस्तु
भीतः परावृत्तः संग्रामे हन्यते परैः। भर्तुर्यद्दुष्कृतं किञ्चित्सर्वन्तत्प्रतिपद्यते। ९४।
यच्चास्य सुकृतं किञ्चिदमुत्रार्थमुपार्ज्जितम्। भर्ता तत्सर्वमादत्ते परावृत्तहतस्य तु। ९५।
रथाश्वं हस्तिनं छत्रं धनधान्यं पशून् स्त्रियः। सर्वद्रव्याणि कुप्यञ्च यो यज्जयति तस्य तत्। ९६।

मारते हुए न भागने से मरे हुए स्वर्ग में जाते हैं। ८९। विष से बुझाए हुए शस्त्र ऊपर काठ रहै भीतर लोह रहै जिस में ऐसा जो हथिश्रार कर्णी के श्राकार फल जिस का है ऐसा जो बाण श्रग्नि से तपा हुश्रा जो शस्त्र इन्हों करके रण में शत्रुश्रों को लड़ाई करते हुए न मारै। ९०। भूमि में स्थित नपुंसक हाथ जोड़ने वाला खुला केश वाला तुमारा हूं ऐसा कहने वाला श्रौर जो बैठा है इन सब को न मारना। ९१। सूता है कवच (श्रर्थात् बख़तर से रहित है श्रायुध श्रौर युद्ध इन्हों से रहित है देखने वाला दूसरे के साथ श्राया है। ९२। टूटा शस्त्र वाला पुत्र शोक श्रादि से दुःखी बहुप्रहार से व्याकुल डरा हुश्रा युद्ध से भागा हुश्रा इन सब को सज्जनों के धर्म को स्मरण करत संते न मारना। ९३। जो डरा हुश्रा संग्राम में दूसरे के शस्त्र का घाव पाके भाग के मारा गया है सो श्रपने स्वामी के पाप को पाता है। ९४। श्रौर उस का जो सुकृत है परलोकार्थ श्रर्जित उस का स्वामी पाता है। ९५। रथ घोड़ा हाथी छाता धन धान्य पशु स्त्री संपूर्ण द्रव्य कुप्य (श्रर्थात् सोना चांदी से भिन्न सीसा पीतल श्रादि) इन सब को जो जीतै सोई पाता है। ९६।

* * * * * *

राजा को उद्धार (अर्थात् जीती हुई द्रव्य में जो उत्तम द्रव्य है सोना चांदी भूमि आदि) देवै यह वेद में कहा है राजा सब योधों को उस वस्तु को देवै जो कि सबों ने मिल के जीता हो। ९७। निंदा रहित नित्य यह योधों के धर्म को कहा क्षत्रिय लोग रण में शत्रुओं का नाश करत इस धर्म से रहित न होवे। ९८। जो वस्तु मिली नहीं है उस के मिलने की इच्छा करै और जो मिली है उस का यत्न पूर्वक रक्षा करै रक्षित बस्तु को बढ़ावे बढ़ी वस्तु को सत्पात्र में स्थापन करै। ९९। पुरुषार्थ जो स्वर्ग आदि उस का प्रयोजन यही चार प्रकार का है इस को जानै और नित्य ही आलस रहित इस का सेवन करै। १००। अलब्ध वस्तु का इच्छा करै दंड करके लब्ध वस्तु का रक्षा करै देखने से रक्षित बस्तु को बढ़ावै ब्याज से बढ़ी हुई वस्तु को स्थापन करै दान से। १०१। हाथी घोड़ा आदि संग्राम आदि इन्हीं के सीखने का अभ्यास अस्त्र विद्या आदि करके अपने पौरुष का प्रकाश मंत्र आचार चेष्टा आदि का अप्रकार शत्रु के छिद्र का अनुसरण इन सब को नित्य ही करता रहै। १०२। जिस का दंड नित्य ही उदित है उस राजा से संपूर्ण जगत डरता है इस लिये सब जीवों को दंड ही करके अपने अधीन करै। १०३।

राज्ञश्च दद्युरुद्धारमित्येषा वैदिकी श्रुतिः। राज्ञा च सर्वयोधेभ्यो दातव्यमपृथग्जितम्। ९७।
एषोनुपस्कृतः प्रोक्तो योधधर्म्मः सनातनः। अस्माद्धर्म्मान्न च्यवते क्षत्रियो घ्नन् रणे रिपून्। ९८।
अलब्धञ्चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत्प्रयत्नतः। रक्षितं वर्द्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत्। ९९।
एतच्चतुर्विधं विद्यात्पुरुषार्थप्रयोजनम्। अस्य नित्यमनुष्ठानं सम्यक्कुर्य्यादतन्द्रितः। १००।
अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेदवेक्षया। रक्षितं वर्द्धयेद्वृद्ध्या वृद्धं दानेन निःक्षिपेत्। १०१।
नित्यमुद्यतदण्डः स्यान्नित्यं विवृतपौरुषः। नित्यं संवृतसंवार्य्यो नित्यं छिद्रानुसार्य्यरेः। १०२।
नित्यमुद्यतदण्डस्य कृत्स्नमुद्विजते जगत्। तस्मात्सर्वाणि भूतानि दण्डेनैव प्रसाधयेत्। १०३।
अमाययैव वर्तेत न कथञ्चन मायया। बुद्ध्येतारिप्रयुक्ताञ्च मायां नित्यं स्वसंवृतः। १०४।
नास्य छिद्रं परो विद्याद्विद्याच्छिद्रं परस्य तु। गूहेत्कूर्म्म इवाङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः। १०५।
बकवच्चिन्तयेदर्थान्सिंहवच्च पराक्रमेत्। वृकवच्चावलुंपेत शशवच्च निष्पतेत्। १०६।
एवं विजयमानस्य येस्य स्युः परिपन्थिनः। तानानयेद्वशं सर्वान्सामादिभिरुपक्रमैः। १०७।
यदि ते तु न तिष्ठेयुरुपायैः प्रथमैस्त्रिभिः। दण्डेनैव प्रसह्यैताञ्छनकैर्वशमानयेत्। १०८।
सामादीनामुपायानाञ्चतुर्णामपि पण्डिताः। सामदण्डौ प्रशंसंति नित्यं राष्ट्राभिवृद्धये। १०९।
यथोद्धरति निर्दाता कक्षन्धान्यञ्च रक्षति। तथा रक्षेन्नृपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः। ११०।
मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया। सोचिराद्भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः। १११।
शरीरकर्षणात्प्राणाः क्षीयन्ते प्राणिनां यथा। तथाराज्ञामपिप्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात्। ११२।

आप माया (अर्थात् कपट) से रहित रहै और शत्रु के माया को नित्यही जानै अपने पक्ष की रक्षा यत्न से करै। १०४। इस राजा के छिद्र को दूसरा न जानै और यह दूसरे के छिद्र को जानै कछुआ की नाईं अपने अंग को छिपावे अपने छिद्र की रक्षा करै। १०५। बकुला की नाईं अर्थ का चिंतन सिंह की नाईं पराक्रम हुंड़ार की नाईं अवलुंपन (अर्थात् बस्तु का लेना) खरहा की नाईं भागना इन सब को करै। १०६। इस रीति से विजय के प्रवृत्त जो राजा उस का विजय विरोधी जो शत्रु हैं उन सब को साम दान दंड भेद इन्हीं चारो उपाय से अपने वश करै। १०७। जब विरोधी प्रथम तीन उपाय से न वश होवे तो दंड ही करके हठते वश करै। १०८। साम आदि चारो उपाय में साम और दंड इन दोनों की नित्य प्रशंसा पंडित लोग करते हैं राज्य की वृद्धि के लिये। १०९। जिस रीति से खेती करने वाला धान्य की रक्षा करता है और तृण आदि को उखाड़ डारता है तिस प्रकार से राजा राज्य की रक्षा करै और शत्रुओं का नाश करै। ११०। जो राजा मोह से विना देखे राज्य को पीड़ा देता है सो थोड़े ही काल में अपना प्राण और राज्य बांधव सहित नाश को पाता है। १११। जिस रीति से शरीर के कष्ट देने से सब इंद्रियों को कष्ट होता है तिसी रीति से राज्य के पीड़ा से राजा का प्राण पीड़ित होता है। ११२। * *

राज्य के संग्रहार्थ इस विधान को नित्य ही आचरण करै सुंदर रीति से जिस का राज्य संगृहीत है सो राजा सुख पूर्वक बढ़ता है। ११३। दूइ तीन पांच सब ग्राम के मध्य में रक्षा का स्थान बनावे उस में राज्य संग्रहार्थ अपना अधिकारी पुरुष को राखे। ११४। एक ग्राम का दश का बीस ग्राम का सौ ग्राम का सहस्र ग्राम का स्वामी एक एक को करै। ११५। ग्राम में दोष उत्पन्न हो तो उस को उस ग्राम का स्वामी धीरे से दश ग्राम के स्वामी को निवेदन करै और वह बीस ग्राम के स्वामी से कहै। ११६। बीस ग्राम वाला सौ ग्राम के स्वामी से कहै और वह सहस्र ग्राम के स्वामी से कहै। ११७। प्रति दिन ग्राम वासी जनों से लेने के योग्य जो राजा का भाग अन्न पान लकड़ी आदि है उस को ग्राम का स्वामी लेवै। ११८। छ वृषभ से एक हल चलावे ऐसे दो हल से जितनी भूमि जोती जाय उस का नाम कुल है उस को जीवन के अर्थ दश ग्राम का स्वामी लेवै पांच कुल को बीस ग्राम का स्वामी लेवै एक मध्यम ग्राम को सौ ग्राम का स्वामी लेवै एक पुर को सहस्र ग्राम का स्वामी लेवै अपनी जीविका के लिये। ११९। उनके (अर्थात् ग्राम निवासियों के) सब ग्राम सम्बन्धि काम और उनके निज कामों को राजा का हित करने वाला मंत्री आलस्य छोड़ कर देखे। १२०। नगर नगर में संपूर्ण अर्थ का चिंता करने वाला एक पुरुष को और एक स्थान बड़ा ऊंचा भयानक रूप को राखे जैसे नक्षत्रों में ग्रह हैं। १२१। सो पुरुष नगर स्वामी ग्राम स्वामी आदि को बिना प्रयोजन सर्व काल में बल करके देखै और दूतों से सबों के मन की बात को जानै।

राष्ट्रस्य संग्रहे नित्यं विधानमिदमाचरेत्। सुसंगृहीतराष्ट्रो हि पार्थिवः सुखमेधते। ११३।
द्वयोस्त्रयाणां पंचानां मध्ये गुल्ममधिष्ठितम्। तथा ग्रामशतानां च कुर्य्याद्राष्ट्रस्य संग्रहम्। ११४।
ग्रामस्याधिपतिं कुर्य्याद्दशग्रामपतिन्तथा। विंशतीशंशतेशञ्च सहस्रपतिमेव च। ११५।
ग्रामे दोषान्समुत्पन्नान् ग्रामिकः शनकैः स्वयम्। शंसेद्ग्रामदशेशाय दशेशो विंशतीशिनम्। ११६।
विंशतीशस्तु तत्सर्वं शतेशाय निवेदयेत्। शंसेद्ग्रामशतेशस्तुसहस्रपतये स्वयम्। ११७। यानि
राजप्रदेयानि प्रत्यहं ग्रामवासिभिः। अन्नपानेन्धनादीनि ग्रामिकस्तान्यवाप्नुयात्। ११८।
दशी कुलन्तु भुञ्जीत विंशी पञ्च कुलानि च। ग्रामं ग्रामशताध्यक्षः सहस्राधिपतिः पुरम्। ११९।
तेषां ग्राम्याणि कार्याणि पृथक्कार्य्याणि चैव हि। राज्ञोन्यः सचिवः स्निग्धस्तानि पश्येदतंद्रितः। १२०।
नगरे नगरे चैवं कुर्य्यात्सर्वार्थचिन्तकम्। उच्चैः स्थानं घोररूपं नक्षत्राणामिव ग्रहम्। १२१।
स ताननुपरिक्रामेत्सर्वानेव सदा स्वयम्। तेषां वृत्तं परिणयेत्सम्यग्राष्ट्रेषु तच्चरैः। १२२।
राज्ञो हि रक्षाधिकृताः परस्वादायिनः शठाः। भृत्या भवन्ति प्रायेण तेभ्यो रक्षेदिमाः प्रजाः। १२३।
ये कार्यिकेभ्योर्थमेव गृह्णीयुः पापचेतसः। तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्य्यात्प्रवासनम्। १२४।
राजा कर्मसु युक्तानां स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च। प्रत्यहं कल्पयेद्वृत्तिं स्थानकर्म्मानुरूपतः। १२५।
पणो देयोऽवकृष्टस्य षडुत्कृष्टस्य वेतनम्। षाण्मासिकस्तथा च्छादो धान्यद्रोणस्तु मासिकः। १२६।
क्रयविक्रयमध्वानम्भक्तं च सपरिव्ययम्। योगक्षेमं च संप्रेक्ष्य वणिजो दापयेत्करान्। १२७।

१२२। बहुधा राजा के अधिकारी लोग पर द्रव्य के लेने वाले होते हैं और शठ होते हैं इस लिये उन्हों से प्रजों की रक्षा करै। १२३। पाप चित्त वाले जो अधिकारी लोग प्रजों से द्रव्य को लेते हैं तिन्हों का संपूर्ण द्रव्य को लेकर राज्य से बाहर उन्हों को निकाल देवै। १२४। राजों के काम को करने वाले जो स्त्री जन और भृत्य जन हैं तिन्हों के प्रति दिन कर्म के योग्य जीविका को करै। १२५। गृह का मार्जन करने वाला और जल लाने वाला जो है उस को एक पण नित्य देवै पण का लक्षण आगे कहैंगे और मास में एक द्रोण अन्न देवै छठें मास में दो वस्त्र देवै उत्तम कर्म करने वाले को छ पण नित्य देवै और छठें मास में चार वस्त्र देवै प्रति मास में छ द्रोण धान्य देवै इसी रीति से मध्यम कर्म करने वाले को तीन पण नित्य देवै प्रतिमास में तीन द्रोण धान्य देवै छठें मास में वस्त्र देवै आठ मुट्ठी को किंचित् कहते हैं आठ किंचित् को पुष्कल कहते हैं चार पुष्कल को आढ़क कहते हैं चार आढ़क को द्रोण कहते हैं चार द्रोण को खारी कहते हैं। १२६। कितने मोल से लिया है और विक्रय में कितना मिलेगा कितनी दूर से लाया है इस के भोजन में कितना लगा है रक्षा में कितना व्यय भया है कितना इस को लाभ का योग है इन सब को देख कर बनियों से कर को लेवे। १२७।

* * * * * *

जिस से कर्म करने वाले को और राजा को फल मिले तैसा देख कर राजा निरंतर कर का कल्पना करै । १२८ । जिस रीति से जोंक बछरू भंवरा ये सब भोजन के योग्य बस्तु को थोड़ा थोड़ा भोजन करते हैं तिसी रीति से राज्य से वर्ष के कर को थोड़ा थोड़ा राजा लेवै । १२९ । पशु और हिरण्य के लाभ में पचासवां भाग को धान्य के छठवां बारहवां भाग को लेवै भूमि का गुण अवगुण जोताई का परिश्रम और बेपरिश्रम को देख कर अंश का विकल्प करना । १३० । वृक्ष मांस मधु घी गंध औषधी रस पुष्प मूल फल । १३१ । पत्र शाक तृण चर्म बांस का पात्र मट्टी का पात्र पत्थल का पात्र इन सत्रहों के छठवां भाग को राजा लेवै । १३२ । मरता भी हो राजा परंतु वेद पाठी से कर को न लेवै और क्षुधा से पीड़ित वेद पाठी राज्य में न रहै (अर्थात् उन के भोजन की उपाय को राजा करता रहै) । १३३ । जिस के राज्य में वेद पाठी भूखों मरता है उस का राज्य झट पट नष्ट हो जाता है । १३४ । ब्राह्मणों का पठन और आचरण को जानकर धर्म युक्त जीविका को करै चारो ओर से उस ब्राह्मण की रक्षा करै जैसे पिता पुत्र की रक्षा करता है । १३५ । राजा से रक्षा को पाकर दिन दिन में जो धर्म ब्राह्मण करता है उस्से राजा का द्रव्य राज्य आयुष बढ़ता है । १३६ । राज्य में निकृष्ट जनों से थोड़ा भी शाक पत्ता आदि को वर्ष भर में कर के

यथा फलेन युज्येत राजा कर्ता च कर्म्मणाम् । तथावेक्ष्यन्नृपो राष्ट्रे कल्पयेत्सततं करान् । १२८ ।
यथाल्पाल्पमदंत्याद्यं वार्य्योको वत्सषट्पदाः । तथाल्पाल्पो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकः करः ।
१२९ । पंचाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः । धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा ।
१३० । आददीताथ षड्भागं द्रुमांसमधुसर्पिषाम् । गन्धौषधिरसानां च पुष्पमूलफलस्य च । १३१ ।
पत्रशाकतृणानां च चर्मणां वैदलस्य च । मृण्मयानां च भाण्डानां सर्वस्याश्ममयस्य च । १३२ ।
म्रियमाणोप्याददीत न राजा श्रोत्रियात्करम् । न च क्षुधास्य संसीदेच्छ्रोत्रियो विषये वसन् । १३३ ।
यस्य राज्ञस्तु विषये श्रोत्रियः सीदति क्षुधा । तस्यापि तत् क्षुधा राष्ट्रमचिरेणैव सीदति । १३४ ।
श्रुतवृत्ते विदित्वास्य वृत्तिन्धर्म्यां प्रकल्पयेत् । संरक्षेत्सर्वतश्चैनं पितापुत्रमिवौरसम् । १३५ ।
संरक्ष्यमाणो राज्ञा यं कुरुते धर्ममन्वहम् । तेनायुर्वर्द्धते राज्ञो द्रविणं राष्ट्रमेव च । १३६ ।
यत्किंचिदपि वर्षस्यदापयेत्करसंज्ञितम् । व्यवहारेण जीवंतं राजा राष्ट्रे पृथग्जनम् । १३७ ।
कारुकान् शिल्पिनश्चैव शूद्रांश्चात्मोपजीविनः । एकैकं कारयेत्कर्म्म मासि मासि महीपतिः । १३८ ।
नोच्छिंद्यादात्मनो मूलं परेषां वातितृष्णया । उच्छिंदन् ह्यात्मनो मूलमात्मानं तांश्च पीड़येत् । १३९ ।
तीक्ष्णश्चैव मृदुश्च स्यात्कार्य्यं वीक्ष्य महीपतिः । तीक्ष्णश्चैव मृदुश्चैव राजा भवति सम्मतः । १४० ।
अमात्यमुख्यं धर्मज्ञं प्राज्ञन्दान्तङ्कुलोद्गतम् । स्थापयेदासने तस्मिन् खिन्नः कार्येक्षणे नृणाम् । १४१ ।
एवं सर्वं विधायेदमिति कर्तव्यमात्मनः । युक्तश्चैवाप्रमत्तश्च परिरक्षेदिमाः प्रजाः । १४२ ।
विक्रोशंत्यो यस्य राष्ट्राद्ध्रियन्ते दस्युभिः प्रजाः । संपश्यतः सभृत्यस्य मृतः स न तु जीवति । १४३ ।
क्षत्रियस्य परोधर्मः प्रजानामेव पालनम् । निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते । १४४ ।

मित्त लेवै । १३७ । रसोंई करने वाले लोहकार आदि शूद्र देह के क्लेश से जीने वाले बोझिया आदि इन सबों से प्रतिमास में क दिन कर्म को करावे इन्हीं का यही कर है । १३८ । प्रजों के स्नेह से वर्ष का कर न लेवै तो राजा का मूलच्छेद होता है ार अति तृष्णा से अधिक कर लेवै तो भी इस लिये इन दोनों कर्म को न करै तो अपने को और प्रजों को पीड़ित करता है । ३९ । राजा कार्य को देख कर कार्य्य के अनुसार से कोमल और क्रूर होवै (अर्थात् अच्छा कार्य्य देख के कोमल होवै और बुरा ार्य्य देख के कठोर होवे) ऐसा राजा सब को सम्मत है । १४० । आप व्यवहार के देखने में खेद से युक्त होवे तो अपने आसन र मंत्रियों में मुख्य धर्म्म का जानने वाला जितेन्द्रिय कुलीन ऐसे ब्राह्मण को स्थापन करै । १४१ इसी प्रकार से अपने करने के ाग्य बस्तु को विधान करके उद्योग सहित प्रमाद रहित सब प्रजों का रक्षा करै । १४२ । भृत्य सहित जिस राजा के देखते हुए स के राज्य में चोरों से लूटे गए प्रजा लोग पुकारते हैं सो राजा जीता नहीं है किंतु मर गया है । १४३ । क्षत्रियों का परम र्म्म प्रजा का पालन ही है शास्त्रोक्त कर्म्म को करने वाला राजा धर्म्म से युक्त होता है । १४४ । * * *

प्रहर रात्रि रहे उठ करके शौच कर एकाग्र चित्त होके अग्नि होत्र होम करके ब्राह्मणों की पूजा करके सुंदर शुभ सभा में प्रवेश करै। १४५। सभा में बैठ कर सब प्रजों के भाषण दर्शन आदि से विसर्जन (अर्थात् बिदा) करै तदनंतर मंत्रियों के साथ मंत्र को बिचारै। १४६। पर्वत के ऊपर अथवा अंटारी पर एकांत में अथवा वन में बैठकर मंत्र के भेद करने वाले मनुष्यों से रहित पंचांग मंत्र को चिंतन करै मंत्र के पांचो अंग को लिखते हैं कर्म्मों के आरंभ का उपाय पहिला अंग है पुरुष द्रव्य संपत् देश काल इन्हों का विभाग दूसरा अंग है विनिपात ३ प्रतीकार ४ कार्य्य सिद्धि ५ ये पांच अंग हैं। १४७। मंत्रियों को छोड़कर दूसरे मनुष्य मिलके जिस राजा की मंत्र को नहीं जानते हैं सो राजा द्रव्य से हीन हो तो भी संपूर्ण पृथिवी को भोग कर सकता है। १४८। बौड़हा गूंगा अंधा बहिरा पक्षी वृद्ध (अर्थात् अस्सी वर्ष के ऊपर वय वाला) स्त्री म्लेच्छ व्याधित एक एक अंग से रहित इन सभों के मंत्रकाल में वर्जन करना। १४९। ये सब पूर्व जन्म के पाप से ऐसे हुए हैं इसलिये अपमान को पाके मंत्र का भेद करते हैं और पक्षी वृद्ध स्त्री इन्हों की बुद्धि स्थिर नहीं रहती इस लिये एभी मंत्र का भेद करते हैं इसी कारण से मंत्र काल में ये सब न रहने पावैं। १५०। मध्यदिन में अथवा अर्द्धरात्र में श्रम से रहित निचिंत होकर उन मंत्रियों के साथ अथवा अकेला ही धर्म अर्थ काम को चिंतन करै। १५१। धर्म अर्थ काम ये सब परस्पर विरोध सहित हैं इन्हों का विरोध न होवे ऐसी उपाय का चिंतन धन प्राप्ति के लिये करै और अपने कार्य के सिद्ध्यर्थ कन्या का दान और नीति शास्त्रोक्त विनय शिक्षा के लिये कुमारों का रक्षण इन्हों का चिंतन करै। १५२। दूत का भेजना कार्य का शेष (अर्थात् बाकी) अंतःपुर का प्रचार (अर्थात् चलन) प्रणिधि (अर्थात् दूसरे राजों के समाचार का लाने वाला) का चेष्टित (अर्थात् मन में करने की जो इच्छा)

उत्थाय पश्चिमे यामे कृतशौचः समाहितः। हुताग्निर्ब्राह्मणांश्चार्च्य प्रविशेत्स शुभां सभाम्।
१४५। तत्र स्थितः प्रजाः सर्वाः प्रति नंद्य विसर्जयेत्। विसृज्य च प्रजाः सर्वा मंत्रयेत्सह
मंत्रिभिः। १४६। गिरिपृष्ठं समारुह्य प्रसादं वा रहो गतः। अरण्ये निःशलाके वा मंत्रये-
द्विभावितः। १४७। यस्य मंत्रं न जानन्ति समागम्य पृथग्जनाः। स कृत्स्नां पृथिवीं भुंक्ते
कोशहीनोपि पार्थिवः। १४८। जडमूकांधवधिरांस्तिर्य्यग्योनान्वयोतिगान्। स्त्रीम्लेच्छव्याधितव्य-
ङ्गान्मन्त्रकालेऽपसारयेत्। १४९। भिन्दन्त्य वमता मन्त्रं तैर्य्यग्योनास्तथैव च। स्त्रियश्चैव विशेषेण
तस्मात्तत्राहतो भवेत्। १५०। मध्यं दिनेऽर्द्धरात्रे वा विश्रांतो विगतक्लमः। चिंतयेद्धर्म्मकामार्थां-
न्सार्द्धन्तैरेक एव वा। १५१। परस्परविरुद्धानां तेषाञ्च समुपार्जनम्। कन्यानां सम्प्रदानञ्च
कुमाराणाञ्च रक्षणम्। १५२। दूतसम्प्रेषणञ्चैव कार्यशेषन्तथैव च। अन्तः पुरप्रचारञ्च
प्रणिधीनाञ्च चेष्टितम्। १५३। कृत्स्नञ्चाष्टविधङ्कर्म्म पञ्च वर्गञ्च तत्वतः। अनुरागापरागौ च

इन सबों का चिंतन करै। १५३। प्रजों से कर लेना १ भृत्यों के धन देना २ इस लोक के अर्थ और पर लोक के अर्थ जो कर्म है उसका करना ३ और न करना ४ इस बात की मंत्रियों के आज्ञा देना कार्य संदेह में आज्ञा देना ५ व्यवहार देखना ६ व्यवहार में जो हारे हैं उन से शास्त्रोक्त धन लेना ७ पापियों को प्रायश्चित्त कराना ८ इन आठों कर्म का चिंतन करना और तत्व तें (अर्थात् सिद्धांत तें) पंच वर्ग का चिंतन करै सो पंच वर्ग लिखते हैं दूसरे के भीतर की बात को जानने वाला भय रहित बोलनेवाला कपट व्यवहार करने वाला ऐसा मनुष्य जीविका के लिये आवे तो उस को दान मान से अपना करके एकांत में बोले कि जिस का दुष्ट कर्म देखो उसी समय हम से कहो १ संन्यास से भ्रष्ट जो हैं उन का दोष तो लोक में विदित है उन को बुद्धि और पवित्रता से युक्त करके बहुत उत्पत्ति वाली मठ में स्थापन करके एकांत में पूर्ववत् बोले बहुत धान्य उत्पन्न हो जिस भूमि में उस भूमि को जीविका के लिये उस को देवे सो भ्रष्ट संन्यासी दूसरे संन्यासी जो हैं राजा के काम को करने वाले उन्हों को भोजन और वस्त्र को देवे २ जीविका से रहित खेती करने वाला जो है उसको बुद्धि और शौच से गुप्त करके एकांत में प्रथम की नाईं बोले और अपनी भूमि को खेती करने के लिये देवे ३ जीविका से रहित बनियां को पूर्ववत् कहिके धन और मान को देके अपने अधीन करके बनियों के कर्म को करावे ४ मूड़ मुड़ाए हो या जटा रखाए हो और जीविका से रहित हो उस को गुप्त जीविका देकर एकांत में पूर्ववत् कहै और वह कपटी बहुत मुंडित और जटिल शिष्यों के सहित तपस्या करै महीने दो महीने में सब के आगे मूठी भर बेरि आदि को भोजन करै और रात्रि के कोई जानै न इस रीति से भोजन करै और शिष्य लोग उस की माहात्म्य को प्रकाश करैं कि भूत भविष्य वर्तमान तीनों काल के जानने वाले गुरू जी हैं इस से सब लोग अपने

अर्थ को कहेंगे ५ ये पांचो क्रम से कापटिक उदास्थित गृह पति वैदिक तापस कहाते हैं इन पांचो कर्म का चिंतन करै इन्हीं से दूसरे राजा का और अपने मंत्री आदि का प्रेम और अप्रेम जानि के उस की उपाय को करै कि कौन राजा मेल चाहता है कौन बिगाड़ चाहता है यह जान के तैसी उपाय करै। १५४। अरि विजिगीषू (अर्थात् जीतने को इच्छा की करने वाला) मध्यम (अर्थात् अरि विजिगीषू इन दोनों की भूमि के समीप में रहने वाला मिले हुए दोनों राजों के अनुग्रह में और बिगड़े हुए दोनों राजों के निग्रह में समर्थ) और उदासीन (अर्थात् विजिगीषू मध्यम मिले हुए इन्हीं के अनुग्रह में और बिगड़े हुए इन्हीं के निग्रह में समर्थ) इन सबों का चेष्टित (अर्थात् करने की इच्छा को चिंतन करै)। १५५। संक्षेप से राज मंडल का ये चार मूल प्रकृति हैं आठ और हैं सो कहते हैं शत्रु के भूमि के अगाड़ी मित्र अरि मित्र मित्र मित्र अरि मित्र मित्र और पिछाड़ी पार्ष्णि-ग्राह आक्रंद पार्ष्णिग्राहासार आक्रंदासार ये आठ पूर्व कथित चारो को मिलाकर बारह होते हैं। १५६। चार मूल प्रकृति आठ शाखा प्रकृति इन्हीं में एक एक के पांच २ द्रव्य प्रकृति है तिन पांचो का नाम यह है कि अमात्य (अर्थात् मंत्री) राष्ट्र (अर्थात् राज्य) दुर्ग (अर्थात् किला) अर्थ (अर्थात् धन) दंड सब मिलि संक्षेप से ७२ प्रकृति हैं। १५७। अपने राज्य के समीप का राजा शत्रु है और उस का सेवा करने वाला भी उस के आगे का राजा मित्र है अरि मित्र से तो परे है सो उदासीन है।

प्रचारं मण्डलस्य च। १५४। मध्यमस्य प्रचारञ्च विजिगीषोश्च चेष्टितम्। उदासीनप्रचारञ्च
शत्रोश्चैव प्रयत्नतः। १५५। एताः प्रकृतयोमूलं मण्डलस्य समासतः। अष्टौ चान्याः समाख्याता
द्वादशैव तु ताः स्मृताः। १५६। अमात्यराष्ट्रदुर्गार्थदण्डाख्याः पञ्च चापराः। प्रत्येकं कथिता ह्येताः
संक्षेपेण द्विसप्ततिः। १५७। अनन्तरमरिं विद्यादरिसेविनमेव च। अरेरनन्तरं मित्रमुदासीनं
तयोः परम्। १५८। तान्सर्वानभिसंदध्यात्सामादिभिरुपक्रमैः। व्यस्तैश्चैव समस्तैश्च पौरुषेण
नयेन च। १५९। संधिञ्च विग्रहञ्चैव यानमासनमेव च। द्वैधीभावं संश्रयञ्च षड्गुणांश्चिंतयेत्सदा।
१६०। आसनञ्चैव यानञ्च संधिं विग्रहमेव च। कार्य्यम्वीक्ष्य प्रयुञ्जीत द्वैधं संश्रयमेव च। १६१।
संधिन्तु द्विविधं विद्याद्राजा विग्रहमेव च। उभे यानासने चैव द्विविधः संश्रयः स्मृतः। १६२।
समानयान कर्मा च विपरीतस्तथैव च। तदा त्वायतिसंयुक्तः संधिर्ज्ञेयो द्विलक्षणः। १६३।
स्वयं कृतश्च कार्यार्थमकाले काल एव वा। मित्रस्य चैवापकृते द्विविधो विग्रहः स्मृतः। १६४।
एकाकिनश्चात्ययिके कार्ये प्राप्ते यदृच्छया। संहतस्य च मित्रेण द्विविधं यानमुच्यते। १६५।
क्षीणस्य चैव क्रमशो दैवात्पूर्वकृतेन च। मित्रस्य चानुरोधेन द्विविधं स्मृतमासनम्। १६६।

१५८। इन सबों को साम आदि उपाय में से यथा संभव एक एक करके अथवा चारो करके और पौरुष करके नीति करके वश करना। १५९। संधि (अर्थात् मेल) विग्रह (अर्थात् बिगाड़) यान (अर्थात् शत्रु के ऊपर यात्रा) आसन (अर्थात् स्थिति) द्वैधी भाव (अर्थात् भेद) संश्रय (अर्थात् बलवान का आश्रय) इन छवों गुणों को सर्व काल में चिंतन करना। १६०। इन छवों गुणों को कार्य देख कर जहां जिस का काम पड़े तहां तिस को करै। १६१। संधि विग्रह यान आसन संश्रय द्वैध यह छवों दो प्रकार के हैं तत्काल फल लाभार्थ अथवा भविष्य काल में फल लाभार्थ एक राजा के साथ दूसरे राजा के ऊपर यात्रा करना। १६२। सो समानयान कर्मा संधि है और जो तुम इहां जाओ हम वहां जायेंगे ऐसा कहके करै सो असमान जान कर्मा संधि कहाती है। १६३। काल में अथवा अकाल में आप किया जो इच्छा से विग्रह सो एक भया अथवा मित्र का अपकार देख के अपकार करने वाले से विग्रह किया सो दूसरा भया। १६४। आवश्यक कार्य प्राप्त भये संते अकेला ही यात्रा करै अपनी एक यान है अथवा मित्र की सहायता से यात्रा करै सो दूसरा यान है। १६५। पूर्व जन्म के पाप से अथवा इस जन्म के पाप से हाथी घोड़ा धन आदि क्षीण भया तब दूसरे राजा के ऊपर यात्रा न करना अथवा हाथी घोड़ा धन आदि क्षीण नहीं है और जाने में मित्र की रक्षा नहीं हो सकती तब उस के अर्थ न जाना यह दो प्रकार का आसन है। १६६। * *

साधन करने योग्य अपने प्रयोजन के सिद्धि के लिये सेनापति सहित हाथी घोड़ा आदि को एकत्र रखना शत्रु नृप की किही उपद्रव वारणार्थ यह एक द्वैध भया और किला में बलाध्यक्ष (अर्थात् संपूर्ण सेना का स्वामी) सहित राजा को स्थापन करना यह दूसरा द्वैध है । १६७ । शत्रु से पीड़ित हो अथवा शत्रु करिके पीड़ा न होवे इस लिये बलवान राजा का आश्रयण करै यह दो प्रकार का आश्रय है । १६८ । जब युद्ध कालोत्तर अपनी अधिकाई को ध्रुव जानै और उस काल में थोड़ा धन आदि का पीड़ा देखै तब संधि करै । १६९ । जब अपनी प्रकृति को हृष्ट देखै और अपने को अति ऊंच देखै तब विग्रह करै । १७० । जब अपने सेना को हृष्ट पुष्ट देखै और शत्रु की सेना को विपरीत (अर्थात् हृष्ट पुष्ट न देखै) तब शत्रु के ऊपर यात्रा करै । १७१ । जब वाहन और सेना से क्षीण होवे तब शत्रु को सांत्वन (अर्थात् साम उपाय करके अपने स्थान में रहै) १७२ । जब शत्रु को सर्वथा बलवान जानै तब बल को द्विधा करके (अर्थात् कुछ सेना लेके आप किला में रहै और कुछ सेना लड़ने को भेजै) अपने

बलस्य स्वामिनश्चैव स्थितिः कार्यार्थसिद्धये । द्विविधं कीर्त्यते द्वैधं षाड्गुण्यगुणवेदिभिः । १६७ ।
अर्थसम्पादनार्थञ्च पीड्यमानस्य शत्रुभिः । साधुषु व्यपदेशार्थं द्विविधः संश्रयः स्मृतः । १६८ ।
यदावगच्छेदायत्यामाधिक्यं ध्रुवमात्मनः । तदात्वे चाल्पिकां पीडां तदा सन्धिं समाश्रयेत् । १६९ ।
यदा प्रहृष्टा मन्येत सर्वास्तु प्रकृतीर्भृशम् । अत्युच्छ्रितं तथात्मानं तदा कुर्वीत विग्रहम् । १७० ।
यदा मन्येत भावेन हृष्टं पुष्टं बलं स्वकम् । परस्य विपरीतञ्च तदा यायाद्रिपुम्प्रति । १७१ ।
यदा तु स्यात्परिक्षीणो वाहनेन बलेन च । तदासीत प्रयत्नेन शनकैस्सान्त्वयन्नरीन् । १७२ ।
मन्येतारिं यदा राजा सर्वथा बलवत्तरम् । तदा द्विधा बलं कृत्वा साधयेत्कार्य्यमात्मनः । १७३ ।
यदा परबलानान्तु गमनीयतमो भवेत् । तदा तु संश्रयेत्क्षिप्रं धार्म्मिकं बलिनं नृपम् । १७४ ।
निग्रहम्प्रकृतीनाञ्च कुर्य्याद्योरिबलस्य च । उपसेवेत यन्नित्यं सर्वयत्नैर्गुरुं यथा । १७५ ।
यदि तत्रापि संपश्येद्दोषं संश्रयकारितम् । सुयुद्धमेव तत्रापि निर्विशङ्कः समाचरेत् । १७६ ।
सर्वोपायैस्तथा कुर्य्यान्नीतिज्ञः पृथिवीपतिः । यथास्याभ्यधिका न स्युर्मित्रोदासीनशत्रवः । १७७ ।
आयतिं सर्वकार्य्याणां तदात्वं च विचारयेत् । अतीतानाञ्च सर्वेषां गुणदोषौ च तत्वतः । १७८ ।
आयत्यां गुणदोषज्ञस्तदात्वे क्षिप्रनिश्चयः । अतीते कार्यशेषज्ञः शत्रुभिर्नाभिभूयते । १७९ ।
यथैनन्नाभिसंदध्युर्म्मित्रोदासीनशत्रवः । तथा सर्वं संविदध्यादेष सामासिको नयः । १८० ।
यदा तु यानमातिष्ठेदरिराष्ट्रम्प्रति प्रभुः । तदानेन विधानेन यायादरिपुरं शनैः । १८१ ।
मार्गशीर्षे शुभे मासि यायाद्यात्रां महीपतिः । फाल्गुनं वाथ चैत्रं वा मासौ प्रति यथा बलम् । १८२ ।
अन्येष्वपि तु कालेषु यदा पश्येद्ध्रुवञ्जयम् । तदा यायाद्विगृह्यैव व्यसने चोत्थिते रिपोः । १८३ ।

कार्य को सिद्ध करै । १७३ । जब जानै कि शत्रु से भागैंगे तब जलदी से बलवान धार्मिक राजा का आश्रयण करै । १७४ । जो राजा शत्रु की प्रकृति को और सेना को निग्रह करने में समर्थ होवे उस की सेवा नित्य ही यत्न से गुरु सेवा की नांई करै । १७५ । जब आश्रय करने में भी कुछ दोष को देखै तब शंका रहित सुंदर युद्ध को करै । १७६ । नीति जानने वाला राजा सब उपाय से अपने को तैसा करै जिस में अपने से मित्र उदासीन शत्रु ये सब बड़ा न होने पावैं । १७७ । संपूर्ण कार्य का भूत भविष्य वर्तमान जो दोष गुण है उस को तत्व पूर्वक विचारै । १७८ । ऐसा विचार करने वाला राजा शत्रुओं से पीड़ित नहीं होता । १७९ । संक्षेप से सब नीति का निचोड़ यह है कि शत्रु मित्र उदासीन ये सब बाधा न कर सकैं ऐसी उपाय को करै । १८० । जब शत्रु के ऊपर जाने की इच्छा करै तब आगे जो रीति कही जायगी उस रीति से धीरे धीरे शत्रु के पुर में जावे । १८१ । अगहन फागुन चैत मास में यात्रा करै । १८२ । और काल में भी जब अपना जय ध्रुव जानै तब विग्रह करके जावे और जब शत्रु के ऊपर दुःख को देखै तब जावे । १८३ ।

* * * * * *

अपने राज्य का रक्षा करके यथा बिधि यात्रा समय के कर्म (अर्थात् वाहन आयुध बख्तर का ग्रहण) को करके शत्रु के गृह में जाके जिस से अपनी स्थिति होवे उस को लेके जीतने योग्य जो राजा उस के भृत्यों को अपने अधीन करके शत्रु के देश की वार्ता जानने के लिये चार (अर्थात् कापटिक आदि पूर्व कथित) को प्रस्थान करा के। १८४। तीन प्रकार के जो मार्ग हैं जांगल अनूप आटविक इन को शोधन करके (अर्थात् वृक्ष गुल्म का छेदन ऊंच नीच भूमि का समीकरण आदि करके) और छ प्रकार के जो बल हैं हाथी घोड़ा रथ पियादा सेना कर्म कर इन को आहार औषध सत्कार आदि से शोधन करके संग्राम में उचित विधान करके शीघ्र शत्रु के पुर में जावे। १८५। अपने शत्रु का गुप्त सेवा करने वाला जो अपना मित्र है और भृत्य आदि निकल जाय के जो फेरि आये हैं इन दोनों से बहुत सावधानता से रहै क्योंकि इन्हों का निग्रह बड़ी कठिनाई से होता है। १८६। दंड शकट वराह मकर शूची गरुड़ इस व्यूह करके गमन करै दंड के आकार व्यूह रचना दंड व्यूह कहाता है इसी रीति से गाड़ी के आकार सकट व्यूह जानना अब दंड व्यूह को देखाते हैं बलाध्यक्ष आगे मध्य में राजा पीछे सेना पति दोनों पार्श्व में हाथी उसके समीप में घोड़ा तब प्यादा इस रीति से लंबा और चारो ओर से सम यह दंड व्यूह कहाता है जब चारो ओर से भय उत्पन्न होवे तब इस व्यूह से जावे आगे पतला सूई की नांई पीछे मोटा शकट व्यूह कहाता है जब पीछे भय उत्पन्न होवे तब शकट व्यूह से जावे आगा पीछा पतला होवे बीच में मोटा होवे सो वराह व्यूह कहाता है और यही बीच में बहुत मोटा होवे

कृत्वा विधानं मूले तु यात्रिकञ्च यथाविधि। उपगृह्यास्पदं चैव चारान्सम्यग्विधाय च। १८४।
संशोध्य त्रिविधं मार्गं षड्विधञ्च बलं स्वकम्। सांपरायिककल्पेन यायादरिपुरं शनैः। १८५।
शत्रुसेविनि मित्रे च गूढे युक्ततरो भवेत्। गतप्रत्यागते चैव स हि कष्टतरो रिपुः। १८६।
दण्डव्यूहेन तन्मार्गं यायात्तु शकटेन वा। वराहमकराभ्यां च सूच्या वा गरुड़ेन वा। १८७।
यतश्च भयमाशंकेत्ततो विस्तारयेद्बलम्। पद्मेन चैव व्यूहेन निविशेत सदा स्वयम्। १८८।
सेनापतिबलाध्यक्षौ सर्वदिक्षु निवेशयेत्। यतश्च भयमाशंकेत्प्राचीन्ताङ्कल्पयेद्दिशम्। १८९।
गुल्मांश्च स्थापयेदाप्तान् कृतसंज्ञान्समन्ततः। स्थाने युद्धे च कुशलानभीरूनविकारिणः। १९०।
संहतान् योधयेदल्पान् कामं विस्तारयेद्बहून्। सूच्या वज्रेण चैवैतान् व्यूहेन व्यूह्ययोधयेत्। १९१।
स्यंदनाश्वैस्समे युद्धे दनूपेनौद्विपैस्तथा। वृक्षगुल्मावृते चापैरसिचर्मायुधैः स्थले। १९२।
कुरुक्षेत्रांश्च मत्स्यांश्च पञ्चालान् शूरसेनजान्। दीर्घाल्लघूंश्चैव नरानग्रानीकेषु योधयेत्। १९३।

सो गरुड़ व्यूह कहावे जब पार्श्व में भय उत्पन्न होवे तब इन दोनों व्यूह से जावे आगा पीछा मोटा होवे मध्य में पतला होवे सो मकर व्यूह कहाता है तब आगे पीछे भय उत्पन्न होवे तब इस व्यूह से जावे चिंउटी के पांती की नांई आगा पीछा सम होवे और बीर पुरुष आगे रहैं सो सूची व्यूह कहाता है जब आगे भय उत्पन्न होवे तब सूची व्यूह से जावे। १८७। जिधर भय की शंका होवे उधर बल का बिस्तार करै समान सेना और मध्य में राजा रहै स्वामी सो पद्म व्यूह कहाता है इस व्यूह से पुर से निकल के सर्व काल में राजा गुप्त रहै। १८८। हाथी १० घोड़ा १० रथ १० प्यादा १० इतने का एक स्वामी करना उसका नाम पत्तिक है १० पत्तिक का एक सेना पति कहाता है १० सेना पति का एक स्वामी बलाध्यक्ष को सर्व दिशा में रखना जिस दिशा से भय की शंका होवे उसको प्राची (अर्थात् पूर्व दिशा) जानिए। १८९। भले लोगों से युक्त स्थिति भागना युद्ध इस के लिये भेरी पटह शंख आदि वाद्य से संकेत के प्राप्त स्थिति और युद्ध में प्रवीण भय और व्यभिचार से रहित ऐसा जो सेना का एक देश सेनापति बलाध्यक्ष उनको दूर सर्व दिशा में शत्रु का प्रवेश वारणार्थ और शत्रु की चेष्टा परिज्ञानार्थ आज्ञा देवै। १९०। सेना थोड़ी होवे तो मिल करके युद्ध करै और सेना बहुत होवे तो जैसा मन हो तैसा विस्तार करके युद्ध करै सूची व्यूह वज्र व्यूह करके युद्ध करै। १९१। सम भूमि में रथ और घोड़ा से जल सहित भूमि में नौका और हाथी से वृक्ष गुल्म आदि से युक्त भूमि में धनुष से स्थल में ढाल तरवार से युद्ध करै। १९२। कुरुक्षेत्र मत्स्य पंचाल शूरसेन इस देश में उत्पन्न जो छोटे बड़े मनुष्य इन को आगे करके युद्ध करै। १९३। * * * * * * *

व्यूह रचना करके सेना को हर्षित करै और उस सेना की भली प्रकार से परीक्षा करै शत्रुओं के साथ युद्ध करते जो अपनी सेना है उस की चेष्टा को जानना कि शत्रुओं के साथ मिले हैं कि नहीं। १९४। शत्रु किला में रहै अथवा बाहर रहै और युद्ध भी न करता हो परंतु उस को घेर करके रहै और उस के राज्य को पीड़ा करै करै घास जल लकड़ी इन में निकाम वस्तु डाल के दूषित करै। १९५। तड़ाग किला अटारी खाईं इन को भेदन करै शंका रहित शत्रु को शंकित करै शक्ति ग्रहण करके रात्रि में ढक्का के शब्द से अधिक त्रास करै। १९६। राजा के वंश में भए जो राज्य के लेने की इच्छा करने वाले मंत्री आदि तिन को भेद करके अपने वश में करै और उन्हों की चेष्टा को जानै कि वश भये कि नहीं जय की इच्छा करने वाला राजा डर छोड़ के शुभ ग्रह दशा आदि से शुभ फल युक्त दैव रहत संते युद्ध को करै। १९७। साम दान भेद इन्हों में से एक एक करके अथवा संपूर्ण करके शत्रुओं के जीतने के लिये प्रयत्न करै केवल युद्ध ही करके नहीं। १९८। क्योंकि संग्राम में जय अनित्य है इस लिये युद्ध को वर्जन करना। १९९। पूर्व कथित तीनों उपाय के असंभव में तिस प्रकार से संयत होके युद्ध को करै जिस प्रकार से जितवै करै। २००। जीत करके देवता और धर्म युक्त ब्राह्मण इन्हों का पूजन करै जीती जो द्रव्य है सुवर्ण आदि तिस करके और देव ब्राह्मण के अर्थ यह मैं ने दिया ऐसा उस देश के निवासी जनों के परिहार (अर्थात् जो फेर न लेना) देवै और सब

प्रहर्षयेद्बलं व्यूह्य तांश्च सम्यक् परीक्षयेत्। चेष्टांश्चैव विजानीयादरीन् योधयतामपि। १९४।
उपरुध्यारिमासीत राष्ट्रञ्चास्योपपीड़येत्। दूषयेच्चैव सततं यवसान्नोदकेन्धनम्। १९५।
भिंद्याच्चैव तड़ागानि प्राकारपरिखास्तथा। समवस्कंदयेच्चैनं रात्रौ वित्रासयेत्तथा। १९६।
उपजप्यानुपजपेद्बुध्येतैव च तत्कृतम्। युक्ते च दैवे युध्येत जयप्रेप्सुरपेतभीः। १९७। साम्ना दानेन
भेदेन समस्तैरथवा पृथक्। विजेतुं प्रयतेतारीन्न युद्धेन कदाचन। १९८। अनित्यो विजयो
यस्माद्दृश्यते युध्यमानयोः। पराजयश्च सङ्ग्रामे तस्माद्युद्धं विवर्ज्जयेत्। १९९। त्रयाणामप्युपायानां
पूर्वोक्तानामसंभवे। तथा युध्येत सम्पन्नो विजयेत रिपून् यथा। २००। जित्वा संपूजयेद्देवान्
ब्राह्मणांश्चैव धार्मिकान्। प्रदद्यात्परिहारांश्च ख्यापयेदभयानि च। २०१। सर्वेषान्तु विदित्वैषां
समासेन चिकीर्षितम्। स्थापयेत्तच तद्वंश्यं कुर्य्याच्च समयक्रियाम्। २०२। प्रमाणानि च
कुर्वीत तेषां धर्म्यान् यथोदितान्। रत्नैश्च पूजयेदेनं प्रधानपुरुषैस्सह। २०३। आदानमप्रियकरं
दानञ्च प्रियकारकम्। अभीप्सितानामर्थानां काले युक्तम्प्रशस्यते। २०४। सर्वं कर्मेदमायत्तं
विधाने दैवमानुषे। तयोर्दैवमचिंत्यन्तु मानुषे विद्यते क्रिया। २०५। सह वापि व्रजेद्युक्तः
संधिं कृत्वा प्रयत्नतः। मित्रं हिरण्यं भूमिं वा संपश्यंस्त्रिविधम्फलम्। २०६। पार्ष्णिग्राहं च
संप्रेक्ष्य तथाक्रंदं च मण्डले। मित्रादथाप्यमित्राद्वा यात्राफलमवाप्नुयात्। २०७। * *

मनुष्यों के अभय देवै। २०१। संक्षेप से सबों का मत समझ के उस राजा के वंश में जो होवे उस को उसी के स्थान में स्थापित करै और यह तुम करना यह न करना ऐसा उस राजा को और मंत्रियों को कहै। २०२। तिन्हों का धर्म से युक्त और शास्त्र कथित जो आचार है उस को प्रमाण करै और रत्नों से प्रधान पुरुष सहित राजा का पूजन करै। २०३। यद्यपि अभिलषित द्रव्यों का ग्रहण अप्रियकर है और दान प्रियकर है यह स्वाभाविक है तथापि समय विशेष में दान और ग्रहण प्रशस्त होता है इस लिये उस समय में दानै करना। २०४। पूर्व जन्म में किए जो पाप और पुण्य सो दैव कर्म कहाता है और इस लोक में किए जो पाप और पुण्य सो मानुष कर्म कहाता है इन्हीं दोनों कर्म के अधीन करने के योग्य जो सब वस्तु है तिस में दैव कर्म तो चिंता के योग्य नहीं है मानुष कर्म में विचार है। २०५। इस रीति से युद्ध करै अथवा वह राजा मित्रता करै तो यात्रा का फल मित्र भूमि हिरण्य इन तीनों वस्तु में एक वस्तु का लाभ होना इस को देखत संते उस के साथ मेल करै। २०६। मण्डल में पार्ष्णिग्राह (अर्थात् पीछे रहने वाला राजा) और आक्रंद (अर्थात् जो संकेत किया है उस से भिन्न करने वाला जो पार्ष्णिग्राह है उस के किए हुए संकेत पर रहने वाला) इन दोनों राजों की अपेक्षा करके यात्रा करना और इन्हों की अपेक्षा बिना यात्रा करने से इन्हों के दोष से गृहीत हो जायगा (अर्थात् ये सब उपद्रव करेंगे) इस लिये अपेक्षा करके यात्रा करने से मित्र से अथवा शत्रु से यात्रा का फल प्राप्त होता है। २०७। * * * * *

र्तमान काल में कृश और भविष्य काल में वृद्धियुत स्थिर मित्र को पाके जैसा राजा बढ़ता है तैसा हिरण्य भूमि को पाने से
नहीं बढ़ता। २०८। उपकार और धर्म का जानने वाला स्थिर कार्य का आरंभ करने वाला प्रकृति के प्रिय अनुराग युक्त ऐसा जो
मित्र है सो अति प्रशस्त है। २०९। पण्डित महा कुल में उत्पन्न शूर निपुण दाता उपकार का जानने वाला धीर ऐसा शत्रु
ड़ा कष्ट है (अर्थात् ऐसे का उच्छेद नहीं हो सकता) इस बात को पंडितों ने कहा। २१०। साधु पुरुष विशेष का जानने
ाला शूर कृपालु सर्वकाल में बहुत देने वाला ऐसा जो उदासीन राजा है उस को आश्रय करके शत्रु के साथ युद्ध करै। २११।
ोग रहित धान्य देने वाली नित्य ही पशु की वृद्धि करने वाली ऐसी जो भूमि है उस को भी त्याग करै आत्मा की
ा के लिये (अर्थात् ऐसी भूमि त्याग बिना आत्म रक्षण नहीं हो सकता तो उस को भी त्याग करना और आत्म
ण करना)। २१२। आपत् के अर्थ धन का रक्षा करै धन करके स्त्री का रक्षा करै स्त्री करके और धन करके आत्मा
ी रक्षा करै। २१३। एक ही काल में कोप का क्षय प्रकृति का कोप मित्र का दुःख ये सब प्राप्त होवे तो मोह न करै
किंतु साम आदि जो उपाय हैं उस में से एक एक को अथवा सब को करै। २१४। उपाय उपाय का करने वाला उपाय से सिद्ध

हिरण्यभूमिसंप्राप्त्या पार्थिवो न तथैधते। यथा मित्रं ध्रुवं लब्ध्वा कृशमप्यायतिक्षमम्। २०८।
धर्मज्ञञ्च कृतज्ञञ्च तुष्टप्रकृतिमेव च। अनुरक्तं स्थिरारम्भं लघुमित्रं प्रशस्यते। २०९।
प्राज्ञं कुलीनं शूरञ्च दक्षं दातारमेव च। कृतज्ञं धृतिमन्तञ्च कष्टमाहुररिं बुधाः। २१०।
आर्यता पुरुषज्ञानं शौर्यं करुणवेदिता। स्थौललक्ष्यञ्च सततमुदासीन गुणोदयः। २११।
क्षेम्यां सस्यप्रदां नित्यम्पशुवृद्धिकरीमपि। परित्यजेन्नृपो भूमिमात्मार्थमविचारयन्। २१२।
आपदर्थन्धनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि। आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि। २१३।
सहसर्वाः समुत्पन्नाः प्रसमीक्ष्यापदो भृशम्। संयुक्तांश्च वियुक्तांश्च सर्वोपायान्सृजेद्बुधः। २१४।
उपेतारमुपेयञ्च सर्वोपायांश्च कृत्स्नशः। एतत्त्रयं समाश्रित्य प्रयतेतार्थसिद्धये। २१५। एवं सर्वमिदं
राजा सह संमंत्र्य मंत्रिभिः। व्यायाम्याप्लुत्य मध्यान्हे भोक्तुमन्तः पुरं विशेत्। २१६।
तत्रात्मभूतैः कालज्ञैरहार्यैः परिचारकैः। सुपरीक्षितमन्नाद्यमद्यान्मंत्रैर्विषापहैः। २१७।
विषघ्नैरगदैश्चास्य सर्वद्रव्याणि योजयेत्। विषघ्नानि च रत्नानि नियतो धारयेत्सदा। २१८।
परीक्षिताः स्त्रियश्चैनं व्यजनोदकधूपनैः। वेषाभरणसंशुद्धाः स्पृशेयुः सुसमाहिताः। २१९।
एवं प्रयत्नं कुर्वीत यानशय्यासनाशने। स्नाने प्रसाधने चैव सर्वालंकारकेषु च। २२०।
भुक्तवान्विहरेच्चैव स्त्रीभिरंतः पुरे सह। विहृत्य तु यथाकालं पुनः कार्याणि चिंतयेत्। २२१।
अलंकृतश्च संपश्येदायुधीयं पुनर्जनम्। वाहनानि च सर्वाणि शस्त्राण्याभरणानि च। २२२।

ई जो वस्तु इन तीनों का आश्रय करके अर्थ सिद्धि के लिये यत्न करै। २१५। इस रीति से इन सब को मंत्रियों के साथ मंत्र
रके तदनंतर व्यायाम (अर्थात् दण्ड) करके मध्यान्ह काल में स्नान करके भोजन के लिये अंतःपुर में प्रवेश करै। २१६। अपने
ुल्य काल का जानने वाला द्रव्य आदि के पाने से भेद को न होने देने वाला ऐसा जो परिचारक और विष का नाश करनहार
ो मंत्र इन सब करके परीक्षित जो अन्न है उस को भोजन करै। २१७। विष और रोग इन दोनों का नाश करने वाली जो
स्तु उस का योग सब द्रव्य में करना और विष के नाश करनहार जो रत्न है उस को सर्व काल में निश्चय से धारण करना
िष सहित अन्न को देखने से चकोर पक्षी का नेत्र लाल हो जाता है इस लिये उस को देख कर परीक्षा करना। २१८। सुंदर
ूप वाली शुद्ध आभरण वाली एकाग्र चित्त वाली परीक्षित जो स्त्री हैं सो पंखा जल धूप स्पर्श इन सब को करैं। २१९। इस
ीति से यान शय्या आसन स्नान केश प्रसाधन सर्व अलंकार का यत्न करै। २२०। भोजन करके स्त्रियों के साथ अन्तःपुर में
िहार करै तदनंतर यथा काल में पुनः कार्य को देखै। २२१। गहना पहिर के पुनः योधा वाहन शस्त्र आभरण इन
ब को देखै। २२२। * * * * * * * *

सायं काल में संध्योपासन करके अंतःपुर में शस्त्र धारण किए हुए रहस्य कहने वाले और प्रणिधी इन सबों के करने योग्य वस्तु को सुनै। २२३। दूसरे स्थान में जाकर वहां के मनुष्यों को आज्ञा देकर भोजन के लिये स्त्रियों के पुनः अंतःपुर में प्रवेश करै। २२४। फेर थोड़ा भोजन करके बाघ के शब्द से हृष्ट होकर सोवे तदुत्तर परिश्रम रहित यथा काल में उठै। २२५। रोग से रहित राजा ऐसा विधान को करै कदाचित आप अस्वस्थ होवे तो यह सब कर्म करने के लिये भृत्यों को आज्ञा देवै। २२६॥ * इति श्री मनुस्मृति भाषा टीकायां कुल्लुक भट्ट व्याख्यानुसारिण्यां श्री बाबू देबीदयाल सिंह कारितायां श्री कम्पनी संस्कृत पाठशालीय धर्मशास्त्रि गुलजार शर्म पण्डित कृतायां सप्तमोऽध्यायः। * ॥ ७ ॥ * * * * * *

व्यवहारों के दर्शन की इच्छा करत संते राजा मंत्र के जानने वाले मंत्री और ब्राह्मणों के सहित नम्रवेष होकर सभा में प्रवेश करै। १। सभा में बैठ कर अथवा खड़ा हो कर दक्षिण हाथ उठाकर नम्रवेष आभरण करके कार्य वालों के कार्य को देखै। २। ऋण लेना आदि अठारह प्रकार के व्यवहार मार्ग में पठित जो कार्य उस को देश जाति कुल व्यवहार से जाने गए

संध्याञ्चोपास्य शृणुयादन्तर्वेश्मनि शस्त्रभृत्। रहस्याख्यायिनाञ्चैव प्रणिधीनाञ्च चेष्टितम्। २२३।
गत्वा कक्षान्तरं त्वन्यत्समनुज्ञाप्य तज्जनम्। प्रविशेद्भोजनार्थं च स्त्रीवृतोऽन्तःपुरम्पुनः। २२४।
तत्र भुक्त्वा पुनः किञ्चित्तूर्य्यघोषैः प्रहर्षितः। संविशेत्तु यथाकालमुत्तिष्ठेच्च गतक्लमः। २२५।
एतद्विधानमातिष्ठेदरोगः पृथिवीपतिः। अस्वस्थः सर्वमेतत्तु भृत्येषु विनियोजयेत्। २२६।

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां राजधर्मो नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७ ॥ *

व्यवहारान्दिदृक्षुस्तु ब्राह्मणैस्सह पार्थिवः। मंत्रज्ञैर्मंत्रिभिश्चैव विनीतः प्रविशेत्सभाम्। १।
तत्रासीनः स्थितो वापि पाणिमुद्यम्य दक्षिणम्। विनीतवेषाभरणः पश्येत्कार्याणि कार्यिणाम्। २।
प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः। अष्टादशसु मार्गेषु निबद्धानि पृथक् पृथक्। ३।
तेषामाद्यमृणादानन्निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः। सम्भूय च समुत्थानं दत्तस्यानपकर्म च। ४।
वेतनस्यैव चादानं संविदश्च व्यतिक्रमः। क्रयविक्रयानुशयो विवादः स्वामिपालयोः। ५।
सीमाविवादधर्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके। स्तेयञ्च साहसञ्चैव स्त्रीसंग्रहणमेव च। ६।
स्त्रीपुन्धर्मो विभागश्च द्यूतमाह्वय एव च। पदान्यष्टादशैतानि व्यवहारस्थिताविह। ७।
एषु स्थानेषु भूयिष्टं विवादञ्चरतां नृणाम्। धर्मं शाश्वतमाश्रित्य कुर्य्यात्कार्यविनिर्णयम्। ८।
यदा स्वयन्न कुर्य्यात्तु नृपतिः कार्यदर्शनम्। तदा नियुंज्याद्विद्वांसं ब्राह्मणं कार्य्यदर्शने। ९।
सोऽस्य कार्याणि संपश्येत्सभ्यैरेव त्रिभिर्वृतः। सभामेव प्रविश्याग्र्यामासीनः स्थित एव वा। १०।
यस्मिन्देशे निषीदन्ति विप्रा वेदविदस्त्रयः। राज्ञश्चाधिकृतो विद्वान् ब्राह्मणस्तां सभाम्विदुः। ११।

और शास्त्र से जाने गए साक्षी दिव्य (अर्थात् सौगंध) आदि जो कारण इन्हीं करके पृथक् पृथक् प्रति दिन विचार करै। ३। अब अठारह प्रकार के व्यवहार मार्ग को गनाते हैं ऋणादान १ निक्षेप २ अस्वामि विक्रय ३ संभूयसमुत्थान ४ दत्तानपाकर्म ५ वेतनादान ६ सम्विद्व्यतिक्रम ७ क्रयविक्रयानुशय ८ स्वामि पालविवाद ९ सीमाविवाद १० दण्डपारुष्य ११ वाक्पारुष्य १२ स्तेय १३ साहस १४ स्त्री संग्रहण १५ स्त्री पुंधर्म १६ विभाग १७ द्यूतसमाह्वय १८ ये अठारह प्रकार के व्यवहार मार्ग के पद इस ग्रंथ में व्यवहार की मर्यादा में हैं। ७। राजा नित्य धर्म के आश्रित होकर इस अठारह प्रकार के व्यवहार मार्ग में बहुत कार्य करने वाले मनुष्यों के कार्य विशेष का निर्णय करै। ८। जब राजा आप कार्य को न देखै तब पण्डित ब्राह्मण को कार्य देखने की आज्ञा देवै। ९। वह ब्राह्मण श्रेष्ठ सभा में बैठ कर अथवा खड़ा हो कर तीन मंत्रियों के साथ इस राजा के कार्य को देखै। १०। जिस देश में एक ब्राह्मण पण्डित वेद पढ़े हुए तीन ब्राह्मण सहित व्यवहार दर्शन में राजा की आज्ञा पाकर बैठते हैं उस सभा को ब्रह्मा की सभा जानना। ११। * * * * * * *

अधर्म से बेधा हुआ धर्म जिस सभा में रहता है और सभासद उस अधर्म का छेद नहीं कर सकते वे सब बेधे गये हैं। १२। सभा में जाना नहीं जाके यथार्थ बोलना जान के न बोले अथवा विरुद्ध बोले तो पापी होता है। १३। जहां अधर्म करके धर्म और असत्य करके सत्य मारा जाता है और देखने वाले उस को निवारण नहीं करते तहां सभासदै मारे गए हैं। १४। मारा गया धर्म मारता है रक्षा किया गया धर्म रक्षा करता है मारा गया धर्म हम को न मारै इस लिये धर्म को न मारना। १५। भगवान जो धर्म है उस को वृष कहते हैं उस का जो अलं (अर्थात् वारण) करता है उस को देवता लोग वृषल कहते हैं इस लिये धर्म का लोप न करना। १६। एक धर्म मित्र है क्योंकि मरे पीछे भी जाता है कदाचित् कहो कि मरे पीछे तो अधर्म भी जाता है तो वह भी मित्र है तिस का समाधान यह है कि धर्म इष्ट फल देने के लिये जाता है और अधर्म अनिष्ट फल देने के लिये जाता है तो जो इष्ट फल देने के लिये जाय सोई मित्र कहाता है और भार्या पुत्र आदि तो शरीर के साथ ही अदर्शन को प्राप्त होते हैं इस लिये पुत्र आदि में स्नेह की अपेक्षा करके धर्म को न मारना। १७। अधर्म का चार भाग होता है एक एक भाग को कर्ता साक्षी सभासद राजा ये चारो पाते हैं। १८। जहां निंदा के योग्य पुरुष निंदा को पाता है

धर्मो विद्धस्त्वधर्मेण सभां यत्रोपतिष्ठते। शल्यञ्चास्य न कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः। १२।
सभा वा न प्रवेष्टव्यावक्तव्यं वा समंजसम्। अब्रुवन् विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्विषी। १३।
यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च। हन्यते प्रेक्ष्यमाणानां हतास्तत्र सभासदः। १४।
धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः। तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मानो धर्मो हतोवधीत्। १५।
वृषो हि भगवान्धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम्। वृषलन्तम्विदुर्देवास्तस्माद्धर्मन्नलोपयेत्। १६।
एक एव सुहृद्धर्मो निधनेप्यनुयाति यः। शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति। १७।
पादोऽधमस्य कर्तारं पादः साक्षिणमृच्छति। पादः सभासदः सर्वान्पादो राजानमृच्छति। १८।
राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यंते च सभासदः। एनो गच्छति कर्तारं निन्दार्हो यत्र निंद्यते। १९।
जातिमात्रोपजीवी वा कामं स्याद्ब्राह्मणब्रुवः। धर्मप्रवक्ता नृपतेर्नतु शूद्रः कथञ्चन। २०।
यस्य शूद्रस्तु कुरुते राज्ञो धर्म विवेचनम्। तस्य सीदति तद्राष्ट्रम्पङ्के गौरिव पश्यतः। २१।
यद्राज्यं शूद्रभूयिष्ठं नास्तिकाक्रान्तमद्विजम्। विनश्यत्याशु तत्कृत्स्नं दुर्भिक्षव्याधिपीडितम्। २२।
धर्मासनमधिष्ठाय संवीतांगः समाहितः। प्रणम्य लोकपालेभ्यः कार्यदर्शनमारभेत्। २३।
अर्थानर्थावुभौ बुध्वा धर्माधर्मौ च केवलौ। वर्णक्रमेण सर्वाणि पश्येत्कार्य्याणि कार्य्यिणाम्। २४।
बाह्यैर्विभावयेल्लिङ्गैर्भावमन्तर्गतं नृणाम्। स्वरवर्णेङ्गिताकारैश्चक्षुषा चेष्टितेन च। २५।
आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च। नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेन्तर्गतं मनः। २६।

तहां राजा पाप से रहित होता है और सभासद पाप से छूट जाते हैं अधर्म करने वाले ही को पाप लगता है। १९। जो जाति ही करके ब्राह्मण हो ब्राह्मण का कर्म कुछ भी न करता हो मूर्ख हो तो भी वह राजा के धर्म का उपदेश करने वाला होता है शूद्र तो कैसा भी हो तो नहीं होता। २०। जिस राजा के धर्म का विचार शूद्र करता है तिस राजा का राज्य उस के देखते ही कांदव में फंसी गौ की नाईं कष्ट को पाता है। २१। जिस राज्य में बहुत शूद्र और नास्तिक हैं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य नहीं हैं वह संपूर्ण राज्य दुर्भिक्ष व्याधि से पीड़ित होकर झट पट नाश को पाता है। २२। धर्म सभा में बैठ कर वस्त्रों से अंग को ढांप कर एकाग्र चित्त हो कर लोक पालों को प्रणाम करके कार्य देखने का आरम्भ करै। २३। प्रजा का रक्षण और उच्छेद ये दोनों इस लोक के अर्थ और अनर्थ हैं इस को बूझि के और परलोक के अर्थ धर्म अधर्म हैं इस का केवल अनुरोध करके जिस में विरोध न होवे तिस रीति से वर्ण क्रम करके कार्य वाले के कार्य को देखै। २४। बाहर के जो चिन्ह हैं स्वर वर्ण इंगित आकार चेष्टित इन करके मनुष्यों के भीतर के भाव को जानै। २५। आकार इंगित गति चेष्टा भाषित और नेत्र मुख का विकार इन सबों से भीतर का मन जाना जाता। २६। * * * * * *

अनाथ बालक के धन को उस के चाचा आदि लेते हों तो उस धन को तब तक राजा पालन करै जब तक उस का समावर्तन कर्म न होवे और लड़काई न बीतै। २७। बंध्या अपुत्रा कुल से निकाली हुई पतिव्रता बिधवा रोगिणी इन सबों के धन को भी रक्षा करै अन्याय से कोई लेने न पावै। २८। इन सब को जीते हुए और इन्हीं के धन को इन्हीं के बांधव लोग हरण करैं तो धर्म करने वाला राजा उस धन के लेने वाले को चोर दण्ड की नाईं शासन करै। २९। जिस धन का स्वामी कोई नहीं है उस धन को तीन वर्ष तक राजा अपने यहां स्थापन करै और तीन वर्ष के भीतर उस धन का स्वामी आवै तो उस को पावै और तीन वर्ष के ऊपर राजा लेवै। ३०। जो मनुष्य राजा के समीप जाके कहै कि यह बस्तु हमारी है तो उस पर अनुयोग (अर्थात् प्रश्न) करै उस बस्तु का स्वरूप संख्या आदि से जब ठीक ठीक उस का स्वरूप संख्या आदि को कहै तो उस बस्तु को पावै। ३१। जब नष्ट बस्तु का देश काल वर्ण रूप परिमाण को न कहै तो उस बस्तु के समान दण्ड को पावै। ३२। उस बस्तु का छठवां दशवां बारहवां भाग को रक्षण निमित्त राजा लेवै सज्जनों के धर्म को स्मरण करत संते अंश का विकल्प जो है सो धनी का निर्गुणता सगुणता देख के करना। ३३। गिरी हुई बस्तु मिलै तो उस की रक्षा अच्छे लोगों से करा के राखै और उस के चोराने वाले को राजा

बालदायादिकं रिक्थं तावद्राजानुपालयेत्। यावत्स स्यात्समावृत्तो यावच्चातीतशैशवः। २७।
वशा ऽपुत्रासु चैवं स्याद्रक्षणन्निष्कुलासु च। पतिव्रतासु च स्त्रीषु विधवास्वातुरासु च। २८।
जीवंतीनां तु तासां ये तद्धरेयुः स्वबांधवाः। ताञ्छिष्याच्चौरदण्डेन धार्मिकः पृथिवीपतिः। २९।
प्रणष्टस्वामिकं रिक्थं राजा त्र्यब्दन्निधापयेत्। अर्वाक् त्र्यब्दाद्धरेत्स्वामी परेण नृपतिर्हरेत्। ३०।
ममेदमिति यो ब्रूयात्सोनुयोज्यो यथाविधि। संवाद्य रूपसंख्यादीन् स्वामी तद्द्रव्यमर्हति। ३१।
अवेदयानो नष्टस्य देशं कालञ्च तत्त्वतः। वर्णं रूपम्प्रमाणञ्च तत्समन्दण्डमर्हति। ३२।
आददीताथ षड्भागं प्रणष्टाधिगतान्नृपः। दशमं द्वादशम्वापि सतान्धर्ममनुस्मरन्। ३३।
प्रणष्टाधिगतं द्रव्यन्तिष्ठेद्युक्तैरधिष्ठितम्। यांस्तत्र चौरान् गृह्णीयात्तान् राजेभेन घातयेत्। ३४।
ममायमिति यो ब्रूयान्निधिं सत्येन मानवः। तस्याददीत षड्भागं राजा द्वादशमेव वा। ३५।
अनृतं तु वदन्दण्ड्यः स्ववित्तस्यांशमष्टमम्। तस्यैव वा निधानस्य संख्यायाल्पीयसीं कलाम्। ३६।
विद्वांस्तु ब्राह्मणो दृष्ट्वा पूर्वोपनिहितं निधिम्। अशेषतोप्याददीत सर्वस्याधिपतिर्हि सः। ३७।
यं तु पश्येन्निधिं राजा पुराणं निहितं क्षितौ। तस्माद्द्विजेभ्यो दत्वार्द्धमर्द्धं कोशे प्रवेशयेत्। ३८।
निधीनां तु पुराणानां धातूनामेव च क्षितौ। अर्द्धभाग् रक्षणाद्राजा भूमेरधिपतिर्हि सः। ३९।
दातव्यं सर्ववर्णेभ्यो राज्ञा चौरैर्हृतन्धनम्। राजा तदुपयुंजानश्चौरस्याप्नोति किल्बिषम्। ४०।
जातिजानपदान्धर्मान् श्रेणीधर्मांश्च धर्मवित्। समीक्ष्य कुलधर्मांश्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत्। ४१।

हाथी से घात करावे। ३४। भूमि में गड़ी हुई वस्तु को निधि कहते हैं उस को राजा के समीप ले जावे और दूसरा आके कोई कहै कि यह हमारी है और रूप संख्या करके जैसी बस्तु है तैसी सिद्ध करै तो उस बस्तु को वह पावे और उस बस्तु का छठां अंश अथवा बारहवें अंश को राजा लेवे अंश विकल्प तो निधि स्वामी का गुण अगुण देख के करना गुणी निधि स्वामी से बारहवां भाग और अगुणी निधि स्वामी से छठां भाग लेवै। ३५। झूठ बोलै तो अपने द्रव्य का आठवां भाग दण्ड देवै अथवा उसी निधि का थोड़ा भाग के समान अपने गृह से दण्ड देवै अंश विकल्प तो पूर्व कथित की नाईं जानना। ३६। पण्डित ब्राह्मण निधि को पावै तो वह संपूर्ण लेवै क्योंकि वह सब का स्वामी है। ३७। राजा निधि को आप पावे तो उस में से आधा ब्राह्मणों को देके आधा अपने कोश (अर्थात् खजाना) में राखै। ३८। निधि के आधा भाग को ग्रहण करने वाला राजा है क्योंकि रक्षण करता है और सब का अधिपति (अर्थात् स्वामी है)। ३९। चोर की चोराई बस्तु को लेकर सर्व वर्णों को राजा देवै (अर्थात् जिस की चोरी गई है उस को देवै) कदाचित् उस बस्तु को आप भोग करै तो चोर के पाप को पावै। ४०। जाति देश बनियां आदि कुल इन सबों के धर्मों को देख कर अपने धर्म को स्थापन करै। ४१। * * * * *

अपने कर्म को करते संते दूर भी रहने वाले मनुष्य लोक के प्रिय होते हैं । ४२ । राजा और राजा के पुरुष आप से कार्य को उत्पादन न करें अर्थी (अर्थात् अपने कार्य को निवेदन करने वाला) प्रत्यर्थी (अर्थात् अर्थी के वचन को खंडन करने वाला) इन दोनों करके आवेदित जो कार्य है उस को धन आदि लोभ करके उपेक्षा न करें (अर्थात् उस का विचार करें) । ४३ । जिस प्रकार से व्याधा रुधिर के गिरने से मृग के स्थान को पाता है (अर्थात् एक बाण से बेधा हुआ भागता मृग जिस मार्ग से जाता है उस मार्ग में उस के शरीर से गिरे हुए रुधिर को देख कर यह बात जानी गई कि मृग इधर गया है) तिस प्रकार से अनुमान करके धर्म के पद को राजा प्राप्त करे । ४४ । व्यवहार विधि में स्थित होकर राजा सत्य अर्थ आत्मा साक्षी देश रूप काल इन सब को देखै । ४५ । धार्मिक सज्जन द्विजाति लोगों ने जिस धर्म को आचरण किये हैं उस देश कुल जाति के अविरुद्ध जो धर्म है उस धर्म का कल्पना करे । ४६ । उत्तमर्ण (अर्थात् ऋण देने वाला) ने अपने दिये हुए धन को पाने के लिये राजा के समीप निवेदन किया और साखी लेख आदि प्रमाण से उस धन को सिद्ध किया तब उस के धन को अधमर्ण (अर्थात् ऋण लेने वाला) से दिला देवे । ४७ । जिस जिस उपाय से उत्तमर्ण अपने धन को पावे उस उस उपाय से अधमर्ण को ग्रहण करके राजा धन को दिलावे । ४८ । धर्म (अर्थात् सत्य वचन) व्यवहार (अर्थात् साखी लेख आदि) छल (अर्थात् बहाना) आचरित (अर्थात्

स्वानि कर्माणि कुर्वाणाद्दूरे संतोपि मानवाः । प्रिया भवंति लोकस्य स्वे स्वे कर्मण्यवस्थिताः । ४२ ।
नोत्पादयेत्स्वयं कार्यं राजा नाप्यस्य पूरुषः । न च प्रापितमन्येन ग्रसेतार्थं कथञ्च न । ४३ ।
यथानयत्यसृक् पातैर्मृगस्य मृगयुः पदम् । नयेत्तथानुमानेन धर्मस्य नृपतिः पदम् । ४४ ।
सत्यमर्थञ्च सम्पश्येदात्मानमथ साक्षिणः । देशं रूपं च कालञ्च व्यवहारविधौ स्थितः । ४५ ।
सद्भिराचरितं यत्स्याद्धार्मिकैश्च द्विजातिभिः । तद्देशकुलजातीनामविरुद्धं प्रकल्पयेत् । ४६ ।
अधमर्णार्थसिध्यर्थमुत्तमर्णेन चोदितः । दापयेद्धनिकस्यार्थमधमर्णाद्विभावितम् । ४७ । यैर्यैरुपायै-
रर्थं स्वं प्राप्नुयादुत्तमर्णिकः । तैस्तैरुपायैः संगृह्य दापयेदधमर्णिकम् । ४८ । धर्मेण व्यवहारेण
छलेनाचरितेन च । प्रयुक्तं साधयेदर्थं पञ्चमेन बलेन च । ४९ । यः स्वयं साधयेदर्थमुत्तमर्णोधम-
र्णिकात् । न स राज्ञाभियोक्तव्यः स्वकं संसाधयन्धनम् । ५० । अर्थेपव्ययमानं तु करणेन विभावितम् ।
दापयेद्धनिकस्यार्थं दण्डलेशं च शक्तितः । ५१ । अपन्हवेऽधमर्णस्य देहीत्युक्तस्य संसदि । अभियोक्ता
दिशेद्देश्यं करणं वान्यदुद्दिशेत् । ५२ । अदेश्यं यश्च दिशति निर्दिश्यापन्हुते च यः । यश्चाधरोत्त-
रानर्थान् विगीतान्नावबुध्यते । ५३ । अपदिश्यापदेश्यञ्च पुनर्यस्त्वपधावति । सम्यक् प्रणिहित-
ञ्चार्थम्पृष्टस्सन्नाभिनंदति । ५४ । असंभाष्ये साक्षिभिश्च देशे संभाषते मिथः । निरुच्यमानम्प्रश्नञ्च
नेच्छेद्यश्चापि निष्पतेत् । ५५ । * * * * * * *

उपवास) बल इन पांचो उपाय में से कोई एक करके अपने दिये हुए धन को ग्रहण करे । ४९ । जो उत्तमर्ण अपने धन को अधमर्ण से उपाय करके लेता है उस को राजा मना न करे कि हमारे यहां निवेदन क्यों नहीं किया आपही उपाय से लेता है । ५० । अर्थी के निवेदित अर्थ को प्रत्यर्थी ने अपलाप किया (अर्थात् हम नहीं जानते ऐसा कहा) और अर्थी ने साखी लेख आदि से विभावित (अर्थात् सिद्ध किया) तो राजा उत्तमर्ण के धन को अधमर्ण से दिलाय देवे और यथा शक्ति दण्ड भी अधमर्ण को देवै । ५१ । सभा में न्याय के देखने वाले ने अधमर्ण से कहा कि उत्तमर्ण का धन दो और अधमर्ण ने कहा कि हम नहीं लिया है तब उत्तमर्ण साखी लेख आदि साधन को कथन करे । ५२ । जिस देश में अधमर्ण की स्थिति सर्वथा नहीं संभवती है और उस देश का कथन उत्तमर्ण करके फेर कहै कि इस देश को मैं ने नहीं कहा और पूर्वापर विरुद्ध बोलता है । ५३ । जो कहता है कि मेरे हाथ से चार पैसा भर सुवर्ण इस ने लिया ऐसा कह के फेर कहता है कि मेरे लड़के के हाथ से लिया ऐसा बोलता है और जिस बात को प्राड्विवाक (अर्थात् न्याय का देखने वाला) पूछता है और उस बात का समाधान नहीं करता । ५४ । जो एकांत में साखियों के साथ संभाषण करता है और भाषा (अर्थात् सवाल) के स्थिर करने के लिये प्राड्विवाक पूछता है और उस का उत्तर नहीं देता है और जो एक देश में स्थित नहीं रहता है । ५५ । * * * *

जो बोलो ऐसा प्राड्विवाक ने पूछा और बोलता नहीं है और जो कथित अर्थ को साक्षी लेख आदि से सिद्ध नहीं करता है और जो पूर्वापर बात को नहीं जानता है ये सब अपने अर्थ की हानि को पाते हैं । ५६ । साक्षी हमारे हैं ऐसा कहके और साक्षियों को लाता नहीं इन कारणों से न्याय का देखने वाला उस को हीन जानै (अर्थात् हार जावेगा ऐसा जानै) । ५७ । जो अर्थी राज स्थान में कहके और भाषा समय में (अर्थात् प्रत्यर्थी के समीप में) कुछ बोलता नहीं है सो व्यवहार का गौरव लाघव (अर्थात् बड़ा छोटा) विचार के बध और दण्ड के योग्य होता है । ५८ । जो प्रत्यर्थी जितने धन को अपलाप करता है और जो अर्थी जितने धन को मिथ्या बोलता है दोनों अधर्म के जानने वाले हैं उस धन से दूना दण्ड दोनों को राजा देवै । ५९ । जब प्रत्यर्थी सभा में आके कहै कि हम ने इस का धन नहीं लिया है तब अर्थी प्राड्विवाक के समीप तीन से ऊपर साक्षियों करके अपने दिए हुए धन को सिद्ध करै । ६० । व्यवहार में धनी लोगों को जैसा साक्षी करना चाहिए और जैसा वह साक्षी लोग सत्य बोलैं उस सब को हम कहैंगे । ६१ । आपत्काल के अभाव में जो कोई मिलै सो साक्षी हो ऐसा न चाहिए किंतु गृहस्थ पुत्रवान् कुलीन क्षत्रिय वैश्य शूद्र जाति अर्थी के किए हुए साक्षी भाव के योग्य होते हैं । ६२ । सब वर्णों के कार्य में यथार्थ

ब्रूहीत्युक्तश्च न ब्रूयादुक्तं च न विभावयेत् । न च पूर्वापरं विद्यात्तस्मादर्थात्स हीयते । ५६ ।
साक्षिणस्सन्ति मेत्युक्त्वा दिशेत्युक्तो दिशेन्न यः । धर्मस्थः कारणैरेतैर्हीनं तमपि निर्दिशेत् । ५७ ।
अभियोक्ता न चेद्ब्रूयाद्वध्योदंड्यश्च धर्मतः । न चेत्त्रिपक्षात्प्रब्रूयाद्धर्मम्प्रतिपराजितः । ५८ ।
यो यावन्निन्हुवीतार्थं मिथ्या यावति वा वदेत् । तौ नृपेण ह्यधर्मज्ञौ दाप्यौ तद्द्विगुणन्दमम् । ५९ ।
पृष्टोपव्ययमानस्तु कृतावस्थो धनैषिणा । त्र्यवरैस्साक्षिभिर्भाव्यो नृपब्राह्मणसन्निधौ । ६० ।
यादृशा धनिभिः कार्या व्यवहारेषु साक्षिणः । तादृशान्संप्रवक्ष्यामि यथावाच्यमृतञ्च तैः । ६१ ।
गृहिणः पुत्रिणो मौलाः क्षत्रविट्शूद्रयोनयः । अर्थ्युक्तास्साक्ष्यमर्हन्ति नये केचिदनापदि । ६२ ।
आप्तास्सर्वेषु वर्णेषु कार्य्याः कार्य्येषु साक्षिणः । सर्वधर्मविदो लुब्ध्वा विपरीतांस्तु वर्जयेत् । ६३ ।
नार्थसम्बन्धिनो नाप्तानसहायानवैरिणः । न दृष्टदोषाः कर्तव्या न व्याध्यार्ता न दूषिताः । ६४ ।
न साक्षी नृपतिः कार्य्यो न कारुककुशीलवौ । न श्रोत्रियो न लिङ्गस्थो न सङ्गेभ्यो विनिर्गतः ।
६५ । नाध्यधीनो न वक्तव्यो न दस्युर्न विकर्मकृत् । न वृद्धो न शिशुर्नैको नान्त्यो न विकलेन्द्रियः ।
६६ । नार्तो न मत्तो नोन्मत्तो न क्षुत्तृष्णापपीडितः । न श्रमार्तो न कामार्तो न क्रुद्धो नापि
तस्करः । ६७ । स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्य्युर्द्विजानां सदृशाः द्विजाः । शूद्राश्च सन्तः शूद्राणामं-
त्यानामंत्ययोनयः । ६८ । अनुभावी तु यः कश्चित्कुर्य्यात्साक्ष्यं विवादिनाम् । अन्तर्वेश्मन्यरण्ये
वा शरीरस्यापि चात्यये । ६९ । * * * * * * *

वक्ता सर्व धर्म के जानने वाले लोभ से रहित जो पुरुष हैं सो साखीपना के योग्य होते हैं और विपरीत (अर्थात् पूर्व कथित गुण से हीन) को वर्जन करना । ६३ । जिस अर्थ का विवाद है उस अर्थ संबंधी जो पुरुष है और मित्र सहाय करने वाला शत्रु जिस का दोष सर्वत्र देखने में आया है सो और व्याधि से दुःखित दोष से युक्त । ६४ । राजा रसोई करने वाला नट आदि वेद पढ़ने वाला ब्रह्मचारी आदि संग से जो निकाला गया है । ६५ । दास क्रूर कर्म करने वाला विरुद्ध कर्म करने वाला अस्सी वर्ष के ऊपर वय वाला सोलह वर्ष से नीचे वय वाला अकेला चाण्डाल आदि कोई इन्द्रिय से रहित । ६६ । दुःखित मदनीय द्रव्य (अर्थात् भांग गांजा आदि) से मत्त उन्मत्त (अर्थात् भूत आदि की उपद्रव सहित) क्षुधा तृषा से पीड़ित परिश्रम से युक्त काम से दुःखित क्रोध सहित चोर इन सब को साक्षी न करना । ६७ । स्त्रियों की साक्षी स्त्री लोग होवें द्विजों के साक्षी सदृश द्विज लोग होवें शूद्रों के साक्षी शूद्र होवें अंत्य (अर्थात् चाण्डाल आदि) के साक्षी अन्त्य होवें । ६८ । वादी अथवा प्रतिवादी के अर्थ को जो जानै सो साक्षी होवें बन और गृह इन्हों के भीतर और शरीर का नाश यह तीन कार्य में क्षण लेने में जैसा साक्षी का लक्षण कहा है उस का आदर न करना । ६९ । * * * * * *

उन तीनों कार्य में पूर्व कथित साक्षी के असंभव में स्त्री बाल वृद्ध शिष्य बंधु दास मजूरा ये सब भी साक्षी होवें । ७० । बाल वृद्ध आतुर उन्मत्त आदि इन्हों की वाणी को स्थिर न जानना । ७१ । साहस (अर्थात् बल करके काम करना) चोरी स्त्री का ग्रहण वाणी से कठोर बोलना लाठी आदि से मारना इन कर्मों में साक्षियों की परीक्षा न करना । ७२ । जहां साक्षियों की दो मत हैं तहां बहुत साक्षी के वचन को ग्रहण करना संख्या में सम हैं और दो मत हैं तब गुणियों के वाक्य को ग्रहण करना गुणियों के दो मत में ब्राह्मण जो हो उस के वाक्य को ग्रहण करना । ७३ । साक्षात् देखने से और सुनने से साक्ष्य (अर्थात् साखीपना) सिद्ध होता है उस में सत्य बोलने से धर्म अर्थ की हानि नहीं होती । ७४ । भले लोगों की सभा में सुनने से और देखने से विरुद्ध जो बोलता है सो अधोमुख (अर्थात् नीचे मुख) होकर नरक में जाता है और परलोक में स्वर्ग से हानि को पाता है । ७५ । तुम इस में साक्षी हो ऐसा कहा नहीं है और व्यवहार को तो उस ने देखा है और वह बुलाके पूछा जाय तो जैसा देखा है और सुना है तैसा कहै । ७६ । लोभ रहित एक पुरुष भी साक्षी होता है और पवित्रता सहित बहुत स्त्री साक्षी नहीं होतीं क्योंकि स्त्रियों की बुद्धि स्थिर नहीं है और जो दोष से युक्त हैं सो भी साक्षी नहीं हो सकते । ७७ । अपने स्वभाव से जो कथन

स्त्रियाप्यसंभवे कार्य्यम्बालेन स्थविरेण वा । शिष्येण बंधुना वापि दासेन भृतकेन वा । ७० ।
बालवृद्धातुराणां च साक्ष्येषु वदतां मृषा । जानीयादस्थिराम्वाचमुत्सिक्तमनसान्तथा । ७१ ।
साहसेषु च सर्वेषु स्तेयसंग्रहणेषु च । वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये न परीक्षेत साक्षिणः । ७२ । बहुत्वं
परिगृह्णीयात्साक्षिद्वैधे नराधिपः । समेषु तु गुणोत्कृष्टान् गुणिद्वैधे द्विजोत्तमान् । ७३ । समक्षद-
र्शनात्साक्ष्यं श्रवणाच्चैव सिध्यति । तत्र सत्यं ब्रुवन्साक्षी धर्मार्थाभ्यान्न हीयते । ७४ । साक्षी दृष्ट-
श्रुतादन्यद्विब्रुवन्नार्य्यसंसदि । अवाङ्नरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते । ७५ । यत्रानिबद्धोपीऽक्षेत
शृणुयाद्वापि किञ्चन । पृष्टस्तत्रापि तद्ब्रूयाद्यथा दृष्टं यथा श्रुतम् । ७६ । एकोऽलुब्धस्तु साक्षी
स्याद्बह्व्यश्शुच्योपि न स्त्रियः । स्त्रीबुद्धेरस्थिरत्वात्तु दोषैश्चान्येपि ये वृताः । ७७ । स्वभावेनैव
यद्ब्रूयुस्तद्ग्राह्यं व्यावहारिकम् । अतो यदन्यद्विब्रूयुर्द्धर्म्मार्थन्तदपार्थकम् । ७८ । सभांतः साक्षिणः
प्राप्तानर्थिप्रत्यर्थिसन्निधौ । प्राड्विवाको नियुञ्जीत विधिनानेन सांत्वयन् । ७९ । यद्द्वयोरनयोर्वेत्थ
कार्य्येऽस्मिन् चेष्टितं मिथः । तद्ब्रूत सर्वं सत्येन युष्माकं ह्यत्र साक्षिता । ८० । सत्यं साक्ष्ये ब्रुव-
न्साक्षी लोकानाप्नोति पुष्कलान् । इह चानुत्तमां कीर्तिं वागेषा ब्रह्मपूजिता । ८१ । साक्ष्येऽनृतं
वदन् पाशैर्बध्यते वारुणैर्भृशम् । विवशः शतमाजातीस्तस्मात्साक्ष्यं वदेदृतम् । ८२ । सत्येन पूयते
साक्षी धर्म्मः सत्येन वर्द्धते । तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः । ८३ । आत्मैव ह्यात्मनः
साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः । मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम् । ८४ । * *

करै उस बात को ग्रहण करना और जो सिखलाने से कहै वह बात व्यर्थ है (अर्थात् उस को ग्रहण न करना) । ७८ । सभा के मध्य में अर्थी और प्रत्यर्थी के समीप आगे जो विधान कहेंगे उस रीति से सांत्वन करत (अर्थात् साम उपाय से) साक्षियों को प्राड्विवाक (अर्थात् राजा की आज्ञा को पाके व्यवहार देखने वाला ब्राह्मण) नियोग करै (अर्थात् आज्ञा देवै) । ७९ । अर्थी के अथवा प्रत्यर्थी के इस कार्य में परस्पर चेष्टित जो जानते हो सो सत्य करके कहो इस कार्य में तुम्हारा साक्षीपना है । ८० । साक्षीपना में सत्य बोलत संते उत्कृष्ट लोक (अर्थात् ब्रह्म लोक आदि) को पाता है और इस लोक में बड़ी कीर्ति को पाता है और वाणी उस की चतुर्मुख से पूजित होती है । ८१ । साक्षीपना में झूठ बोलत संते दूसरे के वश हो कर सौ जन्म पर्यंत वरुण के पाश से अत्यंत बांधा जाता है इस लिये सत्य बोलना । ८२ । सत्य करके साक्षी पवित्र होता है और उस का धर्म बढ़ता है इस लिये सर्व वर्ण में साक्षी को सत्य ही बोलना चाहिये । ८३ । आत्मा की गति और साक्षी आत्मा ही है इस लिये सब मनुष्यों में श्रेष्ठ अपनी आत्मा है उस का अपमान मत करो । ८४ । * * * * *

पाप करने वाले यह मानते हैं कि हम को कोई नहीं देखता है और उस पाप को देवता और अपने भीतर रहने वाला पुरुष देखता है । ८५ । स्वर्ग भूमि जल हृदय में स्थित जीव चंद्र सूर्य अग्नि यम वायु रात्रि दोनों संध्या धर्म ये सब मनुष्यों के कर्म को जानने वाले हैं । ८६ । देवता और ब्राह्मण के समीप में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य जो साक्षी हैं सो पवित्र होकर पूर्व मुख अथवा उत्तर मुख हो उन से पूर्वाह्न काल में (अर्थात् दिन के प्रथम भाग में) पवित्र होकर प्राड्विवाक पूछे । ८७ । कहो ऐसा ब्राह्मण से पूछे सत्य कहो ऐसा क्षत्रिय से पूछे गौ बीज सुवर्ण इन की सौगंध देके वैश्य से पूछे (अर्थात् असत्य बोलोगे तो तुम्हारा बैल बीया सोना ये सब नष्ट हो जायंगे) असत्य बोलने से संपूर्ण पातक करके युक्त होगे ऐसा कहिके शूद्र से पूछे । ८८ । ब्राह्मण स्त्री बालक इन को मारने वाला मित्र से द्रोह करने वाला उपकार को न मानने वाला इन सबों को जो लोक होता है सो लोक झूठ बोलने से तुम को होवे । ८९ । जन्म भर जो पुण्य तुम ने की है सो सब झूठ बोलने से कुत्तों को मिले । ९० । अपने को तुम ऐसा मानते हो कि मैं अकेला हूं सो न मानो क्योंकि नित्य ही तुम्हारे हृदय में पाप पुण्य का देखने वाला मुनि स्थित है । ९१ । सूर्य का पुत्र यम देवता तुम्हारे हृदय में स्थित है उसके साथ जब तुम्हारा विवाद न हो तो गंगा और कुरुक्षेत्र

मन्यंते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यतीति नः । तांस्तु देवाः प्रपश्यंति स्वस्यैवांतरपूरुषः । ८५ ।
द्यौर्भूमिरापोहृदयंचन्द्रार्काग्नियमानिलाः । रात्रिः संध्ये च धर्मश्च वृत्तज्ञास्सर्वदेहिनाम् । ८६ ।
देवब्राह्मणसान्निध्ये साक्ष्यं पृच्छेदृतं द्विजान् । उदङ्मुखान्प्राङ्मुखान्वा पूर्वाह्णे वै शुचिः शुचीन् ।
८७ । ब्रूहीति ब्राह्मणं पृच्छेत्सत्यं ब्रूहीति पार्थिवम् । गोबीजकांचनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः ।
८८ । ब्रह्मघ्नो ये स्मृता लोका ये च स्त्रीबालघातिनः । मित्रद्रुहः कृतघ्नस्य ते ते स्युर्ब्रुवतो मृषा ।
८९ । जन्मप्रभृति यत्किंचित्पुण्यं भद्र त्वया कृतम् । तत्ते सर्वं शुनो गच्छेद्यदि ब्रूयास्त्वमन्यथा ।
९० । एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याण मन्यसे । नित्यं स्थितस्ते हृदये पुण्यपापेक्षिता मुनिः ।
९१ । यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदिस्थितः । तेन चेदविवादस्ते मागंगां माकुरून् गमः । ९२ ।
नग्नो मुण्डः कपालेन भिक्षार्थी क्षुत्पिपासितः । अंधः शत्रुकुलङ्गच्छेद्यः साक्ष्यमनृतं वदेत् । ९३ ।
अवाक् शिरास्तमस्यन्धे किल्बिषी नरकं व्रजेत् । यः प्रश्नं वितथं ब्रूयात्पृष्टः सन् धर्मनिश्चये । ९४ ।
अन्धो मत्स्यानि वा श्नाति स नरः कंटकैः सह । यो भाषतेऽर्थवैकल्यमप्रत्यक्षं सभाङ्गतः । ९५ ।
यस्य विद्वान् हि वदतः क्षेत्रज्ञो नाभि शंकते । तस्मान्न देवाः श्रेयांसं लोकेन्यं पुरुषं विदुः । ९६ ।
यावतो बांधवान् यस्मिन् हन्ति साक्ष्येनृतं वदन् । तावतः संख्यया तस्मिन् शृणु सौम्यानुपूर्वशः । ९७ ।
पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते । शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते । ९८ ।
हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेनृतं वदन् । सर्वं भूम्यनृते हन्ति मास्मभूम्यनृतं वदीः । ९९ ।

इस में मति जाओ (अर्थात् झूठ बोलने से यम के साथ विवाद होगा तो उसके छोड़ाने के लिये गंगा और कुरुक्षेत्र इस में जाना पड़ेगा) । ९२ । जो साक्षी झूठ बोले सो नंगा मूड़ मुड़ाए हुए क्षुधा पियास से पीड़ित अंधा हुआ भिक्षा के अर्थ कपाल लिए हुए शत्रु कुल में जावे । ९३ । धर्म के निश्चय में पूछा गया और झूठ बोला सो पापी नीचे शिर किए बहुत अंधेरा से युक्त नरक में जाता है । ९४ । जो सभा में जाके घूस लेके असत्य बोलता है सो मनुष्य अंध की नाईं कांटा सहित मछली को भोजन करता है । ९५ । जिस मनुष्य के बोलत संते क्षेत्रज्ञ (अर्थात् अंतरात्मा) शंका को नहीं करता है उस से श्रेष्ठ लोक में दूसरे पुरुष को देवता लोग नहीं जानते । ९६ । जिस कर्म में झूठ बोलने से जितने बांधवों को साक्षी मारता है सो सब हे ऋषि लोगो क्रम से सुनो । ९७ । पशु के निमित्त गौ के निमित्त घोड़ा के निमित्त पुरुष के निमित्त साक्षी कर्म में झूठ बोलने से क्रम करके पांच दश सौ सहस्र बांधवों को नाश करता है । ९८ । सुवर्ण के निमित्त साक्षी कर्म में असत्य बोलने से जो भए हैं और जो होंगे बांधव तिन सब को और भूमि के निमित्त साक्षी कर्म में असत्य बोलने से सब को नाश करता है इस लिए भूमि के निमित्त साक्षी कर्म में कभी असत्य न बोलना । ९९ ।

* * * * * * * *

ल स्त्री संभोग (अर्थात् मैथुन कर्म) मोती आदि वैदूर्य मणि आदि इस में भूमि की नाईं जानना । १०० । झूठ बोलने में इतने
दोषों को देखकर जैसा देखा हो और जैसा सुना हो तैसा बे मेहनत बोलो । १०१ । जीविका के लिये गौ का रक्षा करने वाला
वनियां का काम करने वाला पराई रसोंई बनाने वाला गाने वाला दास कर्म करने वाला ब्याज लेने वाला जो ब्राह्मण है उन को
शूद्र की नाईं आचरण करना । १०२ । जान करके दया से झूठ बोलने में स्वर्ग से नहीं गिरता और उसकी वाणी को देवता की
वाणी सी मनु आदि बोलते हैं । १०३ । जहां सत्य बोलने से शूद्र वैश्य क्षत्रिय ब्राह्मण इन्हीं का बध होता हो तहां झूठ बोलना
वह सत्य से भी श्रेष्ठ है । १०४ । झूठ बोल के गृह में आय के सरस्वती देवता की याग करै तब झूठ बोलने के पाप से छूटै ।
१०५ । अथवा कूष्माण्ड मंत्र यजुर्वेद में है उस करके किम्वा उदुत्तमं आपोहिष्ठा इन दोनों मंत्रों में से कोई एक मंत्र करके घी
को अग्नि में विधि पूर्वक होम करै । १०६ । ऋण आदि व्यवहार में रोग रहित साक्षी डेढ़ महीना के भीतर कुछ न कहै तो जिस
व्यवहार में साक्षी भया है उस व्यवहार के ऋण को और उस के दशवां अंश दण्ड को देवै । १०७ । न्याय सभा में बोल के
साक्षी आया और सात दिन के भीतर रोग अग्निदाह जाति मरण इस में से कोई एक उस को हो तो वह साक्षी उस ऋण को

अप्सु भूमिवदित्याहुः स्त्रीणां भोगे च मैथुने । अब्जेषु चैव रत्नेषु सर्वेष्वश्ममयेषु च । १०० ।
एतान्दोषानवेक्ष्य त्वं सर्वाननृतभाषणे । यथा श्रुतं यथादृष्टं सर्वमेवाञ्जसा वद । १०१ ।
गोरक्षकान्वाणिजकांस्तथा कारुकुशीलवान् । प्रेष्यान्वार्द्धुषिकांश्चैव विप्रान् शूद्रवदाचरेत् । १०२ ।
तद्वदन् धर्मतोर्थेषु जानन्नप्यन्यथा नरः । न स्वर्गात् च्यवते लोकाद्दैवीं वाचं वदन्ति ताम् । १०३ ।
शूद्रविट्क्षत्रविप्राणां यत्रर्तोक्तौ भवेद्वधः । तत्र वक्तव्यमनृतं तद्धि सत्याद्विशिष्यते । १०४ ।
वाग्दैवत्यैश्च चरुभिर्यजेरंस्ते सरस्वतीम् । अनृतस्यैनसस्तस्य कुर्वाणा निष्कृतिम्पराम् । १०५ ।
कूष्माण्डैर्वापि जुहुयाद्घृतमग्नौ यथाविधि । उदित्यृचा वा वारुण्या त्र्यृचेनाब्दैवतेन वा । १०६ ।
त्रिपक्षादब्रुवन्साक्ष्यमृणादिषु नरोगदः । तदृणं प्राप्नुयात्सर्वन्दशबन्धञ्च सर्वतः । १०७ ।
यस्य दृश्येत सप्ताहादुक्तवाक्यस्य साक्षिणः । रोगोग्निर्ज्ञातिमरणमृणन्दाप्यो दमञ्च सः । १०८ ।
असाक्षिकेषु त्वर्थेषु मिथो विवदमानयोः । अविन्दंस्तत्त्वतस्सत्यं शपथेनापि लंभयेत् । १०९ ।
महर्षिभिश्च देवैश्च कार्य्यार्थं शपथाः कृताः । वशिष्ठश्चापि शपथं शेपे पैयवने नृपे । ११० ।
न वृथा शपथं कुर्य्यात्स्वल्पेप्यर्थे नरो बुधः । वृथाहि शपथं कुर्वन्प्रेत्य चेह च नश्यति । १११ ।
कामिनीषु विवाहेषु गवाम्भक्ष्ये तथेन्धने । ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ च शपथे नास्तिपातकम् । ११२ ।
सत्येन शापयेद्विप्रं क्षत्रियं वाहनायुधैः । गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यं शूद्रं सर्वैस्तु पातकैः । ११३ ।
अग्निम्वा हारयेदेनमप्सु चैनं निमज्जयेत् पुत्रदारस्य वाप्येनं शिरांसि स्पर्शयेत्पृथक् । ११४ ।
यमिद्धो न दहत्यग्निरापोनोन्मज्जयंति च । न चार्तिमृच्छति क्षिप्रं स ज्ञेयः शपथे शुचिः । ११५ ।

और उस का दशवां अंश दण्ड को देवै । १०८ । जिस व्यवहार में साक्षी नहीं हैं और विचारने से सिद्धांत बात को न्याय देखने
वाला पा नहीं सकता तब आगे जो कहैंगे शपथ (अर्थात् सौगंध) से सिद्धांत बात को जाने । १०९ । देवता और बड़े ऋषियों ने
कार्य के लिये शपथ की है वशिष्ठ ने भी विश्वामित्र के विवाद में पियवन का बेटा सुदामा नाम ने राजा के समीप शपथ किया
इस स्थान में ऐसी कथा है विश्वामित्र ने कहा कि वशिष्ठ ने हमारा सब लड़का भक्षण किया तब अपनी शुद्धि के लिये वशिष्ठ
ने शपथ किया । ११० । थोड़े अर्थ में भी मूर्ख लोग झूठ शपथ न करैं झूठ शपथ करने से इस लोक में पर लोक में नष्ट होता
है । १११ । स्त्री विवाह गौ के भोजन की वस्तु इंधन ब्राह्मण की रक्षा इन में झूठ शपथ करने से पातक नहीं होता । ११२ ।
सत्य वाहन आयुध गौ बीज सुवर्ण संपूर्ण पातक इन्हीं करके क्रम से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रों को शपथ देवै । ११३ । अग्नि को
उठावे अथवा जल में डुबावे स्त्री के पुत्र के मस्तक को छुआवे । ११४ । जिस को अग्नि न जलावे और जल न उतिरावे और जो
जलदी दुःख को न पावै उस को शपथ में शुद्ध जानना । ११५ । * * * * *

पूर्व काल में छोटे भाई ने वत्स ऋषी को अपवाद लगाया और वत्स ऋषी ने अपने शुद्धता के लिये अग्नि को उठाया परंतु सब जगत का शुभाशुभ कर्म को जानने वाला अग्नि ने एक रोम भी दहन न किया । ११६ । जो जो कार्य साक्षियों के झूठ बोलने से सिद्ध हो गया है और पीछे से साक्षियों का झूठ बोलना जाना गया तो सिद्ध हुआ कार्य असिद्ध हो जाता है । ११७ । लोभ मोह भय मित्रता काम क्रोध अज्ञान बालक पना इन सब कारणों में से कोई एक कारण करके साक्षी झूठ बोलते हैं । ११८ । उन को दंड विशेष क्रम से कहेंगे । ११९ । लोभ मोह भय मित्रता इन से झूठ बोलने में साक्षियों के क्रम से सहस्र पण पूर्व साहस मध्यम साहस दो पूर्व साहस चार दंड देवै । १२० । काम क्रोध अज्ञान बालक पना इन से झूठ बोलने में साक्षियों के क्रम से पूर्व साहस दश उत्तम साहस तीन दो सौ एक सौ पण दंड देवे । १२१ । अधर्म के रोकने के लिये धर्म के स्थापन के लिये साक्षियों के झूठ बोलने में इन दंडों को पंडितों ने कहा । १२२ । क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये तीनों वर्ण साक्षी होके झूठ बोलैं तो धार्मिक राजा पूर्व कथित दंड को देके अपने राज्य से बाहर निकाल देवे और ब्राह्मण को तो पूर्व कथित अपराध में अपने राज्य से धन सहित निकाल देवे । १२३ । क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन तीनों वर्णों के दण्ड का दश स्थान स्वयंभू के पुत्र मनु ने कहा और ब्राह्मण तो

वत्सस्य ह्यभिशस्तस्य पुरा भ्राता यवीयसा । नाग्निर्ददाह रोमापि सत्येन जगतः स्पृशः । ११६ ।
यस्मिन् यस्मिन् विवादे तु कौटसाक्ष्यं कृतं भवेत् । तत्तत्कार्य्यन्निवर्तेत कृतञ्चाप्यकृतं भवेत् । ११७ ।
लोभान्मोहाद्भयान्मैत्रात्कामात्क्रोधात्तथैव च । अज्ञानाद्बालभावाच्च साक्ष्यं वितथमुच्यते । ११८ ।
एषामन्यतमे स्थाने यः साक्ष्यमनृतं वदेत् तस्य दंडविशेषांस्तु प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः । ११९ ।
लोभात्सहस्रं दंड्यस्तु मोहात्पूर्वं तु साहसम् । भयाद्द्वौ मध्यमौ दण्डौ मैत्रात्पूर्वञ्चतुर्गुणम् । १२० ।
कामाद्दशगुणं पूर्वं क्रोधात्तु त्रिगुणं परम् । अज्ञानाद्द्वेशते पूर्णे बालिश्याच्छतमेव तु । १२१ ।
एतानाहुः कौटसाक्ष्ये प्रोक्तान्दण्डान्मनीषिभिः । धर्मस्याव्यभिचारार्थमधर्मनियमाय च । १२२ ।
कौटसाक्ष्यं तु कुर्वाणान् त्रीन्वर्णान्धार्मिको नृपः । प्रवासयेद्दण्डयित्वा ब्राह्मणं तु विवासयेत् । १२३ ।
दश स्थानानि दण्डस्य मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् । त्रिषु वर्णेषु यानि स्युरक्षतो ब्राह्मणो व्रजेत् । १२४ ।
उपस्थमुदरञ्जिह्वा हस्तौ पादौ च पञ्चमम् । चक्षुर्नासा च कर्णौ च धनन्देहस्तथैव च । १२५ ।
अनुबंधञ्च विज्ञाय देशकालौ च तत्त्वतः । सारापराधौ चालोक्य दण्डन्दंड्येषु पातयेत् । १२६ ।
अधर्मदण्डनं लोके यशोघ्नं कीर्तिनाशनम् । अस्वर्ग्यञ्च परत्रापि तस्मात्तत्परिवर्जयेत् । १२७ ।
अदंड्यान्दण्डयन् राजा दंड्यांश्चैवाप्यदंडयन् । अयशो महदाप्नोति नरकञ्चैव गच्छति । १२८ ।
वाग्दण्डम्प्रथमङ्कुर्य्याद्धिग्दण्डन्तदनन्तरम् । तृतीयन्धनदण्डन्तु वधदण्डमतः परम् । १२९ ।
वधेनापि यदा त्वेतान्निग्रहीतुं न शक्नुयात् । तदेषु सर्वमप्येतत्प्रयुंजीत चतुष्टयम् । १३० ।
लोकसंव्यवहारार्थं याः संज्ञाः प्रथिता भुवि । ताम्ररूप्यसुवर्णानां ताः प्रवक्ष्याम्यशेषतः । १३१ ।

शरीर दण्ड रहित गमन करै । १२४ । उपस्थ उदर जिह्वा हस्त पाद नेत्र नासिका कर्ण धन देह ये दश दण्ड के स्थान हैं । १२५ । बारंबार इच्छा से अपराध करना ग्राम बन आदि अपराध स्थान दिन रात अपराध काल अपराध करने वाले का धन शरीर आदि सामर्थ्य बड़ा छोटा अपराध इन सब को देख कर दण्ड के योग्य मनुष्यों को दण्ड देवै । १२६ । लोक में यश (अर्थात् जीते हुए प्रसिद्ध) कीर्ति (अर्थात् मरे हुए प्रसिद्ध) इन दोनों का नाश करने वाला और परलोक में स्वर्ग का नाश करने वाला अधर्म दण्ड है इस लिए अधर्म दण्ड न करना । १२७ । दण्ड के योग्य नहीं है उस को दण्ड देने से और दण्ड के योग्य है उस को न देने से राजा बड़ा अपयश को पाता है और नरक में जाता ही है । १२८ । प्रथम तो तुम ने अच्छा नहीं किया फेर ऐसा न करना ऐसी वाणी से डराना यह पहिला दण्ड है तदनन्तर धिक्कार तुम को है बड़ा पापी है मूर्ख है तेरा जीना न होवे ऐसा कहना यह दूसरा दण्ड है धन दण्ड तीसरा है बध (अर्थात् अंगच्छेद) दण्ड चौथा है । १२९ । केवल बध करके भी अपराधी को वश न कर सके तो चारों दंड देवै । १३० । लोक को सुंदर व्यवहार के लिये ताम्बा रूपा सोना की संज्ञा कही है उस संपूर्ण को मैं कहूंगा । १३१ ।

रोखा में सूर्य्य के किरण आने से जो तिनका देख पड़ता है वह सब प्रमाण में पहिला कहाता है उस को त्रसरेणु कहते हैं । १३२ । आठ त्रसरेणु का १ लिक्षा ३ लिक्षा को १ राई ३ राई का १ पीली सरसों होती है । १३३ । छः सरसों का १ मध्यम यव ३ यव की १ रत्ती ५ रत्ती का १ मासा १६ मासा का १ सुवर्ण होता है । १३४ । चार सुवर्ण का १ पल १० पल का १ धरण होता है अब रूपे का मान कहते हैं २ रत्ती का १ मासा । १३५ । सोलह मासा का १ धरण और उस को पुराण भी कहते हैं १६ मासा ताम्बा को ताम्रिक और कार्षिक पण कहते हैं । १३६ । दश धरण का १ शतमान ४ सुवर्ण का १ निष्क होता है । १३७ । अढ़ाई सौ पण का प्रथम साहस ५०० पण का मध्यम साहस १००० पण का उत्तम साहस होता है । १३८ । सभा में जाके अधमर्ण (अर्थात् ऋणी) कहै कि उत्तमर्ण (अर्थात् धनी) का ऋण हम को देना है तो १०० पण पीछे ५ पण दण्ड देवै और सभा में जाके अपलाप करै (अर्थात् हम नहीं धराते ऐसा कहै) और उत्तमर्ण साक्षी और पत्र से अपना देना सिद्ध करै तो १०० पण पीछे १० पण दण्ड अधमर्ण के ऊपर होवे यह मनु जी की आज्ञा है । १३९ । द्रव्य के बढ़ाने वाली वशिष्ठ ऋषि जी की कही हुई जो वृद्धि (अर्थात् ब्याज) उस को त्याग करै सौ रुपैया का अस्सीवां भाग (अर्थात् १।) रुपैया लेवै महीना भर में १०० रुपैया पीछे ब्याज लेने

जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः । प्रथमन्तत्प्रमाणानान्त्रसरेणुम्प्रचक्षते । १३२ ।
त्रसरेणवोऽष्टौ विज्ञेया लिक्षैका परिमाणतः । ता राजसर्षपस्तिस्रस्ते त्रयो गौरसर्षपः । १३३ ।
सर्षपाः षड्यवो मध्यस्त्रियवं त्वेक कृष्णलम् । पञ्च कृष्णलको माषस्ते सुवर्णस्तु षोड़श । १३४ ।
पलं सुवर्णाश्चत्वारः पलानि धरणन्दश । द्वे कृष्णले समधृते विज्ञेयो रौप्यमाषकः । १३५ ।
ते षोडशस्याद्धरणम्पुराणश्चैव राजतः । कार्षापणं तु विज्ञेयस्ताम्रिकः कार्षिकः पणः । १३६ ।
धरणानि दशज्ञेयः शतमानस्तु राजतः । चतुः सौवर्णिको निष्को विज्ञेयस्तु प्रमाणतः । १३७ ।
पणानां द्वे शते सार्द्धे प्रथमः साहसः स्मृतः । मध्यमः पञ्च विज्ञेयः सहस्रन्त्वेव चोत्तमः । १३८ ।
ऋणेदेये प्रतिज्ञाते पञ्चकं शतमर्हति । अपन्हवे तद्द्विगुणं तन्मनोरनुशासनम् । १३९ ।
वसिष्ठविहितां वृद्धिन्त्यजेद्वित्तविवर्द्धिनीम् । अशीति भागं गृह्णीयान्मासाद्वार्द्धुषिकः शते । १४० ।
द्विकं शतं वा गृह्णीयात्सतां धर्ममनुस्मरन् । द्विकं शतं हि गृह्णानो न भवत्यर्थकिल्विषी । १४१ ।
द्विकं त्रिकञ्चतुष्कञ्च पञ्चकञ्च शतं समम् । मासस्य वृद्धिं गृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः । १४२ ।
नत्वेवाधौ सोपकारे कौसीदीं वृद्धिमाप्नुयात् । नचाधेः कालसंरोधान्निसर्गोस्ति न विक्रयः । १४३ ।
न भोक्तव्यो बलादाधिर्भुञ्जानो वृद्धिमुत्सृजेत् । मूल्येन तोषयेच्चैनमाधिस्तेनोन्यथा भवेत् । १४४ ।
आधिश्चोपनिधिश्चोभौ न कालात्ययमर्हतः । अवहार्यौ भवेतान्तौ दीर्घकालमवस्थितौ । १४५ ।
संप्रीत्या भुज्यमानानि न नश्यन्ति कदाचन । धेनुरुष्ट्रोवहन्नश्वो यश्च दम्यः प्रयुज्यते । १४६ ।

वाला । १४० । अथवा सज्जनों के धर्म को स्मरण करत संते १००) रुपैया पीछे २) रुपैया महीना भर में लेवे इस के लेने से द्रव्य पापी नहीं होता । १४१ । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन्हों से क्रम करके मासा भर में १००) रुपैया पीछे २) ३) ४) ५) रुपैया लेवे । १४२ । उपकार करने वाला (अर्थात् भूमि गौ दास आदि) जो आधि (अर्थात् बंधक) उस में ब्याज न लेना बंधक को बहुत दिन भया और जितना द्रव्य लिया रहा बंधक रख के उस का दूना धन को बंधक के फल से धनी ने पाया तब उस बंधक को किसी को दे डाले या बेंच डाले सो नहीं जब तक मूल धन को न पावै तब तक उस के फल को भोग करता रहै । १४३ । बल से बंधक को भोग न करै और करै तो ब्याज को छोड़ देवे अथवा जिस की बस्तु है उस को मूल्य देके संतुष्ट करै ऐसा न करै तो बंधक का चोर होता है । १४४ । बंधक और उपनिधि (अर्थात् प्रीति करके भोग के अर्थ अर्पित जो द्रव्य) इन दोनों को जब स्वामी मांगै तबै देना चाहिए यह न कहना कि इतने दिन में देंगे और बहुत दिन के रहने से यह दोनों नष्ट नहीं होते मूल स्वामी का स्वामित्व (अर्थात् मालिक पना) बनै रहता है जिस के यहां है उस का स्वामित्व उस में नहीं होता । १४५ । धेनु ऊंट घोड़ा बैल इन सब को स्वामी के प्रेम से कोई भोग करै तो जिस के वह सब हैं उस का स्वामित्व नष्ट नहीं होता । १४६ ।

धनी देखता है और मना नहीं करता उस की बस्तु को दूसरा मनुष्य दश वर्ष तक भोग किया फेर धनी उस बस्तु को नहीं पा
सकता । १४७ । क्योंकि भोग करने वाला कहता है कि यह जड़ (अर्थात् बौरहा) और बालक नहीं है इस के देखते हुए भोग किया
है तब वह उत्तर कुच्छ नहीं दे सकता इस लिये व्यवहार से वह भंग होता है भोग करने वाला उस द्रव्य को पाता है । १४८ ।
बंधक सीमा बालक का धन निक्षेप (अर्थात् देखाके गिनाके कोई बस्तु को किसी के यहां स्थापन किया) उपनिधि (अर्थात् देखाए
गिनाए बिना ढांपी बस्तु को किसी के यहां स्थापित किया) स्त्री (अर्थात् दासी) राजा और वेद पाठी इन दोनों का धन ये
सब भोग करनें से नष्ट नहीं होते । १४९ । बंधक के स्वामी की आज्ञा बिना जो बंधक को भोग करै सो ब्याज को छोड़ देवै
उस भोग का यही प्रायश्चित्त है । १५० । एक ही बेर लेने में जितना मूल है उतना ही ब्याज मिलता है और अन्न वृक्ष का फल
ऊर्णा आदि लोम वृषभ आदि इन सभों का ब्याज मूल का चौगुना के ऊपर नहीं मिलता । १५१ । शास्त्र कथित वृद्धि से अधिक
वृद्धि नहीं होती और जिस वर्ण से जो वृद्धि लेने को कहा है उस का उलट पलट करने से कुत्सित पथ कहाता है और उधार
देके फेर मांगा उस ने न दिया तो उस दिन से लेकर ५) रुपैया सैकड़ा वृद्धि लेना । १५२ । एक दो तीन मास बीते पीछे
गणना करके एक ही बेर वृद्धि देना इस रीति से नियम करके वर्ष पर्यंत धनी वृद्धि ग्रहण करैं और वर्ष के बीते नियम की वृद्धि को

यत्किञ्चिद्दशवर्षाणि सन्निधौ प्रेक्षते धनी । भुज्यमानं परैस्तूष्णीन्न स तल्लब्धुमर्हति । १४७ ।
अजड़श्चेदपौगण्डो विषये चास्य भुज्यते । भग्नन्तद्व्यवहारेण भोक्ता तद्धनमर्हति । १४८ ।
आधिः सीमा बालधनं निःक्षेपोपनिधिः स्त्रियः । राजस्वं श्रोत्रियस्वञ्च न भोगेन प्रणश्यति । १४९ ।
यः स्वामिनाननुज्ञातमाधिं भुंक्ते विचक्षणः । तेनार्द्धवृद्धिर्मोक्तव्या तस्य भोगस्य निष्कृतिः । १५० ।
कुसीदवृद्धिर्द्वैगुण्यन्नात्येति सकृदाहृता । धान्ये सदे लवे बाह्ये नातिक्रामति पञ्चताम् । १५१ ।
कृतानुसारादधिका व्यतिरिक्ता न सिध्यति । कुसीदपथमाहुस्तम्पञ्चकं शतमर्हति । १५२ ।
नातिसांवत्सरीं वृद्धिं न चादृष्टां पुनर्हरेत् । चक्रवृद्धिः कालवृद्धिः कारिता कायिका च या । १५३ ।
ऋणन्दातुमशक्तो यः कर्तुमिच्छेत्पुनः क्रियाम् । स दत्वा निर्जितां वृद्धिं करणं परिवर्तयेत् । १५४ ।
अदर्शयित्वा तत्रैव हिरण्यम्परिवर्तयेत् । यावती संभवेद्वृद्धिस्तावतीन्दातुमर्हति । १५५ ।
चक्रवृद्धिं समारूढो देशकालव्यवस्थितः । अतिक्रामन्देशकालौ न तत्फलमवाप्नुयात् । १५६ ।
समुद्रयानकुशला देशकालार्थदर्शिनः । स्थापयंति तु ताम्वृद्धिं सा तत्राधिगमम्प्रति । १५७ ।
यो यस्य प्रतिभूस्तिष्ठेद्दर्शनायेह मानवः । अदर्शयन्स तन्तस्य प्रयच्छेत्स्वधनादृणम् । १५८ ।

न लेवै और शास्त्र से अकथित वृद्धि को न लेवै और लेवै तो अधर्म होता है चक्र वृद्धि काल वृद्धि कारिता कायिका इन वृद्धियों
को न लेवै क्योंकि ये सब शास्त्र कथित नहीं हैं शरीर के क्लेश से जो फल मिलता है सो कायिका वृद्धि कहाती है जैसे
वृद्धि देने के निमित्त गौ बैल को बंधक रक्खा उस के दोहन वाहन से वृद्धि को दिया मास में लेना वह कालिका कहाती है
वृद्धि की वृद्धि चक्र वृद्धि कहाती है ऋणी ने आप से जो किया सो कारिता कहाती है तिस में चक्र वृद्धि तो स्वरूपै करके
निन्दित है द्विगुण से अधिक लेने से काल वृद्धि निंदित है अधिक दोहन वाहन से कायिका निंदित है ऋणी ने आपत्काल में
धनी से पीड़ा पाके किया सो कारिता कहाती है सो भीं निंदित है । १५३ । ऋण देने को समर्थ नहीं है और फेर पत्र लिखने
को चाहे तो वृद्धि देके पुनः पत्र लिखै । १५४ । जब वृद्धि देने की भी सामर्थ्य न हो तो वृद्धि सहित मूल का दूसरा पत्र लिखै ।
१५५ । गाड़ी आदि का भाड़ा करने वाला जो पुरुष सो गाड़ीवान जो कहै उस को न करै तो उस के संपूर्ण फल को नहीं पाता
जैसे यहां से बनारस तक इतना बोझा पहुंचा देंगे हम को इतना देना अथवा एक मास बोझा ढोवेंगे इतना देना ऐसा कहवै
काम करने लगा और पूर्व कथित को संपूर्ण न किया तो संपूर्ण भाड़ा को न पावेगा । १५६ । समुद्र के मार्ग में कुशल देश काल
अर्थ इस के देखने वाले जो वृद्धि स्थापन करैं उस स्थान में सोई लेना । १५७ । जो मनुष्य जिस मनुष्य का प्रतिभू (अर्थात् जामिन)
होवे देखाने के लिये और देखने के समय में देखाता नहीं सो अपने धन से उस ऋण को देवै । १५८ । *

जामिनी वृथा दान (अर्थात् धूर्त भाट माल इन सब को दिया) इन करके जो ऋण है और पासा मद्य दण्ड इन्हों का शेष शुल्क (अर्थात् इजारा) का शेष ये सब पिता के किए हों तो पुत्र उस को न देवे। १५९। दान प्रतिभू (अर्थात् माल जामिन) उस के मरे पीछे उस का पुत्र उस ऋण को देवे जिस ऋण के देने के निमित्त उस का पिता जामिन हुआ है और दर्शन प्रतिभू के मरे पीछे उस का पुत्र देखने के समय में ऋणी को न देखावे। १६०। दर्शन प्रतिभू प्रत्यय प्रतिभू (अर्थात् विश्वास जामिन) कि हमारे विश्वास से इस को धन दो तुम को न ठगैगा भले मनुष्य का पुत्र है अच्छा ग्राम इस का है बहुत अन्न को उत्पन्न करने वाली भूमि इस को है इन दोनों ऋणी से जितना ऋण देना है उतना धन को लेके प्रतिभू हुए हों और पीछे मर गए तो धनी अपना धन लेने की इच्छा किस कारण से करै प्रतिभू तो मर गया और उन के पुत्र से लेने का निषेध तो पूर्व कह आए हैं ऐसा आशंका करके कहते हैं। १६१। कि जो धन लेके पिता प्रतिभू भया है उसी धन से प्रतिभू का पुत्र ऋण को देवे। १६२। मत्त (भांग गांजा आदि से) उन्मत्त (व्याधि आदि से पीड़ित) आर्त्त (दुःखित) पैड़हरु बाल वृद्ध संबंध रहित इन्हों करके किया व्यवहार सिद्ध नहीं होता। १६३। यह हम को करना है ऐसा लिखके स्थिर किया और वह जब शास्त्र कथित धर्म और परम्परा से चला आया जो समीचीन व्यवहार इन दोनों से बाहर होवे तो सत्य नहीं है (अर्थात् उस को न करना)। १६४।

प्रातिभाव्यं वृथादानमाक्षिकं सौरिकञ्च यत्। दण्डशुल्कावशेषञ्च न पुत्रो दातुमर्हति। १५९।
दर्शनप्रातिभाव्ये तु विधिः स्यात्पूर्वचोदितः। दानप्रतिभुवि प्रेते दायादानपि दापयेत्। १६०।
अदातरि पुनर्दाता विज्ञातप्रकृतावृणम्। पश्चात्प्रतिभुवि प्रेते परीप्सेत् केन हेतुना। १६१।
निरादिष्टधनश्चेत्तु प्रतिभूः स्यादलंधनः। स्वधनादेव तद्दद्यान्निरादिष्ट इतिस्थितिः। १६२।
मत्तोन्मत्तार्त्ताध्यधीनैर्बालेन स्थविरेण वा। असंबद्धकृतश्चैव व्यवहारो न सिध्यति। १६३।
सत्या न भाषा भवति यद्यपि स्यात्प्रतिष्ठिता। बहिश्चेद्भाष्यते धर्मान्नियताद्व्यावहारिकात्। १६४।
योगाधमनविक्रीतं योगदानप्रतिग्रहम्। यत्र वाप्युपधिम्पश्येत्तत्सर्वंविनिवर्तयेत्। १६५।
ग्रहीता यदि नष्टः स्यात्कुटुम्बार्थे कृतोव्ययः। दातव्यं बान्धवैस्तत्स्यात्प्रविभक्तैरपि स्वतः। १६६।
कुटुंबार्थेऽध्यधीनोपि व्यवहारं यमाचरेत्। स्वदेशे वा विदेशे वा तं ज्यायान्न विचालयेत्। १६७।
बलाद्दत्तं बलाद्भुक्तं बलाद्यच्चापि लेखितम्। सर्वान्बलकृतानर्थानकृतान्मनुरब्रवीत्। १६८।
त्रयः परार्थे क्लिश्यंति साक्षिणः प्रतिभूः कुलम्। चत्वारस्तूपचीयंते विप्र आढ्यो वणिङ्नृपः। १६९।
अनादेयन्नाददीत परिक्षीणोपि पार्थिवः। न चादेयं समृद्धोपि सूक्ष्ममप्यर्थमुत्सृजेत्। १७०।
अनादेयस्य चादानादादेयस्य च वर्जनात्। दौर्बल्यं ख्याप्यते राज्ञः स प्रेत्येह च नश्यति। १७१।

छल करके जो बंधक विक्रय दान प्रतिग्रह है सो सब निवृत्त हो जाता है और जिस कार्य में छल जाना गया सो सब निवृत्त होता है। १६५। ऋण लेके कुटुंब के अर्थ व्यय करके ऋणी मर गया तो उस ऋण को विभक्त बांधव लोग देवें। १६६। अपने देश में अथवा विदेश में कुटुंब (अर्थात् पोष्य वर्ग) के अर्थ दास ने भी जिस व्यवहार को किया उस व्यवहार को कुटुंबी (अर्थात् पोष्य वर्ग का स्वामी) विचलन न करै किंतु मानै। १६७। बलसे देना भोग करना पत्र लिखाना इन आदि से जितने कार्य किए गए हैं सो सब अकृत (अर्थात् सिद्ध नहीं हैं)। १६८। साक्षी प्रतिभू कुल ये तीनों पर के अर्थ क्लेश को पाते हैं और ब्राह्मण धनी बनियां राजा ये चारों पर के अर्थ बढ़ते हैं इस लिये पूर्व कथित जो तीन हैं सो प्रथम ही क्रम से अपने कार्य को स्वीकार न करैं (अर्थात् साक्षी पना जामिनी व्यवहार देखना इन कामों को न करैं) और पीछे कथित जो चार हैं सो क्रम से अपने कार्य को बल से प्रवृत्त करैं (अर्थात् दान फलोत्पादन ऋण द्रव्यार्पण विक्रय व्यवहार दर्शन) इन को पर अर्थ करैं (अर्थात् ब्राह्मण दाता को धनी ऋणी को बनियां छीनने वाले को राजा व्यवहार करने वाले को बल से कार्य में प्रवृत्त करै)। १६९। निर्धन भी राजा हो परंतु ग्रहण के योग्य जो वस्तु नहीं है उस को ग्रहण न करै और बड़ा धनी भी राजा हो परंतु ग्रहण के योग्य छोटी भी वस्तु हो तो उस को ग्रहण करै। १७०। ग्रहण के योग्य वस्तु के त्याग से और ग्रहण के योग्य वस्तु नहीं है उस के ग्रहण से राजा की दुर्बलता प्रकाशित होती है और वह राजा इस लोक में और परलोक में नाश को पाता है। १७१। * * * *

ग्रहण के योग्य वस्तु को लेने से और सजातीयों का सजातीय के साथ शास्त्रोक्त विवाह आदि संबंध कराने से बल रहित प्रजों के रक्षण से राजा को बल होता है और वह राजा इस लोक में और परलोक में बढ़ता है। १७२। इस लिये यम की नाईं राजा प्रिय अप्रिय को छोड़ कर क्रोध और इन्द्रिय इन को जीत कर रहे। १७३। जो राजा मोह से अधर्म करके कार्य को करै उस दुरात्मा राजा को शत्रु लोग वश कर लेते हैं। १७४। जो राजा काम क्रोध को छोड़ कर धर्म से अर्थ को देखता है उस के पीछे सब प्रजा रहते हैं जैसे सब नदी समुद्र के पीछे रहती हैं (अर्थात् समुद्र में जाकर फेर उस से भिन्न नहीं होतीं) तिस प्रकार से राजा से भिन्न प्रजा नहीं रहते। १७५। जो धनी अपने बल से ऋणी से अपने दिये धन को ग्रहण करता है और ऋणी राजा के पास जाकर निवेदन करै तो राजा उस ऋणी से ऋण का चतुर्थांश दंड आप लेवै और धनी को धन दिला देवै। १७६। धनी के समान जाति वाला अथवा धनी से नीच जाति वाला जो ऋणी है और धन देने में असमर्थ है सो धनी का काम करके ऋण को पटावे और जो धनी की जाति से ऊंची जाति वाला ऋणी है सो धनी का काम न करै किंतु धीरे धीरे जब कुछ मिलै तब देवै। १७७। इस विधि करके परस्पर विवाद करने वाले मनुष्यों के साक्षियों से सिद्ध जो कार्य उस को राजा विरुद्ध वाक्य को खण्डन करके सम

स्वादानाद्वर्णसंसर्गात्त्वबलानाञ्च रक्षणात्। बलं संजायते राज्ञः स प्रेत्येह च वर्द्धते। १७२।

तस्माद्यम इव स्वामी स्वयं हित्वा प्रियाप्रिये। वर्तेत याम्यया वृत्त्या जितक्रोधो जितेन्द्रियः। १७३।

यस्त्वधर्मेण कार्य्याणि मोहात्कुर्य्यान्नराधिपः। अचिरात्तं दुरात्मानं वशे कुर्वन्ति शत्रवः। १७४।

कामक्रोधौ तु संयम्य योऽर्थान्धर्मेण पश्यति। प्रजास्तमनुवर्तन्ते समुद्रमिव सिन्धवः। १७५।

यः साधयंतं छन्देन वेदयेद्धनिकं नृपे। स राज्ञा तच्चतुर्भागं दाप्यस्तस्य च तद्धनम्। १७६।

कर्म्मणापि समं कुर्य्याद्धनिकायाधमर्णिकः। समोवकृष्टजातिस्तु दद्याच्छ्रेयांस्तु तच्छनैः। १७७।

अनेन विधिना राजा मिथो विवदतां नृणाम्। साक्षिप्रत्ययसिद्धानि कार्य्याणि समतां नयेत्। १७८।

कुलजे वृत्तसम्पन्ने धर्मज्ञे सत्यवादिनि। महापक्षे धनिन्यार्य्ये निक्षेपन्निक्षिपेद्बुधः। १७९।

यो यथा निक्षिपेद्धस्ते यमर्थं यस्य मानवः। स तथैव ग्रहीतव्यो यथादायस्तथा ग्रहः। १८०।

यो निक्षेपं याच्यमानो निक्षेप्तुर्न प्रयच्छति। स याच्यः प्राड्विवाकेन तन्निक्षेप्तुरसन्निधौ। १८१।

साक्ष्यभावे प्रणिधिभिर्वयोरूपसमन्वितैः। अपदेशैश्च संन्यस्य हिरण्यन्तस्य तत्त्वतः। १८२।

स यदि प्रतिपद्येत यथान्यस्तं यथा कृतम्। न तत्र विद्यते किञ्चिद्यत्परैरभियुज्यते। १८३।

तेषान्न दद्याद्यदि तु तद्धिरण्यं यथाविधि। उभौ निगृह्य दाप्यः स्यादिति धर्म्मस्य धारणा। १८४।

निक्षेपोपनिधी नित्यं न देयौ प्रत्यनन्तरे। नश्यतो विनिपाते तावनिपाते त्वनाशिनौ। १८५।

करै। १७८। कुलीन साधु आचार युक्त धर्म जानने वाला सत्य बोलने वाला बहुत पुत्र पौत्र आदि से युक्त धनी ऐसा जो मनुष्य है उस के यहां निक्षेप को स्थापन करना। १७९। जो मनुष्य जिस मनुष्य के हाथ में जिस वस्तु को जिस प्रकार से स्थापन करै सो उस से उस वस्तु को उसी प्रकार से लेवै जैसा देना वैसा ही लेना। १८०। निक्षेप करने वाला अपनी वस्तु को जिस पुरुष के यहां निक्षेप किया है उस से मांगता है और वह देता नहीं तब निक्षेप करने वाले के असंनिधि में जिस के पास निक्षेप है उस से प्राड्विवाक पूछै। १८१। साक्षी के अभाव में अपदेश (अर्थात् राजोपद्रव आदि का बहाना के करने वाले) अपने जो सभ्य और चार हैं इन्हों को जो निक्षेप नहीं देता उस के यहां हिरण्य को रखाके। १८२। तदनन्तर निक्षेप करने वाला जिस के यहां निक्षेप किया है उस से अपने निक्षेप को मांगै जब वह देवै तो उस को सच्चा जानना उस से जो निक्षेप को मांगता है सो झूठा है। १८३। और जब सभ्य अथवा चार ने जो निक्षेप किया है उस को भी वह निक्षेप धारी न देवै तो उस से दोनों निक्षेप को राजा लेवै यह धर्म का निश्चय है। १८४। निक्षेप और उपनिधि इन दोनों को स्वामी के पुत्र आदि को न देवै किंतु जिस का निक्षेप है उसी को देवै। १८५। * * * * * *

कोई बस्तु का विक्षेप करके निक्षेप करने वाला मर गया अनंतर जिस के यहां निक्षेप है वह आप से उस निक्षेप को मरे हुए निक्षेप करने वाले के धन ग्रहण करने वाले को समर्पण किया फेर उस से निक्षेप करने वाले का पुत्र आदि और राजा ये दोनों दूसरी बस्तु को न मांगें (अर्थात् यह न कहें कि दूसरी भी बस्तु तुम्हारे यहां रक्खी है उस को दो ऐसा न कहें)। १८६। छल रहित साम उपाय से प्रीति पूर्वक जिस के यहां निक्षेप रक्खा गया है उस के आचरण को विचार कर निक्षेप किए हुए अर्थ को साधन करे। १८७। निक्षेप की विधि कहा और मुद्रित बस्तु को जैसा ले तैसा दे मोहर को तोड़ कर उस में से कुछ न लेवै तो कुछ दूषण नहीं पाता। १८८। निक्षेप किई हुई बस्तु चोर से हरी गई अथवा जल से बह गई अग्नि से भस्म हुई तो जिस के पास रक्खी है वह न देवै जब उस में से कुछ न लिए हो। १८९। निक्षेप का हरण करने वाला और निक्षेप रक्खे बिना निक्षेप को मांगने वाला इन दोनों को वेद में कथित जो शपथ और संपूर्ण उपाय उस करके सिद्धांत बस्तु को जानै। १९०। जो निक्षेप को नहीं देता और जो बिना रक्खे निक्षेप को मांगता है दोनों को चोर की नाईं दंड देना अथवा निक्षेप के समान दंड देना। १९१। निक्षेप और उपनिधि इन दोनों को जो नहीं देता है उस को निक्षेप उपनिधि के समान दंड देना। १९२। छल करके पर द्रव्य

स्वयमेव तु यो दद्यान्मृतस्य प्रत्यनन्तरे। न स राज्ञा नियोक्तव्यो न निक्षेप्तुश्च बन्धुभिः। १८६।
अच्छलेनैव चान्विच्छेत्तमर्थं प्रीतिपूर्वकम्। विचार्य्य तस्य वा वृत्तं साम्नैव परिसाधयेत्। १८७।
निक्षेपेष्वेषु सर्वेषु विधिः स्यात्परिसाधने। समुद्रेनाप्नुयात्किञ्चिद्यदि तस्मान्न संहरेत्। १८८।
चौरैर्हृतञ्जलेनोढमग्निनादग्धमेव वा। न दद्याद्यदि तस्मात्स न संहरति किञ्चन। १८९।
निक्षेपस्यापहर्तारमनिक्षेप्तारमेव च। सर्वैरुपायैरन्विच्छेच्छपथैश्चैव वैदिकैः। १९०। यो निक्षेपन्नार्पयति यश्चानिक्षिप्य याचते। तावुभौ चौरवच्छास्यौ दाप्यौ वा तत्समन्दमम्। १९१।
निक्षेपस्यापहर्तारन्तत्समं दापयेद्दमम्। तथोपनिधिहर्तारमविशेषेण पार्थिवः। १९२। उपधाभिश्च यः कश्चित्परद्रव्यं हरेन्नरः। स सहायः सहन्तव्यः प्रकाशं विविधैर्वधैः। १९३। निक्षेपो यः कृतो येन यावांश्च कुलसन्निधौ। तावानेव स विज्ञेयो विब्रुवन्दण्डमर्हति। १९४। मिथो दायः कृतो येन गृहीतो मिथ एव वा। मिथ एव प्रदातव्यो यथा दायस्तथा ग्रहः। १९५।
निक्षिप्तस्य धनस्यैवम्प्रीत्योपनिहितस्य च। राजा विनिर्णयङ्कुर्य्यादक्षिण्वन्न्यासधारिणम्। १९६।
विक्रीणीते परस्य स्वं योऽस्वामी स्वाम्यसंमतः। न तन्नयेत साक्ष्यन्तु स्तेनमस्तेनमानिनम्। १९७।
अवहार्य्यो भवेच्चैव सान्वयः षट् शतं दमम्। निरन्वयोऽनपसरः प्राप्तः स्याच्चौरकिल्विषम्। १९८।
अस्वामिना कृतो यस्तु दायो विक्रय एव वा। अकृतः स तु विज्ञेयो व्यवहारे यथा स्थितिः। १९९।
सम्भोगो दृश्यते यत्र न दृश्येतागमः क्वचित्। आगमः कारणन्तत्र न सम्भोग इति स्थितिः। २००।
विक्रयाद्यो धनं किञ्चिद्गृह्णीयात्कुलसन्निधौ। क्रयेण स विशुद्धं हि न्यायतो लभते धनम्। २०१।

को जो हरता है सहाय सहित उस को सब मनुष्यों के समीप नाना प्रकार के वध कर के मारै। १९३। कुल के सन्निधि में जितना निक्षेप किया उस में विरुद्ध बोलै तो उतना ही दंड पावै। १९४। जिसने साक्षी रहित दिया वह साक्षी रहित लेवै क्योंकि जैसा देना तैसा लेना। १९५। निक्षेप उपनिधि और प्रीति से दिई इन तीनों का निर्णय इस रीति से राजा करै जिस में निक्षेप रखने वाले को दुःख न होवै। १९६। जिस की द्रव्य है उस की सम्मति बिना द्रव्य को दूसरा बेंचै तो उस को साक्षी न करना वह अपने को चोर नहीं मानता परंतु चोर है। १९७। बेंचने वाला द्रव्य स्वामी का संबंधी हो तो छः सौ पण दंड देवै और संबंधी न हो तो चोर के पाप को पावै। १९८। अस्वामी ने जो दिया मोल लिया बेंचा सो सब सिद्ध नहीं होता व्यवहार की मर्यादा में। १९९। जिस वस्तु का संभोग देख पड़ता है और आगम (अर्थात् पत्र आदि) नहीं देख पड़ता उस में आगमै कारण संभोग नहीं यह शास्त्र की मर्य्यादा है। २००। व्यवहार करने वाले के समीप विक्रय देश से कोई बस्तु को किसी ने मोल लिया और मोल लेना सिद्ध हो तो न्याय से उस बस्तु को मोल लेने वाला पाता है। २०१। * * *

जिस से मोल लिया उस को देखाने नहीं सकता और सब के समीप मोल लेना सिद्ध करता है तो उस को राजा दंड न देवे और मोल लिई वस्तु को जिस की वस्तु नष्ट भई है वह स्वामी पावै जितने रुपैया से मोल लिई गई रही वस्तु उतना रुपैया मोल लेने वाले का गया । २०२ । कुंकुम आदि द्रव्य को कुसुंभ आदि द्रव्य से मिलाकर न बेंचना निकाम वस्तु को अच्छी कहके न बेंचना तौल में कम न देना समीप में देना रंग से अच्छा बनाकर न बेंचना । २०३ । और कन्या दिखा के और कन्या देवे तो विवाह करने वाला एक ही शुल्क (अर्थात् जिस वस्तु को देके कन्या लेते हैं) से दोनों कन्या का विवाह करै यह मनु जी ने कहा । २०४ । उन्मत्ता कुष्टिनी पुरुष संभोग दूषिता कन्या है उस के दोष को बिना कहे उस का विवाह कर देवै तो उस कन्या का दाता दंड के योग्य होता है । २०५ । यज्ञ में बरण लेके ऋत्विक् अपने कार्य्य को त्याग करै तो जितना कर्म किए है उस के योग्य अंश को साथ कर्म करने वालों के पावै । २०६ । संपूर्ण दक्षिणा लेके रोग आदि से अपने कर्म को त्याग करत संते संपूर्ण दक्षिणा को पावै और अपना कर्म दूसरे से करा देवै । २०७ । जिस कर्म में जिस अंग का जो दक्षिणा है उस को उस अंग के कर्म करने वाले पावैं अथवा सब ऋत्विक् मिल के बांट लेवैं । २०८ । अध्वर्यु रथ को ब्रह्मा घोड़ा को होता भी घोड़ा को

अथ मूलमनाहार्य्यं प्रकाशक्रयशोधितः । अदंड्यो मुच्यते राज्ञा नाष्टिको लभते धनम् । २०२ ।

नान्यदन्येन संसृष्ट रूपं विक्रयमर्हति । न चासारं न च न्यूनं न दूरेण तिरोहितम् । २०३ ।

अन्याञ्चेद्दर्शयित्वान्यां वोढुः कन्या प्रदीयते । उभे ते एक शुल्केन वहेदित्यब्रवीन्मनुः । २०४ ।

नोन्मत्तया न कुष्ठिन्या न च यास्पृष्टमैथुना । पूर्वं दोषानभिख्याप्य प्रदाता दण्डमर्हति । २०५ ।

ऋत्विग्यदि वृतो यज्ञे स्वकर्म परिहापयेत् । तस्य कर्मानुरूपेण देयोऽशस्सह कर्तृभिः । २०६ ।

दक्षिणासु च दत्तासु स्वकर्मपरिहापयन् । कृत्स्नमेव लभेतांशमन्येनैव च कारयेत् । २०७ ।

यस्मिन्कर्मणि यास्तु स्युरुक्ताः प्रत्यङ्गदक्षिणाः । स एव ता आददीत भजेरन्सर्व एव वा । २०८ ।

रथं हरेत चाध्वर्युर्ब्रह्माधाने च वाजिनम् । होता वापि हरेदश्वमुद्गाता वाप्यनः क्रये । २०९ ।

सर्वेषामर्द्धिनो मुख्यास्तदर्द्धेनार्द्धिनोऽपरे । तृतीयिनस्तृतीयांशाश्चतुर्थांशाश्च पादिनः । २१० ।

सम्भूय स्वानि कर्माणि कुर्वद्भिरिह मानवैः । अनेन विधियोगेन कर्तव्यांशप्रकल्पना । २११ ।

धर्मार्थं येन दत्तं स्यात्कस्मैचिद्याचते धनम् । पश्चाच्च न तथा तत्स्यान्न देयन्तस्य तद्भवेत् । २१२ ।

यदि संसाधयेत्तत्तु दर्पाल्लोभेन वा पुनः । राज्ञा दाप्यः सुवर्णं स्यात्तस्य स्तेयस्य निष्कृतिः । २१३ ।

दत्तस्यैषोदिता धर्म्या यथावदनपक्रिया । अत ऊर्द्ध्वम्प्रवक्ष्यामि वेतनस्याऽनपक्रियाम् । २१४ ।

भृतो नार्तो न कुर्य्याद्यो दर्पात्कर्म्म यथोदितम् । स दंड्यः कृष्णलान्यष्टौ न देयञ्चास्य वेतनम् । २१५ ।

उद्गाता गाड़ी को लेवै । २०९ । जिस यज्ञ का सौ गौ दक्षिणा है उस का विभाग लिखते हैं सोलह ऋत्विक् हैं तिस में चार मुख्य हैं होता अध्वर्यु ब्रह्मा उद्गाता ये चारो संपूर्ण दक्षिणा का आधा पावैं मैत्रावरुण प्रतिस्तोता ब्रह्माच्छंसी प्रस्तोता ये चारो मुख्य ऋत्विक् का आधा पावैं अच्छा वाक् नेष्टा अग्नीध्र प्रतिहर्ता ये चारो मुख्य ऋत्विक् का तृतीयांश पावैं ग्रावस्तुत उन्नेता पोता सुब्रह्मण्य ये चारो मुख्य ऋत्विक् का चतुर्थांश पावे इस स्थान में सब को यथोक्त दक्षिणा मिलै इस लिये सब का आधा यद्यपि पचास है तथापि अड़तालिसै लेना तब पूर्व कथित संख्या सिद्ध होगी । २१० । मिल के अपने कर्म को करने वाले मनुष्य इस रीति से अंश कल्पना करैं । २११ । धर्म के निमित्त किसी ने कोई मांगने वाले को कुछ दिया और वह लेके धर्म में द्रव्य को नहीं लगाता तो उस द्रव्य को उस से दाता फेर लेवै । २१२ । जब लोभ से वह न देवै अथवा दाता ने देने को कहिके नहीं देता और लेने वाला बल से लेके धर्म में नहीं लगाता तो राजा इन दोनों से एक सुवर्ण दंड लेवै उस चोरी के प्रायश्चित्त के लिये और उस द्रव्य को दाता पावै यह तो सिद्ध हुआ है दंड लेने ही से । २१३ । दिई वस्तु को फेर लेना इस की विधि कहा अब इस के अनंतर मजूर को मजूरी न देना इस की विधि कहैंगे । २१४ । व्याधि से रहित जो मनुष्य काम करने को स्वीकार किया और दर्प (अर्थात् अहंकार) से नहीं करता उस से आठ रत्ती सोना दंड राजा लेवै और मजूरी उस को न दिलावै । २१५ ।

काम करने वाला रोग से पीड़ित होके काम का त्याग करै और अच्छा होके फेर काम को करै तो बहुत दिन की भी मजूरी पावै। २१६। दुःखित हो अथवा स्वस्थ हो काम करने वाला जिस कर्म का स्वीकार करके उस कर्म को करता है और वह कर्म सिद्ध होने को थोड़ा रह गया है उस को न आप करै और न दूसरे से समाप्ति करावै तो उस को कुछ भी न देवै। २१७। मजूरी न देने की संपूर्ण विधि कहा इस के अनंतर कोई वस्तु करने की सलाह करके उस को नहीं करता उस के धर्म को कहैंगे। २१८। जो मनुष्य ग्राम देश संघ (अर्थात् समुदाय) इन्हों का सत्य करके संवित् (अर्थात् सलाह) को क्रिया और लोभ से फेर उस को नहीं करता उस को राज्य से निकाल देना। २१९। पकड़ के उस से चार सुवर्ण छ निष्क एक शतमान (अर्थात् तीन सौ बीस रत्ती रूपा) दंड लेवै अंश विकल्प जो है सो विषय (अर्थात् मामिला) का लाघव गौरव (अर्थात् छोटाई बड़ाई) की अपेक्षा करके एक एक को अथवा सब को लेना। २२०। धार्मिक पृथिवी पति ग्राम जाति समूह में समय व्यभिचारियों का (अर्थात् सलाह छोड़ने वालों का) यह दंड विधि को करै। २२१। कोई वस्तु को मोल लेके अथवा बेंच के पश्चात्ताप करै (अर्थात् अच्छा नहीं बेंचा अच्छा मोल नहीं लिया ऐसा कहै) तो दश दिन के भीतर फेर फार करै। २२२। दश दिन के ऊपर फेर फार नहीं होता और करै तो छ

आर्तस्तु कुर्य्यात्स्वस्थः सन् यथा भाषितमादितः। स दीर्घस्यापि कालस्य तल्लभेतैव वेतनम्। २१६।
यथोक्तमार्तः सुस्थोवा यस्तत्कर्म्म न कारयेत्। न तस्य वेतनं देयमल्पोनस्यापि कर्म्मणः २१७।
एष धर्म्मोऽखिलेनोक्तो वेतनादानकर्म्मणः। अत ऊर्द्धं प्रवक्ष्यामि धर्म्मं समयभेदिनाम्। २१८।
यो ग्रामदेशसंघानां कृत्वा सत्येन संविदम्। विसंवदेन्नरो लोभात्तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत्। २१९।
निगृह्य दापयेच्चैनं समयव्यभिचारिणम्। चतुस्सुवर्णं षन्निष्कांश्छतमानं च राजतम्। २२०।
एतद्दण्डविधिङ्कुर्य्याद्धार्म्मिकः पृथिवीपतिः। ग्रामजातिसमूहेषु समयव्यभिचारिणाम्। २२१।
क्रीत्वा विक्रीय वा किञ्चिद्यस्येहानुशयो भवेत्। सोन्तर्दशाहात्तद्द्रव्यन्दद्याच्चैवाददीत च। २२२।
परेण तु दशाहस्य न दद्यान्नापि दापयेत्। आददानो ददच्चैव राज्ञा दंड्यः शतानि षट्। २२३।
यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्याय प्रयच्छति। तस्य कुर्य्यान्नृपो दण्डं स्वयं षण्णवतिं पणान्। २२४।
अकन्येति तु यः कन्यां ब्रूयाद्द्वेषेण मानवः। स शतम्प्राप्नुयाद्दण्डं तस्यादोषमदर्शयन्। २२५।
पाणिग्रहणिका मन्त्राः कन्यास्वेव प्रतिष्ठिताः। नाकन्यासु क्वचिन्नृणां लुप्तधर्म्मक्रिया हिताः। २२६।
पाणिग्रहणिका मन्त्रा नियतन्दारलक्षणम्। तेषान्निष्ठा तु विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे। २२७।
यस्मिन् यस्मिन् कृते कार्य्ये यस्येहानुशयो भवेत्। तमनेन विधानेन धर्म्ये पथि निवेशयेत्। २२८।
पशुषु स्वामिनाञ्चैव पालानाञ्च व्यतिक्रमे। विवादं सम्प्रवक्ष्यामि यथावद्धर्म्मतत्वतः। २२९।
दिवा वक्तव्यता पाले रात्रौ स्वामिनि तद्गृहे। योगक्षेमेन्यथाचेत्तु पालोवक्तव्यतामियात्। २३०।

सौ पण दण्ड देवै। २२३। दोष युक्त कन्या का दोष बिना कहे उस का विवाह करै तो छानबे पण दंड देवै। २२४। शत्रुता से कन्या को अकन्या कहै (अर्थात् पुरुष संभोग दूषिता कहै) और उस बात को सिद्ध न करै तो सौ पण दंड देवै। २२५। विवाह करने की मंत्र कन्या ही को कहा है और जो अकन्या है उस का धर्म क्रिया तो लुप्त हो जाता है उस को विवाह की मंत्र नहीं है। २२६। नियम करके विवाह की मंत्र ही से दारा (अर्थात् पत्नी कहाती है) उस की सिद्धि सातवें पद में होती है विवाह में मंत्र से सात पद स्त्री पुरुष चलते हैं सातवें पद में वह कन्या उस पुरुष की पत्नी होती है। २२७। जो जो कार्य्य किए संते जिस को पश्चात्ताप हो उस को इस विधान से धर्म युक्त मार्ग में स्थापन करै। २२८। पशु स्वामी पाल इन्हों के विवाद को ज्यों का त्यों धर्म से कहैंगे। २२९। दिन में पाल के पास स्वामि समर्पित गौ की रक्षा न बनी तो पाल दोषी होता है रात्रि में स्वामी के गृह में पाल समर्पित गौ की रक्षा न बनी तो स्वामी दोषी होता है कदाचित् रात्रि में भी पाल के यहां गौ रही और उस की रक्षा न बनी तो पाल दोषी होता है। २३०। * * * * *

जिस पाल की मजूरी कुच्छ नहीं की गई है वह स्वामी की संमति से दश गौ चरावे तो एक अच्छी गौ का दूध लेवे । २३१ । जो गौ देख नहीं पड़ती है कीड़ा से खाई गई है कुत्ता से मारी गई विषम (अर्थात् टेढ़ी) भूमि में मर गई पाल से रहित होके मर गई उस को पाल देवे । २३२ । पुकार देके चोर ले गया तो उस को पाल न देवे जब उसी समय में स्वामी के पास जाकर कहे तब । २३३ । मरे पीछे गौ के अंग को स्वामी को देखावे और गौ का कांन चाम बाल बस्ति (अर्थात् नाभी के नीचे का भाग नस रोचना) इन सब को गौ के स्वामी को देवे । २३४ । बकरी भेड़ी इन को हुंड़ार ने घेरा और उस समय में पाल नहीं आया और हठते हुंड़ार ने बकरी भेड़ी को मारा तो पाल दोषी होता है । २३५ । पाल से रहित होकर बन में चरती बकरी भेड़ी को उछल के हुंड़ार ने मारा तब पाल दोषी नहीं होता । २३६ । गौं के चरने के लिये ग्राम के चारो ओर सौ धनुष तक (अर्थात् चार सौ हाथ तक) खेती न करना अथवा हाथ से लाठी फेंकना जहां जाके लाठी गिरे उतनी भूमि की तिगुनी भूमि तक खेती न करना और नगर के चारो ओर तो जो कहा है उस का तिगुना छोड़ना । २३७ । गवेई (अर्थात् घेरा) से रहित छूटी भूमि के समीप में जो धान्य है उस को पशु नाश करें तो पाल को दण्ड राजा न देवे । २३८ । घेरा ऐसा बनावे कि जिस को ऊंट न देख सकें

गोपः क्षीरभृतो यस्तु सदुह्याद्दशतोवराम् । गोस्वाम्यनुमते भृत्यः सास्यात्पालेऽभृते भृतिः । २३१ ।
नष्टं विनष्टं कृमिभिः श्वहतं विषमे मृतम् । हीनम्पुरुषकारेण प्रदद्यात्पाल एव तु । २३२ ।
विघुष्य तु हृतञ्चौरैर्न पालो दातुमर्हति । यदि देशे च काले च स्वामिनः स्वस्य शंसति । २३३ ।
कर्णौ चर्म्म च बालांश्च बस्तिं स्नायुञ्च रोचनाम् । पशुषु स्वामिनान्दद्यान्मृतेष्वङ्गानि दर्शयेत् । २३४ ।
अजाविके तु संरुद्धे वृकैः पालेत्वनायति । याम्प्रसह्य वृको हन्यात्पाले तत्किल्बिषम्भवेत् । २३५ ।
तासाञ्चेदवरुद्धानां चरन्तीनां मिथो वने । यामुत्प्लुत्य वृको हन्यान्न पालस्तत्र किल्बिषी । २३६ ।
धनुश्शतं परीहारो ग्रामस्य स्यात्समन्ततः । शम्यापातास्त्रयो वापि त्रिगुणो नगरस्य तु । २३७ ।
तत्रापरिवृतन्धान्यम्विहिंस्युः पशवो यदि । न तत्र प्रणयेद्दण्डन्नृपतिः पशुरक्षिणाम् । २३८ ।
वृतिन्तत्र प्रकुर्वीत यामुष्ट्रोनावलोकयेत् । छिद्रञ्च वारयेत्सर्वं श्वशूकरमुखानुगम् । २३९ ।
पथि क्षेत्रे परिवृत्ते ग्रामांतीयेऽथवा पुनः । स पालः शतदण्डार्हो विपालान् वारयेत्पशून् । २४० ।
क्षेत्रेष्वन्येषु तु पशुः सपादम्पणमर्हति । सर्वत्र तु सदोदेयः क्षेत्रिकस्येति धारणा । २४१ ।
अनिर्दशाहाङ्गां सूतां वृषान्देवपशूंस्तथा । सपालान्वा विपालान्वा न दंड्यान्मनुरब्रवीत् । २४२ ।
क्षेत्रिकस्यात्यये दण्डो भागाद्दशगुणो भवेत् । ततोऽर्द्धदण्डो भृत्यानामज्ञानात्क्षेत्रियस्य तु । २४३ ।
एतद्विधानमातिष्ठेद्धार्म्मिकः पृथिवीपतिः । स्वामिनाञ्च पशूनाञ्च पालानाञ्च व्यतिक्रमे । २४४ ।
सीमाम्प्रति समुत्पन्ने विवादे ग्रामयोर्द्वयोः । ज्यैष्ठे मासि नयेत्सीमां सुप्रकाशेषु सेतुषु । २४५ ।

छिद्र को वारण करे जिस में कुत्ता सूअर का मुख धान्य में न जासके । २३९ । मार्ग के समीप का अथवा ग्राम के समीप का खेत घेरा से रहित हो और उस में की धान्य को पशु ने नाश किया हो तो पाल सौ पण दंड देवै और पाल से रहित पशु होवे तो उस को अपने खेत से निकाल देवे । २४० । मार्ग और ग्राम इन्हें का समीप छोड़ के दूसरे खेत में सस्य का नाश पशु करे तो सौ पण दंड पशु पाल देवे और अपराध के अनुसार से पशु स्वामी अथवा पशु पाल क्षेत्र का फल क्षेत्र स्वामी को देवे यह निश्चय है । २४१ । पाल सहित हो अथवा पाल रहित हो बिआई गौ बिआने से दश दिन के भीतर सस्य का नाश करे और सांड़ सस्य का नाश करे तो दंड योग्य नहीं है यह मनु जी ने कहा । २४२ । अधिआ के खेत की सस्य को खेती करने वाले के पशु ने भक्षण किया अथवा सस्य बोने के समय में न बोया हो तो जितनी राज भाग की हानि भई हो उस का दश गुना दंड देवै और खेती करने वाले को अज्ञान से उस के भृत्यों ने पूर्व कथित नाश किये हो तो पांच गुना भृत्य देवे । २४३ । स्वामी पाल पशु इन्हें के विवाद में इस प्रकार की विधि को धार्मिक राजा करे । २४४ । दो ग्राम के सीमा विवाद का निर्णय को ज्येष्ठ मास में प्रकटित सीमा चिह्न भये संते करे । २४५ । * * * * * * *

वट पीपर पलाश सेमर शाल ताल दूध वाले वृक्ष इन सब में से कोई एक को सीमा के मध्य में लगाना चाहिये । २४६ । गुल्म (अर्थात् प्रकाण्ड रहित) बहुत कांटा वाला और थोड़ा कांटा वाला जो बांस और शमी लता ऊंची भूमि सरहरी कुलुक गुल्म (अर्थात् प्रकाण्ड रहित टेढ़ा वृक्ष) इन सबों में से कोई एक को सीमा के मध्य में लगाना इस से सीमा नष्ट नहीं होता । २४७ । तड़ाग कूंआं बाउली झरना देव स्थान इन सबों में से कोई एक को सीमा की संधि में करना । २४८ । सीमा के ज्ञान में मनुष्यों को उलट पलट देख के और भी ढंपे हुए चिह्न को करना । २४९ । पत्थल हाड़ गौ का बाल भूसा राखी ठिकरा करसी ईंट कोइला खपरा बालू । २५० । जिस को बहुत दिन में भूमि भक्षण न करै ऐसी जो बस्तु है उन सब को सीमा के भीतर रखना यह अप्रकाश चिह्न है । २५१ । ये सब चिह्न और पूर्व का भोग जल का आगम इन्हीं करके सीमा का निर्णय राजा करै । २५२ । चिह्न के देखने में जब संदेह हो तो साक्षियों के वचन से सीमा विवाद का निर्णय करै । २५३ । ग्राम के मनुष्य और वादी प्रतिवादी इन्हीं के समीप में साक्षियों से सीमा का चिह्न पूछना । २५४ । वे सब एक मत होके सीमा का निश्चय जैसा कहैं तैसा सीमा को बांधै और उन सब साक्षियों का नाम भी पत्र में लिखै । २५५ । वे सब साक्षी पुष्प की माला और लाल वस्त्र

सीमावृक्षांस्तु कुर्वीत न्यग्रोधाश्वत्थकिंशुकान् । शाल्मली सालतालांश्च क्षीरिणश्चैव पादपान् । २४६ ।
गुल्मान्वेणूंश्च विविधान् शमी वल्ली स्थलानि च । शरान्कुब्जकगुल्मांश्च तथा सीमा न नश्यति । २४७ ।
तडागान्युदपानानि वाप्यः प्रस्रवणानि च । सीमा सन्धिषु कार्य्याणि देवतायतनानि च । २४८ ।
उपच्छन्नानि चान्यानि सीमालिङ्गानि कारयेत् । सीमाज्ञाने नृणां वीक्ष्य नित्यं लोके विपर्ययम । २४९ ।
अश्मनोस्थीनि गोवालांस्तुषान्भस्मकपालिकाः । करीषमिष्टकाङ्गारांच्छर्करा वालुकास्तथा । २५० ।
यानि चैवम्प्रकाराणि कालाद्भूमिर्नभक्षयेत् । तानि संधिषु सीमायामप्रकाशानि कारयेत् । २५१ ।
एतैर्लिङ्गैर्नयेत्सीमां राजा विवदमानयोः । पूर्वभुक्त्या च सततमुदकस्यागमेन च । २५२ ।
यदि संशय एव स्याल्लिङ्गानामपि दर्शने । साक्षिप्रत्यय एव स्यात्सीमावादविनिर्णयः । २५३ ।
ग्रामीयककुलानाञ्च समक्षं सीम्नि साक्षिणः । प्रष्टव्याः सीमलिङ्गानि तयोश्चैव विवादिनोः । २५४ ।
ते पृष्टास्तु यथा ब्रूयुः समस्ताः सीम्नि निश्चयम् । निबध्नीयात्तथा सीमां समस्तांश्चैव नामतः । २५५ ।
शिरोभिस्ते गृहीत्वोर्वीं स्रग्विणो रक्तवाससः । सुकृतैः शापिताः स्वैः स्वैर्न्नयेयुस्ते समञ्जसम् । २५६ ।
यथोक्तेन नयन्तस्ते पूयन्ते सत्यसाक्षिणः । विपरीतन्नयन्तस्तु दाप्याः स्युर्द्विशतं दमम् । २५७ ।
साक्ष्यभावे तु चत्वारो ग्रामाः सामन्तवासिनः । सीमाविनिर्णयङ्कुर्य्युः प्रयता राजसन्निधौ । २५८ ।
सामन्तानामभावे तु मौलानां सीम्नि साक्षिणाम् । इमानप्यनुयुञ्जीत पुरुषान्वनगोचरान् । २५९ ।
व्याधाञ्छाकुनिकान् गोपान् कैवर्तान्मूलखानकान् । व्यालग्राहानुञ्छवृत्तीनन्यांश्च वनचारिणः । २६० ।

पहिरे हुए माथे पर माटी का ढेला रख कर अपने अपने सुकृत से शाप को पाए हुए (अर्थात् झूठ चिह्न देखाओगे तो तुम्हारा सुकृत नष्ट होगा ऐसी वचन निर्णय करने वाले की सुने हुए) ज्यों का त्यों सीमा का निर्णय करैं । २५६ । ज्यों का त्यों निर्णय करैं तो सत्य से पवित्र होते हैं और विपरीत (अर्थात् उलट पलट) सीमा निर्णय करैं तो एक एक को दो सौ पण दंड देवै । २५७ । साक्षी भी न मिलै तो सामंत (अर्थात् चारो ओर ग्राम के वासी) चार यत्न पूर्वक राजा के समीप में सीमा का निर्णय करैं । २५८ । सामंत भी न मिलै तो मौल (अर्थात् ग्राम के निर्माण काल से लेके पुरुष क्रम करके उसी ग्राम के वासी जन) उन से निर्णय करना ये भी न मिलैं (अर्थात् निर्णय न कर सकैं) तो बन वासियों को आज्ञा देना निर्णय के लिये । २५९ । गर्भ हत्या करने वाला व्यभिचारिणी (अर्थात् छिनाल) स्त्री शिष्य और यज्ञ करने वाला ये दोनों और चोर ये सब अपने पाप को क्रम से भोजन देने वाला पकड़ने वाला व्याधा पक्षी पकड़ने वाले गौ चराने वाले मछली से जीने वाले मूल खनने वाले (अर्थात् कंद मूल खन के बेंचने वाले) सर्प के पकड़ने वाले उंछ से जीने वाले बन वासी ये सब अपने प्रयोजन के लिये उस ग्राम से सर्व काल में बन को जाते हुए उस ग्राम के सीमा को जानने वाले होते हैं । २६० । * * * *

ये सब पूछने से जैसा चिह्न को कहैं तैसी दोनों ग्राम की धर्म से सीमा राजा स्थापन करै । २६१ । खेत कूप तड़ाग बगीचा गृह इन सबों का सीमा निर्णय सामंत के वचन से जानना । १६२ । सामंत झूठ बोलें तो एक एक को मध्यम साहस दंड राजा देवै । २६३ । गृह तड़ाग बगीचा खेत इन सब को डेरवा के हरण करत संते पांच सौ पण दंड देवै । २६४ । चिह्न और साक्षी आदि पूर्व कथित के अभाव में धर्म जानने वाला राजा उपकार से एक को देवै (अर्थात् उस भूमि के पाने से जिस का बहुत उपकार होता हो उसी को देवै) यह शास्त्र की मर्यादा है। २६५ । यह संपूर्ण सीमा निर्णय कहा इस के अनंतर वाक्पारुष्य का निर्णय कहैंगे । २६६ । ब्राह्मण को चोर ऐसी कठोर वचन कहके क्षत्रिय सौ पण दंड देने के योग्य होता है वैश्य डेढ़ सौ पण अथवा दो सौ पण दंड देवै और शूद्र ऐसा कर्म करै तो वध के योग्य होता है । २६७ । क्षत्रिय को पूर्व कथित वचन ब्राह्मण कहै तो पचास पण दंड देवै वैश्य को कहै तो पचीस पण दंड देवै शूद्र को कहै तो बारह पण दंड देवै । २६८ । समान वर्ण में पूर्व कथित आक्रोश (अर्थात् ऊंच स्वर से बोलना) करने से बारह पण दंड होता है और कहने के योग्य जो वचन नहीं हैं उस के कहने से चौबीस पण दंड होता है । २६९ । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य को कठोर वाणी से आक्षेप करत संते शूद्र जिह्वा छेदन

ते पृष्टास्तु यथा ब्रूयुः सीमासंधिषु लक्षणम् । तत्तथा स्थापयेद्राजा धर्म्मेण ग्रामयोर्द्वयोः । २६१ । क्षेत्रकूपतडागानामारामस्य गृहस्य च । सामन्तप्रत्ययो ज्ञेयः सीमा सेतुविनिर्णयः । २६२ । सामंता श्चेन्मृषा ब्रूयुः सेतौ विवदतां नृणाम् । सर्वे पृथक् पृथक् दंड्या राज्ञा मध्यमसाहसम् । २६३ । गृहन्तड़ागमारामं क्षेत्रं वा भीषया हरन् । शतानि पञ्च दंड्यः स्यादज्ञानाद्द्विशतो दमः । २६४ । सीमायामविषह्यायां स्वयं राजैव धर्मवित् । प्रदिशेद्भूमिमेकेषामुपकारादिति स्थितिः । २६५ । एषोऽखिलेनाभिहितो धर्मः सीमाविनिर्णये । अत ऊर्द्ध्वम्प्रवक्ष्यामि वाक्पारुष्यविनिर्णयम् । २६६ । शतम्ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति । वैश्योप्यर्द्धशतं द्वे वा शूद्रस्तु वधमर्हति । २६७ । पञ्चाशद्ब्राह्मणो दंड्यः क्षत्रियस्याभिशंसने । वैश्ये स्यादर्द्ध पञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः । २६८ । समवर्णे द्विजातीनां द्वादशैव व्यतिक्रमे । वादेष्ववचनीयेषु तदेव द्विगुणम्भवेत् । २६९ । एकजातिर्द्विजातींस्तु वाचा दारुणया क्षिपन् । जिह्वायाः प्राप्नुयाच्छेदञ्जघन्यप्रभवो हि सः । २७० । नामजातिग्रहन्त्वेषामभिद्रोहेण कुर्वतः । निःक्षेप्योऽयोमयः शङ्कुर्ज्वलन्नास्ये दशाङ्गुलः । २७१ । धर्मोपदेशन्दर्पेण विप्राणामस्यकुर्वतः । तप्तमासेचयेत्तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः । २७२ । श्रुतन्देशञ्च जातिञ्च कर्मशारीरमेव च । वितथेन ब्रुवन्दर्पाद्दाप्यः स्याद्द्विशतन्दमम् । २७३ । काणम्वाप्यथवा खञ्जमन्यं वापि तथाविधम् । तथ्येनापि ब्रुवन्दाप्यो दण्डं कार्षापणाऽवरम् । २७४ । मातरम्पितरञ्जायाम्भ्रातरन्तनयङ्गुरुम् । आक्षारयञ्छतन्दाप्यः पन्थानञ्चाददद्गुरोः । २७५ । ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यान्तु दण्डः कार्य्यो विजानता । ब्राह्मणे साहसः पूर्वः क्षत्रिये त्वेव मध्यमः । २७६ ।

पाता है क्योंकि निकृष्ट अंग जो पाद है उस से उत्पन्न है । २७० । ब्राह्मण आदि को रे तू फलाने ब्राह्मण से नीच ऐसा ऊंच स्वर करके नाम और जाति का ग्रहण करै शूद्र तो उस के मुख में बारह अंगुल प्रमाण जलता हुआ लोहे का शंकु डालना । २७१ । ब्राह्मणों को गर्व से धर्म का उपदेश करने वाला जो शूद्र उस के मुख में और कान में तपा हुआ तेल को राजा डालै । २७२ । समान जाति में दंड कहते हैं तुम्हारा यह सुना नहीं है तुम इस देश में उत्पन्न नहीं हो तुम्हारी यह जाति नहीं है तुम्हारा शरीर संस्कार (अर्थात् यज्ञोपवीत आदि) नहीं हुआ है ऐसा अहंकार से कहत संते दो सौ पण दंड देवै । २७३ । कांणा और पंगु इन्हीं को सत्य से भी कांणा पंगु न कहना कदाचित् कहै तो एक कार्षापण दंड देवै । २७४ । माता पिता स्त्री भाई पुत्र गुरु इन को पातक आदि से शाप देवै (अर्थात् पातकी हो ऐसा कहै और गुरु को राह न देवै) तो सौ पण दंड देवै । २७५ । ब्राह्मण को क्षत्रिय अथवा क्षत्रिय को ब्राह्मण पतन योग्य वाणी ऊंच स्वर से कहै तो ब्राह्मण पूर्व साहस दंड को देवै क्षत्रिय मध्यम साहस दंड देवै । २७६ । * * * * *

इसी रीति से वैश्य शूद्र में भी अपनी जाति में जिह्वा छेद रहित दंड जानना यह शास्त्र का निश्चय है । २७७ । वाक्पारुष्य की दंड विधि यह कहा इस के अनंतर दंडपारुष्य की विधि कहैंगे । २७८ । अंत्यज (अर्थात् चाण्डाल) जिस किसी अंग से बड़े लोगों के अंग पर प्रहार करै उस अंग को काट डालना यही मनु जी की आज्ञा है । २७९ । हस्त के उद्यम से मारे तो हस्त काटना पाद के उद्यम से मारे तो पाद काटना । २८० । छोटा मनुष्य बड़े मनुष्य के साथ एक आसन पर बैठै तो उस के कटि में चिह्न करके निकाल देवै अथवा जिस में मरै न ऐसी रीति से चूतर उस का काट देवै । २८१ । दर्प से देह पर थूकै मूतै विष्ठा करै तो क्रम से दोनों ओंठ लिंग मार्ग इन्हों का छेदन करै । २८२ । ब्राह्मण का केश पाद दाढ़ी ग्रीवा वृषण (अर्थात् अण्ड) इस को अहंकार से ग्रहण करने वाला जो शूद्र है उस का हाथ काटना यह विचार न करना कि इस को पीड़ा होगी । २८३ । त्वचा भेद करने वाला रक्त निकालने वाला ये दोनों सौ पण दंड को पावैं मांस भेद करने वाला हाड़ भेद करने वाला क्रम से छ निष्क देश निर्वासन इस दंड को पावै यह दंड समान जाति में जानना । २८४ । संपूर्ण वृक्षों का जैसा जैसा उपभोग

विट्शूद्रयोरेवमेव स्वजातिम्प्रति तत्वतः । छेदवर्जम्प्रणयनन्दण्डस्येति विनिश्चयः । २७७ ।
एष दण्डविधिः प्रोक्तो वाक्पारुष्यस्य तत्त्वतः । अत ऊर्द्ध्वम्प्रवक्ष्यामि दण्डपारुष्यनिर्णयम् । २७८ ।
येन केनचिदङ्गेन हिंस्याच्चेच्छ्रेष्ठमन्त्यजः । छेत्तव्यन्तत्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम् । २७९ ।
पाणिमुद्यम्य दण्डम्वा पाणिच्छेदनमर्हति । पादेन प्रहरन्कोपात्पादच्छेदनमर्हति । २८० ।
सहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः । कट्यां कृताङ्को निर्वास्यः स्फिचं वास्यावकर्त्तयेत् । २८१ ।
अवनिष्ठीवतो दर्प्पाद्द्वावोष्ठौ छेदयेन्नृपः । अवमूत्रयतो मेढ्रमवशर्द्धयतो गुदम् । २८२ ।
केशेषु गृह्णतो हस्तौ छेदयेदविचारयन् । पादयोर्दाढिकायाञ्च ग्रीवायां वृषणेषु च । २८३ ।
त्वग्भेदकः शतन्दंड्यो लोहितस्य च दर्शकः । मांसभेत्ता तु षण्णिष्कान्प्रवास्यस्त्वस्थिभेदकः । २८४ ।
वनस्पतीनां सर्व्वेषामुपभोगो यथा यथा । तथा तथा दमः कार्य्यो हिंसायामिति धारणा । २८५ ।
मनुष्याणाम्पशूनाञ्च दुःखाय प्रहृते सति । यथा यथा महद्दुःखन्दण्डं कुर्यात्तथा तथा । २८६ ।
अङ्गावपीड़नायाञ्च व्रणशोणितयोस्तथा । समुत्थानव्ययन्दाप्यः सर्वदण्डमथापि वा । २८७ ।
द्रव्याणि हिंस्याद्यो यस्य ज्ञानतोऽज्ञानतोपि वा । स तस्योत्पादयेत्तुष्टिं राज्ञो दद्याच्च तत्समम् । २८८ ।
चर्म्म चार्म्मिकभाण्डेषु काष्ठलोष्ठमयेषु च । मूल्यात्पञ्च गुणो दंडः पुष्पमूलफलेषु च । २८९ ।
यानस्य चैव यातुश्च यानस्वामिन एव च । दशातिवर्त्तनान्याहुः शेषे दंडो विधीयते । २९० ।
छिन्ननास्ये भग्नयुगे तिर्यक् प्रतिमुखागते । अक्षभङ्गे च यानस्य चक्रभङ्गे तथैव च । २९१ ।
छेदने चैव यन्त्राणां योक्त्ररश्म्योस्तथैव च । आक्रंदे चाप्यपैहीति न दंडं मनुरब्रवीत् । २९२ ।

करै तैसा तैसा दंड पावै मारने में तैसा ही जानना यह शास्त्र का निश्चय है । २८५ । मनुष्य और पशु इन्हों को जैसा जैसा दुःख देवै तैसा तैसा दंड पावै । २८६ । हाथ पांव आदि में व्रण (अर्थात् छिद्र) रक्त से पीड़ा भये संते पीड़ा करने वाला जितने दिन में अच्छा न हो उतने दिन का औषध और पथ्य में व्यय (अर्थात् खर्च) भया है उस को देवै कदाचित् देने की इच्छा न करै तो व्यय और दंड दोनों देवै । २८७ । जान के अथवा बिना जाने जो मनुष्य जिस की द्रव्य को नाश करै सो उस को संतुष्ट करै और उस द्रव्य के समान राजा को दंड देवै । २८८ । चर्म चर्म का पात्र काष्ठ लोष्ठ (अर्थात् माटी) का पात्र पुष्प मूल फल इन्हों का नाश करने वाला मूल से पांच गुना दंड देवै । २८९ । सवारी सवार सवारी का स्वामी इन सब को दश स्थान में दंड न देना और स्थान में दंड देना । २९० । बैल के नाथ की रस्सी १ और जूआ २ टूट गया हो भूमि की विषमता से रथ आदि टेढ़ी ३ और सन्मुख आई हो ४ अक्ष ५ (अर्थात् चक्र के भीतर का काष्ठ) और चक्र ६ टूट गया हो । २९१ । चर्म बंधन ७ पशु के ग्रीवा की रस्सी ८ कोड़ा ९ ये सब टूट गए हों और ऊंच स्वर करके हट जाओ ऐसा सारथी ने पुकारा हो १० तो रथी सारथी रथ स्वामी इन में किसी को दंड न देना । २९२ ।　*　*　*

जहां सारथी के दोष से रथ को जैसा चलना चाहिए तैसा नहीं चलता है और उस चाल से कोई मर गया हो तहां अशिक्षित सारथी के रथ पर राखने से रथ स्वामी दो सौ पण दंड देवै। २९३। सारथी रथ हांकने में निपुण हो और रथ से कोई मर गया हो तो दो सौ पण दंड सारथी देवै सारथी निपुण न हो और रथ से कोई मर गया हो तो अशिक्षित सारथी के रथ पर राखने से रथ स्वामी सारथी और चढ़े हुए मनुष्य ये सब सौ सौ पण दंड देवैं। २९४। सारथी के सन्मुख दूसरी रथ आई अथवा बहुत गौ आदि पशु सन्मुख आए और इन्हों से रथ रोकी गई और चित्त के अनवधानता से अपनी रथ को पीछे ले जाने में समर्थ नहीं है और घोड़े को कोड़ा मार के आगे ले जाता है इस में कोई मर गया तो विचार न करना सारथी को दंड देना। २९५। मनुष्य के मारण में शीघ्र चोर की नाई पापी होता है (अर्थात् उत्तम साहस दंड के योग्य होता है) गौ हाथी ऊंट घोड़ा आदि जो बड़े जीव हैं इन्हों के मारने में मध्यम साहस दंड देवै। २९६। छोटे पशु के मारने में दो सौ पण दंड देवै शुभ जो मृग पक्षी हैं इन्हों के मारने में पचास पण दंड देवै। २९७। गदहा बकरी भेड़ इन के मारने में एक मासा रूपा देवै। २९८। भार्या पुत्र दास शिष्य सहोदर भाई इन्हों से अपराध भया हो तो रस्सी से और बांस के फलठा से इन्हों का ताड़न

यत्रापवर्त्तते चक्रं वैगुण्यात्प्राजकस्य तु। तत्र स्वामी भवेद्दंड्यो हिंसायां द्विशतन्दमम्। २९३।
प्राजकश्चेद्भवेदाप्तः प्राजको दण्डमर्हति। युग्यस्थाः प्राजकेऽनाप्ते सर्वे दंड्याः शतं शतम्। २९४।
स चेत्तु पथिसंरुद्धः पशुभिर्वा रथेन वा। प्रमापयेत्प्राणभृतस्तत्र दण्डोऽविचारितः। २९५।
मनुष्यमारणे क्षिप्रं चौरवत्किल्विषं भवेत्। प्राणभृत्सु महत्स्वर्द्धं गोगजोष्ट्रहयादिषु। २९६।
क्षुद्रकाणाम्पशूनान्तु हिंसायां द्विशतो दमः। पञ्चाशत्तु भवेद्दण्डः शुभेषु मृगपक्षिषु। २९७।
गर्दभाजाविकानान्तु दण्डः स्यात्पञ्च माषिकः। माषकस्तु भवेद्दण्डः श्वशूकरनिपातने। २९८।
भार्या पुत्रश्च दासश्च शिष्यो भ्राता च सोदरः। प्राप्तापराधास्ताड्याः स्यू रज्ज्वा वेणुदलेन वा। २९९।
पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमाङ्गे कथञ्चन। अतोन्यथा तु प्रहरन् प्राप्तः स्याच्चौरकिल्विषम्। ३००।
एषोऽखिलेनाभिहितो दण्डपारुष्यनिर्णयः। स्तेनस्यातः प्रवक्ष्यामि विधिन्दंडविनिर्णये। ३०१।
परमं यत्नमातिष्ठेत्स्तेनानां निग्रहे नृपः। स्तेनानां निग्रहादस्य यशो राष्ट्रञ्च वर्द्धते। ३०२।
अभयस्य हि योदाता स पूज्यः सततन्नृपः। सत्रं हि वर्द्धते तस्य सदैवाभयदक्षिणम्। ३०३।
सर्वतो धर्मषड्भागो राज्ञो भवति रक्षतः। अधर्मादपि षड्भागो भवत्यस्य ह्यरक्षतः। ३०४।
यदधीते यद्यजते यद्ददाति यदर्चति। तस्य षड्भागभाग्राजा सम्यग्भवति रक्षणात्। ३०५।
रक्षन्धर्मेण भूतानि राजा वध्यांश्च घातयन्। यजतेऽहरहर्यज्ञैः सहस्रशतदक्षिणैः। ३०६।
योऽरक्षन्बलिमादत्ते करं शुल्कं च पार्थिवः। प्रतिभागं च दण्डञ्च स सद्यो नरकं व्रजेत्। ३०७।
अरक्षितारं राजानं बलिषड्भागहारिणम्। तमाहुः सर्वलोकस्य समग्रमलहारकम्। ३०८।

करना। २९९। मस्तक छोड़ के पीठ में मारना इस से विपरीत ताड़न करै तो चोर के पाप को पावै (अर्थात् वाग दंड धन दंड को पावै)। ३००। यह संपूर्ण दण्ड पारुष्य का निर्णय कहा इस के अनंतर चोर के दंड विधि का निर्णय कहैंगे। ३०१। चोरों के निग्रह में (अर्थात् दंड देने में) परम यत्न को करै इस से इस राजा का यश और राज्य बढ़ता है। ३०२। अभय का देने वाला राजा सर्व काल में पूजित होता है और सर्व काल में उस राजा की अभय दक्षिणा वाली यज्ञ बढ़ती है। ३०३। चारों ओर से प्रजों की रक्षा करने से धर्म का छठां भाग को राजा पाता है और रक्षा न करने से उन्हों के अधर्म का छठां भाग को पाता है। ३०४। प्रजों के रक्षण से प्रजों का किया जो पाठ याग दान पूजा उस का छठां भाग को पाता है। ३०५। सब जीवों की धर्म से रक्षा करत संते और वध के योग्य को वध करत संते लक्ष दक्षिणा वाली याग को प्रतिदिन वह राजा करता है। ३०६। प्रजों की रक्षा बिना किए हुए प्रजों से भेंट कर शुल्क (अर्थात् महसूल) जो लेता है सो राजा झट पट नरक में जाता है। ३०७। जो राजा प्रजों की रक्षा नहीं करता और प्रजों से अपने भागको ग्रहण करता है सो संपूर्ण मल को हरण करता है। ३०८।

र्यादा को छोड़ने वाला नास्तिक (अर्थात् परलोक को न मानने वाला) लूटने वाला रक्षा को न करने वाला अपना भाग लेने
ाला जो राजा है वह नरक में जाता है । ३०९ । रोकना बांधना नाना प्रकार का वध करना इन तीनों कर्म से यत्न पूर्वक
धार्मिक पुरुषों का नियह करै । ३१० । पापियों के नियह से साधुओं के संरक्षण से यज्ञ करने से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य की नाईं
निरंतर पवित्र राजा होता है । ३११ । अपना हित करने वाला राजा दुःख करके निषिद्ध भाषण करते अर्थी प्रत्यर्थी बाल वृद्ध
ातुर इन्हों के वाक्य को सहन करै । ३१२ । दुःखित मनुष्य से निषिद्ध भाषण को पाके जो क्षमा करता है सो स्वर्ग में पूजित
ाता है और जो ऐश्वर्य से क्षमा नहीं करता सो नरक में जाता है । ३१३ । ब्राह्मण का दश मासा आदि सोना चोराने वाला
ाप से शिखा को खोले हुए दौड़ करके राजा के समीप जाकर मूसल खैर की लाठी दोनों ओर की तीखी बरछी लोह दंड इन्हों
 से कोई एक को कांधे पर रख के कहै कि ऐसा काम करने वाला मैं हूं मेरा दंड करिए । ३१४ । ३१५ । राजा उस को दंड
वै अथवा छोड़ देवै तो चोरी के पाप से वह छूट जावै कदाचित् स्नेह से उस को दंड न देवै तो चोर के पाप को पावै । ३१६ ।
र्भ हत्या करने वाला व्यभिचारिणी (अर्थात् छिनाल) स्त्री शिष्य और यज्ञ करने वाला ये दोनों और चोर ये सब अपने पाप

अनपेक्षितमर्यादं नास्तिकं विप्रलुंपकम् । अरक्षितारमत्तारं नृपं विद्यादधोगतिम् । ३०९ ।
अधार्मिकं त्रिभिर्न्यायैर्निगृह्णीयात्प्रयत्नतः । निरोधनेन बंधेन विविधेन वधेन च । ३१० ।
निग्रहेण हि पापानां साधूनां संग्रहेण च । द्विजातय इवेज्याभिः पूयंते सततं नृपाः । ३११ ।
क्षन्तव्यं प्रभुणा नित्यं क्षिपतां कार्यिणां नृणाम् । बालवृद्धातुराणां च कुर्वता हितमात्मनः । ३१२ ।
यः क्षिप्तो मर्षयत्यार्तैस्तेन स्वर्गे महीयते । यस्त्वैश्वर्य्यान्न क्षमते नरकं तेन गच्छति । ३१३ ।
राजा स्तेनेन गंतव्यो मुक्तकेशेन धावता । आचक्षाणेन तत्स्तेयमेवं कर्मास्मि शाधि माम् । ३१४ ।
स्कंधेनादाय मुसलं लगुडं वापि खादिरम् । शक्तिञ्चोभयतस्तीक्ष्णामायसं दण्डमेव वा । ३१५ ।
शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते । अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याप्नोति किल्बिषम् ।
३१६ । अन्नादे भ्रूणहा मार्ष्टि पत्यौ भार्यापचारिणी । गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि
किल्बिषम् । ३१७ । राजनिर्धूतदण्डस्तु कृत्वा पापानि मानवाः । निर्म्मलाः स्वर्गमायांति सन्तः
सुकृतिनो यथा । ३१८ । यस्तु रज्जुं घटं कूपाद्धरेद्भिंद्याच्च यः प्रपाम् । स दण्डम्प्राप्नुयान्माषं तच्च
तस्मिन्समाहरेत् । ३१९ । धान्यन्दशभ्यः कुम्भेभ्यो हरतोऽभ्यधिकम्वधः । शेषे प्येकादशगुणं दाप्यस्तस्य
च तद्धनम् । ३२० । तथाधरिममेयानां शतादभ्यधिके वधः । सुवर्णरजतादीनामुत्तमानाञ्च वाससाम् ।
३२१ । पञ्चाशतस्त्वभ्यधिके हस्तच्छेदनमिष्यते । शेषे त्वेकादशगुणम्मूल्याद्दण्डम्प्रकल्पयेत् । ३२२ ।
पुरुषाणाङ्कुलीनानां नारीणाञ्चविशेषतः । मुख्यानाञ्चैव रत्नानां हरणे वधमर्हति । ३२३ ।

 क्रम से भोजन देने वाला पति गुरु राजा इन्हों में धोते हैं । ३१७ । जैसे पुण्य करने वाले स्वर्ग में जाते हैं तैसे पाप करने
ले राजा से दंड पाके निर्मल हुए स्वर्ग में जाते हैं । ३१८ । कूआं पर से रस्सी और घड़ा को चोराने वाला पवसरा को भेद
ने वाला एक मासा सोना दंड देवै और घड़ा रस्सी को उसी कूआं पर रख देवै । ३१९ । दो सौ गंडा पैसा भर को द्रोण कहते
बीस द्रोण का कुंभ कहाता है दश कुंभ से अधिक धान्य को चोरावै तो उस का वध करना सो चोर और द्रव्य स्वामी इन्हों
 गुण विचार के ताड़न अङ्गछेदन मारण इन्हों को करना इस्से कम होवे तो चोराई गई वस्तु का ग्यारह गुना दंड देना जैसे
 मन चोरावै तो ग्यारह मन देवै और चोराई गई वस्तु को स्वामी पावै (अर्थात् जिस की चोरी भई है सो पावै) । ३२० ।
ना रूपा पट्ट वस्त्र इन सबों के सौ गंडा भर के ऊपर चोराने में वध करना विषय का समीकरण तो देश काल और चोर द्रव्य
ामी इन दोनों का जाति गुण देख के करना इसी प्रकार से गो के श्लोक में भी जानना । ३२१ । पूर्व कथित वस्तु पचास
ा से ऊपर सौ गंडा के भीतर हो तो उस के चोराने में हस्त छेदन करना पचास गंडा के नीचे जितना हो उस का ग्यारह गुना
 देवै । ३२२ । कुलीन पुरुष और महाकुल की स्त्री श्रेष्ठ रत्न इन्हों में से कोई एक के हरण में वध करना । ३२३ । *

हाथी घोड़ा भैंस गौ हथियार औषध इन सबों में से कोई एक वस्तु के हरण में दुर्भिक्ष आदि काल और प्रयोजन इन्हीं को देख कर ताड़न अंग छेदन वध को राजा करै। ३२४। ब्राह्मण की गौ के हरण में और बंझा गौ के वाहन के अर्थ नासिका छेदन में बकरा भेड़ा आदि यज्ञ के योग्य पशु के हरण में शीघ्र आधा पाद काटना। ३२५। ऊर्णा आदि सूत्र कपास का सूत्र किण्व (अर्थात् सुरा बीज द्रव्य) गोबर गुड़ दही दूध मंठा जल तृण। ३२६। सूक्ष्म बांस के टुकड़े का बनाया हुआ जलाहरण पात्र आदि लवण माटी का पात्र माटी भस्म। ३२७। मछली पक्षी तेल घी मांस मधु पशुसंभव (अर्थात् मृग चर्म गैंड़ा का शृंग आदि)। ३२८। इस प्रकार के और जो हैं (अर्थात् जिस में सार नहीं है मैनशिल आदि) भोजन के योग्य पक्वान्न दाल लड़ुआ आदि भात इन सबों में कोई एक वस्तु के हरण में उस के मोल से दूना दंड देवै। ३२९। पुष्प क्षेत्र में स्थित हरित धान्य त्वचा सहित गुल्म लता वृक्ष एक पुरुष के ले जाने योग्य धान्य इन सबों में से कोई एक वस्तु के चोराने में देश काल विचार के एक मासा सोना अथवा एक मासा रूपा दंड होता है। ३३०। पुआरा रहित धान्य शाक मूल फल इन्हीं में से कोई एक वस्तु के चोराने में चोराने वाला उस वस्तु स्वामी का संबंधी हो (अर्थात् एक ग्राम बास आदि संबंध सहित हो) तो पचास पण दंड देवै और संबंध

महापशूनां हरणे शस्त्राणामौषधस्य च। कालमासाद्य कार्य्यञ्च दण्डं राजा प्रकल्पयेत्। ३२४।
गोषु ब्राह्मणसंस्थासु छूरिकायाश्च भेदने। पशूनां हरणे चैव सद्यः कार्य्योऽर्द्धपादिकः। ३२५।
सूत्रकार्पासकिण्वानां गोमयस्य गुडस्य च। दध्नः क्षीरस्य तक्रस्य पानीयस्य तृणस्य च। ३२६।
वेणुवैदलभाण्डानां लवणानान्तथैव च। मृण्मयानाञ्च हरणे मृदो भस्मन एव च। ३२७।
मत्स्यानाम्पक्षिणाञ्चैव तैलस्य च घृतस्य च। मांसस्य मधुनश्चैव यच्चान्यत्पशुसम्भवम्। ३२८।
अन्येषाञ्चैवमादीनामद्यानामोदनस्य च। पक्वान्नानाञ्च सर्वेषान्तन्मूल्याद्द्विगुणो दमः। ३२९।
पुष्पेषु हरिते धान्ये गुल्मवल्लीनगेषु च। अन्येष्वपरिपूतेषु दण्डः स्यात्पञ्च कृष्णलः। ३३०।
परिपूतेषु धान्येषु शाकमूलफलेषु च। निरन्वये शतन्दण्डः सान्वयेऽर्द्ध शतन्दमः। ३३१।
स्यात्साहसं त्वन्वयवत् प्रसभं कर्म यत्कृतम्। निरन्वयं भवेत्स्तेयं हृत्वापव्ययते च यत्। ३३२।
यस्त्वेतान्युपक्लृप्तानि द्रव्याणि स्तेनयेन्नरः। तमाद्यान्दण्डयेद्राजा यश्चाग्निञ्चोरयेद्गृहात्। ३३३।
येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते। तत्तदेव हरेत्तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः। ३३४।
पिता चार्यस्सुहृन्माता भार्य्या पुत्रः पुरोहितः। नादंड्यो नाम राज्ञोस्ति यः स्वधर्म्मेन तिष्ठति। ३३५।
कार्षापणं भवेद्दंड्यो यत्रान्यः प्राकृतोजनः। तत्र राजा भवेद्दंड्यः सहस्रमिति धारणा। ३३६।
अष्टापाद्यन्तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्बिषम्। षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत्क्षत्रियस्य च। ३३७।
ब्राह्मणस्य चतुः षष्टिः पूर्णञ्चापि शतं भवेत्। द्विगुणा वा चतुः षष्टिस्तद्दोषगुणविद्धि सः। ३३८।

रहित हो तो सौ पण दंड देवै। ३३१। द्रव्य स्वामी के देखत संते बल से द्रव्य का हरण करै फेर पूछत संते कहै कि हम ने नहीं हरण किया सो भी चोर कहाता है। ३३२। जो मनुष्य और की द्रव्य को चोरावै अथवा अग्निहोत्र के शाला से अग्निहोत्र की अग्नि को और गृह्याग्नि (अर्थात् बलि वैश्वदेव कर्म के लिये अन्न पक्व जिस अग्नि में होता है) को चोरावै सो प्रथम साहस दंड पावै और फेर अग्नि स्थापन के लिये जो व्यय (अर्थात् खर्च) हो सो अग्नि स्वामी को देवै। ३३३। जिस जिस अंग से पर द्रव्य को हरण करै उस उस अङ्ग को छेदन करना कि जिस में फेर ऐसा कर्म न करै। ३३४। राजा को अदंड्य (अर्थात् दण्ड देने योग्य नहीं) कोई नहीं है पिता आचार्य मित्र माता भार्या पुत्र पुरोहित ये सब अपने धर्म में स्थित न हों तो दंड के योग्य होते हैं। ३३५। जिस अपराध में राजा को छोड़ कर और मनुष्य कार्षापण परिमित दंड के योग्य होता है उस अपराध में राजा सहस्र पण परिमित दंड के योग्य होता है। ३३६। वस्तु के गुण दोष को नहीं जानने वाला जो शूद्र वैश्य क्षत्रिय ब्राह्मण इन्हीं का जिस चोरी में जो दंड कहा है उस का आठ गुना सोलह गुना बत्तिस गुना चौंसठ गुना अथवा सौ गुना वा एक सौ अट्ठाईस गुना दंड को क्रम से शूद्र वैश्य क्षत्रिय ब्राह्मण पावैं परंतु वस्तु का गुण और दोष को जानने वाले हों तो। ३३७। ३३८।

विई से घेरा नहीं जो वृक्ष आदि उस का मूल फल पुष्प और होम के लिये लकड़ी गोग्रास के लिये तृण इन सब को हरण करै तो उस को दंड न देना और वह अधर्म नहीं कहाता है यह मनु जी ने कहा । ३३९ । चोर को पढ़ाके और यज्ञ कराके उस के हाथ से धन लेने की इच्छा करते जो ब्राह्मण है सो जैसा चोर है वैसा ही वह है । ३४० । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये सब मार्ग में चले जाते हों और भोजन को कुछ पास न हो तो पराये के खेत से दो ऊख और दो मूलिका को लेवैं तो दंड देने के योग्य नहीं होते । ३४१ । दर्प करके पराये घोड़ा आदि जो बंधे नहीं हैं उन को बांधने वाला और घोड़शाला में बंधे हुए घोड़ा आदि को छोड़ देने वाला दास घोड़ा रथ इन्हों का हरण करने वाला चोर के पाप को पाता है । ३४२ । इस विधि से चोरों का निग्रह करने वाला राजा इस लोक में यश को और परलोक में उत्तम सुख को पाता है । ३४३ । इंद्र के पद पर चढ़ने की इच्छा करने वाला विनाश रहित यश का इच्छा करने वाला राजा क्षण भर भी साहसिक (अर्थात् बल से कर्म को करने वाला) नर की उपेक्षा (अर्थात् बहटियाना) न करै । ३४४ । गाली देने वाला और चोर दंड से मारने वाला इन सबों से साहस करने वाला पापी है । ३४५ । साहसिक मनुष्य के अपराध को जो राजा सहन करता है सो झट पट नाश को और शत्रुता को पाता

वानस्पत्यं मूलफलं दार्वग्न्यर्थन्तथैव च । तृणञ्च गोभ्यो ग्रासार्थमस्तेयं मनुरब्रवीत् । ३३९ ।
यो दत्तादायिनो हस्ताल्लिप्सेत ब्राह्मणो धनम् । याजनाध्यापनेनापि यथा स्तेनस्तथैव सः । ३४० ।
द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्वाविक्षू द्वे च मूलिके । आददानः परक्षेत्रान्न दण्डन्दातुमर्हति । ३४१ ।
असन्धितानां सन्धाता सन्धितानाञ्च मोक्षकः । दासाश्वरथहर्ता च प्राप्तः स्याच्चौरकिल्बिषम् । ३४२ ।
अनेन विधिना राजा कुर्वाणस्तेननिग्रहम् । यशोऽस्मिन्प्राप्नुयाल्लोके प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् । ३४३ ।
ऐन्द्रं स्थानमभिप्रेप्सुर्यशश्चाक्षयमव्ययम् । नोपेक्षेत क्षणमपि राजा साहसिकन्नरम् । ३४४ ।
वाग्दुष्टात्तस्कराच्चैव दण्डेनैव च हिंसतः । साहसस्य नरः कर्ता विज्ञेयः पापकृत्तमः । ३४५ ।
साहसे वर्तमानन्तु यो मर्षयति पार्थिवः । स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषञ्चाधिगच्छति । ३४६ ।
न मित्रकारणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात् । समुत्सृजेत्साहसिकान्सर्वभूतभयावहान् । ३४७ ।
शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रोपरुध्यते । द्विजातीनाञ्च धर्माणां विप्लवे कालकारिते । ३४८ ।
आत्मनश्च परित्राणे दक्षिणानाञ्च सङ्गरे । स्त्रीविप्राभ्युपपत्तौ च घ्नन्धर्मेण न दुष्यति । ३४९ ।
गुरुम्वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणम्वा बहुश्रुतम् । आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् । ३५० ।
नाततायि वधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन । प्रकाशम्वाऽप्रकाशम्वा मन्युस्तम्मन्युमृच्छति । ३५१ ।
परदाराभिमर्षेषु प्रवृत्तान्नॄन्महीपतिः । उद्वेजनकरैर्दण्डैश्चिह्नयित्वा प्रवासयेत् । ३५२ ।
तत्समुत्थो हि लोकस्य जायते वर्णसङ्करः । येन मूलहरोऽधर्मस्सर्व्वनाशाय कल्पते । ३५३ ।

है । ३४६ । संपूर्ण जीव को भय देने वाला साहसिक नर को मित्रता से अथवा बहुत धन पाने से राजा न छोड़ै । ३४७ । काल करके धर्म के नाश समय में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये तीनों वर्ण शस्त्र को धारण करैं । ३४८ । आत्मा यज्ञ की सामग्री स्त्री ब्राह्मण इन्हों की रक्षा में और संग्राम में धर्म से (अर्थात् विष आदि से जो शस्त्र लिप्त नहीं उस से) नाश करत संते दोष को नहीं पाता । ३४९ । गुरू बाल वृद्ध बहुत पढ़ा हुआ ब्राह्मण ये सब आततायी (अर्थात् आग लगाने वाला विष देने वाला धन लेने वाला खेत और स्त्री इन्हों का हरण करने वाला) होके आवै तो विचार न करना इन्हों को मारना । ३५० । आततायी के वध में मारने वाले को दोष नहीं होता प्रकाश अथवा अप्रकाश जो मारने वाले के क्रोध से मारे गए उस की प्रकाश अप्रकाश क्रोध को क्रम से पाता है । ३५१ । परस्त्री के व्यभिचार में प्रवृत्त मनुष्यों को उद्वेग करनहार दण्ड से चिह्न करके देस से निकाल देवै । ३५२ । लोक में इसी करके वर्णसंकर होता है जिस से जगत का नाश होता है (अर्थात् शुद्ध स्त्री से उत्पन्न पुरुष याग करै तो उस याग की अग्नि में जो आहुति पड़ती है सो सूर्य के पास जाती है और वह आहुति पाके सूर्य वृष्टि करते हैं उस से जगत् का भला होता है जब वर्णसंकर भया तब मूल का हरण करने वाला अधर्म, उस से शुद्ध स्त्री से उत्पन्न कोई पुरुष मिलैगा नहीं तब जगत् का नाश हो जायगा । ३५३ ।

* * * * * * * *

एकांत में परस्त्री से जो संभाषण करता है और पहिले से उस का दोष जाना गया है उस को पूर्व साहस दंड देना । ३५४ । जिस का दोष पहिले से जाना नहीं गया है और कोई कारण से एकांत में परस्त्री से संभाषण करता है उस को दंड न देना । ३५५ । जल में पैठने की मार्ग ग्राम के बाहर तृण लता से युक्त जन रहित स्थल बन नदी संगम इन स्थान में परस्त्री से संभाषण करै तो संग्रहण को पाता है । ३५६ । माला गंध अनुलेपन भूषण वस्त्र इन्हों का भेजना हंसी आलिङ्गन आदि एक खट्वा पर बैठना यह सब संग्रहण कहाता इस बात को मनु आदि ऋषि ने कहा । ३५७ । जो स्त्री का जघन आदि को छूता है अथवा पुरुष का वृषण आदि को स्त्री ने छूआ और पुरुष ने क्रोध न किया तो परस्परानुराग से सब संग्रहण कहाता है यह मनु आदि ने कहा । ३५८ । ब्राह्मण को छोड़ कर और वर्ण को संग्रहण में प्राणांतिक दंड देना क्योंकि चारो वर्ण की स्त्री अति रक्षा के योग्य हैं । ३५९ । भिक्षुक भाट दीक्षित (अर्थात् यज्ञ के लिये लिया है दीक्षा जिस ने) रसोई करने वाला आदि ये सब भिक्षा आदि अपने कार्य के लिये स्त्रियों के साथ सम्भाषण करैं इन को निवारण न करना । ३६० । एक बेर मना किया गया कि तुम उस स्त्री से न बोलना और फेर वह पुरुष उस स्त्री से सम्भाषण करै तो एक सुवर्ण (अर्थात् शास्त्रोक्त सोरह मासा सोना) दंड देवै । ३६१ ।

परस्य पत्न्या पुरुषः संभाषां योजयन् रहः । पूर्वमाक्षारितो दोषैः प्राप्नुयात्पूर्वसाहसम् । ३५४ ।
यस्त्वनाक्षारितः पूर्वमभिभाषेत कारणात् । न दोषम्प्राप्नुयात्किञ्चिन्न हि तस्य व्यतिक्रमः । ३५५ ।
परस्त्रियं योभिवदेत्तीर्थेऽरण्ये वनेपि वा । नदीनाम्वापि सम्भेदे स सङ्ग्रहणमाप्नुयात् । ३५६ ।
उपचारक्रियाकेलिः स्पर्शो भूषणवाससाम् । सह खट्वासनञ्चैव सर्वं संग्रहणं स्मृतम् । ३५७ ।
स्त्रियं स्पृशेददेशे यः स्पृष्टो वा मर्षयेत्तया । परस्परस्यानुमते सर्वं सङ्ग्रहणं स्मृतम् । ३५८ ।
अब्राह्मणः सङ्ग्रहणे प्राणान्तन्दण्डमर्हति । चतुर्णामपि वर्णानान्दारा रक्ष्यतमाः सदा । ३५९ ।
भिक्षुका बन्दिनश्चैव दीक्षिताः कारवस्तथा । सम्भाषणं सहस्त्रीभिः कुर्य्युरप्रतिवारिताः । ३६० ।
न सम्भाषां परस्त्रीभिः प्रतिषिद्धः समाचरेत् । निषिद्धो भाषमाणस्तु सुवर्णन्दण्डमर्हति । ३६१ ।
नैष चारणदारेषु विधिर्नात्मोपजीविषु । सज्जयंति हि ते नारीर्निर्गूढाश्चारयन्ति च । ३६२ ।
किञ्चिदेव तु दाप्यः स्यात्सम्भाषान्ताभिराचरन् । प्रैष्यासु चैकभक्तासु रहः प्रव्रजितासु च । ३६३ ।
योऽकामान्दूषयेत्कन्यां स सद्यो वधमर्हति । स कामान्दूषयंस्तुल्यो न वधम्प्राप्नुयान्नरः । ३६४ ।
कन्याम्भजन्तीमुत्कृष्टन्न किञ्चिदपि दापयेत् । जघन्यं सेवमानान्तु संयताम्वासयेद्गृहे । ३६५ ।
उत्तमां सेवमानस्तु जघन्यो वधमर्हति । शुल्कं दद्यात्सेवमानः समामिच्छेत्पिता यदि । ३६६ ।

नट गवैया आदि की स्त्री और स्त्री के व्यभिचार ही से जो जीविका करते हैं उन की स्त्रियों में पूर्व कथित विधि नहीं है क्योंकि वह सब आप छिपे हुए अपनी स्त्रियों को सर्वत्र भेजते हैं । ३६२ । परंतु ये भी सब परस्त्री हैं इस लिये इन्हों के साथ सम्भाषण से थोड़ा दंड सम्भाषण करने वाला पावै दासी और एक गृह में जिस स्त्री को रोक के रक्खा है वह और संन्यासिनी इन्हों के साथ सम्भाषण करने वाला थोड़ा दंड को पावै । ३६३ । इच्छा को नहीं करती जो अपने समान जाति वाली कन्या उस को जो गमन करता है उस को उसी क्षण में लिङ्गच्छेदन आदि वध दंड देना परंतु ब्राह्मण को नहीं क्योंकि उस को शरीर दंड का निषेध है और इच्छा करने वाली कन्या अपने समान जाति वाली उस को गमन करै तो वध को नहीं पाता है । ३६४ । अपनी जाति से ऊंच जाति को भजन करने वाली कन्या थोड़ा भी दंड को नहीं पाती और अपने जाति से नीच जाति को भजन करने वाली कन्या को बांधि के गृह में स्थापन करना । ३६५ । इच्छा करने वाली अथवा न इच्छा करने वाली जो उत्तम जाति की स्त्री उस को सेवन करने वाला नीच जाति जो पुरुष सो जाति की अपेक्षा करके अङ्गच्छेदन वध रूप दंड के योग्य होता है इच्छा करने वाली समान जाति की स्त्री को कुछ देके सेवा करै तो दण्ड के योग्य नहीं होता परंतु पिता जब मानै तो उस को शुल्क (अर्थात् मोल के योग्य द्रव्य) को देकर विवाह करै । ३६६ । * * *

ेा मनुष्य बलात्कार करके समान जाति वाली स्त्री को अहंकार करके गमन वर्जित योनि में अङ्गुली प्रक्षेप मात्र करके दूपित करता है उस पुरुष को दो अङ्गुली का छेदन करना और छ सौ पण दण्ड देना। ३६७। इच्छा करने वाली समान जाति की स्त्री को पूर्व कथित ीति से दूपित करै तो अङ्गुलिच्छेद को नहीं पाता परंतु प्रसङ्ग निवृत्ति के लिये दो सौ पण दण्ड करना। ३६८। जो कन्या कन्या की ोनि में अङ्गुली प्रक्षेप करके नाश करै उस को दो सौ पण दंड देना और अङ्गुली प्रक्षेप करने वाली कन्या का पिता दूना शुल्क ेवै। ३६९। जो स्त्री कन्या की योनि में अङ्गुली प्रक्षेप करके दूषित करै उस का मूड़ मुड़ा देना और दो अङ्गुली का छेद करना ादहा पर चढ़ा के राजमार्ग (अर्थात् सड़क) में गमन कराना अपराधानुसार से दंड विकल्प को जानना। ३७०। जाति और ुण इस के गर्व से भर्त्ता के लंघन करने वाली स्त्री को राजा बहुत मनुष्य के समीप में कुत्ता से भोजन करावे। ३७१। पूर्व कथित रस्त्री गमन करने वाले पुरुष को तप्त लोह शय्या में स्थापन करके चारो ओर काष्ठ रख के आग लगा देवै जिस में वह पापी ग्ध होवै। ३७२। परस्त्री व्रात्य (अर्थात् शास्त्रोक्त काल में जिस का यज्ञोपवीत नहीं हुआ) की स्त्री चाण्डाल की स्त्री इन्हों का ामन करके दुष्ट पुरुष बिना दंड के पाए हुए एक वर्ष के उपरांत फेर उसी स्त्री का गमन करै तो एक बेर गमन करने में जो दण्ड

अभिषह्य तु यः कन्यां कुर्य्याद्दर्पेण मानवः। तस्याशु कर्त्ये अङ्गुल्यौ दण्डञ्चार्हति षट् शतम्। ३६७।
स कामां दूषयंस्तुल्यो नाङ्गुलिच्छेदमाप्नुयात्। द्विशतं तु दमं दाप्यः प्रसङ्गविनिवृत्तये। ३६८।
कन्यैव कन्यां या कुर्य्यात्तस्याः स्याद्द्विशतो दमः। शुल्कञ्च द्विगुणन्दद्याच्छिफाश्चैवाप्नुयाद्दश। ३६९।
या तु कन्याम्प्रकुर्य्यात्स्त्री सा सद्यो मौण्ड्यमर्हति। अङ्गुल्योरेव वा छेदं खरेणोद्वहनन्तथा। ३७०।
भर्तारं लंघयेद्या तु स्त्रीज्ञातिगुणदर्पिता। तां श्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहु संस्थिते। ३७१।
पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे। अभ्या दध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्येत पापकृत्। ३७२।
सम्वत्सराभिशस्तस्य दुष्टस्य द्विगुणो दमः। व्रात्यया सह संवासे चाण्डाल्यातावदेव तु। ३७३।
शूद्रो गुप्तमगुप्तं वा द्वैजातं वर्णमावसन्। अगुप्तमङ्गसर्वस्वैर्गुप्तं सर्वेण हीयते। ३७४।
वैश्यः सर्वस्वदण्डः स्यात्संवत्सरनिरोधतः। सहस्रं क्षत्रियो दंड्यो मौण्ड्यम्मूत्रेण चार्हति। ३७५।
ब्राह्मणीं यद्यगुप्तान्तु गच्छेतां वैश्यपार्थिवौ। वैश्यम्पञ्च शतङ्कुर्य्यात्क्षत्रियं तु सहस्रिणम्। ३७६।
उभावपि तु तावेव ब्राह्मण्यागुप्तया सह। विप्लुतौ शूद्रवद्दंड्यौ दग्धव्यौ वा कटाग्निना। ३७७।
सहस्रम्ब्राह्मणो दंड्यो गुप्ताम्विप्राम्बलाद्व्रजन्। शतानि पञ्च दंड्यः स्यादिच्छंत्या सह सङ्गतः। ३७८।
मौंड्यम्प्राणान्तिको दण्डो ब्राह्मणस्य विधीयते। इतरेषान्तु वर्णानान्दण्डः प्राणान्तिको भवेत्। ३७९।
न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितम्। राष्ट्रादेनं बहिः कुर्य्यात्समग्रधनमक्षतम्। ३८०।

हा है उस का दूना दंड देवै। ३७३। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य की स्त्री पति आदि से अरक्षित हो अथवा रक्षित हो उस का गमन रने वाला शूद्र का लिङ्गच्छेद सर्व द्रव्य हरण वध दंड करना तिस में अरक्षिता में लिङ्गच्छेद सर्वस्व हरण करना रक्षिता में लिङ्गच्छेद सर्वस्व हरण वध करना। ३७४। वैश्य को रक्षित ब्राह्मणी गमन में एक वर्ष निरोध (अर्थात् जेहलखाना में रहना) के नन्तर सर्वस्व हरण दंड देना और इसी अपराध में क्षत्रिय को सहस्र पण दंड देना गदहा के मूत्र से मूड़ मूड़ा देना। ३७५। ति आदि से अरक्षित ब्राह्मणी का गमन करने वाला वैश्य और क्षत्रिय क्रम से पञ्च शत पण सहस्र पण दंड देवैं। ३७६। पति ादि से रक्षित ब्राह्मणी का गमन करने वाला क्षत्रिय वैश्य शूद्र की नांई दंड के योग्य है (अर्थात् सर्वाङ्ग से हीन करना) अथवा ाल कुश से वेष्टन करके वैश्य को दहन करना और शरपत्र (अर्थात् सरहरी) से वेष्टन करके क्षत्रिय को दहन करना यह दंड ुणवती ब्राह्मणी के गमन में जानना। ३७७। पति आदि से रक्षित ब्राह्मणी में बल से गमन करने वाला ब्राह्मण को सहस्र ण दंड देना और उस ब्राह्मणी के इच्छा से गमन करने वाला ब्राह्मण को पांच सौ पण दंड देना। ३७८। प्राणांतिक दंड े स्थान में ब्राह्मण को मूड़ मूड़ाना यही दंड है और वर्णों को प्राणांतिक दंड है। ३७९। सर्व पाप में स्थित भी ब्राह्मण ो परंतु उस का वध कभी न करना धन सहित और शरीर दण्ड रहित राज्य से निकाल देना। ३८०। * *

संसार में ब्राह्मण के वध से दूसरा बड़ा अधर्म कोई नहीं है इस लिये ब्राह्मण वध को मन से भी राजा चिंतन न करें। ३८१। पति आदि से रक्षित वैश्या का गमन क्षत्रिय करें अथवा वैसी ही क्षत्रिया का गमन वैश्य करें तो पति आदि से अरक्षिता ब्राह्मणी के गमन में जो दंड कहा है सोई दंड दोनों को देना। ३८२। पति आदि से रक्षित क्षत्रिया और वैश्या का गमन करने वाला ब्राह्मण को सहस्र पण दंड देना और पति आदि से रक्षित शूद्रा के गमन में क्षत्रिय वैश्य को सहस्र पण दंड देना। ३८३। पति आदि से अरक्षित क्षत्रिया में गमन करने वाला वैश्य को पांच सौ पण दंड देना और उसी में गमन करने वाला क्षत्रिय को गदहा के मूत्र से शिर मुड़ाय देना यही दंड है। ३८४। पति आदि से अरक्षित क्षत्रिया वैश्या शूद्रा का गमन करने वाले ब्राह्मण को पांच सौ पण दंड देना और चांडाल आदि की स्त्री में गमन करने वाला ब्राह्मण को सहस्र पण दंड देना। ३८५। चोर और परस्त्री में गमन करने वाला दुष्ट वचन बोलने वाला बलात्कार करके कर्म करने वाला दंड आदि से मारने वाला ये सब जिस राजा के राज्य में नहीं हैं सो राजा इंद्रलोक को पाने वाला है। ३८६। अपने राज्य में इन पांचों का निग्रह करने वाला राजा राजों में साम्राज्य (अर्थात् मंडलेश्वर का कर्म) करने वाला है और इस लोक में यश करने वाला है। ३८७।

न ब्राह्मणवधाद्भूयानधर्मो विद्यते भुवि। तस्मादस्य वधं राजा मनसापि न चिन्तयेत्। ३८१।
वैश्यश्चेत्क्षत्रियां गुप्तां वैश्यां वा क्षत्रियो व्रजेत्। यो ब्राह्मण्यामगुप्तायां तावुभौ दण्डमर्हतः। ३८२।
सहस्रं ब्राह्मणो दण्डं दाप्यो गुप्ते तु ते व्रजन्। शूद्रायां क्षत्रियविशोः साहस्रो वै भवेद्दमः। ३८३।
क्षत्रियायामगुप्तायां वैश्ये पञ्चशतं दमः। मूत्रेण मौण्ड्यमिच्छेत्तु क्षत्रियो दण्डमेव वा। ३८४।
अगुप्ते क्षत्रिया वैश्ये शूद्रां वा ब्राह्मणो व्रजन्। शतानि पञ्च दंड्यः स्यात्सहस्रं त्वन्त्यजस्त्रियम्। ३८५।
यस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक्। न साहसिकदण्डघ्नौ स राजा शक्रलोकभाक्। ३८६।
एतेषां निग्रहो राज्ञः पञ्चानाम्विषये स्वके। साम्राज्यकृत्सजात्येषु लोके चैव यशस्करः। ३८७।
ऋत्विजं यस्त्यजेद्याज्यो याज्यञ्चर्त्विक् त्यजेद्यदि। शक्तङ्कर्मण्यदुष्टञ्च तयोर्दण्डः शतं शतम्। ३८८।
न माता न पिता न स्त्री न पुत्रस्त्यागमर्हति। त्यजन्नपतितानेतान्राज्ञा दंड्यः शतानि षट्। ३८९।
आश्रमेषु द्विजातीनां कार्य्ये विवदतां मिथः। न विब्रूयान्नृपो धर्म्मञ्चिकीर्षन् हितमात्मनः। ३९०।
यथार्हमेतानभ्यर्च्य ब्राह्मणैस्सह पार्थिवः। सांत्वेन प्रशमय्यादौ स्वधर्म्मम्प्रति पादयेत्। ३९१।
प्रातिवेश्यानुवेश्यौ च कल्याणे विंशति द्विजे। अर्हावभोजयन्विप्रो दण्डमर्हति माषकम्। ३९२।
श्रोत्रियः श्रोत्रियं साधुम्भूतिकृत्येष्वभोजयन्। तदन्नं द्विगुणन्दाप्यो हिरण्यञ्चैव माषकम्। ३९३।
अंधो जड़ः पीठसर्पी सप्तत्या स्थविरश्च यः। श्रोत्रियेषूपकुर्वंश्च न दाप्याः केनचित्करम्। ३९४।

अपने कर्म में समर्थ और दुष्टता से रहित ऋत्विक् और यजमान इन दोनों में एक को एक त्याग करें तो त्याग करने वाले को सौ पण दंड देना। ३८८। पातित्य दोष से रहित माता पिता स्त्री रत्न इन्हों में से कोई एक का त्याग करें तो छ सौ पण दंड देवै। ३८९। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों का गार्हस्थ्य आदि आश्रम में शास्त्रार्थ का विवाद होवे तो राजा ने अपहित की इच्छा करते संते यह शास्त्रार्थ है ऐसा साहस करके न बोले। ३९०। ब्राह्मणों के सहित राजा विवाद करने वालों को यथा योग्य पूजा करके पहिले शांति कर्म से उन्हों के क्रोध को दूर करके अपने धर्म को कथन करें। ३९१। मंगल शांति कर्म में बीस ब्राह्मणों को भोजन कराते हुए प्रातिवेश्य (अर्थात् अपने गृह के समीप गृह में रहने वाला योग्य ब्राह्मण) और अनुवेश्य (अर्थात् अपने गृह से एक गृह छोड़ के दूसरे गृह में रहने वाला योग्य ब्राह्मण) इन दोनों को भोजन न करावे ब्राह्मण तो एक मासा रूपा दंड देवै। ३९२। विभव कर्म (अर्थात् विवाह आदि उत्सव कर्म) में वेद पाठी और प्रातिवेश्य वेद पाठी इन्हों को भोजन न करावे तो एक मासा सोना और भोजन का दूना अन्न दंड देवै। ३९३। अंधा बहिरा पंगुल और पूर्ण सत्तर वर्ष वाला धन धान्य से वेद पाठियों का उपकार करने वाला इन सबों से क्षीण कोश वाला भी राजा अपने ग्रहण योग्य कर को न लेवे। ३९४।

दि पाठी व्याधित दुःखित बाल वृद्ध अकिंचन (अर्थात् जिस को कुछ नहीं है) महा कुलीन उदार चरित वाला इन सबों का
र्व काल में राजा पूजन करै । ३९५ । सेमर की चिक्कन पीढ़ा पर धीरे से वस्त्र को धोबी धोवै और दूसरे का वस्त्र दूसरे को
देवै और बहुत दिन तक अपने गृह में न रक्खे । ३९६ । जोलहा वस्त्र बनाने के लिये दस गंडा भर सूत लेवै तो ग्यारह
ंडा भर वस्त्र देवै इस से कम देवै तो बारह पण दंड राजा को देके और स्वामी का संतोष करै । ३९७ । शुल्क (अर्थात् राजा
के ग्रहण योग्य भाग) में कुशल और संपूर्ण वस्तु के बेचने में पंडित ऐसा पुरुष जिस वस्तु का जो मोल स्थापन करैं उस में जो
लाभ हो उस के बीसवां भाग को राजा ग्रहण करै । ३९८ । राजा के योग्य जो वस्तु है और जिस वस्तु को और के पास बेचने
को राजा ने मना किया है उन्हों को लोभ से और स्थान में बेचै तो उस के सर्व धन को राजा हरण करै । ३९९ । शुल्क स्थान
अर्थात् राज भाग ग्रहण स्थान) को परित्याग करत संते अकाल में क्रय विक्रय करत संते तौल में झूठ बोलत संते राज भाग
का आठ गुना दंड देवै । ४०० । सब वस्तुओं का आना जाना स्थिति क्षय वृद्धि इन सब को बिचार के क्रय विक्रय करना । ४०१ ।
ांच पांच दिन बीते संते अथवा पक्ष पक्ष बीते संते सब वस्तुओं के मोल को स्थापन करै । ४०२ । मसीका तोला सेर पसेरी आदि

श्रोत्रियं व्यधितार्त्तौ च बालवृद्धावकिञ्चनम् । महाकुलीनमार्य्यञ्च राजा संपूजयेत्सदा । ३९५ ।
शाल्मलीफलके श्लक्ष्णे नेनिज्यान्नेजकः शनैः । न च वासांसि वासोभिर्निर्हरेन्न च वासयेत् । ३९६ ।
तन्तुवायो दशपलन्दद्यादेकपलाधिकम् । अतोन्यथा वर्त्तमानो दाप्यो द्वादशकन्दमम् । ३९७ ।
शुल्कस्थानेषु कुशलाः सर्वपण्यविचक्षणाः । कुर्य्युरर्घं यथा पण्यन्ततो विंशं नृपो हरेत् । ३९८ ।
राज्ञः प्रख्यातभाण्डानि प्रतिषिद्धानि यानि च । तानि निर्हरतो लोभात्सर्वहारं हरेन्नृपः । ३९९ ।
शुल्कस्थानं परिहरन्न काले क्रयविक्रयी । मिथ्यावादी च संख्याने दाप्योष्टगुणमत्ययम । ४०० ।
आगमन्निर्गमं स्थानन्तथा वृद्धिक्षयावुभौ । विचार्य्य सर्वपण्यानां कारयेत् क्रयविक्रयौ । ४०१ ।
पंचरात्रे पञ्चरात्रे पक्षे पक्षेऽथवा गते । कुर्वीत चैषां प्रत्यक्षमर्घसंस्थापनन्नृपः । ४०२ ।
तुलामानं प्रतीमानं सर्वं च स्यात्सुलक्षितम् । षट्सु षट्सु च मासेषु पुनरेव परीक्षयेत् । ४०३ ।
पणं यानन्तरे दाप्यम्पौरुषोऽर्द्धपणन्तरे । पादम्पशुश्च योषिच्च पादार्द्धं रिक्तकः पुमान् । ४०४ ।
भाण्डपूर्णानि यानानि तार्य्यन्दाप्यानि सारतः । रिक्तभाण्डानि यत्किञ्चित्पुमांसश्चापरिच्छदाः ।
४०५ । दीर्घाध्वनि यथा देशं यथा कालन्तरो भवेत् । नदीतीरेषु तद्विद्यात्समुद्रे नास्ति लक्षणम् । ४०६ ।
गर्भिणी तु द्विमासादिस्तथा प्रव्रजितो मुनिः । ब्राह्मणा लिङ्गिनश्चैव न दाप्यास्तारिकन्तरे । ४०७ ।
यन्नावि किञ्चिद्दाशानां विशीर्य्येतापराधतः । तद्दाशैरेव दातव्यं समागम्य स्वतोंशतः । ४०८ ।
एष नौयायिनामुक्तो व्यवहारस्य निर्णयः । दाशापराधतस्तोये दैविके नास्ति निग्रहः । ४०९ ।

ा और प्रस्थ द्रोण आदि पात्र को न्यूनाधिक को राजा देखै पुनः परीक्षा छठएं छठएं महीना में करै और राज मुद्रा से चिह्नित
ब वस्तु को करै । ४०३ । नौका पर चढ़के उतरने में यान (अर्थात् सवारी) के पीछे एक पण लेना भार सहित पुरुष पीछे
ाधा पण पशु और स्त्री इन्हों के पीछे पण का चतुर्थांश बोझ रहित पुरुष पीछे पण का अष्टमांश लेना । ४०४ । पूर्ण भाण्ड
हित गाड़ी आदि से भरी हुई वस्तु की अपेक्षा करके सारासार विचार करके तरण का कल्पना करना पूर्ण भाण्ड जो नहीं है और
ामग्री रहित जो पुरुष है उन्हों से यत्किञ्चित् (अर्थात् थोड़ा) लेना । ४०५ । नदीमार्ग से दूर जाने में नदी का प्रबल वेग स्थिर
ल ग्रीष्म वर्षा काल आदि का बिचार करके नाव का भाड़ा कल्पना करना और समुद्र में तो वायु के आधीन गमन है इस लिये
र्वे कथित वार्ता का बिचार नहीं है किंतु जो उचित हो सो लेना । ४०६ । दो मास के ऊपर के गर्भ वाली स्त्री संन्यासी
ानप्रस्थ ब्राह्मण ब्रह्मचारी इन सब से तरण का मोल न लेना । ४०७ । नाव में केवटों के अपराध से कोई बस्तु का नाश हो
ा उस को सब केवट मिलके अपने अपने अंश से देवैं । ४०८ । केवटों के अपराध से जल में नष्ट हुई बस्तु का व्यवहार निर्णय
ा कहा दैविक नाश में केवटों का निग्रह नहीं है । ४०९ । * * * * *

बनियां का कर्म व्याज खेती पशु रक्षा इन सब कर्मों को बनियां से करावै ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों की सेवा शूद्रों से करावै ।४१०। जीविका से कष्ट को पाए हुए क्षत्रिय वैश्य को दया करके ब्राह्मण अपने कार्य को कराते हुए पोषण करै । ४११ । कर्म करने की इच्छा नहीं करने वाले जो यज्ञोपवीत आदि संस्कार को पाए हुए ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन्हों से अपने प्रभाव करके लोभ से कर्म कराने वाला ब्राह्मण उस से छ सौ पण दंड राजा लेवै । ४१२ । मोल लिया हो अथवा मोल न लिया हो जो शूद्र उस से दास्य कर्म कराना क्योंकि ब्राह्मण के दास्य कर्म के लिये ब्रह्मा ने शूद्र को उत्पन्न किया है । ४१३ । दास्य कर्म से दास को स्वामी त्याग न करै तो दास दास्य कर्म से छूटता नहीं क्योंकि दास्य कर्म शूद्र के स्वभाव से उत्पन्न है उस कर्म को कौन छुड़ाय सकता है । ४१४ । ध्वजाहृत (अर्थात् संग्राम से जीत के लाए) भक्त दास (अर्थात् भोजन के अर्थ दास्य) कर्म का स्वीकार करने वाला गृहज (अर्थात् गृह में दासी से उत्पन्न) क्रीति (अर्थात् मोल लिया) दात्रिम (अर्थात् दान से मिला) पैत्रिक (अर्थात् पिता पितामह क्रम से प्राप्त भया) दंड दास (अर्थात् दंड आदि को शोधन के अर्थ दास्य भाव का स्वीकार करने वाला) ये

वाणिज्यं कारयेद्वैश्यं कुसीदं कृषिमेव च। पशूनां रक्षणञ्चैव दास्यं शूद्रं द्विजन्मनाम् ।४१०।
क्षत्रियञ्चैव वैश्यञ्च ब्राह्मणो वृत्तिकर्षितौ । बिभृयादानृशंस्येन स्वानि कर्माणि कारयन् । ४११ ।
दास्यं तु कारयेल्लोभाद्ब्राह्मणः संस्कृतान् द्विजान्। अनिच्छतः प्राभवत्याद्राज्ञा दंड्यः शतानि षट् ।
४१२। शूद्रं तु कारयेद्दास्यं क्रीतमक्रीतमेव वा। दास्यायैव हि सृष्टोऽसौ ब्राह्मणस्य स्वयम्भुवा । ४१३ ।
न स्वामिना निसृष्टोपि शूद्रो दास्याद्विमुच्यते। निसर्गजं हि तत्तस्य कस्तस्मात्तदपोहति। ४१४।
ध्वजाहृतो भक्तदासो गृहजः क्रीतदत्रिमौ । पैत्रिको दण्डदासश्च सप्तैते दासयोनयः । ४१५ ।
भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवाधनाः स्मृताः । यत्ते समधिगच्छंति यस्यैते तस्य तद्धनम् । ४१६ ।
विस्रब्धं ब्राह्मणः शूद्राद्द्रव्योपादानमाचरेत्। न हि तस्यास्ति किंचित्स्वं भर्तृहार्यधनो हि सः । ४१७ ।
वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्माणि कारयेत्। तौ हि च्युतौ स्वकर्मभ्यः क्षोभयेतामिदञ्जगत्। ४१८ ।
अहन्यहन्यवेक्षेत कर्मान्तान् वाहनानि च। आयव्ययौ च नियतावाकरान्कोषमेव च। ४१९ ।
एवं सर्वानिमान्राजा व्यवहारान्समापयन् । व्यपोह्य किल्बिषं सर्वम्प्राप्नोति परमाङ्गतिम् । ४२० ।

* ॥ इति मानवे धर्म्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ *

सात दास की योनि हैं । ४१५ । भार्या पुत्र दास ये तीनों धन से रहित हैं ये सब धन को अर्जन करैं तो जिस के ये तीनों हैं उसी का धन है । ४१६ । दास शूद्र से धन ग्रहण ब्राह्मण करै इस में कुछ विचार न करै क्योंकि उस का कुछ स्वत्व नहीं है वह अधन हैं वह जो धन अर्जन करै उस धन का स्वामी उस का भर्त्ता है ।४१७। वैश्य और शूद्र ये दोनों अपने कर्म से रहित न होने पावैं कदाचित् ये दोनों अपने धर्म से च्युत होवैं तो इस जगत् को क्षोभित (अर्थात् आकुलित) करैं । ४१८ । कर्म की सिद्धि और वाहन आय (अर्थात् प्राप्ति) व्यय (अर्थात् खर्च) कोष (अर्थात् खज़ाना) आकर (अर्थात् खानि) इन सबों को नित्य ही देखै । ४१९ । इस रीति से संपूर्ण व्यवहारों को समापन करता हुआ राजा संपूर्ण पाप को छोड़कर परम गति को पाता है । ४२० ।

॥ * ॥ इति श्री मनुस्मृति भाषा टिकायां कुल्लूक भट्ट व्याख्याऽनुसारिण्यां श्री बाबू देवीदयाल सिंह कारितायां श्री कम्पनी संस्कृत पाठशालीय धर्म्मशास्त्रि गुलजार शर्म्म पंडित कृतायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ * ॥ * * *

धर्म मार्ग में स्थित जो स्त्री और पुरुष इन दोनों के संयोग और वियोग में नित्य जो धर्म है उस को कहेंगे । १ । रात्रि दिन अपने पुरुषों से स्त्रियों को अस्वतंत्र (अर्थात् पराधीन) करना विषयों में जो लगी हैं उन को अपने वश में स्थापन करना । २ । बाल्यावस्था में पिता युवावस्था में पति वृद्धावस्था में पुत्र स्त्रियों की रक्षा करते हैं स्त्री स्वतंत्र (अर्थात् अपने अपने अधीन) होने के योग्य नहीं होती हैं । ३ । दान समय में कन्या को न देवै तो पिता दोषी होता है और ऋतु काल में स्त्री का गमन पति न करै तो दोषी होता है भर्त्ता के मरे संते माता की रक्षा पुत्र न करै तो दोषी होता है । ४ । थोड़े प्रसंग से भी विशेष करके स्त्रियों की रक्षा करना और स्त्री अरक्षित रहीं तो दोनों कुल को (अर्थात् पितृ कुल भर्तृ कुल को) शोक देती हैं । ५ । सब वर्णों के इस उत्तम धर्म को देखते हुए दुर्बल भर्त्ता भी भार्या की रक्षार्थ यत्न करते हैं । ६ । अपनी संतति और चरित्र कुल आत्मा अपना धर्म इन सब को भार्या रक्षण करत संते रक्षा करता है । ७ । पति भार्या में प्रवेश करके गर्भ होके संसार में उत्पन्न होता है जाया में जायात्व धर्म वही है कि जाया में आप उत्पन्न होवै । ८ । जैसे मनुष्य का सेवन स्त्री करती है

पुरुषस्य स्त्रियाश्चैव धर्म्ये वर्त्मनि तिष्ठतोः । संयोगे विप्रयोगे च धर्म्मान्वक्ष्यामि शाश्वतान् । १ ।
अस्वतंत्राः स्त्रियः कार्य्याः पुरुषैः स्वैर्दिवा निशम् । विषयेषु च सज्जन्त्यः संस्थाप्या ह्यात्मनो वशे । २ ।
पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने । रक्षन्ति स्थाविरे पुत्रा न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति । ३ ।
कालेऽदाता पिता वाच्यो वाच्यश्चानुपयन् पतिः । मृते भर्त्तरि पुत्रस्तु वाच्यो मातुररक्षिता । ४ ।
सूक्ष्मेभ्योऽपि प्रसङ्गेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या विशेषतः । द्वयोर्हि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः । ५ ।
इमं हि सर्ववर्णानाम्पश्यन्तो धर्ममुत्तमम् । यतंते रक्षितुं भार्य्यां भर्त्तारो दुर्बला अपि । ६ ।
स्वाम्प्रसूतिञ्चरित्रञ्च कुलमात्मानमेव च । स्वञ्च धर्म्मम्प्रयत्नेन भार्यां रक्षन्हि रक्षति । ७ ।
पतिर्भार्यां सम्प्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते । जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः । ८ ।
यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथा विधम् । तस्मात्प्रजाविशुद्ध्यर्थं स्त्रियं रक्षेत्प्रयत्नतः । ९ ।
न कश्चिद्योषितः शक्तः प्रसह्य परिरक्षितुम् । एतैरुपाययोगैस्तु शक्यास्ताः परिरक्षितुम् । १० ।
अर्थस्य संग्रहे चैनां व्ययेचैव नियोजयेत् । शौचे धर्म्मेन्नपक्त्याञ्च पारिणाह्यस्य चेक्षणे । ११ ।
अरक्षिता गृहे रुद्धाः पुरुषैराप्तकारिभिः । आत्मानमात्मनायास्तु रक्षेयुस्ताः सुरक्षिताः । १२ ।
पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोटनम् । स्वप्नोन्यगेहवासश्च नारी संदूषणानि षट् । १३ ।
नैता रूपं प्रतीक्षंते नासां वयसि संस्थितिः । सुरूपम्वा कुरूपम्वा पुमानित्येव भुञ्जते । १४ ।
पौंश्चल्याच्चलचित्ताच्च नैस्नेह्याच्च स्वभावतः । रक्षिता यत्नतोपीह भर्तृष्वेता विकुर्वते । १५ ।
एवं स्वभावं ज्ञात्वासां प्रजापति निसर्गजम् । परमं यत्नमातिष्ठेत्पुरुषो रक्षणम्प्रति । १६ ।
शय्यासनमलङ्कारं कामं क्रोधमनार्जवम् । द्रोहभावं कुचर्यां च स्त्रीभ्यो मनुरकल्पयत् । १७ ।

वैसा ही पुत्र उत्पन्न करती है इस लिये संतति के विशुद्ध्यर्थ बल पूर्वक स्त्री की रक्षा करना चाहिए । ९ । हठते कोई पुरुष स्त्री की रक्षा करने में समर्थ नहीं होता है आगे कहेंगे जो उपाय उस से रक्षा करने के समर्थ पुरुष होता है । १० । अर्थ का संग्रह व्यय कर्म (अर्थात् खर्च) पवित्रता धर्म अन्न बनाना गृह की सामग्री को देखना इन सब कर्मों में अधिकार देना । ११ । आज्ञा करने वाले अच्छे पुरुष से गृह में रोकी हो स्त्री तिस पर भी रक्षित नहीं होती अपने को आप जो रक्षा करती हैं वही सुरक्षित होती हैं । १२ । मद्यपान दुर्जन संग पति का विरह इधर उधर घूमना अकाल में सोना और के गृह में वास ये छ नारी के दूषण हैं । १३ । स्त्री रूप और वय इस्को नहीं देखती सुरूप हो अथवा कुरूप हो परंतु पुरुष हो उसी का भोग करती हैं । १४ । यत्न पूर्वक रक्षित भी स्त्री हो परंतु पुंश्चलीपना चलचित्तता प्रेम का अभाव स्वभाव इन करके भर्त्ता का विकार करत ही है । १५ । ब्रह्मा के सृष्टि समय से स्त्रियों का यह स्वभाव जानके रक्षा के लिये पुरुष यत्न को करै । १६ । शय्या आसन अलंकार इन्हों को बनाने का स्वभाव काम क्रोध कठोरता द्रोह भाव कुचाल इन सब को स्त्रियों के लिये मनु जी ने सृष्टि के आदि में कल्पना किया (अर्थात् दिया) इस लिये यत्न से रक्षा करना चाहिए । १७ ।

* * * * *

मंत्रों करके क्रिया स्त्रियों की नहीं है यह धर्म व्यवस्था के प्राप्त है इंद्रिय और मंत्र इन दोनों से स्त्री रहित हैं असत्य की नाईं अशुभ हैं यह शास्त्र की मर्य्यादा है । १८ । स्त्रियों का व्यभिचार शीलता स्वभाव है यह कहा तिस में श्रुति प्रमाण देते हैं बहुत श्रुति वाक्य में लिखा है कि हम नहीं जानते ब्राह्मण हैं कि अब्राह्मण हैं यह आदि वेद में लिखा है उस में प्रायश्चित्त रूप जो श्रुति है उस को सुनो । १९ । कोई पुरुष माता का मानसव्यभिचार देख के कहता है कि मन वाणी काय कर्म करके पति को छोड़कर दूसरे पुरुष की इच्छा न करै सो पतिव्रता कहाती है उस से भिन्न अपतिव्रता कहाती है मेरी माता अपतिव्रता होकर पर पुरुष में लोभ किया वह पर पुरुष संकल्प दुष्ट माता का रज रूप वीर्य को मेरा पिता शुद्ध करै इस श्लोक रूप मंत्र का प्रथम से तीन पाद स्त्रियों के व्यभिचार शीलता का बोधक है यह मंत्र चातुर्मास्य याग में काम आता है । २० । चित्त करके पति का अनिष्ट जो कुछ ध्यान करती है उस व्यभिचार का पूर्व कथित मंत्र सुन्दर शोधन है यह मनु आदि ऋषियों ने कहा । २१ । जिस विधि करके जैसे पुरुष से संयोग स्त्री करती है तैसा ही आप होती है जैसे समुद्र करके नदी । २२ । अधम योनि से उत्पन्न अक्षमाला नाम की स्त्री ने वशिष्ठ ऋषि का संयोग किया और सारंगी ने मंदपाल का

नास्ति स्त्रीणां क्रिया मंत्रैरिति धर्म्मोव्यवस्थितः । निरिंद्रिया ह्यमंत्राश्च स्त्रियोऽनृतमितिस्थितिः ।
१८ । तथा च श्रुतयो बह्व्यो विगीता निगमेष्वपि । स्वालक्षण्यपरीक्षार्थं तासां शृणुत निष्कृतीः । १९ ।
यन्मे माता प्रलुलुभे विचरन्त्यपतिव्रता । तन्मे रेतः पिता वृङ्क्तामित्यस्यैतन्निदर्शनम् । २० ।
ध्यायत्यनिष्टं यत्किञ्चित्पाणिग्राहस्य चेतसा । तस्यैष व्यभिचारस्य निन्हवः सम्यगुच्यते । २१ ।
यादृग्गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्येत यथाविधि । तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेणेव निम्नगा । २२ ।
अक्षमाला वशिष्ठेन संयुक्ताधमयोनिजा । शारङ्गी मन्दपालेन जगामाभ्यर्हणीयताम् । २३ ।
एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्रसूतयः । उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैः स्वैर्भर्तृगुणैः शुभैः । २४ ।
एषोदिता लोकयात्रा नित्यं स्त्रीपुंसयोः शुभा । प्रेत्येह च सुखोदर्कान्प्रजाधर्म्मान्निबोधत । २५ ।
प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः । स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोस्ति कश्चन । २६ ।
उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् । प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम् । २७ ।
अपत्यं धर्मकार्य्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा । दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च ह । २८ ।
पतिं यानाभिचरति मनोवाग्देहसंयता । सा भर्तृलोकानाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते । २९ ।
व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निंद्यताम् । शृगालयोनिश्चाप्नोति पापरोगैश्चपीड्यते । ३० ।
पुत्रं प्रत्युदितं सद्भिः पूर्वजैश्च महर्षिभिः । विश्वजन्यमिमं पुण्यमुपन्यासन्निबोधत । ३१ ।
भर्तुः पुत्रम्विजानंति श्रुतिद्वैधं तु भर्तरि । आहुरुत्पादकङ्केचिदपरे क्षेत्रिणम्विदुः । ३२ ।

संयोग किया दोनों पूजित हुईं । २३ । इन्हें आदि और भी स्त्री नीच योनि से उत्पन्न हुईं इस लोक में अपने अपने भर्त्ता के गुणों से बड़ाई के प्राप्त हुईं । २४ । स्त्री पुरुषों की नित्य शुभ यात्रा को मैं ने कहा अब इस लोक में परलोक में उत्तर काल में सुख हेतु जो प्रजा धर्म है उस को जानो । २५ । गृह में उत्पत्ति के लिये बड़ी भाग्य वाली पूजा के योग्य गृह की दीप्ति स्त्री और लक्ष्मी हैं इन्हों में विशेष कुछ नहीं है दोनों समान हैं । २६ । पुत्र और कन्या इन्हों की उत्पत्ति उत्पन्न भये का रक्षण नित्य ही लोकयात्रा इन सबों का प्रत्यक्ष आदि कारण स्त्री है । २७ । संतति धर्म कार्य उत्तम सेवा अपना और पितर इन दोनों का स्वर्ग ये सब स्त्री के अधीन हैं । २८ । मन वाणी देह से संयत (अर्थात् दोष रहित) होकर अपने पति को छोड़ कर दूसरे पुरुष का संयोग जो स्त्री नहीं करती सो भर्तृ लोक को पाती है और लोक में भले लोग उस को साध्वी कहते हैं । २९ । लोक में भर्त्ता के व्यभिचार से स्त्री निंदित होती है और सिआर की योनि को पाती है पाप रोगों करके पीड़ित होती है । ३० । पुराने अच्छे बड़े ऋषियों ने पुत्र की प्रति संसार के हित पुण्य रूप जो धर्म कहा उस को जानो । ३१ । भर्त्ता का पुत्र है ऐसा सब जानते हैं और भर्त्ता में दो प्रकार की श्रुति है बीज वाले का पुत्र है ऐसा कोई कहते हैं क्षेत्र वाले का पुत्र है ऐसा कोई कहते हैं । ३२ । * * * * * * * *

क्षेत्र भूत नारी है बीज रूप पुरुष है क्षेत्र बीज के संयोग से सब देह वालों की उत्पत्ति है । ३३ । कहीं वीर्य बड़ा है कहीं योनि बड़ी है जहां दोनों सम हैं सो संतति बहुत अच्छी है । ३४ । बीज और योनि इन दोनों में बीज बड़ा है सब जीवों की उत्पत्ति बीज के लक्षण करके लक्षित है । ३५ । बीज बोने के समय में क्षेत्र में जैसा बीज बोते हैं तैसा अपने गुणों करके युक्त उत्पन्न होता है । ३६ । पंच महा भूतों से आरंभ के प्राप्त जितने जीव हैं उन्हों की नित्य योनी (अर्थात् कारण) क्षेत्र है और कोई भी योनि के गुण को पुष्टि में बीज अपेक्षा नहीं करता इस लिये बीज ही प्रधान है । ३७ । एक ही खेत में बोने की समय में खेती करने वाले ने यव गोहूं चना आदि बीज को बोया और वह बीज अपने स्वभाव से नाना प्रकार का होता है भूमि तो एक रूप है परंतु बीज एक रूप नहीं होता इस लिये बीज ही प्रधान है । ३८ । व्रीहि (अर्थात् साठी आदि) शालि (अर्थात् धान आदि) मूंग तिल उड़द यव लहसुन ऊख ये सब बोए संते नाना रूप से उगते हैं । ३९ । बोया और उगा और यह नहीं होता किंतु जो बोते हैं वही उगता है । ४० । अब क्षेत्र को प्राधान्य देखाते हैं इस कारण से नम्र अच्छे जानने वाले ज्ञान (अर्थात् वेद) विज्ञान (अर्थात् व्याकरण शास्त्र आदि वेद का अंग) इन्हीं के जानने वाले आयुष की इच्छा करने वाले जो मनुष्य हैं सो

क्षेत्रभूतास्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान् । क्षेत्रबीजसमायोगात्संभवः सर्वदेहिनाम् । ३३ ।
विशिष्टं कुचचिद्बीजं स्त्रीयोनिस्त्वेव कुत्रचित् । उभयन्तु समं यत्र सा प्रसूतिः प्रशस्यते । ३४ ।
बीजस्यैव च योन्याश्च बीजमुत्कृष्टमुच्यते । सर्वभूतप्रसूतिर्हि बीजलक्षणलक्षिता । ३५ ।
यादृशन्तूप्यते बीजं क्षेत्रे कालोपपादिते । तादृग्रोहति तत्तस्मिन्बीजं स्वैर्व्यञ्जितं गुणैः । ३६ ।
इयं भूमिर्हि भूतानां शाश्वती योनिरुच्यते । न च योनिगुणान्कांश्चिद्बीजं पुष्यति पुष्टिषु । ३७ ।
भूमावप्येककेदारे कालोप्तानि कृषीवलैः । नानारूपाणि जायंते बीजानीह स्वभावतः । ३८ ।
व्रीहयः शालयो मुद्गास्तिला माषास्तथा यवाः । यथा बीजम्प्ररोहन्ति लशुनानीक्षवस्तथा । ३९ ।
अन्यदुप्तं जातमन्यदित्येतन्नोपपद्यते । उप्यते यद्धि यद्बीजन्तत्तदेव प्ररोहति । ४० ।
तत्प्राज्ञेन विनीतेन ज्ञानविज्ञानवेदिना । आयुष्कामेन वप्तव्यन्न जातु परयोषिति । ४१ ।
अत्र गाथा वायुगीताः कीर्त्तयंति पुराविदः । यथा बीजन्न वप्तव्यं पुंसापरपरिग्रहे । ४२ ।
नश्यतीषुर्यथा विद्धः खेविद्धमनुविध्यतः । तथा नश्यति वै क्षिप्रं बीजम्परपरिग्रहे । ४३ ।
पृथोरपीमां पृथिवीं भार्य्यां पूर्वविदोविदुः । स्थाणुच्छेदस्य केदारमाहुः शल्यवतो मृगम् । ४४ ।
एतावानेव पुरुषो यज्जायात्माप्रजेतिह । विप्राः प्राहुस्तथाचैतद्यो भर्त्ता सा स्मृताङ्गना । ४५ ।
न निष्क्रयविसर्गाभ्यां भर्तुर्भार्य्या विमुच्यते । एवं धर्मम्विजानीमः प्राक् प्रजापतिनिर्म्मितम् । ४६ ।

परस्त्री में बीज को कभी न डालैं । ४१ । जिस प्रकार से परस्त्री में बीज को न बोना इस अर्थ में पूर्व काल के जानने वाले ऋषियों ने वायु का कहा हुआ जो गाथा (अर्थात् छंद विशेष युक्त वाक्य) उस का कीर्त्तन किए हैं । ४२ । आकाश में बाण से विद्ध हुए पक्षी को फेर बाण से बेध करने वाले का बाण जिस प्रकार से नाश के प्राप्त होता है (अर्थात् प्रथम जिस ने बेध किया उसी को मृग लाभ होता है) तिसी प्रकार से परस्त्री में बीज नाश के प्राप्त होता है (अर्थात् जिस की स्त्री है उसी को अपत्य लाभ होता है) । ४३ । इस पृथिवी को पृथु राजा ने प्रथम ग्रहण किया पीछे अनेक राजों के संबंध भए संते भी पृथु की भार्या है यह अतीत काल के जानने वालों ने जाना है और जिस ने ऊंच नीच भूमि को सम किया है उसी का खेत है जिस ने प्रथम बाण से वध किया है उसी का वह मरा हुआ पक्षी है यह पूर्व काल के जानने वालों ने कहा । ४४ । एक ही पुरुष नहीं होता किंतु भार्या और अपनी देह अपत्य (अर्थात् पुत्र कन्या) यह सब मिल के पुरुष कहाता है यह ब्राह्मणों ने कहा कि जो भर्त्ता है सोई भार्या है यह ऋषियों ने कहा । ४५ । बेचने से और त्याग से स्त्री भार्या की भर्त्तात्व (अर्थात् भार्या का धर्म) से नहीं छूटती पूर्व ही ब्रह्मा ने यह धर्म का निर्णय किया यह हम सब जानते हैं ऐसा मनु जी ने कहा । ४६ । * *

विभाग कन्यादान देंगे यह तीनों बात भले लोगों को एक ही बेर होती हैं । ४७ । जिस प्रकार से गौ घोड़ा ऊंट दासी भैंस बकरी भेड़ इन्हों में संतति उत्पन्न करने वाले का स्वामी उत्पन्न हुई संतति को नहीं पाता तिसी प्रकार से दूसरे की स्त्री में बीज डालने वाला अपत्य (अर्थात् संतति) को नहीं पाता । ४८ । दूसरे के खेत में बीज बोने वाला उस बीज के फल को कभी नहीं पाता । ४९ । दूसरे की गौ में दूसरे का वृषभ सौ बछरू को उत्पन्न करै तो गौ का स्वामी उस बछरू को पाता है और वृषभ का वीर्य व्यर्थ हुआ । ५० । तिसी प्रकार से दूसरे के खेत में बीज बोने वाला खेत वाले का अर्थ करता है आप फल को नहीं पाता । ५१ । इस स्त्री में जो उत्पन्न हो सो हमारा और तुम्हारा दोनों का होवे ऐसा फल को मन में न रख के जो उत्पन्न किया सो क्षेत्र वाले का होता है बीज से योनि बहुत बड़ी है । ५२ । इस स्त्री में जो उत्पन्न हो सो हमारा और तुम्हारा दोनों का होवे ऐसा मन में रख के जो उत्पन्न किया उस का भागी क्षेत्र वाला और बीज वाला दोनों होते हैं । ५३ । वायु से उड़ के बीज जिस के खेत में पड़ा उस का फल खेत वाला पाता है बीज वाला नहीं पाता । ५४ । गौ घोड़ा दासी ऊंट बकरी भेड़ पक्षी भैंस इन्हों की उत्पत्ति में यही धर्म जानना । ५५ । भृगु जी कहते हैं कि आप लोगों से बीज और योनि का प्राधान्य

सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते । सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत् । ४७ ।
यथा गोऽश्वोष्ट्रदासीषु महिष्यजाविकासु च । नोत्पादकः प्रजाभागी तथैवान्याङ्गनास्वपि । ४८ ।
येऽक्षेत्रिणो बीजवन्तः परक्षेत्रप्रवापिणः । ते वै सस्यस्य जातस्य न लभंते फलं क्वचित् । ४९ ।
यदन्यगोषु वृषभो वत्सानां जनयेच्छतम् । गोमिनामेव ते वत्सा मोघं स्कंदितमार्षभम् । ५० ।
तथैवाक्षेत्रिणो बीजं परक्षेत्रप्रवापिणः । कुर्वन्ति क्षेत्रिणामर्थं न बीजी लभते फलम् । ५१ ।
फलन्त्वनभिसंधाय क्षेत्रिणां बीजिनान्तथा । प्रत्यक्षं क्षेत्रिणामर्थो बीजाद्योनिर्गरीयसी । ५२ ।
क्रियाभ्युपगमात्त्वेतद्बीजार्थं यत्प्रदीयते । तस्येह भागिनौ दृष्टौ बीजी क्षेत्रिक एव च । ५३ ।
ओघवाताहृतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति । क्षेत्रिकस्यैव तद्बीजन्न वप्ता लभते फलम् । ५४ ।
एष धर्मो गवाश्वस्य दास्युष्ट्राजाविकस्य च । विहङ्गमहिषीणाञ्च विज्ञेयः प्रसवं प्रति । ५५ ।
एतद्वः सारफल्गुत्वं बीजयोन्योः प्रकीर्त्तितम् । अतः परम्प्रवक्ष्यामि योषितान्धर्म्ममापदि । ५६ ।
भ्रातुर्ज्येष्ठस्य भार्याया गुरुपत्न्यनुजस्य सा । यवीयसस्तु या भार्या स्नुषा ज्येष्ठस्य सा स्मृता । ५७ ।
ज्येष्ठो यवीयसो भार्यां यवीयान्वाग्रजस्त्रियम् । पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि । ५८ ।
देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ्नियुक्तया । प्रजेप्सिताधिगंतव्या संतानस्य परिक्षये । ५९ ।
विधवायान्नियुक्तस्तु घृताक्तो वाग्यतो निशि । एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयङ्कथञ्चन । ६० ।
द्वितीयमेके प्रजनं मन्यंते स्त्रीषु तद्विदः । अनिर्वृत्तं नियोगार्थम्पश्यन्तो धर्मतस्तयोः । ६१ ।
विधवायान्नियोगार्थे निर्वृत्ते तु यथाविधि । गुरुवच्च स्नुषावच्च वर्त्तेयातां परस्परम् । ६२ ।

अप्राधान्य को कहा इस के अनंतर स्त्रियों के आपत्काल में जो धर्म है उस को कहैंगे । ५६ । जेठे भाई की जो स्त्री है सो छोटे भाई की गुरु पत्नी कहाती है और छोटे भाई की जो स्त्री है सो जेठे भाई की पतोहू कहाती है । ५७ । आपत्काल न हो और पिता आदि की आज्ञा भी भई हो परंतु जेठे भाई की स्त्री में कनिष्ठ और कनिष्ठ भाई की स्त्री में ज्येष्ठ गमन करैं तो दोनों पतित होते हैं । ५८ । सन्तान के अभाव में श्वशुर आदि की आज्ञा को पाए हुए स्त्री सपिंड से अथवा देवर से इच्छित प्रजा को प्राप्त करै । ५९ । विधवा स्त्री में पिता आदि की आज्ञा को पाए हुए पुरुष रात को मौन होके देह में घी लगा के एक पुत्र को उत्पन्न करै दूसरे पुत्र को कभी न उत्पन्न करै । ६० । एक पुत्र और अपुत्र ये दोनों सम हैं ऐसा बड़े लोगों के प्रवाद से पिता आदि की आज्ञा से उत्पन्न जो पुत्र है उस का प्रयोजन सिद्ध न भया ऐसा मानने वाले और पिता आदि की आज्ञा से पुत्रोत्पादन विधि के जानने वाले जो दूसरे आचार्य हैं सो स्त्रियों में दूसरे पुत्र की उत्पत्ति को भी धर्म से मानते हैं । ६१ । जब गर्भ उत्पन्न हो चुका तब जेठे भाई गुरु की नाईं छोटे भाई की स्त्री पतोहू की नाईं आपुस में दोनों रहैं यह जब जेठा भाई को कनिष्ठ भाई की स्त्री में पुत्र उत्पन्न करने की पिता आदि की आज्ञा भई हो तब जानना । ६२ । * * *

पिता आदि की आज्ञा पाके और विधि छोड़ के इच्छा से जेठा भाई कनिष्ठ भाई की स्त्री में गमन करै अथवा कनिष्ठ भाई जेठा भाई की स्त्री में गमन करै तो दोनों पतित होते हैं जेठा भाई पतोहू में गमन करने वाला कहाता है छोटा भाई गुरु पत्नी में गमन करने वाला कहाता है। ६३। अब नियोग (अर्थात् पुत्रोत्पत्ति के लिये पिता आदि की आज्ञा) का निषेध करते हैं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीनों वर्ण विधवा स्त्री में पुत्रोत्पत्ति के लिये आज्ञा न देवैं और आज्ञा देने से नित्यधर्म को नाश करते हैं। ६४। विवाह के मंत्र में नियोग नहीं लिखा है और विधवा स्त्री के साथ रमण नहीं लिखा है। ६५। राजा वेण के राज्य में यह पशु धर्म को मनुष्यों के लिये वेण राजा ने कहा उस को पंडित द्विजों ने निंदा किया है। ६६। पूर्व काल में काम से नष्ट बुद्धि वाला राजर्षियों में श्रेष्ठ वेण राजा संपूर्ण पृथिवी का भोग करत संते वर्णों का संकर (अर्थात् मिलावट) किया। ६७। उस दिन से मोह करके संतान के लिये विधवा स्त्री को जो आज्ञा देता है उस की निंदा साधु लोग करते हैं। ६८। नियोग की विधि और निषेध को कहा उस का व्यवस्था कहते हैं जिस कन्या को वाणी से किसी को दिया और विवाह भया नहीं जिस को दिया रहा वह मर गया उसका सहोदर भाई उस कन्या का विवाह को आगे जो विधि कहैंगे उस करके करै। ६९। पवित्रता

नियुक्तौ यौ विधिं हित्वा वर्त्तेयातान्तु कामतः। तावुभौ पतितौ स्यातां स्नुषागगुरुतल्पगौ। ६३।
नान्यस्मिन्विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः। अन्यस्मिन् हि नियुंजाना धर्मं हन्युः सनातनम्।
६४। नोद्वाहिकेषु मंत्रेषु नियोगः कीर्त्त्यते क्वचित्। न विवाहविधावुक्तं विधवा वेदनं पुनः। ६५।
अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः। मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेणेराज्यं प्रशासति। ६६।
स महीमखिलां भुंजन् राजर्षिप्रवरः पुरा। वर्णानां संकरञ्चक्रे कामोपहतचेतनः। ६७।
ततः प्रभृति यो मोहात्प्रमीतपतिकां स्त्रियम्। नियोजयत्यपत्यार्थं तं विगर्हंति साधवः। ६८।
यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः। तामनेन विधानेन निजोविंदेत देवरः। ६९।
यथा विध्यधिगम्यैनां शुक्लवस्त्रां शुचिव्रताम्। मिथो भजेताप्रसवात्सकृत्सकृदृतावृतौ। ७०।
न दत्त्वा कस्यचित्कन्यां पुनर्दद्याद्विचक्षणः। दत्वा पुनः प्रयच्छन् हि प्राप्नोति पुरुषान्टतम्। ७१।
विधिवत्प्रतिगृह्यापि त्यजेत्कन्यां विगर्हिताम्। व्याधितां विप्रदुष्टां वा छद्मना चोपपादिताम्। ७२।
दोषवतीं कन्यामनाख्यायोपपादयेत्। तस्य तद्वितथं कुर्यात्कन्यादातुर्दुरात्मनः। ७३।
विधाय वृत्तिम्भार्यायाः प्रवसेत्कार्यवान्नरः। अवृत्तिकर्षिता हि स्त्री प्रदुष्येत्स्थितिमत्यपि। ७४।
विधाय प्रोषिते वृत्तिं जीवेन्नियममास्थिता। प्रोषिते त्वविधायैव जीवेच्छिल्पैरगर्हितैः। ७५।
प्रोषितो धर्मकार्यार्थम्प्रतीक्ष्योष्टौ नरः समाः। विद्यार्थं षट् यशोर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान्। ७६।

सहित व्रत करने वाली श्वेत वस्त्र पहिरे हुई कन्या का विधि पूर्वक विवाह करके सम ऋतु काल की रात्रि में एक एक बार गर्भ ग्रहण तक उस का गमन करै उस में जो संतति होगी सो जिस को वाणी से प्रथम दिया है उसी का कहावेगा। ७०। बुद्धिमान मनुष्य एक को कन्या देके फेर उस कन्या को दूसरे को न देवै कदाचित् देवै तो सहस्र पुरुष के वध को पाता है सप्त-पदी के पूर्व भार्या के धर्म की उत्पत्ति नहीं होती तब दूसरे के देने की शंका भई इस लिये इस वचन को कहा। ७१। निंदित व्याधि युक्त बहुत दुष्ट कपट से प्राप्त जो कन्या उस को विधि पूर्वक ग्रहण करके भी त्याग करना। ७२। दोष युक्त कन्या के दोष को बिना कहे उस को देने वाला दुरात्मा का कन्या दान व्यर्थ है। ७३। भार्या की जीविका करके कार्य वाला पुरुष वि-देश जावै क्योंकि भूखों से मरती हुई शीलवती भी स्त्री पर पुरुष को भजन करैगी इस लिये जीविका करके तब विदेश में जावै। ७४। जीविका विधान करके विदेश में पुरुष के गए संते नियम में स्थित होके स्त्री जीवै और जीविका विधान बिना किए हुए विदेश में पुरुष के गए संते सूत कातना और अनिंदित कारीगरी इन्हें आदि जो कर्म हैं उस्से जीवै। ७५। गुरु की आज्ञा संपा-दन आदि धर्म कार्य के लिये विद्या के अर्थ यश के अर्थ काम के लिये विदेश गए पुरुष की आज्ञा को क्रम से आठ छ तीन वर्ष तक करै इस के अनंतर पति के समीप में स्त्री जावै। ७६। * * * * *

विरोध करने वाली स्त्री का प्रतीक्षा (अर्थात् आशा) एक वर्ष तक पुरुष करै इस के अनंतर भी विरोध करती रहै तो भूषण आदि जो धन दिया है उस को लेकर उस के साथ संभोग न करै भोजन और वस्त्र को तो देवै। ७७। जूआ खेलना आदि से प्रमत्त मद करने वाली वस्तु सहित रोग से दुःखित ऐसे पति का अपमान जो स्त्री करती है उस को तीन महीना तक भूषण वस्त्र न देना। ७८। वायु आदि से उन्मत्त पतित नपुंसक व्याधि से बीज रहित पाप रोगी ऐसे पति से विरोध करने वाली स्त्री का त्याग करना और उस का धन न लेना। ७९। मद्य पीने वाली साधुओं के आचरण से रहित शत्रुता करने वाली व्याधि से युक्त घात करने वाली निरंतर अर्थ का नाश करने वाली ऐसी स्त्री हो तो दूसरा विवाह करना। ८०। वंध्या (अर्थात् जिस को संतान न हो) मृत प्रजा (अर्थात् जिस की संतति हो होके मरजाय) केवल कन्या ही को उत्पन्न करने वाली ऐसी स्त्री के ऊपर क्रम से आठएं दसएं ग्यारहें वर्ष में दूसरा विवाह करना और अप्रिय बोलने वाली स्त्री के ऊपर तो तुरंत दूसरा विवाह करना। ८१। जो स्त्री रोगिणी हो परंतु हित करने वाली हो शील से युक्त हो उस की आज्ञा पाके दूसरा विवाह करना और उसका अपमान कभी न करना। ८२। जिस स्त्री के ऊपर विवाह दूसरा पति ने किया और वह स्त्री रुष्ट होके गृह से निकलती हो तो उस

संवत्सरम्प्रतीक्षेत द्विषंतीं योषितम्पतिः। ऊर्द्ध्वं संवत्सरात्त्वेनां दायं हृत्वा न संवसेत्। ७७।
अतिक्रामेत्प्रमत्तं वा मत्तं रोगार्त्तमेव वा। सा त्रीन्मासान्परित्याज्या विभूषणपरिच्छदा। ७८।
उन्मत्तं पतितं क्लीबमबीजं पापरोगिणम्। न त्यागोऽस्ति द्विषन्त्याश्च न च दायापवर्तनम्। ७९।
मद्यपाऽसाधुवृत्ता च प्रतिकूला च या भवेत्। व्याधिता वाधिवेत्तव्या हिंस्राऽर्थघ्नी च सर्वदा। ८०।
वंध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा। एकादशे स्त्री जननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी। ८१।
या रोगिणी स्यात्तु हिता संपन्ना चैव शीलतः। सानुज्ञाप्याधिवेत्तव्या नावमान्या च कर्हिचित्। ८२।
अधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेद्रुषिता गृहात्। सा सद्यः सन्निरोद्धव्या त्याज्या वा कुलसन्निधौ। ८३।
प्रतिषिद्धापि चेद्यातु मद्यमभ्युदयेष्वपि। प्रेक्षा समाजं गच्छेद्वा सा दंड्या कृष्णलानि षट्। ८४।
यदि स्वाश्च पराश्चापि विंदेरन् योषितो द्विजाः। तासां वर्णक्रमेण स्याज्ज्यैष्ठ्यम्पूजा च वेश्म च। ८५।
भर्त्तुः शरीरशुश्रूषां धर्मकार्यञ्च नैत्यकम्। स्वा चैव कुर्यात्सर्वेषां नास्वजातिः कथंचन। ८६।
यस्तु तत्कारयेन्मोहात्सजात्यास्थितयान्यया। यथा ब्राह्मणचाण्डालः पूर्वदृष्टस्तथैव सः। ८७।
उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च। अप्राप्तामपि तान्तस्मै कन्यां दद्याद्यथाविधि। ८८।
काममामरणात्तिष्ठेद्गृहे कन्यर्त्तुमत्यपि। न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्। ८९।
त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्य्युतुमती सती। ऊर्द्ध्वं तु कालादेतस्माद्विंदेत सदृशम्पतिम्। ९०।
अदीयमाना भर्त्तारमधिगच्छेद्यदि स्वयम्। नैनः किञ्चिदवाप्नोति न च यं साधिगच्छति। ९१।

को रोक के गृह में रखना अथवा कुल के समीप त्याग करना। ८३। क्षत्रिय आदि की स्त्री भर्त्ता आदि से निवारित है और विवाह आदि उत्सव में भी निषिद्ध मद्य को पीवै अथवा नृत्य आदि स्थान जन समुदाय में गमन करै सो छ रत्ती सुवर्ण दंड देवै। ८४। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये सब अपने वर्ण की और दूसरे वर्ण की स्त्रियों का विवाह करैं तो उन स्त्रियों की ज्येष्ठता पूजा गृह ये सब वर्ण क्रम से प्रधान होते हैं। ८५। भर्त्ता के शरीर की सेवा नित्य धर्म कार्य इन को सब वर्णों में अपने वर्ण की जो स्त्री है सोई करै दूसरे वर्ण की स्त्री न करै। ८६। उन दोनों कर्म को अपने वर्ण की स्त्री रहत संते मोह से दूसरे वर्ण की स्त्री से करावै तो जैसा ब्राह्मणी में शूद्र से उत्पन्न ब्राह्मण चाण्डाल है तैसा वह है यह ऋषियों ने कहा। ८७। कुलाचार आदि से उत्कृष्ट सुरूप अपने जाति वाला ऐसा वर जब मिलै तब छोटी भी कन्या होवै (अर्थात् विवाह के योग्य न होवै) तो उस का विधि पूर्वक विवाह कर देना। ८८। ऋतुमती भी कन्या होकर गृह में मरण तक रहै परंतु उस कन्या को गुण हीन पुरुष को कभी न देवै। ८९। तीन वर्ष तक ऋतुमती कन्या अच्छे वर की आशा करै इस के अनंतर सदृश पति को प्राप्त होवै। ९०। पिता आदि नहीं देते और कन्या आप से भर्त्ता का स्वीकार करै तो उस कन्या को वर को दोष नहीं। ९१। * *

स्वयंवरा (अर्थात् आप से पति का स्वीकार करने वाली कन्या) माता पिता भाई का दिया हुआ भूषण को न लेवै और लेवै तो चोर कहाती है। ९२। ऋतुमती कन्या का विवाह करने वाला वर कन्या के पिता को शुल्क (अर्थात् जिस बस्तु को देकर कन्या ग्रहण करैं) न देवै क्योंकि ऋतु के प्रतिरोध से (अर्थात् पहिले ही विवाह होता तो ऋतु काल में गर्भ धारण होता उस के रुकावट से) पिता अपने स्वामी भाव से छूट जाता है। ९३। तीस वर्ष का वर हृदय के प्रिय बारह वर्ष की कन्या का बिवाह करै अथवा चौबीस वर्ष का वर आठ वर्ष की कन्या का विवाह करै यह योग्य काल देखाया है नियम नहीं है इतने दिन में वेद ग्रहण कर चुकता है तब गृहस्थाश्रम में आने को विलंब न करै। ९४। देवतों की दिई हुई कन्या को पति पाता है अपनी इच्छा से नहीं इस लिये देवतों का हित करत संते उस साध्वी स्त्री का पोषण नित्य ही करै। ९५। गर्भ धारण के लिये स्त्री को और गर्भ स्थापन के लिये पुरुष को उत्पन्न किया इस लिये वेद में स्त्री पुरुष का साधारण धर्म है (अर्थात्) स्त्री के साथ ही अग्निहोत्र आदि धर्म को पति करै)। ९६। कन्या का शुल्क देके शुल्क देने वाला मर जाय तो उस के भाई के साथ उस कन्या का विवाह

अलंकारन्नाददीत पित्र्यं कन्या स्वयम्वरा। मातृकं भ्रातृदत्तम्वा स्तेनास्याद्यदि तं हरेत्। ९२।
पित्र्येन दद्याच्छुल्कन्तु कन्यामृतुमतीं हरन्। स हि स्वाम्यादतिक्रामेदृतूनां प्रतिरोधनात्। ९३।
त्रिंशद्वर्षो वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम्। त्र्यष्टवर्षोष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः। ९४।
देवदत्ताम्पतिर्भार्याम्विंदेतनेच्छयात्मनः। तां साध्वीं विभृयान्नित्यं देवानाम्प्रियमाचरन्। ९५।
प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः संतानार्थञ्च मानवाः। तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः। ९६।
कन्यायान्दत्तशुल्कायां म्रियते यदि शुल्कदः। देवराय प्रदातव्या यदिकन्यानुमन्यते। ९७।
आददीत न शूद्रोपि शुल्कं दुहितरन्ददन्। शुल्कं हि गृह्णन्कुरुते छन्नं दुहितृविक्रयम्। ९८।
एतत्तु न परे चक्रुर्नापरे जातु साधवः। यदन्यस्य प्रतिज्ञाय पुनरन्यस्य दीयते। ९९।
नानुशुश्रूम जात्वेतत्पूर्वेष्वपि हि जन्मसु। शुल्कसंज्ञेन मूल्येन छन्नं दुहितृविक्रयम्। १००।
अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणांतिकः। एष धर्म्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः। १०१।
तथा नित्यं यतेयातां स्त्रीपुंसौ तु कृतक्रियौ। यथा नाभिचरेतां तौ वियुक्ताावितरे तरम्। १०२।
एष स्त्रीपुंसयोरुक्तो धर्मो वो रतिसंहितः। आपद्यपत्यप्राप्तिश्च दायधर्मन्निबोधत। १०३।
ऊर्द्ध्वं पितुश्च मातुश्च समेत्य भ्रातरः समम्। भजेरन् पैत्रिकं रिक्थमनीशास्ते हि जीवतोः। १०४।
ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयात्पित्र्यन्धनमशेषतः। शेषास्तमुपजीवेयुर्यथैव पितरन्तथा। १०५।
ज्येष्ठेन जातमात्रेण पुत्री भवति मानवः। पितॄणामनृणश्चैव स तस्मात्सर्वमर्हति। १०६।
यस्मिन्नृणं सन्नयति येन चानंत्यमश्नुते। स एव धर्मजः पुत्रः कामजानितरान्विदुः। १०७।

करना परंतु वह कन्या जब माने। ९७। शूद्र भी कन्या को देत संते शुल्क न लेवै उस के लेने से ढंपा हुआ कन्या विक्रय कहाता है। ९८। एक को कहके दूसरे को देना इस बात को कोई छोटे बड़े ने कभी नहीं किया। ९९। शुल्क नाम जो मोल है उस करके ढंपा हुआ कन्या विक्रय इस को पूर्व जन्म में भी कभी न सुना। १००। मरण तक दोनों का वियोग न होवै यह संक्षेप से स्त्री पुरुष का परम धर्म जानना। १०१। जिस में परस्पर वियोग न होवै ऐसा यत्न क्रिया करके स्त्री पुरुष रहैं। १०२। स्त्री पुरुष का आपुस का प्रेम (अर्थात् परस्परानुराग) युक्त जो यह धर्म है और आपत्काल में संतान की प्राप्ति इन दोनों को कहा इस के अनंतर दाय भाग (अर्थात् हिस्सा) को जानो। १०३। माता पिता के मरणानन्तर सब मिलके माता पिता के द्रव्य को सम विभाग करैं माता पिता के जीते हुए सब लड़के असमर्थ हैं। १०४। पिता के संपूर्ण धन को जेठा ही लेवै और मध्यम भाई छोटे भाई ये सब जेठे से जीवन को पावैं जैसे पिता से पाते रहे। १०५। जेठ पूत्र उत्पन्न होने से मनुष्य पुत्रवान् कहाता है और पितरों के ऋण से छूट जाता है इस लिये जेठ पुत्र सब धन लेने के योग्य होता है। १०६। जिस के भये संते ऋण को पिता शोधन करता है और मोक्ष को पाता है सोई धर्म से जायमान पुत्र है और सब काम से जायमान है यह ऋषियों ने कहा। १०७।

पिता की नाईं जेठ पुत्र सब भाईयों की रक्षा करै और जेठे भाई में पुत्र की नाईं छोटे भाई रहैं । १०८ । जेठा ही कुल को बढ़ाता है और बिनाश करता है और लोक में बहुत पूज्य जेठ ही है सज्जन लोगों ने उस की निंदा नहीं की है । १०९ । जो ज्येष्ठता का आचरण करता है सो माता पिता की नाईं है और जो ज्येष्ठता का आचरण नहीं करता है सो बंधु की नाईं पूज्य है । ११० । इस रीती से सब एक में रहैं अथवा धर्म करने की इच्छा करके पृथक् रहैं पृथक् रहने से धर्म बढ़ता है इस लिये पृथक् रहना धर्म से युक्त है । १११ । संपूर्ण द्रव्य में श्रेष्ठ द्रव्य और बीसवां अंश ज्येष्ठ को और मध्यम को चालीसवां भाग कनिष्ठ को अस्सीवां भाग देके जो बचै उस का सम भाग करके सब कोई लेवैं । ११२ । ज्येष्ठ और कनिष्ठ को जैसा कहा है तैसा ही देना मध्यम को मध्यम धन भी देना । ११३ । सर्व धन में जो श्रेष्ठ धन है और सजातीय धन में जो श्रेष्ठ धन है और गौ आदि जो पशु हैं उन में से एक श्रेष्ठ पशु इन तीनों बस्तु को ज्येष्ठ लेवै परंतु यह विभाग ज्येष्ठ गुणी हो और कनिष्ठ मध्यम निर्गुणी हो तब जानना । ११४ । सब भाई अपने कर्म में सम्पन्न होवैं तो जो उद्धार पीछे कह आए हैं सो करना किंतु जेठे का मान रखने के लिये कुछ एक छोटी बस्तु देना । ११५ । इस प्रकार से ज्येष्ठ को उद्धार देके अवशिष्ट धन का सम

पितेव पालयेत्पुत्रान् ज्येष्ठो भ्रातॄन् यवीयसः । पुत्रवच्चापि वतरन् ज्येष्ठे भ्रातरि धर्मतः । १०८ ।
ज्येष्ठः कुलं वर्द्धयति विनाशयति वा पुनः । ज्येष्ठः पूज्यतमो लोके ज्येष्ठः सद्भिरगर्हितः । १०९ ।
यो ज्येष्ठो ज्येष्ठवृत्तिः स्यान्मातेव स पितेव सः । अज्येष्ठवृत्तिर्यस्तु स्यात्स संपूज्यस्तु बंधुवत् । ११० ।
एवं सह वसेयुर्वा पृथग्वा धर्मकाम्यया । पृथग्विवर्द्धते धर्मस्तस्माद्धर्म्या पृथक् क्रिया । १११ ।
ज्येष्ठस्य विंश उद्धारः सर्वद्रव्याच्च यद्वरम् । ततोऽर्द्धं मध्यमस्य स्यात्तुरीयन्तु यवीयसः । ११२ ।
ज्येष्ठश्चैव कनिष्ठश्च संहरेतां यथोदितम् । येन्ये ज्येष्ठकनिष्ठाभ्यां तेषां स्यान्मध्यमन्धनम् । ११३ ।
सर्वेषां धनजातानामाददीताग्र्यमग्रजः । यच्च सातिशयं किंचिद्दशतश्चाप्नुयाद्वरम् । ११४ ।
उद्धारो न दशस्वस्ति सम्पन्नानां स्वकर्मसु । यत्किंचिदेव देयं तु ज्यायसे मानवर्द्धनम् । ११५ ।
एवं समुद्धृतोद्धारे समानंशान्प्रकल्पयेत् । उद्धारेऽनुद्धृते त्वेषामियं स्यादंशकल्पना । ११६ ।
एकाधिकं हरेत् ज्येष्ठः पुत्रोध्यर्द्धन्ततोऽनुजः । अंशमंशंयवीयांस इति धर्मोव्यवस्थितः । ११७ ।
स्वेभ्योंऽशेभ्यस्तु कन्याभ्यः प्रदद्युर्भ्रातरः पृथक् । स्वात्स्वादंशाच्चतुर्भागम्पतितास्युरदित्सवः । ११८ ।
अजाविकं सैकशफन्न जातु विषमं भजेत् । अजाविकं तु विषमं ज्येष्ठस्यैव विधीयते । ११९ ।
यवीयान् ज्येष्ठभार्यायां पुत्रमुत्पादयेद्यदि । समस्तत्र विभागः स्यादितिधर्म्मोव्यवस्थितः । १२० ।
उपसर्जनं प्रधानस्य धर्मतो नोपपद्यते । पिता प्रधानं प्रजने तस्माद्धर्मेण तं भजेत् । १२१ ।
पुत्रः कनिष्ठो ज्येष्ठायां कनिष्ठायां च पूर्वजः । कथन्तत्र विभागः स्यादितिचेत्संशयोभवेत् । १२२ ।
एकं वृषभमुद्धारं संहरेत स पूर्वजः । ततोपरे ज्येष्ठवृषास्तदूनानां स्वमातृतः । १२३ ।

विभाग करना और उद्धार न देवै तो आगे जो अंश कल्पना करैंगे सो करै । ११६ । दो अंश ज्येष्ठ लेवै और कनिष्ठ डेढ़ अंश लेवै सब से छोटा एक अंश लेवै यह धर्म व्यवस्थित है (अर्थात् व्यवस्था के प्राप्त है) । ११७ । पृथक् पृथक् अपने अंश से चतुर्थांश सब भाई भगिनी को देवैं न देवैं तो पतित होते हैं । ११८ । बकरी भेड़ एक खुर वाले (अर्थात् घोड़ा आदि) ये सब विषम हो (अर्थात् चार भाई हैं और पांच घोड़ा हों) तो विषम विभाग न करना (अर्थात् बचै सो जेठा लेवै) । ११९ । छोटा भाई जेठे भाई की स्त्री में पुत्र उत्पन्न करै तो उस पुत्र के साथ चाचा लोग सम विभाग करैं उस पुत्र को जेठाई का भाग न देवैं यह धर्म व्यवस्थित है । १२० । प्रधान को गौण करना यह बात धर्म नहीं है उत्पत्ति में पिता प्रधान है इस लिये धर्म करके पिता का सेवन करै । १२१ । एक को दो स्त्री हों और छोटी स्त्री में पहिले लड़का भया और जेठी स्त्री में पीछे लड़का भया इस स्थान में कैसा भाग करना ऐसी संशय में समाधान आगे के श्लोक में कहैंगे । १२२ । प्रथम विवाहिता स्त्री में पीछे से जो भया है सो एक श्रेष्ठ वृषभ-उद्धार लेवै और भाई उस श्रेष्ठ वृषभ से कनिष्ठ वृषभ उद्धार लेवै माता के विवाह क्रम से ज्येष्ठता जानना । १२३ ।

ज्येष्ठ स्त्री में पहिले लड़का भया हो तो पंद्रह गौ और एक वृषभ लेवै तिस के अनंतर लहुरी स्त्री में जो लड़के भये हैं सो अपनी माता के विवाह क्रम से जेठाई को पाए हुए बची गौ का विभाग करैं यह निश्चय है। १२४। सम जाति की स्त्री में उत्पन्न जितने लड़के हैं उन्हों में माता के विवाह क्रम से जेठाई नहीं है किंतु जन्म से जेठाई है। १२५। केवल विभाग ही में जन्म से जेठाई है यह नहीं किंतु ज्योतिष्टोम यज्ञ में इंद्र के बुलाने के लिये स्वब्रह्मण्य नाम का मंत्र है उस में पहिले जो लड़का भया है उस के नाम से कहा जाता है कि फलाने लड़के का बाप यज्ञ करता है ऐसा ऋषियों ने कहा और जो साथ ही दो लड़के उत्पन्न होते हैं वहां यद्यपि गर्भ स्थापन में प्रथम बीज से उत्पन्न पीछे होगा और पिछिले बीज से उत्पन्न आगे होगा तथापि पहिले उत्पन्न होगा सोई जेठ कहावैगा। १२६। कन्या दान समय में दामाद के साथ ऐसी सलाह करै कि हमारे पुत्र नहीं है इस कन्या में जो पुत्र होगा सो हमारा श्राद्ध आदि कर्म करने वाला होगा इस प्रकार से कन्या को पुत्रिका करै। १२७। पूर्व काल में अपने वंश बढ़ने के लिये इस विधान से दक्ष प्रजापति ने पुत्रिका किया। १२८। प्रसन्नता से सत्कार पूर्वक दक्ष प्रजापति ने धर्म को दश कश्यप को तेरह चंद्रमा को सत्ताईस कन्या दिया। १२९। जैसी अपनी आत्मा है तैसा ही पुत्र है और पुत्र के समान

ज्येष्ठस्तु जातो ज्येष्ठायां हरेद्वृषभषोडशः। ततः स्वमातृतः शेषा भजेरन्निति धारणा। १२४।
सदृशस्त्रीषु जातानाम्पुत्राणामविशेषतः। न मातृतो ज्यैष्ठ्यमस्ति जन्मतो ज्यैष्ठ्यमुच्यते। १२५।
जन्मज्येष्ठेन चाह्वानं स्वब्राह्मण्यास्वपि स्मृतम्। यमयोश्चैव गर्भेषु जन्मतोज्येष्ठता स्मृता। १२६।
अपुत्रोऽनेन विधिना सुतां कुर्वीत पुत्रिकाम्। यदपत्यं भवेदस्यां तन्मम स्यात्स्वधाकरम्। १२७।
अनेन तु विधानेन पुरा चक्रेऽथ पुत्रिकाः। विवृद्ध्यर्थं स्ववंशस्य स्वयं दक्षः प्रजापतिः। १२८।
ददौ सदशधर्म्माय कश्यपाय त्रयोदश। सोमाय राज्ञे सत्कृत्य प्रीतात्मा सप्तविंशतिम्। १२९।
यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा। तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत्। १३०।
मातुस्तु यौतकं यत्स्यात्कुमारी भाग एव सः। दौहित्र एव च हरेदपुत्रस्याखिलन्धनम्। १३१।
दौहित्रो ह्यखिलं रिक्थमपुत्रस्य पितुर्हरेत्। स एव दद्याद्द्वौ पिण्डौ पित्रे मातामहाय च। १३२।
पौत्रदौहित्रयोर्लोके न विशेषोऽस्ति धर्मतः। तयोर्हि मातापितरौ संभूतौ तस्य देहतः। १३३।
पुत्रिकायां कृतायां तु यदि पुत्रोऽनुजायते। समस्तत्र विभागः स्यात् ज्येष्ठता नास्ति हि स्त्रियाः। १३४।
अपुत्रायां मृतायां तु पुत्रिकायां कथंचन। धनं तत्पुत्रिका भर्त्ता हरेतैवाविचारयन्। १३५।
अकृता वा कृता वापि यं विंदेत्सदृशात्सुतम्। पौत्री मातामहस्तेन दद्यात्पिण्डं हरेद्धनम्। १३६।
पुत्रेण लोकान् जयति पौत्रेणानंत्यमश्नुते। अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्नस्याप्नोति विष्टपम्। १३७।

कन्या है इस लिये आत्मा के समान कन्या रहत संते किस प्रकार से दूसरा कोई धन को हरण करै। १३०। माता के मरे संते उस का यौतक धन जिस का लक्षण आगे कहैंगे सो धन कुमारी कन्या पाती है और पुत्र रहित पुरुष का सब धन दौहित्र (अर्थात् लड़की का लड़का) पाता है। १३१। पुत्र रहित पुरुष का संपूर्ण धन दौहित्र लेवै और दो पिण्ड देवै एक अपने पिता को और एक अपने नाना को। १३२। लोक में पोता और नाती इन दोनों में विशेष नहीं है (अर्थात् सम है क्योंकि दोनों में एक का पिता और एक की माता इन दोनों की उत्पत्ति एक ही से है। १३३। पुत्र रहित पुरुष को पुत्रिका किए संते जब पुत्र उत्पन्न हो तो उस स्थान में पुत्रिका के साथ औरस पुत्र का सम विभाग होता है स्त्री को जेठाई नहीं है इस लिये जेठाई का अंश न पावैगी। १३४। पुत्र रहित पुत्रिका के मरे संते उस के धन को उस का पति लेवै इस में विचार कुछ न करै। १३५। कन्या को पुत्र भाव करके माना हो अथवा पुत्र भाव करके न माना हो परंतु वह कन्या अपने जात वाले वर से पुत्र उत्पन्न करै तो वह पुत्र पुत्र रहित नाना का धन लेवै नाना को पिंड देवै उस करके नाना पोता वाला कहाता है। १३६। पुत्र करके इंद्र आदि लोक को जीतता है और पोता करके अनंत फल को पाता है और पोता के पुत्र करके सूर्य लोक को पाता है। १३७।

जिस कारण से पुत् कहिए नरक उस्से त्र कहिए पिता का रक्षण करै इसी कारण से पुत्र कहाता है इस बात को ब्रह्मा जी ने कहा । १३८ । संसार में पोता नाती दोनों सम हैं नाती भी नाना को परलोक में पोता की नाईं तारता है । १३९ । पुत्रि का पुत्र प्रथम पिण्ड माता को देवै दूसरा पिण्ड नाना को देवै तीसरा पिण्ड नाना के बाप को देवै । १४० । दूसरे गोत्र से भी लड़का आया हो परंतु सब गुण से युक्त हो और वह जिस का दत्तक पुत्र भया है उस के सब धन को पाता है । १४१ । उत्पन्न करने वाले का गोत्र और द्रव्य को दत्तक पुत्र नहीं पाता किंतु जिस का दत्तक होता है उसी का गोत्र और द्रव्य को पाता है और उसी को पिण्ड देता है जिस्से उत्पन्न भया है उस को पिण्ड नहीं देता । १४२ । पिता आदि की आज्ञा बिना देवर आदि से विधवा स्त्री ने उत्पन्न किया जो पुत्र सो और पुत्र रहत संते श्वशुर आदि की आज्ञा करके देवर से स्त्री ने उत्पन्न किया जो पुत्र सो ये दोनों भाग को नहीं पाते क्योंकि एक जार (अर्थात् दूसरा पति) से उत्पन्न है और दूसरा काम से उत्पन्न है । १४३ । श्वशुर आदि की आज्ञा को पाए हुए स्त्री अविधान से पुत्र उत्पन्न करै तो वह पुत्र पिता के धन को नहीं पाता क्योंकि वह पुत्र पतित से उत्पन्न है । १४४ । जिस प्रकार से औरस पुत्र धन को हरण करता है उसी प्रकार से श्वशुर आदि की आज्ञा से स्त्री ने उत्पन्न किया जो पुत्र सो धन को ग्रहण करै क्षेत्र वाले का वह बीज है और वह उत्पत्ति धर्म से है । १४५ । मरे भाई का धन और

पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः । तस्मात्पुत्र इतिप्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा । १३८ ।
पौत्रदौहित्रयोर्लोके विशेषो नोपपद्यते । दौहित्रोपि ह्यमुत्रैनं सन्तारयति पौत्रवत् । १३९ ।
मातुः प्रथमतः पिण्डन्निर्वपेत्पुत्रिकासुतः । द्वितीयन्तु पितुस्तस्यास्तृतीयं तत्पितुः पितुः । १४० ।
उपपन्नो गुणैः सर्वैः पुत्रो यस्य तु दत्रिमः । स हरेतैव तद्रिक्थं संप्राप्तोऽप्यन्यगोत्रतः । १४१ ।
गोत्ररिक्थे जनयितुर्न हरेद्दत्रिमः सुतः । गोत्ररिक्थानुगः पिण्डो व्यपैति ददतः स्वधा । १४२ ।
अनियुक्तासुतश्चैव पुत्रिण्याप्तश्च देवरात् । उभौ तौ नार्हतो भागं जारजातककामजौ । १४३ ।
नियुक्तायामपि पुमान्नार्यां जातोऽविधानतः । नैवार्हः पैत्रिकं रिक्थम्पतितोत्पादितो हि सः । १४४ ।
हरेत्तत्र नियुक्तायां जातः पुत्रो यथौरसः । क्षेत्रिकस्य तु तद्बीजं धर्मतः प्रसवश्च सः । १४५ ।
धनं यो बिभृयाद्भ्रातुर्मृतस्य स्त्रियमेव च । सोपत्यं भ्रातुरुत्पाद्य दद्यात्तस्यैव तद्धनम् । १४६ ।
या नियुक्तान्यतः पुत्रन्देवराद्वाप्यवाप्नुयात् । तं कामजमरिक्थीयं वृथोत्पन्नम्प्रचक्षते । १४७ ।
एतद्विधानं विज्ञेयं विभागस्यैकयोनिषु । बह्वीषु चैकजातानां नाना स्त्रीषु निबोधत । १४८ ।
ब्राह्मणस्यानुपूर्व्येण चतस्रस्तु यदि स्त्रियः । तासां पुत्रेषु जातेषु विभागेऽयम्विधिः स्मृतः । १४९ ।
कीनाशो गोवृषो यानमलंकारश्च वेश्म च । विप्रस्योद्धारिकं देयमेकांशश्च प्रधानतः । १५० ।
त्र्यंशं दायाद्धरेद्विप्रो द्वावंशौ क्षत्रिया सुतः । वैश्याजः सार्द्धमेवांशमंशं शूद्रा सुतो हरेत् । १५१ ।

स्त्री इन दोनों को जो ग्रहण करै सो उस स्त्री में पुत्र उत्पन्न करके उसी पुत्र को धन देवै । १४६ । श्वशुर आदि की आज्ञा को पाए हुए स्त्री देवर से अथवा दूसरे सपिण्ड से पुत्र को उत्पन्न करै और वह पुत्र काम से उत्पन्न भया है ऐसा जाना जाय तो धन को नहीं पाता और वह व्यर्थ उत्पन्न है ऐसा ऋषि लोग कहते हैं और नारद ऋषि ने काम से उत्पन्न पुत्र का लक्षण कहा है कि संभोग समय में स्त्री के मुख से अपने मुख को न लगावै और अंग से अंग को न लगावै केवल योनि में लिंग प्रवेश करके जो उत्पन्न हो सो संतान के अर्थ है वह काम से उत्पन्न नहीं है इस्से भिन्न रीति से उत्पन्न हो सो काम से उत्पन्न कहाता है । १४७ । एक योनि में (अर्थात् समान जाति की बहुत स्त्री में) पूर्व कथित विभाग को जानो और बहुत जाति की बहुत स्त्री में एक से उत्पन्न बहुत पुत्रों का विभाग आगे कहेंगे सो जानो । १४८ । क्रम से ब्राह्मण को जब चारो वर्ण की स्त्री होवै तो उन स्त्रियों में उत्पन्न जो पुत्र हैं उन्हों के विभाग में आगे कहेंगे जो विधि उस को जानो । १४९ । खेती करने वाला मनुष्य गौ को बहने वाला वृषभ और यान (अर्थात् घोड़ा आदि) अलंकार गृह और जितने अंश हैं उन में एक प्रधान अंश इन सब को ब्राह्मणी के पुत्र को उद्धार देके शेष का विभाग आगे जो रीति कहेंगे उस रीति से करै । १५० । ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन चारो वर्ण की स्त्री में ब्राह्मण से उत्पन्न जो पुत्र है सो क्रम से तीन दुइ डेढ़ एक अंश को लेवै । १५१ । * *

अथवा सब धन का दस भाग करके आगे जो रीति कहैंगे उस से धर्म करके युक्त विभाग को धर्म के जानने वाले करें। १५२। चारो वर्ण की स्त्री के पुत्र वर्ण क्रम करके चार तीन दो एक अंश को ग्रहण करें। १५३। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीन वर्ण की स्त्री में ब्राह्मण से पुत्र उत्पन्न भया हो अथवा न भया हो परंतु शूद्र वर्ण की स्त्री के पुत्र को धर्म करके दशवां अंश से अधिक न देवै। १५४। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीनों वर्ण के धन का ग्रहण शूद्र वर्ण की स्त्री का पुत्र नहीं करता है उस का पिता जो देवै सोई उस का धन है। १५५। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य के समान वर्ण में उत्पन्न जो पुत्र है सो जेठ को उद्धार देके और धन का सब भाग करें। १५६। शूद्र को अपने वर्ण ही की स्त्री है दूसरे वर्ण की नहीं है इस लिये सौ लड़के हों तौ भी सम भागै पाते हैं। १५७। ब्रह्मा के पुत्र मनु जी ने मनुष्यों को जो बारह प्रकार के पुत्र कहा तिस में पहिले से छ बंधु दायाद (अर्थात् बांधव कहाते हैं और गोत्र का धन हरने वाले) कहाते हैं और उत्तर के छ अबांधव अदायाद (अर्थात् बांधव भी नहीं कहाते और गोत्र का धन लेने वाले भी नहीं) कहाते हैं। १५८। औरस क्षेत्रज दत्तक कृत्रिम गूढोत्पन्न अपविद्ध ये छ दायाद बांधव कहाते हैं। १५९। कानीन सहोढ़ क्रीत पौनर्भव स्वयंदत्त शौद्र ये छ अदायाद बांधव कहाते हैं। १६०। निकाम नाव करके जल को

सर्वं वा रिक्थजातं तद्दशधा परिकल्प्य च। धर्म्यं विभागं कुर्वीत विधिनाऽनेन धर्म्मवित्। १५२।
चतुरोंऽशान्हरेद्विप्रस्त्रीनंशान्क्षत्रिया सुतः। वैश्यापुत्रो हरेद्द्व्यंशमंशं शूद्रा सुतो हरेत्। १५३।
यद्यपि स्यात्तु सत्पुत्रो यद्यऽपुत्रोऽपि वा भवेत्। नाधिकन्दशमाद्द्याच्छूद्रापुत्राय धर्म्मतः। १५४।
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्रा पुत्रो न रिक्थभाक्। यदेवास्य पिता दद्यात्तदेवास्य धनम्भवेत्। १५५।
समवर्णासु ये जाताः सर्वे पुत्रा द्विजन्मनाम्। उद्धारं ज्यायसे दत्वा भजेरन्नितरे समम्। १५६।
शूद्रस्य तु सवर्णैव नाऽन्या भार्या विधीयते। तस्यां जाताः समांशाः स्युर्यदि पुत्रशतम्भवेत्। १५७।
पुत्रान्द्वादश यानाह नृणां स्वायंभुवो मनुः। तेषां षड्बंधुदायादाः षड्दायादबांधवाः। १५८।
औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च। गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च दायादा बांधवाश्च षट्। १५९।
कानीनश्च सहोढश्च क्रीतःपौनर्भवस्तथा। स्वयन्दत्तश्च शौद्रश्च षड्दायादबांधवाः। १६०।
यादृशं फलमाप्नोति कुप्लवैः संतरन् जलम्। तादृशं फलमाप्नोति कुपुत्रैः संतरं स्तमः। १६१।
यद्येकरिक्थिनौ स्यातामौरसक्षेत्रजौ सुतौ। यस्य यत्पैत्रिकं रिक्थं स तद्गृह्णीत नेतरः। १६२।
एक एवौरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः। शेषाणामानृशंस्यार्थं प्रदद्यात्तु प्रजीवनम्। १६३।
षष्ठंतु क्षेत्रजस्यांशं प्रदद्यात्पैत्रिकाद्धनात्। औरसो विभजन्दायं पित्र्यं पंचममेव वा। १६४।
औरसक्षेत्रजौ पुत्रौ पितृरिक्थस्य भागिनौ। दशापरे तु क्रमशो गोत्ररिक्थांशभागिनः। १६५।
स्वे क्षेत्रे संस्कृतायां तु स्वयमुत्पादयेद्धियम्। तमौरसं विजानीयात्पुत्रं प्रथमकल्पितम्। १६६।

तरत संते जैसे फल को पाता है तैसे फल को निकाम पुत्र से नरक को तरत संते पाता है। १६१। व्याधि आदि से नष्ट बीज वाला पुरुष की स्त्री में पिता आदि की आज्ञा को पाए हुए पुत्र रहित देवर आदि ने पुत्र उत्पन्न किया पीछे औषध आदि से पुष्ट बीज हुए संते उस पुरुष ने अपनी स्त्री में पुत्र उत्पन्न किया तब उस पुरुष के धन का स्वामी क्षेत्रज औरस दो पुत्र हुए तिस पर यह बात मनुजी ने कहा कि जिस के बीज से जो उत्पन्न हो सो उस का धन पावै। १६२। एक ही औरस पुत्र पिता के संपूर्ण धन का स्वामी है वह और भाईयों को दया करके भोजन और वस्त्र को देवै। १६३। पिता आदि की आज्ञा से पुत्र उत्पन्न करने वाला पुत्रवान हो तो क्षेत्रज औरस दोनों पुत्र अपने पिता के धन का छ भाग करैं अथवा पांच भाग करैं एक भाग को क्षेत्रज लेवै और सब धन को औरस लेवै अंश का विकल्प जो है सो जब क्षेत्रज गुणवान हो तो पांच भाग करना और गुण से रहित हो तो छ भाग करना। १६४। क्षेत्रज औरस यह दोनों पुत्र पिता के धन को ग्रहण करने वाले हैं और जो दश पुत्र हैं सो गोत्र और धन इन दोनों को क्रम से ग्रहण करते हैं। १६५। संस्कार से युक्त जो अपनी स्त्री है उस में आप पुत्र उत्पन्न करै वह औरस पुत्र कहाता है सब पुत्रों से श्रेष्ठ है। १६६। * * * * *

नपुंसक और व्याधि से युक्त और मरा हुआ इन पुरुषों की स्त्री में धर्म करके पिता आदि की आज्ञा से देवर आदि ने जो पुत्र उत्पन्न किया सो क्षेत्रज कहाता है। १६७। आपत्काल में माता पिता जल से प्रीति सहित समान जाति पुत्र को देवै सो दत्तक कहाता है। १६८। समान जाति वाला गुण दोष का जानने वाला पुत्रों के गुण से युक्त ऐसे को पुत्र करै सो कृत्रिम कहाता है। १६९। गृह में उत्पन्न भया और किस के बीज से भया यह जाना नहीं जाता सो जिस की स्त्री है उस का गूढ़ोत्पन्न पुत्र कहाता है। १७०। माता पिता दोनों ने अथवा एक ने जिस पुत्र का त्याग किया उस पुत्र को दूसरे ने ग्रहण किया सो ग्रहण करने वाले का अपविद्ध पुत्र कहाता है। १७१। पिता के गृह में विवाह रहित कन्या ने एकांत में जिस पुत्र को उत्पन्न किया सो पुत्र उस कन्या से विवाह करने वाले का कानीन पुत्र कहाता है। १७२। गर्भिणी कन्या है सब कोई जानता है अथवा गर्भ है कोई जानता नहीं और उस कन्या का विवाह हो तो विवाह करने वाले का सहोढ़ पुत्र कहाता है जो विवाह के अनंतर होता है। १७३। माता पिता से जिस पुत्र को पुत्र के अर्थ मोल लेवै वह पुत्र गुण से सदृश हो अथवा असदृश हो परंतु जाति से सदृश हो सो मोल लेने वाले का क्रीत पुत्र कहाता है। १७४। जिस स्त्री को पति ने त्याग किया अथवा विधवा अपनी इच्छा

यस्तल्पजः प्रमीतस्य क्लीबस्य व्याधितस्य वा। स्वधर्मेण नियुक्तायां स पुत्रः क्षेत्रजः स्मृतः। १६७।
माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि। सदृशं प्रीति संयुक्तं स ज्ञेयो दत्रिमः सुतः। १६८।
सदृशं तु प्रकुर्य्याद्यं गुणदोषविचक्षणम्। पुत्रं पुत्रगुणैर्युक्तं स विज्ञेयश्च कृत्रिमः। १६९।
उत्पद्यते गृहे यस्य न च ज्ञायेत कस्य सः। स गृहे गूढ़ उत्पन्नस्तस्य स्याद्यस्य तल्पजः। १७०।
मातापितृभ्यामुत्सृष्टं तयोरन्यतरेण वा। यं पुत्रं परिगृह्णीयादपविद्धः स उच्यते। १७१।
पितृवेश्मनि कन्या तु यं पुत्रं जनयेद्रहः। तं कानीनं वदेन्नाम्ना वोढुःकन्यासमुद्भवम्। १७२।
या गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाताऽज्ञाताऽपि वा सती। वोढुः स गर्भो भवति सहोढ़ इति चोच्यते। १७३।
क्रीणीयाद्यस्त्वपत्यार्थं मातापित्रोर्यमंतिकात्। स क्रीतकः सुतस्तस्य सदृशोऽसदृशोऽपि वा। १७४।
या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया। उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते। १७५।
सा चेदक्षतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागतापि वा। पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति। १७६।
मातापितृविहीनो यस्त्यक्तो वा स्यादकारणात्। आत्मानं स्पर्शयेद्यस्मै स्वयंदत्तस्तु स स्मृतः। १७७।
यं ब्राह्मणस्तु शूद्रायां कामादुत्पादयेत्सुतम्। स पारयन्नेव शवस्तस्मात्पारशवः स्मृतः। १७८।
दास्यां वा दासदास्यां वा यः शूद्रस्य सुतो भवेत्। सोऽनुज्ञातो हरेदंशमिति धर्मो व्यवस्थितः। १७९।
क्षेत्रजादीन्सुतानेतानेकादश यथोदितान्। पुत्रप्रतिनिधीनाहुः क्रियालोपान्मनीषिणः। १८०।
य एतेऽभिहिताः पुत्राः प्रसङ्गादन्यबीजजाः। यस्य ते बीजतो जातास्तस्य ते नेतरस्य तु। १८१।

से दूसरे पुरुष की भार्या होके उस पुरुष से पुत्र को उत्पन्न करै सो पुत्र उत्पन्न करने वाले का पौनर्भव पुत्र कहाता है। १७५। विवाहिता स्त्री है और पुरुष संभोग से दूषित नहीं है और दूसरे पुरुष का आश्रय करै तो उस पुरुष के साथ फेर विवाह के योग्य होती है अथवा कुमार पति को छोड़कर दूसरे पुरुष की आश्रय करके पुरुष संभोग से दूषित न होके फेर उसी कुमार पति के आश्रित हो तो फेर उस के साथ विवाह के योग्य होती है। १७६। माता पिता जिस का मर गया हो अथवा कारण बिना माता पिता ने जिस का त्याग किया है वह अपनी आत्मा को जिस को देवै वह उस का स्वयंदत्त पुत्र कहाता है। १७७। काम करके ब्राह्मण से विवाहित शूद्र वर्ण की स्त्री में जो उत्पन्न भया पुत्र सो जीवत ही शव (अर्थात् मुरदा) है इस लिये वह उस ब्राह्मण का पारशव पुत्र कहाता है। १७८। दासों में अथवा दासी की दासी में शूद्र से उत्पन्न जो पुत्र सो पिता की आज्ञा से अंश को पाता है यह धर्म व्यवस्था के प्राप्त है। १७९। क्षेत्रज आदि एकादश पुत्र जो हैं उन को पण्डितों ने पिण्ड दान आदि क्रिया का लोप न हो इस के लिये पुत्र प्रतिनिधि (अर्थात् पुत्र के स्थानापन्न) कहा है। १८०। प्रसङ्ग से और के बीज से उत्पन्न जो लड़के कहे हैं सो सब औरस पुत्र के रहत संते जिस के बीज से जो उत्पन्न है सो उसी के पुत्र कहाते हैं दूसरे के नहीं। १८१।

* * * * * * *

क से उत्पन्न चार पांच पुत्र में एक भी पुत्रवान् हो तो उसी पुत्र करके सब पुत्रवान् कहाते हैं यह मनु जी ने कहा । १८२ । क पुरुष को चार पांच स्त्री हैं उन में एक पुत्रवती हो तो उस पुत्र से सब स्त्री पुत्रवती कहाती हैं यह मनु जी ने कहा । ८३ । द्वादश प्रकार के पुत्र में पूर्व पूर्व के अभाव में पर पर धन को पाते हैं बहुत पुत्र सम हों तो धन को सब पावैं । १८४ । ाई और पिता ये धन को नहीं पाते किंतु पुत्र ही धन को पाता है पुत्र न हो तो पिता भाई धन को पाते हैं । १८५ । िता पितामह प्रपितामह इन तीनों को पिण्ड जल देना चौथा देने वाला है पांचवां कोई नहीं है । १८६ । सपिण्ड में (अर्थात् ात पुरुष में) मरे हुए का जो नगीची हो सो धन को पाता है सपिण्ड न हो तो सकुल्य (अर्थात् सात पुरुष के ऊपर वाला) न को पाता है उस के न होने में आचार्य उसके अभाव में शिष्य ये सब क्रम से धन को पाते हैं । १८७ ये सब न हों तो तीनों ेद के पढ़ने वाले और इंद्रियों के दमन करने वाले पवित्र से सहित ब्राह्मण लोग धन को पाते हैं इस रीति से धर्म हानि को हीं पाता । १८८ । ब्राह्मण के धन को राजा कभी न लेवै दूसरे के धन को सब के अभाव में राजा लेवै । १८९ । पुत्र रहित

भ्रातॄणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्भवेत् । सर्वांस्तांस्तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत् । १८२ ।
सर्वासामेकपत्नीनामेका चेत्पुत्रिणी भवेत् । सर्वास्तास्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्मनुः । १८३ ।
श्रेयसः श्रेयसो लाभे पापीयानृक्थमर्हति । बहवश्चेत्तु सदृशाः सर्वे ऋक्थस्य भागिनः । १८४ ।
न भ्रातरो न पितरः पुत्रा ऋक्थहराः पितुः । पिता हरेदपुत्रस्य ऋक्थं भ्रातर एव च । १८५ ।
त्रयाणामुदकं कार्यं त्रिषु पिण्डः प्रवर्त्तते । चतुर्थः संप्रदातैषां पंचमो नोपपद्यते । १८६ ।
अनन्तरस्सपिण्डाद्यस्तस्य तस्य धनं भवेत् । अत ऊर्द्ध्वं सकुल्यः स्यादाचार्यः शिष्य एव वा । १८७ ।
सर्वेषामप्यभावे तु ब्राह्मणा ऋक्थभागिनः । त्रैविद्याः शुचयो दान्तास्तथा धर्म्मो न हीयते । १८८ ।
अहार्य्यम्ब्राह्मणद्रव्यं राज्ञा नित्यमिति स्थितिः । इतरेषान्तु वर्णानां सर्वाभावे हरेन्नृपः । १८९ ।
संस्थितस्यानपत्यस्य सगोत्रात्पुत्रमाहरेत् । तत्र यदृक्थजातं स्यात्तत्तस्मिन्प्रतिपादयेत् । १९० ।
द्वौ तु यौ विवदेयातां द्वाभ्यां जातौ स्त्रिया धने । तयोर्यद्यस्य पित्र्यं स्यात्स तद्गृह्णीत नेतरः । १९१ ।
जनन्यां संस्थितायां तु समं सर्वे सहोदराः भजेरन्मातृकं रिक्थं भगिन्यश्च सनाभयः । १९२ ।
यास्तासां स्युर्दुहितरस्तासामपि यथार्हतः । मातामह्या धनात्किंचित्प्रदेयं प्रीतिपूर्वकम् । १९३ ।
अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्म्मणि । भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् । १९४ ।
अन्वाधेयं च यद्दत्तं पत्या प्रीतेन चैव यत् । पत्यौ जीवति वृत्तायाः प्रजायास्तद्धनं भवेत् । १९५ ।
ब्राह्मदैवार्षगांधर्व्वप्राजापत्येषु यद्वसु । अप्रजायामतीतायां भर्त्तुरेव तदिष्यते । १९६ ।
यत्त्वस्याः स्याद्धनं दत्तं विवाहेष्वासुरादिषु । अप्रजायामतीतायां मातापित्रोस्तदिष्यते । १९७ ।

रे हुए पुरुष की स्त्री सगोत्र पुरुष से श्वशुर आदि की आज्ञा से पुत्र को उत्पन्न करै तो उस पुत्र को सब धन देवै । १९० । क स्त्री को दो पुरुष से दो पुत्र हो और माता के धन के लिये विवाद करते हों तो जिस के पिता ने जो धन उस स्त्री को दया हो सो धन वह पावै दूसरा न पावै । १९१ । माता के मरे पीछे सब सहोदर भाई और कुमारी भगिनि ये सब सम ाग करके माता के धन को लेवैं । १९२ । माता के धन को कन्या पावै और कन्या की कन्या को भी नानी के धन से कुछ ीति सहित देवै । १९३ । अध्यग्नि अध्यावाहनिक प्रीति कर्म में प्राप्त धन भाई पिता माता ने जो दिया ये छ प्रकार के स्त्री न हैं यह ऋषियों ने कहा । १९४ । प्रसन्न होके पति ने जो दिया और अन्वाधेय इन दोनों धन को उस स्त्री के मरे पीछे स का प्रजा (अर्थात् संतति) लेवै भर्त्ता न पावै । १९५ । ब्राह्म दैव आर्ष गांधर्व प्राजापत्य इन पांचो विवाह में स्त्री को मिला ो धन है उस को संतति रहित स्त्री के मरे पीछे उस का भर्त्ता पाता है । १९६ । आसुर पैशाच राक्षस इन तीन विवाह में ्री को प्राप्त जो धन है उस को प्रजा रहित स्त्री के मरे पीछे उस स्त्री के माता पिता पाते हैं भर्त्ता नहीं पाता । १९७ ।

ब्राह्मण के चारों वर्ण की स्त्री विवाहित हों उन में ब्राह्मणी को कन्या हो और क्षत्रिय आदि तीन वर्ण की स्त्री संतति और पति से रहित हों और उस स्त्री को किसी प्रकार से पिता ने धन दिया हो उस धन को उस स्त्री के मरे पीछे ब्राह्मण वर्ण स्त्री की कन्या पावै और कन्या न हो तो पुत्र पावै। १९८। भाई आदि बहुत लोगों का जो साधारण (अर्थात् सब का) धन है उस को भार्या आदि गहना के लिये न लेवै और भर्त्ता की आज्ञा बिना भर्त्ता का दिया धन भी न लेवैं इस से यह बात जानी गई कि यह स्त्री धन नहीं है १९९। पति के जीते हुए जो अलंकार स्त्री ने धारण किया है उस को दाय (अर्थात् हिस्सा) लेने वाले विभाग न करैं कदाचित् करैं तो पतित होते हैं। २००। नपुंसक पतित जन्म से अंधा और बहिरा व्याधि आदि से उत्पन्न जड़ (अर्थात् विकलांतःकरण) मूक (अर्थात् गूंगा) और कोई इंद्रियों से रहित जो हैं ये सब अंश को नहीं पाते। २०१। इन सब (अर्थात् पीछे जो कह आए हैं नपुंसक आदि) को यथा शक्ति ग्रासाच्छादन जीने तक देना शास्त्र जानने वाला जो विभाग लेने वाला मनुष्य है उस को उचित है न दे तो पतित होता है। २०२। नपुंसक आदि को विवाह करने की इच्छा हो तो विवाह करके यथा योग्य उन की स्त्री में पुत्र उत्पन्न कराके उस पुत्र को अंश देवै। २०३। पिता के मरे पीछे जेठ पुत्र

स्त्रियां तु यद्भवेद्वित्तं पित्रा दत्तं कथंचन। ब्राह्मणी तद्धरेत्कन्या तदपत्यस्य वा भवेत्। १९८।
न निर्हारं स्त्रियः कुर्युः कुटुम्बाद्बहुमध्यगात्। स्वकादपि च वित्ताद्धि स्वस्य भर्त्तुरनाज्ञया। १९९।
पत्यौ जीवति यः स्त्रीभिरलंकारो धृतो भवेत्। न तम्भजेरन्दायादा भजमानाः पतंति ते। २००।
अनंशौ क्लीबपतितौ जात्यंधबधिरौ तथा। उन्मत्तजड़मूकाश्च ये च केचिन्निरिंद्रियाः। २०१।
सर्वेषामपि तु न्याय्यं दातुं शक्त्या मनीषिणा। ग्रासाच्छादनमत्यंतं पतितो ह्यददद्भवेत्। २०२।
यद्यर्थिता तु दारैः स्यात्क्लीबादीनां कथंचन। तेषामुत्पन्न तंतूनामपत्यं दायमर्हति। २०३।
यत्किंचित्पितरि प्रेते धनं ज्येष्ठोधिगच्छति। भागो यवीयसां तत्र यदि विद्यानुपालिनः। २०४।
अविद्यानां तु सर्वेषामीहातश्चेद्धनं भवेत्। समस्तत्र विभागः स्यादपित्र्य इति धारणा। २०५।
विद्याधनन्तु यद्यस्य तत्तस्यैव धनम्भवेत्। मैत्रमौद्वाहिकञ्चैव माधुपर्किकमेव च। २०६।
भ्रातॄणां यस्तु नेहेत धनं शक्तः स्वकर्म्मणा। स निर्भाज्यस्स्वकादंशात्किञ्चिद्दत्वोपजीवनम्। २०७।
अनुपघ्नन्पितृद्रव्यं श्रमेण यदुपार्ज्जितम्। स्वयमीहितलब्धन्तन्नाकामो दातुमर्हति। २०८।
पैतृकं तु पिता द्रव्यमनवाप्तं यदाप्नुयात्। न तत्पुत्रैर्भजेत्सार्द्धमकामः स्वयमर्ज्जितम्। २०९।
विभक्ताः सह जीवन्तो विभजेरन् पुनर्यदि। समस्तत्र विभागः स्याज्ज्यैष्ठ्यन्तत्र न विद्यते। २१०।
येषां ज्येष्ठः कनिष्ठो वा हीयेतांशप्रदानतः। म्रियेतान्यतरो वापि तस्य भागो न लुप्यते। २११।

विभाग के पहिले जो कुछ धन अर्जन करै उस में सब छोटे भाई पावैं परंतु विद्यावान होवैं तो। २०४। विद्या रहित सब भाईयों की मेहनत से धन होवै तो उस में सम भाग करना वह धन पिता का नहीं है यह शास्त्र का निश्चय है। २०५। विद्या मैत्री विवाह मधुपर्क इन्हीं करके जो धन मिले उस में किसी का भाग नहीं है जो अर्जन करै सोई लेवै। २०६। भाईयों के मध्य में जो अपने कर्म से समर्थ है और पिता के धन को लेने की इच्छा नहीं करता है उस को अपने अंश से कुछ देके भाग रहित करना क्योंकि उस के लड़के पीछे से विवाद न करैं कि हमारे पिता ने अंश नहीं लिया है हम को दो। २०७। पिता के धन का नाश न हो और अपने श्रम से जो अर्जन करै उस धन को इच्छा न हो तो भाईयों को न देवै। २०८। पिता के द्रव्य को किसी ने छीन लिया हो और पिता ने उस से फेर न पाया हो और पुत्र उस द्रव्य को अपने परिश्रम से पावै तो उस द्रव्य का विभाग अपने पुत्रों के साथ न करै और इच्छा हो तो करै क्योंकि वह द्रव्य अपने पुरुषार्थ से आई है पितामह की नहीं है। २०९। एक बेर विभाग हो गया हो फेर अपनी इच्छा से मिलके रहैं और पुनः विभाग करैं तो जेठे भाई को जेठांश न देवै। ३१०। भाईयों के मध्य में जेठा भाई अथवा छोटा भाई विभाग काल में संन्यास आदि करके अपने अंश से भ्रष्ट हो अथवा मर गया हो तो उस के भाग का लोप न करना किंतु उस का भी भाग लगाना। २११॥ * * *

स भाग को सब भाई और भगिनी मिलके सम भाग करैं। २१२। जो जेठा भाई लोभ से छोटे भाईयों को भाग न देवै सो ठा भाई नहीं कहाता है और राजा से दंड को पाता है। २१३। निकाम कर्म में स्थित हों सब भाई तो धन को नहीं पाते छोटे भाई बिना दिए जेठा भाई सब के धन को केवल अपना ही न करै। २१४। सब भाई मिलके धन को अर्जन करैं तो विभाग ाल में विषम विभाग पिता न करै। २१५। पुत्रों से विभक्त होके पिता ने फेर पुत्र उत्पन्न किया तो वह पुत्र केवल पिता ही ा धन पाता है और उस के साथ पूर्व विभक्त भाई मिले हों तो उन्हीं के साथ विभाग भए पीछे जो पुत्र उत्पन्न भया है सो भाग करै। २१६। संतति रहित पुत्र के धन को माता ग्रहण करै माता न हो तो पितामही (अर्थात् आजी) ग्रहण करै। १७। शास्त्र की विधि से ऋण और धन का विभाग भए पीछे जो कुछ धन देखने में आवै उस का सम भाग सब करैं। २१८। स्त्र वाहन भूषण लडुआ सतुआ कूंआं आदि जलाधार दासी मंत्री पुरोहित आदि गौ आदि के निकसने की मार्ग इन सबों का भाग न करना अपने कार्य के योग्य सब कोई लेवैं। २१९। क्षेत्रज आदि पुत्रों के विभाग को क्रम से आप लोगों से कहा

सोदर्य्या विभजेरंस्तं समेत्य सहितास्समम्। भ्रातरो ये च संसृष्टा भगिन्यश्च सनाभयः। २१२।
यो ज्येष्ठो विनिकुर्वीत लोभाद्भ्रातॄन् यवीयसः। सोऽज्येष्ठः स्यादभागश्च नियन्तव्यश्च राजभिः। २१३।
सर्वे एव विकर्मस्थानार्हन्ति भ्रातरो धनम्। न चादत्वा कनिष्ठेभ्यो ज्येष्ठः कुर्वीत यौतकम्। २१४।
भ्रातॄणामविभक्तानां यद्युत्थानं भवेत्सह। न पुत्रभागं विषमं पिता दद्यात्कथञ्चन। २१५।
ऊर्द्ध्वं विभागाज्जातस्तु पित्र्यमेव हरेद्धनम्। संसृष्टास्तेन वा ये स्युर्विभजेत स तैस्सह। २१६।
अनपत्यस्य पुत्रस्य माता दायमवाप्नुयात्। मातर्य्यपि च वृत्तायाम्पितुर्म्माता हरेद्धनम्। २१७।
ऋणे धने च सर्वस्मिन्प्रविभक्ते यथाविधि। पश्चाद् दृश्येत यत्किञ्चित्तत्सर्वं समतां नयेत्। २१८।
वस्त्रम्पत्रमलङ्कारं कृतान्नमुदकं स्त्रियः। योगक्षेमप्रचारञ्च न विभाज्यम्प्रचक्षते। २१९।
अयमुक्तो विभागो वः पुत्राणाञ्च क्रियाविधिः। क्रमशः क्षेत्रजादीनां द्यूतधर्म्मन्निबोधत। २२०।
द्यूतं समाह्वयञ्चैव राजा राष्ट्रान्निवारयेत्। राजान्तकरणावेतौ द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम्। २२१।
प्रकाशमेतत्तास्कर्य्यं यद्देवनसमाह्वयौ। तयोर्न्नित्यं प्रतीघाते नृपतिर्यत्नवान्भवेत्। २२२।
अप्राणिभिर्यत्क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते। प्राणिभिः क्रियमाणस्तु स विज्ञेयः समाह्वयः। २२३।
द्यूतं समाह्वयं चैव यः कुर्य्यात्कारयेत वा। तान्सर्वान् घातयेद्राजा शूद्रांश्च द्विजलिङ्गिनः। २२४।
कितवान् कुशीलवान् क्रूरान् पाखंडस्थांश्च मानवान्। विकर्मस्थान् शौंडिकांश्च क्षिप्रन्निर्वासयेत्पुरात्।
२२५। एते राष्ट्रे वर्तमाना राज्ञः प्रच्छन्नतस्कराः। विकर्म्मक्रियया नित्यं बाधन्ते भद्रिकाः प्रजाः।
२२६। द्यूतमेतत्पुरा कल्पे दृष्टं वैरकरं महत्। तस्मात् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान्। २२७।
प्रच्छन्नम्वा प्रकाशम्वा तन्निषेवेत यो नरः। तस्य दण्डविकल्पः स्याद्यथेष्टं नृपतेस्तथा। २२८।

स के अनंतर जूआ के धर्म्म को जानो। २२०। द्यूत और समाह्वय इन को राज्य में न होने दे ये दोनों राज्य का नाश करने ाले हैं। २२१। ये दोनों प्रकाश चोरी हैं इस लिये इन दोनों के नाश में राजा यत्न सहित रहै। २२२। प्राण रहित पासा आदि से ाव लगाके क्रीड़ा करना द्यूत कहाता है और प्राण सहित माल भेंड़ा भैंसा घोड़ा से दाव लगाके क्रीड़ा करना समाहृय कहाता । २२३। द्यूत और समाहृय इन दोनों को जो करै और करावै तिन को और ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य के चिह्न को धारण करने ाले शूद्र को राजा नाश करै। २२४। द्यूत आदि का करने वाला नचनियां गवैया क्रूर पाखंडी निकाम कर्म करने वाला सुरा नाने वाला इन सब को पुर से राजा जलदी निकाल देवै। २२५। ये सब ढंपे हुए चोर हैं दुष्ट कर्म करके अच्छे प्रजों को बाधा रते हैं। २२६। बड़ा वैर करने वाला द्यूत है यह पूर्व काल में देखा गया इस लिये बुद्धिमान पुरुष हंसी के अर्थ भी इस का वन न करै। २२७। चोरी से अथवा प्रकाश से द्यूत के सेवन करने वाले मनुष्यों को जो दंड देने की इच्छा राजा करै सो दंड वे। २२८। * * * * * * * * * *

क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये सब दंड देने के समर्थ न होवैं तो कर्म करके ऋण से छूटैं और ब्राह्मण तो धीरे धीरे देवै कर्म न करै। २२९ । स्त्री बाल वृद्ध दरिद्र रोगी इन्हीं की चटकना और बांस का फलटा इन्हीं से मारना और रस्सी से बांधना यह दंड देवै । २३० । कार्य कराने के लिये आज्ञा के पाए हुए मनुष्य कार्य वाले के कार्य को नाश करैं उन्हीं का सब धन राजा लेवै । २३१ । राजा की आज्ञा से विरुद्ध करने वाले और राज्यांग के दूषण करने वाले स्त्री बालक ब्राह्मण इन्हीं के मारने वाले शत्रु का सेवन करने वाले इन सबों का नाश करै । २३२ । धर्म करके जो कार्य दंड पर्यंत हो गया सो फेर निवृत्त नहीं होता । २३३ । मंत्री और प्राड्विवाक ये सब जिस कार्य को अन्यथा (अर्थात् झूठ) करैं उस कार्य को राजा आप देखै और राजा के देखने में उन्हीं का देखना असत्य जाना जाय तो उन्हीं से सहस्र पण दण्ड राजा लेवै । २३४ । ब्राह्मण को मारने वाला सुरा पान करने वाला ब्राह्मण का सोरह मासा सोना चोराने वाला माता के साथ रति करने वाला ये चारो भिन्न भिन्न महा पातकी कहाते हैं। २३५ । ये चारो प्रायश्चित्त न करैं तो धन सहित शरीर का दंड जो आगे कहैंगे सो इन्हीं को देना । २३६ । मातृ गमन करने

क्षत्रविट्शूद्रयोनिस्तु दण्डन्दातुमशक्नुवन् । आनृण्यं कर्म्मणा गच्छेद्विप्रो दद्याच्छनैश्शनैः । २२९ ।
स्त्रीबालोन्मत्तवृद्धानां दरिद्राणां च रोगिणाम् । शिफाविदलरज्ज्वाद्यैर्विदध्यान्नृपतिर्दमम् । २३० ।
ये नियुक्तास्तु कार्य्येषु हन्युः कार्य्याणि कार्य्यिणाम् । धनोष्मणापच्यमानास्तान्निस्स्वान्कारयेन्नृपः ।
२३१ । कूटशासनकर्तॄंश्च प्रकृतीनाञ्च दूषकान् । स्त्रीबालब्राह्मणघ्नांश्च हन्याद्द्विट्सेविनस्तथा ।
२३२ । तीरितञ्चानुशिष्टं च यत्र क्वचनयद्भवेत् । कृतं तद्धर्मतो विद्यान्न तद्भूयो निवर्त्तयेत् । २३३ ।
अमात्याः प्राड्विवाको वा यत्कुर्य्युः कार्य्यमन्यथा । तत्स्वयन्नृपतिः कुर्य्यात्तान्सहस्रञ्च दण्डयेत् । २३४ ।
ब्रह्महा च सुरापी च स्तेयी च गुरुतल्पगः । एते सर्वे पृथग् ज्ञेया महापातकिनो नराः । २३५ ।
चतुर्णामपि चैतेषाम्प्रायश्चित्तमकुर्वताम् । शारीरन्धनसंयुक्तन्दण्डन्धर्म्यम्प्रकल्पयेत् । २३६ ।
गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः । स्तेये च श्वपदं कार्य्यम्ब्रह्महण्यशिराः पुमान् । २३७ ।
असंभोज्या ह्यसंयाज्या असंपाठ्याविवाहिनः । चरेयुः पृथिवीन्दीनाः सर्वधर्म्मबहिष्कृताः । २३८ ।
ज्ञातिसंबंधिभिस्त्वेते त्यक्तव्याः कृतलक्षणाः । निर्दया निर्नमस्कारास्तन्मनोरनुशासनम् । २३९ ।
प्रायश्चित्तं तु कुर्वाणाः सर्वे वर्णा यथोदितम् । नांक्या राज्ञा ललाटे स्युर्दाप्यास्तूत्तमसाहसम् । २४० ।
आगस्सु ब्राह्मणस्यैव कार्य्यो मध्यमसाहसः । विवास्यो वा भवेद्राष्ट्रात्सद्रव्यः सपरिच्छदः । २४१ ।
इतरे कृतवंतस्तु पापान्येतान्यकामतः । सर्वस्वहारमर्हन्ति कामतस्तु प्रवासनम् । २४२ ।
नाददीत नृपः साधुर्महापातकिनो धनम् । आददानस्तु तल्लोभात्तेन दोषेण लिप्यते । २४३ ।
अप्सु प्रवेश्य तं दण्डम्वरुणायोपपादयेत् । श्रुतवृत्तोपपन्ने वा ब्राह्मणे प्रतिपादयेत् । २४४ ।

वाला सुरा पान करने वाला ब्राह्मण का सोरह मासा सोना चोराने वाला ब्राह्मण को मारने वाला इन चारो के मस्तक में क्रम से भगाकार सुरा का ध्वजाकार (अर्थात् डेग भभका इस का आकार) कुत्ता के पांव का आकार शरीर रहित पुरुष का आकार चिह्न करना । २३७ । चिह्न सहित जो यह सब हैं इन्हीं के भोजन यज्ञ पाठ विवाह आदि कर्म न कराना ये सब संपूर्ण धर्म से बाहर होकर दीन हीन होके पृथिवी में घूमैं । २३८ । जाति और संबंधी लोग इन्हीं का त्याग करैं इन्हीं के ऊपर दया न करैं और इन्हीं को नमस्कार न करैं यही मनु जी की आज्ञा है । २३९ । शास्त्रोक्त प्रायश्चित्त के करने वाले जो चारो वर्ण उन्हीं के मस्तक में चिह्न राजा न करैं किंतु सहस्र पण दंड देवै । २४० । अपराध करने वाले ब्राह्मण को मध्यम साहस दंड देवै अथवा गृह की सामग्री और द्रव्य इन दोनों सहित अपराध करने वाले ब्राह्मण को राज्य से निकाल देवै । २४१ । क्षत्रिय आदि तीनों वर्ण इच्छा रहित इन पापों को करैं तो उन्हीं का संपूर्ण द्रव्य हरण करै और इच्छा से किए हों तो वध दंड देना । २४२ । साधु राजा महा पातकियों का धन न लेवै कदाचित लोभ से लेवै तो उस के दोष से संयुक्त होता है । २४३ । दंड के धन को जल में डाल कर वरुण देवता के आधीन करै अथवा वेद और शास्त्र इन दोनों से युक्त जो ब्राह्मण है उस को देवै । २४४ ।

क्योंकि महा पातकी के दंड से जो धन मिला है उस का स्वामी वरुण है वेद के पार जाने वाला ब्राह्मण संपूर्ण जगत् का स्वामी है। २४५। जहां पापियों से धन के आगम को राजा वर्जन करता है तहां मनुष्य बहुत दिन तक जीते हैं। २४६। और वैश्य लोग जिस प्रकार से अन्न को बोते हैं सो अन्न उसी प्रकार से भिन्न भिन्न उत्पन्न होता है और लड़के भी नहीं मरते हैं अंग से हीन कोई नहीं उत्पन्न होता है। २४७। इच्छा से ब्राह्मणों का वध करने वाले छोटे वर्ण को उद्वेग करने वाला नाना प्रकार का जो वध की उपाय है उस्से वध करै। २४८। वध के योग्य जो नहीं है उस के वध से जितना पाप होता है उतना ही पाप वध के योग्य को छोड़ने में होता है। २४९। अठारह प्रकार के व्यवहार मार्ग में परस्पर विवाद करने वालों का बिस्तार पूर्वक व्यवहार निर्णय को मैं ने कहा। २५०। इस रीति से धर्म युक्त कार्यों को अच्छी रीति से करत संते राजा को नहीं मिले जो देश हैं उन्हों के लेने की इच्छा करै और मिले हुए देशों के पालने की इच्छा करै। २५१। शास्त्रोक्त देश में शास्त्रोक्त किला बनाके उस में रह के कांटा निकालने में उत्तम यत्न को करै। २५२। प्रजों के पालन में तत्पर होके राजा भले लोगों के रक्षण से और

ईशो दण्डस्य वरुणो राज्ञां दंडधरो हि सः। ईशः सर्वस्य जगतो ब्राह्मणो वेदपारगः। २४५।
यत्र वर्जयते राजा पापकृद्भ्यो धनागमम्। तत्र कालेन जायन्ते मानवा दीर्घजीविनः। २४६।
निष्पद्यन्ते च सस्यानि यथोप्तानि विशां पृथक्। बालाश्च न प्रमीयंते विकृतन्न च जायते। २४७।
ब्राह्मणान्बाधमानं तु कामादवरवर्णजम्। हन्याच्चित्रैर्वधोपायैरुद्वेजनकरैर्नृपः। २४८।
यावानवध्यस्य वधे तावान्वध्यस्य मोक्षणे। अधर्मो नृपतेर्दृष्टो धर्मस्तु विनियच्छतः। २४९।
उदितोयम्विस्तरशो मिथो विवदमानयोः। अष्टादशसु मार्गेषु व्यवहारस्य निर्णयः। २५०।
एवं धर्म्याणि कार्याणि सम्यक्कुर्वन्महीपतिः। देशानलब्धांल्लिप्सेत लब्धांश्च परिपालयेत्। २५१।
सम्यङ्निविष्टदेशस्तु कृतदुर्गश्च शास्त्रतः। कण्टकोद्धरणे यत्नमातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम्। २५२।
रक्षणादार्य्यवृत्तानां कण्टकानां च शोधनात्। नरेन्द्रास्त्रिदिवं यांति प्रजापालनतत्पराः। २५३।
अशासंस्तस्करान्यस्तु बलिं गृह्णाति पार्थिवः। तस्य प्रक्षुभ्यते राष्ट्रं स्वर्गाच्च परिहीयते। २५४।
निर्भयन्तु भवेद्यस्य राष्ट्रं बाहुबलाश्रितम्। तस्य तद्वर्द्धते नित्यं सिच्यमान इव द्रुमः। २५५।
द्विविधांस्तस्करान्विद्यात्परद्रव्यापहारकान्। प्रकाशांश्चाप्रकाशांश्च चारचक्षुर्महीपतिः। २५६।
प्रकाशवंचकास्तेषां नानापण्योपजीविनः। प्रच्छन्नवञ्चकास्त्वेते ये स्तेनाटविकादयः। २५७।
उत्कोचकाश्चोपधिका वंचकाः कितवास्तथा। मङ्गलादेशवृत्ताश्च भद्राश्चेक्षणिकैस्सह। २५८।

कांटा के निकालने से स्वर्ग में जाता है। २५३। चोरों का दण्ड नहीं करता और प्रजों से अपना भाग लेता है ऐसे राजा के राज्य में प्रजा कोप करते हैं और उसी पाप से पुण्य नष्ट हुआ तिस्से स्वर्ग प्राप्ति भी नहीं होती। २५४। जिस राजा के बाहु बल पाके प्रजा लोग निर्भय रहते हैं उस का राज्य नित्य बढ़ता है जिस रीति से सींचा हुआ वृक्ष। २५५। दूतों की आंख से देख कर राजा पर द्रव्य को हरण करने वाले चोर को प्रकाश अप्रकाश भेद करके दो प्रकार का जानै। २५६। नाना प्रकार की वस्तुओं को बेंचने वाले प्रकाश चोर हैं निर्जन देश में और सोए हुए मनुष्य संते जो पर द्रव्य को चोरावे सो अप्रकाश चोर है। २५७। उत्कोचक (अर्थात् कार्य वाले मनुष्य से धन लेके अयुक्त कार्य करने वाला) औपधिक (अर्थात् भय देखाके धन लेने वाला) वंचक (अर्थात् सुवर्ण आदि बस्तु में निकाम बस्तु डालके ठगहारी करके पर धन का लेने वाला) कितव (अर्थात् द्यूत और समाह्वय का करने वाला) मंगलादेश वृत्त (अर्थात् धन पुत्र लाभ आदि मंगल समाचार कहके जीने वाला) भद्र (अर्थात् पाप को ढांपकर सुंदर आचार को प्रकाश कर पर धन को लेने वाला) ईक्षणिक (अर्थात् हस्त रेखा आदि देख कर शुभ अशुभ फल को कहकर पर धन को ग्रहण करने वाला)। २५८। * * * * * *

महा मात्र (अर्थात् हाथी के सिखाने से जीने वाले) चिकित्सक (अर्थात् बैदई से जीने वाले) ये दोनों जब अच्छा कर्म न करें और धन को ग्रहण करें तब शिल्पोपचार युक्त (अर्थात् चित्र लिखन आदि उपाय से जीने वाले) बिना कहे शिल्पोपाय का प्रोत्साहन करके पर धन को ग्रहण करने वाले) पराई स्त्री (अर्थात् वेश्या) ये सब पर के वशी करण में प्रवीण हैं। २५९। इन्हें आदि को प्रकाश लोक का कण्टक जानना ठंपे हुए और हैं जो भले नहीं हैं और भले लोगों की नाईं रहते हैं। २६०। पूर्व कथित बंचकों को ठंप करके बंचन कर्म कराने वाले जो सभ्य और अनेक स्थान में स्थित जो चार (अर्थात् सातएं अध्याय में कहे हुए जो कापटिक आदि) इन्हों से जानकर उन को उत्साह करके (अर्थात् दुःख देकर) अपने वश में ल्यावै। २६१। अपने अपने कर्म में तत्त्व पूर्वक उन्हों के दोष को कह करके अच्छे प्रकार से अपराध के अनुसार उन्हों को दंड देवै। २६२। चोर और पापी जो नम्र वेष धारण करके पृथिवी में चलते हैं इन्हों के पाप का निग्रह दंड बिना करने के शक्य नहीं है इस लिये दंड करना। २६३। सभा (अर्थात् ग्राम नगर आदि में निश्चित जन समूह स्थान) पवसरा पक्वान बनाने का स्थान मद्य बेचने का स्थान अन्न विक्रय स्थान चौरहा वेश्या का गृह प्रसिद्ध वृत्त मूल जन समूह स्थान। २६४। पुरानी बाग बन कारीगरों का स्थान शून्य गृह ग्राम

असम्यक्कारिणश्चैव महामात्राश्चिकित्सकाः। शिल्पोपचारयुक्ताश्च निपुणाः पण्ययोषितः। २५९।
एवमादीन्विजानीयात्प्रकाशांल्लोककण्टकान्। निगूढचारिणश्चान्याननार्य्यानार्य्यलिङ्गिनः। २६०।
तान्विदित्वा सुचरितैर्गूढैस्तत्कर्म्मकारिभिः। चारैश्चानेकसंस्थानैः प्रोत्साद्य वशमानयेत्। २६१।
तेषान्दोषानभिख्याप्य स्वे स्वे कर्म्मणि तत्त्वतः। कुर्वीत शासनं राजा सम्यक्सारापराधतः। २६२।
न हि दण्डादृते शक्यः कर्तुम्पापविनिग्रहः। स्तेनानाम्पापबुद्धीनां निभृतं चरतां क्षितौ। २६३।
सभा प्रपा पूपशाला वेशमद्यान्नविक्रयाः। चतुष्पथाश्चैत्यवृक्षाः समाजाः प्रेक्षणानि च। २६४।
जीर्णोद्यानान्यरण्यानि कारुकावेशनानि च। शून्यानि चाप्यगाराणि वनान्युपवनानि च। २६५।
एवं विधान्नृपो देशान् गुल्मैः स्थावरजङ्गमैः। तस्करप्रतिषेधार्थं चारैश्चाप्यनुचारयेत्। २६६।
तत्सहायैरनुगतैर्नानाकर्म्मप्रवेदिभिः। विद्यादुत्सादयेच्चैव निपुणैः पूर्वतस्करैः। २६७।
भक्ष्यभोज्योपदेशैश्च ब्राह्मणानाञ्च दर्शनैः। शौर्य्यकर्म्मापदेशैश्च कुर्य्युस्तेषां समागमम्। २६८।
ये तत्र नोपसर्प्येयुर्मूलप्रणिहिताश्च ये। तान्प्रसह्य नृपो हन्यात्समित्रज्ञातिबांधवान्। २६९।
न होढेन विना चौरं घातयेद्धार्म्मिको नृपः। सहोढं सोपकरणं घातयेदविचारयन्। २७०।
ग्रामेष्वपि च ये केचिच्चौराणाम्भक्तदायकाः। भाण्डावकाशदाश्चैव सर्वांस्तानपि घातयेत्। २७१।
राष्ट्रेषु रक्षाधिकृतान्सामंतांश्चैव चोदितान्। अभ्याघातेषु मध्यस्थाच्छिष्याच्चौरानिव द्रुतम्। २७२।

आदि बन स्थान नया बनाया बन। २६५। ऐसे देशों के सेना आदि से तस्कर आदि का निवारण राजा करै क्योंकि बहुधा ऐसे देश में अन्न पान स्त्री संभोग आदि को खोजने के लिये तस्कर आदि रहते हैं। २६६। इन्हों के सहाय करने वाले संधिच्छेद आदि कर्म के जानने वाले चोरों की माया में निपुण पूर्व तस्कर जो चार का रूप धारण किए हैं इन्हों से चोरों को जानना और चोरों का नाश भी करना। २६७। पूर्व चोर जो चार का रूप धारण किए हैं सो उन सब को ऐसा कहे कि आइए हमारे गृह चलिए लड्डु आदि भोजन करिए हमारे देश में एक ब्राह्मण ऐसा है कि मनोरथ बस्तु की सिद्धि को जानता है उस को देखिए कोई एक ही है और बहुत से लड़ाई करेगा उस को देखिए एवं प्रकार का बहाना से राजा का दंड धारण करने वाले पुरुष इन चोरों का समागम करें और उन चोरों को पकड़ें। २६८। जो चोर भोजन पान स्थान में निग्रह की शंका करके न आवें और जो चार का रूप धारण किए हुए पूर्व चोरों से समागम न करें उन्हों को उसी से जान कर हठ से बुलाकर जाति स्वजन सहित उन्हों का नाश राजा करै। २६९। धार्मिक राजा चोरों का चिह्न बिना उन्हों को घात न करै चोरी का चिह्न सहित चोर हो तो सामग्री सहित चोर का नाश करै बिचार न करै कि इस को दुःख होगा। २७०। ग्राम में जो कोई चोरों को अन्न पात्र स्थान को देवै उस का भी नाश राजा करै। २७१। राज्य में जो रक्षाधिकारी मनुष्य हैं और ग्राम के चारो ओर रहने वाले मनुष्य ये सब चोरों के उपदेश में मध्यस्थ होवैं तो उन को भी चोर की नाईं राजा दंड करै। २७२। * *

पर को याजन प्रतिग्रहादि करके यागदानादि धर्म को उत्पादन करके जीवन करै ऐसा जो ब्राह्मण है और अपने धर्म से च्युत है उस को भी दंड करके दुःख राजा देवै । २७३ । तस्कर आदि से ग्राम के लूटने में पुल के भंग में मार्ग में चोर के दर्शन में शक्ति रहत संते जो दौड़ता नहीं सो सामग्री सहित निकालने के योग्य है । २७४ । राजा का कोष (अर्थात् खजाना) को चोराने वाला और राजा के विरुद्ध कर्म्म में रहने वाला और राजा के शत्रुओं से बैर कराने वाला इन को नाना प्रकार के दंड से (अर्थात् अपराधानुसार कर चरण जिह्वाच्छेदनादि से) घात करना । २७५ । रात्रि में संधिच्छेदन करके जो चोरी करता है उस का दोनों हाथ काटके तीखे शूल पर बैठावै । २७६ । गांठि काटने वाले का अंगूठा और उस के समीप की अंगुली इन दोनों का छेदन करना पहिली बेर में और दूसरी बेर में हाथ पांव काटना तीसरी बेर में बध करना । २७७ । चोर को अग्नि भात शस्त्र अवकाश इन्हें का देने वाला और चोरी की बस्तु रखने वाला इन्हीं को चोर की नाईं राजा नाश करै । २७८ । जो स्नान दान आदि से परोपकार करने वाला तड़ाग है उस को सेतु भेद आदि से विनाश करता है उस को जल में डुबाके अथवा दूसरे प्रकार से हनन करै जब उस तड़ाग को फेर संस्कृत करै (अर्थात् पहिले की नाईं बना देवै) तो उस का बध न करना किंतु उत्तम साहस दंड देना । २७९ । राजा का धान्य आदि धन का गृह हथियार का गृह देवता का गृह इन्हीं का भेद करने वाला और हाथी घोड़ा रथ

यश्चापि धर्म्मसमयात्प्रच्युतो धर्म्मजीवनः । दण्डेनैव तमप्योषेत्स्वकाद्धर्म्माद्धि विच्युतम् । २७३ ।
ग्रामघाते हिताभङ्गे पथिमोषाभिदर्शने । शक्तितो नाभिधावन्तो निर्वास्याः सपरिच्छदाः । २७४ ।
राज्ञः कोषापहर्तॄंश्च प्रतिकूलेषु च स्थितान् । घातयेद्विविधैर्दण्डैररीणां चोपजापकान् । २७५ ।
संधिं छित्वा तु ये चौर्य्यं रात्रौ कुर्वन्ति तस्कराः । तेषां छित्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णशूले निवेशयेत् । २७६ ।
अङ्गुलीर्ग्रंथिभेदस्य छेदयेत्प्रथमे ग्रहे । द्वितीये हस्तचरणौ तृतीये वधमर्हति । २७७ ।
अग्निदान्भक्तदांश्चैव तथा शस्त्रावकाशदान् । सन्निधातॄंश्च मोषस्य हन्याच्चौरमिवेश्वरः । २७८ ।
तडागभेदकं हन्यादप्सुशुद्धवधेन वा । तद्वापि प्रतिसंस्कुर्य्याद्दाप्यस्तूत्तमसाहसम् । २७९ ।
कोष्ठागारायुधागारदेवतागारभेदकान् । हस्त्यश्वरथहर्तॄंश्च हन्यादेवाविचारयन् । २८० ।
यस्तु पूर्वनिविष्टस्य तडागस्योदकं हरेत् । आगमं वाप्यपांभिद्यात्स दाप्यः पूर्वसाहसम् । २८१ ।
समुत्सृजेद्राजमार्गे यस्त्वमेध्यमनापदि । स द्वौ कार्षापणौ दद्यादमेध्यञ्चाशु शोधयेत् । २८२ ।
आपद्गतोथवा वृद्धो गर्भिणी बाल एव वा । परिभाषणमर्हन्ति तच्च शोध्यमिति स्थितिः । २८३ ।
चिकित्सकानां सर्वेषां मिथ्याप्रचरतान्दमः । अमानुषेषु प्रथमो मानुषेषु तु मध्यमः । २८४ ।
संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानाञ्च भेदकः । प्रतिकुर्य्याच्च तत्सर्वं पंच दद्याच्छतानि च । २८५ ।
अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदने तथा । मणीनामपवेधे च दण्डः प्रथमसाहसः । २८६ ।

को चोराने वाला इन को हनन करना इस में कुछ विचार न करना । २८० । किसी ने प्रजा के अर्थ तड़ाग किया और दूसरा उस का जलग्रहण करै और जल के आने की मार्ग को सेतुबंध करके नाश करै सो प्रथम साहस दण्ड के योग्य होता है । २८१ । बिना आपत्काल के राज मार्ग (अर्थात् सड़क) में अपवित्र बस्तु को डालै सो दो कार्षापण दंड देवै और अपवित्र बस्तु जो डाला है उस को शीघ्र राज मार्ग से बाहर ले जावै । २८२ । आपत्काल में प्राप्त कोई और वृद्ध गर्भिणी बालक ये सब पूर्व कथित कर्म्म को करैं तो परिभाषण (अर्थात् क्या किया) के योग्य होते हैं दंड के योग्य नहीं होते परंतु मार्ग को तो शुद्ध करैं (अर्थात् उस अपवित्र बस्तु को मार्ग से बाहर ले जावैं) । २८३ । शास्त्र को बिना जाने पशु आदि में झूठी बैदई करने वाले को पूर्व साहस दंड देना और मनुष्य में झूठी बैदई करने वाले को मध्यम साहस दंड देना । २८४ । संक्रम (अर्थात् जल के ऊपर गमन करने के लिये स्थापित जो काष्ठ और शिला आदि) और राज द्वार में जो ध्वज (अर्थात् चिह्न) पुष्करिणी आदि में जो यष्टि (अर्थात् लाठी) प्रतिमा (अर्थात् माटी आदि से बनी हुई देवता की छोटी मूर्ति) इन में से कोई एक का भेद करने वाला पांच सौ पण दंड देवै और जो विनाश किया है उस को नया बना देवै । २८५ । अदूषित द्रव्य के दूषण में और भेदन में मणियों के निकाम बेध करने में प्रथम साहस दंड देवै । २८६ ।

* * * * * * * * *

सम मूल्य के देने वालों को अच्छी बस्तु देता है और एक को निकाम बस्तु देता है इस रीति से विषम व्यवहार करने वाला अथवा किसी को बहुत मोल वाली बस्तु देता है किसी को थोडे मोल वाली बस्तु देता है इस प्रकार से विषम व्यवहार करने वाला पूर्व साहस अथवा मध्यम साहस दंड को पाता है अपराधानुसार से दंड विकल्प जानना । २८७ । बंधन गृह (अर्थात् जिस में अपराधी रहते हैं) को सड़क में बनावे जिस के देखने से पाप करने वाले को दुःख होवे (अर्थात् बेड़ी में पांव क्षुधा तृषा से पीड़ित बड़ा नख केश दाढ़ी दुर्बल शरीर ऐसे मनुष्यों को देखने से नहीं करने योग्य बस्तु से डरैंगे कि ऐसी दशा को पावैंगे जब निकाम कर्म करैंगे) । २८८ । प्राकार (अर्थात् किला) का भेदन करने वाला और उस के खंधक को पाटने वाला और उस के द्वार को भेदन करने वाला इन को शीघ्र देश से निकाल देवे । २८९ । अभिचार (अर्थात् शास्त्र कथित मारण प्रयोग) मूल कर्म (अर्थात् पांव की धूली लेके मारण प्रयोग) इन कर्मों के करने वाले को दो सौ पण दंड देना और मरण हो जाय तो मनुष्य मारने का दंड देना इसी रीति से माता पिता भार्या आदि को छोड़कर मंत्री आदि को मोह करके धन लेने के निमित्त वशीकरण प्रयोग और उच्चाटन आदि नाना प्रकार का प्रयोग इस के करने में भी दो सौ पण दंड देना । २९० । प्ररोह (अर्थात् अंकुर) के समर्थ बीज नहीं हैं उस को प्ररोह समर्थ है ऐसा कह के उस बीज का बेंचने वाला अथवा निकम्मे बीज में थोड़ा अच्छा बीज डालके बेंचने वाला मर्य्यादा का भेद करने वाला ये सब नाना प्रकार का विकार

समैर्हि विषमं यस्तु चरेद्वै मूल्यतो पि वा । स प्राप्नुयाद्दमम्पूर्वन्नरो मध्यममेव वा । २८७ ।
बंधनानि च सर्वाणि राजमार्गे निवेशयेत् । दुःखिता यत्र दृश्येरन् विकृताः पापकारिणः । २८८ ।
प्राकारस्य च भेत्तारम्परिखाणाञ्च पूरकम् । द्वाराणाञ्चैव भंक्तारं क्षिप्रमेव प्रवासयेत् । २८९ ।
अभिचारेषु सर्वेषु कर्तव्यो द्विशतो दमः । मूलकर्म्मणि चानाप्तेः कृत्यासु विविधासु च । २९० ।
अबीजविक्रयी चैव बीजोत्कृष्टन्तथैव च । मर्य्यादा भेदकश्चैव विकृतं प्राप्नुयाद्वधम् । २९१ ।
सर्वकण्टकपापिष्टं हेमकारन्तु पार्थिवः । प्रवर्त्तमानमन्याये छेदयेल्लवशः क्षुरैः । २९२ ।
सीताद्रव्यापहरणे शस्त्राणामौषधस्य च । कालमासाद्य कार्य्यञ्च राजा दण्डम्प्रकल्पयेत् । २९३ ।
स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोषदण्डौ सुहृत्तथा सप्तप्रकृतयो ह्येताः सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते । २९४ ।
सप्तानां प्रकृतीनां तु राज्यस्यासां यथा क्रमम् । पूर्वं पूर्वं गुरुतरञ्जानीयाद्व्यसनं महत् । २९५ ।
सप्ताङ्गस्येह राज्यस्य विष्टब्धस्य त्रिदण्डवत् । अन्योन्यगुणवैशेष्यान्न किञ्चिदतिरिच्यते । २९६ ।
तेषु तेषु तु कृत्येषु तत्तदङ्गम्विशिष्यते । ये न यत्साध्यते कार्य्यन्तत्तस्मिन् श्रेष्ठमुच्यते । २९७ ।
चारेणोत्साहयोगेन क्रिययैव च कर्म्मणाम् । स्वशक्तिम्परशक्तिञ्च नित्यं विद्यान्महीपतिः । २९८ ।
पीड़नानि च सर्वाणि व्यसनानि तथैव च । आरभेत ततः कार्य्यं संचिन्त्य गुरुलाघवम् । २९९ ।

रूप (अर्थात् नाक हाथ पांव इन को काटकर) बध दंड को पावैं । २९१ । सब दुष्टों में अति दुष्ट सोनार है सो जब अन्याय में प्रवृत्त हो तो उस को अपराधानुसार करके छुरा से थोड़ा थोड़ा अंग को छेदन करै । २९२ । खेती करने की जो बस्तु है हर कुदारि आदि और शस्त्र औषध इन्हों के हरण में काल और कार्य्य इन्हों को देख के राजा दंड की कल्पना करै । २९३ । स्वामी (अर्थात् राजा) अमात्य (अर्थात् मंत्री) पुर राज्य कोष दंड सुहृत् इन सातों को प्रकृति कहते हैं और ये सात राज्य के अङ्ग हैं इस लिये राज्य सप्ताङ्ग कहाता है । २९४ । इन सातों में क्रम से पहिला पहिला बड़ा व्यसन (अर्थात् दुःख) जानना । २९५ । लोक में त्रिदण्ड की नाईं परस्पर मिला हुआ सप्ताङ्ग राज्य में परस्पर विलक्षण उपकार से कोई अङ्ग अधिक नहीं है यद्यपि पूर्व पूर्व अङ्ग को आधिक्य कहा है तथापि इन सातों अङ्गों के मध्य में अन्य अङ्ग के उपकार को अन्य अङ्ग नहीं करने सकता इस्से उत्तर उत्तर अङ्ग की भी अपेक्षा करना पड़ता है इसी से आधिक्य का निषेध कहा है इस में दृष्टान्त यती का त्रिदण्ड है जैसे तीनों दण्ड मिलाके ऊपर चार अङ्गुल गौ के बाल से वेष्टन करने से परस्पर संबंध होता है और त्रिदण्ड धारण शास्त्रार्थ में कोई दण्ड अधिक नहीं है तैसे पूर्व कथित सप्ताङ्ग राज्य को जानना । २९६ । जिस अङ्ग से जो काम होवे उस में वही अङ्ग श्रेष्ठ है । २९७ । चार उत्साह कर्म्म इन्हों करके अपनी शक्ति और पर की शक्ति को नित्य ही राजा जानै । २९८ । सब पीड़ा और दुःख इन्हों की चिंता करके छोटे बड़े कार्य को आरंभ करै । २९९ ।   *   *   *   *

कर्मों के करते करते थक जावे तो फेर फेर कर्मों का आरंभ करत ही रहै क्योंकि कर्म करने वालों की सेवा लक्ष्मी करती है। ३००। कृत त्रेता द्वापर कलि ये चारो युग हैं सो नहीं किंतु जैसा आचरण राजा करै तैसा युग होता है (अर्थात् राजा ही युग है)। ३०१। अज्ञान आलस्य आदि से जब राजा उद्यम न करै तब कलि होता है और जानके कर्म नहीं करता तब द्वापर होता है कर्म करता है तब त्रेता होता है यथा शास्त्र कर्म करत विचरता है तब कृत युग होता है इस लिये राजा सर्व काल में कर्म करता रहै इस पर तात्पर्य है और चारो युग नहीं हैं इस पर तात्पर्य नहीं है। ३०२। इंद्र सूर्य वायु यम वरुण चंद्र अग्नि पृथिवी इन्हों के पराक्रम को राजा करै और दुष्टों का नाश करके प्रताप और प्रेम से युक्त होवै। ३०३। जिस प्रकार से बरसात के चार मास में इंद्र वर्षा करते हैं तिसी प्रकार से इंद्र का कर्म करत संते राजा संपूर्ण राज्य में प्रजों के ऊपर काम (अर्थात् इच्छित) की वृद्धि करै प्रजा लोग जिस काम की इच्छा करैं उस को राजा पूरै। ३०४। जिस प्रकार से आठ मास अपने किरण से जल को पृथिवी से सूर्य हरण करते हैं तिसी प्रकार से सूर्य का कर्म करत संते राजा राज्य से कर ग्रहण करै। ३०५। जिस प्रकार से सब जीवों में पैठकर वायु घूमता है तिसी प्रकार से वायु का कर्म करत संते चारों से संपूर्ण राज्य में प्रवेश करके घूमै। ३०६।

आरभेतैव कर्म्माणि श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः। कर्म्माण्यारभमाणं हि पुरुषं श्रीर्निषेवते ३००।
कृतं त्रेतायुगञ्चैव द्वापरङ्कलिरेव च। राज्ञो वृत्तानि सर्वाणि राजा हि युगमुच्यते। ३०१।
कलिः प्रसुप्तो भवति स जाग्रद्द्वापरं युगम्। कर्म्मस्वभ्युद्यतस्त्रेता विचरंस्तु कृतं युगम्। ३०२।
इंद्रस्यार्कस्य वायोश्च यमस्य वरुणस्य च। चन्द्रस्याग्नेः पृथिव्याश्च तेजोवृत्तन्नृपश्चरेत्। ३०३।
वार्षिकांश्चतुरोमासान् यथेंद्रोभिप्रवर्षति। तथाभिवर्षेत्स्वं राष्ट्रं कामैरिंद्रव्रतं चरन्। ३०४।
अष्टौ मासान् यथादित्यस्तोयं हरति रश्मिभिः। तथा हरेत्करं राष्ट्रान्नित्यमर्कव्रतं हि तत्। ३०५।
प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुतः। तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम्। ३०६।
यथायमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति। तथा राजा नियन्तव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम्। ३०७।
वरुणेन यथा पाशैर्बद्ध एवाभिदृश्यते। तथा पापान्निगृह्णीयाद्व्रतमेतद्धि वारुणम्। ३०८।
परिपूर्णं यथा चंद्रं दृष्ट्वा हृष्यन्ति मानवाः। तथा प्रकृतयो यस्मिन्स चांद्रव्रतिको नृपः। ३०९।
प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यं स्यात्पापकर्मसु। दुष्टसामन्तहिंस्रश्च तदाग्नेयं व्रतं स्मृतम्। ३१०।
यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते समम्। तथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिवम्व्रतम्। ३११।
एतैरुपायैरन्यैश्च युक्तो नित्यमतन्द्रितः। स्तेनान्राजा निगृह्णीयात्स्वराष्ट्रे पर एव च। ३१२।
परामप्यापदं प्राप्तो ब्राह्मणान्न प्रकोपयेत्। ते ह्येनं कुपिता हन्युः सद्यः सबलवाहनम्। ३१३।
यैः कृतः सर्वभक्ष्योग्निरपेयश्च महोदधिः। क्षयी चाप्यायितः सोमः को न नश्येत्प्रकोप्य तान्। ३१४।

जिस प्रकार से यम प्रिय और शत्रु इन दोनों के काल प्राप्त भये संते मारता है तिसी रीति से सब प्रजा को अपराध के अनुसार यम का कर्म करत संते राजा दंड देवै। ३०७। जिस प्रकार से वरुण अपने पाश से दुष्टों को बांधते हैं तिसी प्रकार से पापियों को वरुण का कर्म करत संते बांधै। ३०८। जिस प्रकार से परिपूर्ण चंद्र को देखकर मनुष्यों को आनंद होता है तिसी रीति से सब जीव राजा को देखकर आनंदित रहैं ऐसा चंद्र का व्रत धारण करत संते राजा रहै। ३०९। पाप कर्म में नित्य ही प्रतापयुक्त और तेज सहित रहै अग्नि का व्रत करत संते दुष्ट मंत्रियों का नाश करने वाला होवै। ३१०। जिस प्रकार से पृथिवी सब जीवों को सम धारण करती है तिसी रीति से सब जीवों को पृथिवी का व्रत धारण करत संते राजा धारण करै। ३११। इन उपायों से और दूसरी उपायों से युक्त होकर आलस्य रहित नित्य होवै अपने राज्य में और पर के राज्य में चोरों का नाश करै। ३१२। बड़े आपत्काल को प्राप्त भये संते भी राजा ब्राह्मणों को कोपित न करै ब्राह्मणों के कोप भये संते बल वाहन सहित राजा नाश को शीघ्र पाता है। ३१३। जिन ब्राह्मणों ने अग्नि समुद्र चंद्र इन्हों को क्रम से सब वस्तु का भोजन करने वाला अपेय क्षय रोगी किया तिन ब्राह्मणों को कुपित कराके कौन नाश को न पावैगा। ३१४। * * * * *

जो ब्राह्मण कुपित भये संते दूसरे लोक और लोकपाल को बनावे देव को अदेव करें उस ब्राह्मण को पीड़ित संते कौन समृद्धि को पावेगा (अर्थात् कोई न पावेगा)। ३१५। जिन ब्राह्मणों को वेद ही धन है उन्हीं के आश्रित होकर लोक और देव रहते हैं उन ब्राह्मणों को जीने की इच्छा करत संते कौन मारेगा। ३१६। जिस प्रकार से संस्कार के प्राप्त हो अथवा न प्राप्त हो अग्नि परंतु बड़ा देवता है तिसी प्रकार से ब्राह्मण पंडित हो अथवा मूर्ख हो परंतु बड़ा देवता है। ३१७। श्मशान में भी तेज वाली अग्नि दोष को नहीं पाती फेर भी यज्ञ में हूयमान भई (अर्थात् होम को पाई) तो बढ़त ही है। ३१८। इसी रीति से यद्यपि संपूर्ण अनिष्ट कर्म करते रहैं ब्राह्मण तथापि पूजा के योग्य हैं और बड़े देवता हैं। ३१९। क्षत्रिय संपूर्ण वस्तु करके बड़ा हो परंतु ब्राह्मण को अपने अधीन करने नहीं सकता क्योंकि ब्राह्मण से भया है इस लिये क्षत्रियों को अपने अधीन ब्राह्मण करने सकता है। ३२०। जल ब्राह्मण पत्थर इन्हों से क्रम करके अग्नि क्षत्रिय लोह उत्पन्न है और इन्हों का तेज क्रम से सर्वत्र दहन पराजय छेदन कार्य को करता है परंतु अपनी योनि (अर्थात् उत्पत्ति स्थान) में शांत होता है। ३२१। ब्राह्मण से रहित क्षत्रिय और

लोकानन्यान्सृजेयुर्ये लोकपालांश्च कोपिताः। देवान्कुर्युरदेवांश्च कः क्षिण्वंस्तान्समृध्नुयात्। ३१५।
यानुपाश्रित्य तिष्ठंति लोका देवाश्च सर्वदा। ब्रह्म चैव धनं येषां को हिंस्यात्तान् जिजीविषुः। ३१६।
अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतम्महत्। प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतम्महत्। ३१७।
श्मशानेष्वपि तेजस्वी पावको नैव दुष्यति। हूयमानश्च यज्ञेषु भूय एवाभिवर्द्धते। ३१८।
एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्त्तन्ते सर्वकर्मसु। सर्वथा ब्राह्मणाः पूज्याः परमं दैवतं हि तत्। ३१९।
क्षत्रस्यातिप्रवृद्धस्य ब्राह्मणान्प्रति सर्वशः ब्रह्मैव सन्नियंतृ स्यात् क्षत्रं हि ब्रह्मसम्भवम्। ३२०।
अद्भ्योग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनोलोहमुत्तमम्। तेषां सर्वत्र गन्तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति। ३२१।
नाब्रह्मक्षत्रमृध्नोति नाक्षत्रं ब्रह्म वर्द्धते। ब्रह्म क्षत्रं च संपृक्तमिह चामुत्र वर्द्धते। ३२२।
दत्वा धनन्तु विप्रेभ्यः सर्वदण्डसमुत्थितम्। पुत्रे राज्यं समासृज्य कुर्वीत प्रायणं रणे। ३२३।
एवं चरन्सदा युक्तो राजधर्मेषु पार्थिवः। हितेषु चैव लोकस्य सर्वान्भृत्यान्नियोजयेत्। ३२४।
एषोखिलः कर्मविधिरुक्तो राज्ञः सनातनः। इमं कर्मविधिं विद्यात्क्रमशो वैश्यशूद्रयोः। ३२५।
वैश्यस्तु कृतसंस्कारः कृत्वादारपरिग्रहम्। वार्त्तायां नित्ययुक्तः स्यात्पशूनां चैव रक्षणे। ३२६।
प्रजापतिर्हि वैश्याय सृष्ट्वा परिददे पशून्। ब्राह्मणाय च राज्ञे च सर्वाः परिददे प्रजाः। ३२७।
न च वैश्यस्य कामः स्यान्न रक्षेयम्पशूनिति। वैश्ये चेच्छति नान्येन रक्षितव्याः कथञ्चन। ३२८।
मणिमुक्ताप्रवालानां लोहानान्तान्तवस्य च। गंधानाञ्च रसानाञ्च विद्यादर्घबलाबलम्। ३२९।
बीजानामुप्तिविच्च स्यात्क्षेत्रदोषगुणस्य च। मानयोगञ्च जानीयात्तुलायोगांश्च सर्वशः। ३३०।

क्षत्रिय से रहित ब्राह्मण ये नहीं बढ़ते हैं दोनों मिले रहैं तो इस लोक में और परलोक में बढ़ते हैं। ३२२। दंड से प्राप्त संपूर्ण द्रव्य ब्राह्मण को देकर और राज्य पुत्र को देकर संग्राम में प्राण त्याग करै। ३२३। इस रीति से सर्व काल में राज धर्म को करत संते राजा लोक के हित में सब भृत्यों का योग करै। ३२४। संपूर्ण यह नित्य कर्म विधि राजा का कहा आगे क्रम से वैश्य और शूद्र के धर्म को जानो। ३२५। संस्कार को पाके विवाह करके वैश्य पशु के रक्षण में और वार्ता (अर्थात् खेती आदि) में नित्य ही युक्त होवे। ३२६। ब्रह्मा ने वैश्य को उत्पन्न करके उस को पशु दिया और ब्राह्मण क्षत्रिय को संपूर्ण प्रजा दिया। ३२७। पशु रक्षण न करैंगे ऐसी इच्छा वैश्य न करै खेती आदि करत संते भी पशु रक्षण अवश्य करै और जब तक वैश्य पशु रक्षण करै तब तक दूसरा वर्ण पशु रक्षा न करै। ३२८। मणि मोती मूंगा लोह सूत गंध रस इन सबों का देश काल समुझ के न्यून अधिक मोल को जानै। ३२९। खेत का दोष और गुण बीज बोना प्रस्थ द्रोण आदि मानयोग मासा तोला आदि तुलायोग इन सबों का जानने वाला होवे। ३३०।

* * * * * * * *

भाण्ड (अर्थात् पात्र) का सार असार देशों का गुण अगुण बेचने योग्य बस्तुओं का लाभ अलाभ पशुओं का बढ़ना इन सब को जानै। ३३१। मजूरों की मजूरी मनुष्यों के नाना प्रकार की भाषा द्रव्यों की स्थिति का उपाय और बेचना मोल लेना इन सब को जानै। ३३२। धर्म से द्रव्य की वृद्धि में उत्तम यत्न करै सब जीवों को यत्न पूर्वक अन्न देवै। ३३३। वेद पढ़ने वाले यश वाले गृहस्थ ब्राह्मण जो हैं उन्हों की सेवा शूद्रों को मोक्ष देने वाला उत्तम कर्म है। ३३४। पवित्रता बड़ों की सेवा कोमल बोलना अहंकार न करना ब्राह्मणों की नित्य आश्रय करना ये सब कर्म शूद्रों को उत्तम जाति देनहार हैं। ३३५। आपत्काल के अभाव में चारो वर्ण का शुभ कर्म विधि यह कहा आपत्काल में उन्हों के कर्म विधि को क्रम से जानो। ३३६॥ * ॥ इति श्री मनुस्मृति भाषा टीकायां कुल्लूक भट्ट व्याख्याऽनुसारिण्यां श्री बाबू देवीदयाल सिंह कारितायां श्री कम्पनी संस्कृत पाठशालीय गुलजार शर्म्म पण्डित कृतायां नवमोऽध्यायः॥ ९ ॥ * ॥ * * * * * * *

सारासारञ्च भाण्डानान्देशानाञ्च गुणागुणान्। लाभालाभञ्च पण्यानाम्पशूनाम्परिवर्द्धनम्। ३३१।
भृत्यानाञ्च भृतिम्विद्याद्भाषांश्च विविधा नृणाम्। द्रव्याणां स्थानयोगांश्च क्रयविक्रयमेव च। ३३२।
धर्म्मेण च द्रव्यवृद्धावातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम्। दद्याच्च सर्वभूतानामन्नमेव प्रयत्नतः। ३३३।
विप्राणां वेदविदुषां गृहस्थानां यशस्विनाम्। शुश्रूषैव तु शूद्रस्य धर्म्मो नैःश्रेयसः परः। ३३४।
शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुर्मृदुवागनहंकृतः। ब्राह्मणाद्याश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते। ३३५।
एषोऽनापदि वर्णानामुक्तः कर्म विधिः शुभः। आपद्यपि हि यस्तेषां क्रमशस्तन्निबोधत। ३३६॥

* इति मानवे धर्म्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां नवमोऽध्यायः॥ ९ ॥ * ॥

अधीयीरंस्त्रयोवर्णास्स्वकर्म्मस्था द्विजातयः। प्रब्रूयाद्ब्राह्मणस्त्वेषां नेतराविति निश्चयः। १।
सर्वेषाम्ब्राह्मणो विद्याद्वृत्त्युपायान् यथाविधि। प्रब्रूयादितरेभ्यश्च स्वयं चैव तथा भवेत्। २।
वैशेष्यात्प्रकृतिश्रैष्ठ्यात् नियमस्य च धारणात्। संस्कारस्य विशेषाच्च वर्णानाम्ब्राह्मणः प्रभुः। ३।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः। चतुर्थ एक जातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः। ४।
सर्ववर्णेषु तुल्यासु पत्नीष्वक्षतयोनिषु। आनुलोम्येन संभूता जात्याज्ञेयास्त एव ते। ५।
स्त्रीष्वनन्तरजातासु द्विजैरुत्पादितान्सुतान्। सदृशानेव तानाहुर्मातृदोषविगर्हितान्। ६।
अनंतरासु जातानां विधिरेष सनातनः। द्व्येकांतरासु जातानां धर्म्यं विद्यादिमम्विधिम्। ७।
ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामम्बष्ठो नाम जायते। निषादः शूद्रकन्यायां यः पारशव उच्यते। ८।

अपने कर्म में स्थित होकर ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये तीनों वर्ण पढ़ने से जाना गया जो अपना कर्म उस को करते संते वेद को पढ़ें और ब्राह्मण तो पढ़ावे भी क्षत्रिय वैश्य न पढ़ावैं कदाचित् पढ़ावैं तो वे प्रायश्चित्त करैं। १। यथा विधि सब की जीविका के उपाय को ब्राह्मण जानै दूसरे को कहै और आप भी तैसा करै। २। बड़ी जाति बड़ा कारण (अर्थात् उत्पत्ति स्थान) नियम का धारण बड़ा संस्कार इन सबों से वर्णों का प्रभु ब्राह्मण है। ३। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये तीनों वर्ण द्विजाति कहाते हैं और चौथा वर्ण शूद्र एक जाति कहाता है पांचवां वर्ण है नहीं। ४। सब वर्णों में पुरुष संभोग से जो दूषण उस्से रहित समान वर्ण की यथा शास्त्र विवाह के प्राप्त जो स्त्री उस में क्रम करके (अर्थात् ब्राह्मण से ब्राह्मणी में क्षत्रिय से क्षत्रिया में) जो उत्पन्न हैं सो माता पिता की जाति वाले कहाते हैं। ५। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य से अनंतर जाति में (अर्थात् ब्राह्मण से विवाहिता क्षत्रिया में क्षत्रिय से विवाहिता वैश्या में वैश्य से विवाहिता शूद्रा में) उत्पन्न जो है सो सदृश है माता के दोष से निंदित है। ६। अनंतर जाति में उत्पन्नों की यह नित्य विधि कहा अब दो एक जाति अंतर देके उत्पन्नों की विधि आगे कहैंगे उस को जानो। ७। ब्राह्मण से विवाहिता वैश्या में अम्बष्ठ जाति वाला होता है और ब्राह्मण से विवाहिता शूद्र की कन्या में निषाद जाति वाला होता है उस को पारशव भी कहते हैं। ८। * * * * * *

क्षत्रिय से विवाहिता शूद्रा कन्या में क्रूर आचार विहार वाला क्षत्रिय शूद्र की शरीर वाला उग्रनाम की जाति वाला होता है। ९। ब्राह्मण से क्षत्रिया आदि तीन वर्ण की स्त्री में क्षत्रिय से वैश्य आदि दो वर्ण की स्त्री में वैश्य से शूद्र वर्ण की स्त्री में जो उत्पन्न होते हैं ये छ अपसद (अर्थात् निकृष्ट) कहाते हैं। १०। अनुलोम कहके अब प्रतिलोम कहते हैं क्षत्रिय से ब्राह्मणी कन्या में सूत जाति वाला होता है वैश्य से क्षत्रिया कन्या में मागध और ब्राह्मणी कन्या में वैदेह जाति वाला होता है। ११। शूद्र से वैश्य क्षत्रिय ब्राह्मण की कन्या में क्रम से आयोगव क्षत्ता मनुष्यों में अधम चाण्डाल जाति वाले होते हैं। १२। जैसा एक जाति अंतर वाले अनुलोम में अम्बष्ठ और उग्र है तैसा प्रतिलोम में क्षत्ता और वैदेहक है। १३। द्विजाति से अनंतर वर्ण की स्त्री में क्रम से उत्पन्न जो लड़के कहे हैं वे सब माता के दोष से अनंतर नाम वाले कहाते हैं। १४। ब्राह्मण से उग्र अम्बष्ठ आयोगव इन तीनों की कन्या में क्रम से आवृत आभीर धिग्वण जाति वाले होते हैं। १५। आयोगव क्षत्ता चाण्डाल ये तीनों पुत्र कार्य में समर्थ नहीं हैं। १६। मागध वैदेह सूत ये भी तीनों पुत्र कार्य में समर्थ नहीं हैं। १७।

क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां क्रूराचारविहारवान्। क्षत्रशूद्रवपुर्जन्तुरुग्रोनाम प्रजायते। ९।
विप्रस्य त्रिषु वर्णेषु नृपतेर्वर्णयोर्द्वयोः। वैश्यस्य वर्णे चैकस्मिन् षडेते ऽपसदाः स्मृताः। १०।
क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः। वैश्यान्मागधवैदेहौ राजविप्राङ्गना सुतौ। ११।
शूद्रादायोगवः क्षत्ता चाण्डालश्चाधमो नृणाम्। वैश्यराजन्यविप्रासु जायंते वर्णसंकराः। १२।
एकांतरे त्वानुलोम्यादम्बष्ठोग्रौ यथा स्मृतौ। क्षत्तृवैदेहकौ तद्वत्प्रातिलोम्येपि जन्मनि। १३।
पुत्रा येनंतरस्त्रीजाः क्रमेणोक्ता द्विजन्मनाम्।ताननंतरनाम्नस्तु मातृदोषात्प्रचक्षते। १४।
ब्राह्मणादुग्रकन्यायामावृतो नाम जायते। आभीरोम्बष्ठकन्यायामायोगव्यां तु धिग्वणः। १५।
आयोगवश्च क्षत्ता च चाण्डालश्चाधमो नृणाम्। प्रातिलोम्येन जायंते शूद्रादपसदास्त्रयः। १६।
वैश्यान्मागधवैदेहौ क्षत्रियात्सूत एव तु। प्रतीपमेते जायंते शूद्रादपसदास्त्रयः। १७।
जातो निषादाच्छूद्रायां जात्या भवति पुक्कसः। शूद्राज्जातो निषाद्यांतु स वै कुक्कुटकः स्मृतः। १८।
क्षत्तुर्जातस्तथोग्रायां श्वपाक इति कीर्त्यते। वैदेहकेन त्वम्बष्ठ्यामुत्पन्नो वेण उच्यते। १९।
द्विजातयः सवर्णासु जनयंत्यव्रतांस्तु यान्। तान्सावित्री परिभ्रष्टान्व्रात्यानिति विनिर्दिशेत्। २०।
व्रात्यात्तु जायते विप्रात्पापात्मा भूर्जकण्टकः। आवंत्यवाटधानौ च पुष्पधः शैख एव च। २१।
झल्लोमल्लश्च राजन्याद्व्रात्यान्निच्छिविरेव च। नटश्च करणश्चैव खसो द्रविड एव च। २२।
वैश्यात्तु जायते व्रात्यात्सुधन्वाचार्य्य एव च। कारुषश्च विजन्मा च मैत्रः सात्वत एव च। २३।
व्यभिचारेण वर्णानामवेद्या वेदनेन च। स्वकर्म्मणाञ्च त्यागेन जायंते वर्णसङ्कराः। २४।
संकीर्णयोनयो ये तु प्रति लोमाऽनुलोमजाः। अन्योन्यव्यतिषक्ताश्च तान्प्रवक्ष्याम्यशेषतः। २५।

निषाद से शूद्रा में पुक्कस जाति वाले होते हैं निषादी में शूद्र से कुक्कुट जाति वाले होते हैं। १८। क्षत्ता से उग्र की कन्या में श्वपाक जाति वाले होते हैं वैदेहक से अम्बष्ठ जाति की कन्या में वेण जाति वाले होते हैं। १९। द्विजाति से समान वर्ण वाली स्त्री में उत्पन्न जो भये और वह यज्ञोपवीत संस्कार से हीन हुए तो व्रात्य कहाते हैं। २०। व्रात्य ब्राह्मण से ब्राह्मणी में जो उत्पन्न भया सो पापात्मा भूर्जकण्टक जाति वाला कहाता है उसी को देश भेद करके आवंत्य वाटधान पुष्पध शैख कहते हैं। २१। व्रात्य क्षत्रिय से क्षत्रिय वर्ण की स्त्री में झल्ल जाति वाले होते हैं उस का नाम झल्ल मल्ल निच्छिबि नटकरण खस द्रविड़ हैं। २२। व्रात्य वैश्य से वैश्य वर्ण की स्त्री में सुधन्वाचार्य जाति वाले होते हैं उन को कारुष विजन्मा मैत्र सात्वत जाति कहते हैं। २३। दूसरे वर्ण के पुरुष से दूसरे वर्ण की स्त्री में संभोग विवाह करने के योग्य जो नहीं उस के साथ विवाह अपने कर्मों का त्याग इन सबों करके वर्णसंकर उत्पन्न होते हैं। २४। अनुलोम प्रतिलोम करके परस्पर संबंध से जो संकीर्ण योनि (अर्थात् वर्णसंकर योनि) उस को मैं कहूंगा। २५। * * * * * *

सूत वैदेहक चाण्डाल मागध क्षत्ता आयोगव । २६ । ये सब अपने जाति की स्त्री में अपने वर्ण को उत्पन्न करते हैं यहां सादृश्य मातृ जाति की अपेक्षा करके जानना क्योंकि चारो वर्ण की स्त्री में पिता से अधिक निंदित पुत्र होते हैं यह बात आगे कहेंगे पिता अधिक निंदित अपने जाति की स्त्री में भी उत्पन्न करते हैं इतना अप्राप्त रहा उसी का विधान इस श्लोक से किया गया जैसे शूद्र से वैश्य की स्त्री में उत्पन्न आयोगव कहाता है उस्से शुद्ध आयोगवी वैश्या ब्राह्मणी क्षत्रिया शूद्रा इन्हों में जो उत्पन्न होगा सो आयोगव कहाता है परंतु शुद्ध आयोगव से ये सब आयोगव दुष्ट हैं इस में दृष्टांत देते हैं कि जैसे स्त्री पुरुष में एक ने ब्रह्महत्या किया उस्से पुत्र उत्पन्न भया उस की अपेक्षा करके ब्रह्महत्यारे स्त्री पुरुष दोनों हैं उन से जो उत्पन्न होगा सो अधिक दुष्ट होगा । २७ । जिस प्रकार से ब्राह्मण से क्षत्रिया वैश्या में द्विज उत्पन्न होता है और ब्राह्मणी में भी द्विज उत्पन्न होता है परंतु यह द्विज उन द्विजों से अच्छा कहाता है तिसी प्रकार से शूद्र से ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या में उत्पन्न पुत्र की अपेक्षा करके वैश्य से क्षत्रिया में क्षत्रिय से ब्राह्मणी में उत्पन्न पुत्र अच्छे कहाते हैं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य से उत्पन्न प्रतिलोम प्रशस्त हैं यह जनाने के लिये यह श्लोक है । २८ । आयोगव आदिक्छ परस्पर जाति वाली स्त्री में अनुलोम करके भी अधिक दुष्ट पुत्र को उत्पन्न करते हैं जैसे आयोगव क्षत्ता की स्त्री में अपने से हीन पुत्र को उत्पन्न करता है और क्षत्ता भी आयोगव की स्त्री में अपने से हीन पुत्र को उत्पन्न करता है इसी रीति से और भी प्रतिलोमों में जानना । २९ । जिस प्रकार से शूद्र ब्राह्मणी में चाण्डाल को उत्पन्न करता है तिसी प्रकार से चाण्डाल चारो वर्ण की स्त्री में अपने से भी हीन को उत्पन्न करता है । ३० । शूद्र से उत्पन्न ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य की भार्या में तीन प्रतिलोमज (अर्थात् आयोगव क्षत्ता चाण्डाल) ये चारो वर्ण की स्त्री में और अपनी जाति

सूतो वैदेहकश्चैव चण्डालश्च नराधमः । मागधः क्षत्तृजातिश्च तथाऽयोगव एव च । २६ ।
एते षट् सदृशान्वर्णान् जनयंति स्वयोनिषु । मातृजात्याम्प्रसूयंते प्रवरासु च योनिषु । २७ ।
यथा त्रयाणां वर्णानां द्वयोरात्माऽस्य जायते । आनंतर्य्यात्स्वयोन्यां तु तथा बाह्येष्वपि क्रमात् । २८ ।
ते चापि बाह्यान्सुबहूंस्ततोप्यधिकदूषितान् । परस्परस्य दारेषु जनयंति विगर्हितान् । २९ ।
यथैव शूद्रो ब्राह्मण्यां बाह्यं जंतुं प्रसूयते । तथा बाह्यतरं बाह्यश्चातुर्वर्ण्ये प्रसूयते । ३० ।
प्रतिकूलं वर्त्तमाना बाह्याबाह्यतरान् पुनः । हीनाहीनान्प्रसूयंते वर्णान्पंचदशैव तु । ३१ ।
प्रसाधनोपचारज्ञमदासन्दासजीवनम् । सैरिंध्रम्वा गुरावृत्तिं सूते दस्युरयोगवे । ३२ ।
मैत्रेयकं तु वैदेहो मागधं संप्रसूयते । नृन्प्रशंसंत्यजस्रं यो घण्टाताडोरुणोदये । ३३ ।

की स्त्री में अपने से हीन तीन पचे पंद्रह पुत्र को उत्पन्न करते हैं और अनुलोमज से हीन वैश्य क्षत्रिय से उत्पन्न मागध वैदेहक सूत ये तीनों चारो वर्ण की स्त्री में और अपनी जाति की स्त्री में अपने से निंदित तीन पचे पंद्रह पुत्र को उत्पन्न करते हैं इस रीति से तीस पुत्र भये अथवा चाण्डाल क्षत्ता आयोगव वैदेहक मागध सूत ये छः पूर्व पूर्व से उत्तर उत्तर अच्छे हैं यही छवों प्रतिलोम करके पुत्र को उत्पन्न करैं तो पंद्रह पुत्र होते हैं जैसे चाण्डाल से पांचो की स्त्री में पांच उत्पन्न भए क्षत्ता से चारो वर्ण की स्त्री में चार उत्पन्न भए आयोगव से तीनों की स्त्री में तीन उत्पन्न भए वैदेहक से दो की स्त्री में दो उत्पन्न भए मागध से एक की स्त्री में एक उत्पन्न भया सूत से आगे कोई है नहीं इस लिये सूत से प्रतिलोमज कोई उत्पन्न होता नहीं इस रीति से पंद्रह पुत्र भए श्लोक में पुनः यह पद का उच्चारण भृगु जी ने किया उस का तात्पर्य यह है कि सूत मागध वैदेहक आयोगव क्षत्ता चाण्डाल ये छः उत्तर उत्तर से पूर्व पूर्व अच्छे हैं ये छवों प्रतिलोम की नाईं पुत्र उत्पन्न करैं तो पंद्रह पुत्र होते हैं जैसे सूत से पांचो की स्त्री में पांच भए मागध से चारो की स्त्री में चार हुए वैदेहक से तीनों की स्त्री में तीन हुए आयोगव से दो की स्त्री में दो भए क्षत्ता से एक की स्त्री में एक हुआ चाण्डाल से हीन नहीं हैं इस लिये उस्से अनुलोम होता हीन इस रीति से पंद्रह हुए दोनों मिलके तीस भए । ३१ । केश रचना आदि प्रसाधन कर्म के उपचार को जानने वाला दास कर्म जो उच्छिष्टादि भक्षण है उस्से रहित अङ्ग सम्वाहन आदि दास कर्म से जीने वाला और पाश बंधन करके मृग आदि के बध से जीने वाला सैरिंध्र नाम पुत्र को आयोगव की स्त्री में दस्यु जिसका लक्षण आगे पैंतालीसईं श्लोक में कहैंगे सो उत्पन्न करता है । ३२ । आयोगव की स्त्री में वैदेहक से मधुर भाषण करने वाला मैत्रेय नाम पुत्र होता है जो प्रातःकाल में घण्टा बजाके जीविका के लिये राजा आदि की स्तुति करता है । ३३ । * * * * * * * *

आयोगव की स्त्री में निषाद से नौका कर्म से जीने वाला दाश नाम पुत्र और मार्गव नाम पुत्र होता है जिस को आर्यावर्त के रहने वाले कैवर्त कहते हैं। ३४। सैरिंध्र मैत्रेय मार्गव ये तीनों मुरदा के वस्त्र को पहिरने वाली क्रूरस्थ भाव वाली उच्छिष्ट भोजन करने वाली जो आयोगव की स्त्री है उस में पिता के भेद से भिन्न भिन्न होते हैं। ३५। वैदेहक की स्त्री में निषाद से चर्मच्छेद करने वाला कारावर नाम पुत्र उत्पन्न होता है वैदेहक से कारावर की स्त्री में अंध्र जाति वाला पुत्र और निषाद की स्त्री में मेद जाति वाला पुत्र होता है ये दोनों ग्राम के बाहर रहने वाले होते हैं। ३६। वैदेहक की स्त्री में चाण्डाल से बांस के व्यवहार से जीने वाला पांडु सोपाक जाति वाला पुत्र होता है और उसी स्त्री में निषाद से आहिण्डिक जाति वाला पुत्र होता है। ३७। पुक्कस की स्त्री में चाण्डाल से राजा की आज्ञा से वध योग्य मनुष्यों को वध करने वाला और उसी कर्म से जीने वाला पापी सर्व काल में साधु लोगों से निंदा को प्राप्त सोपाक जाति वाला पुत्र होता है। ३८। निषाद की स्त्री में चाण्डाल से श्मशान में रहने वाला सब से अति निन्दित अंत्यावसायी जाति वाला पुत्र उत्पन्न होता है। ३९। वर्णसंकर में माता पिता से इतनी जाति देखाया प्रकट हो अथवा अप्रकट हो परंतु अपने कर्म्मों से जानने योग्य होते हैं। ४०। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों से अपनी अपनी जाति की स्त्री में उत्पन्न पुत्र और अनुलोम करके उत्पन्न पुत्र ये तीनों द्विज कहाते हैं (अर्थात् ब्राह्मण से क्षत्रिया

निषादो मार्गवं सूते दाशन्नौकर्म्मजीविनम्। कैवर्त्तमिति यं प्राहुरार्य्यावर्त्तनिवासिनः। ३४।
मृतवस्त्रभृत्सुनारीषु गर्हितान्नाशनासु च। भवंत्यायोगवीष्वेते जातिहीनाः पृथक् त्रयः। ३५।
कारावरो निषादात्तु चर्म्मकारः प्रसूयते। वैदेहिकादंध्रमेदौ बहिर्ग्रामप्रतिश्रयौ। ३६।
चाण्डालात्पाण्डुसोपाकस्त्वक्सारव्यवहारवान्। आहिण्डिको निषादेन वैदेह्यामेव जायते। ३७।
चाण्डालेन तु सोपाको मूलव्यसनवृत्तिमान्। पुक्कस्यां जायते पापः सदा सज्जनगर्हितः। ३८।
निषादस्त्री तु चाण्डालात्पुत्रमंत्यावसायिनम्। श्मशानगोचरं सूते बाह्यानामपि गर्हितम्। ३९।
संकरे जातयस्त्वेताः पितृमातृप्रदर्शिताः। प्रच्छन्ना वा प्रकाशा वा वेदितव्याः स्वकर्म्मभिः। ४०।
सजातिजानन्तरजाःषट् सुता द्विजधर्म्मिणः। शूद्राणां तु सधर्म्माणः सर्वेपध्वंसजाः स्मृताः। ४१।
तपोबीजप्रभावैस्तु ते गच्छंति युगे युगे। उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः। ४२।
शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः। वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च। ४३।
पौंड्रकाश्चौंड्रद्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः। पारदाः पह्लवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः। ४४।
मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः। म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः। ४५।
ये द्विजानामपसदाः ये चापध्वंसजाः स्मृताः। ते निन्दितैर्वर्त्तयेयुर्द्विजानामेव कर्म्मभिः। ४६।
सूतानामश्वसारथ्यमम्बष्ठानां चिकित्सनम्। वैदेहकानां स्त्रीकार्य्यम्मागधानां वणिक्पथः। ४७।

वैश्या शूद्रा में वैश्य से शूद्रा में ये छः पुत्र द्विज के धर्म वाले कहाते हैं) (अर्थात् उपनयन के योग्य होते हैं) और जो अपध्वंसज हैं (अर्थात् द्विजाति से प्रतिलोम करके उत्पन्न हैं) सो सब शूद्र के धर्म वाले कहाते हैं। ४१। तप और वीर्य इन्हों के प्रभाव करके सजाति से उत्पन्न और अनन्तर जाति से उत्पन्न मनुष्य संसार संबंधी युग युग में जन्म से ऊंच नीच होते हैं तप के प्रभाव से विश्वामित्र की नाईं बीज के प्रभाव से ऋष्यशृंग की नाईं। ४२। आगे जो कहेंगे क्षत्रिय जाति सो सब यज्ञोपवीत आदि क्रिया के लोप से यज्ञ कराना पढ़ाना प्रायश्चित्त आदि जो अर्थ उस के बिना देखे से धीरे धीरे लोक में शूद्र भाव को प्राप्त हुए। ४३। पौंड्रक औंड्र द्रविड काम्बोज यवन शक पारद पाल्हव चीन किरात दरद खश इन देशों में उत्पन्न क्षत्रिय क्रिया आदि के लोप से शूद्र भाव को प्राप्त हुए। ४४। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन को क्रिया लोप आदि से जितनी जाति भई म्लेच्छ भाषा करके युक्त अथवा श्रेष्ठ भाषा करके युक्त ये सब जाति दस्यु कहाते हैं। ४५। द्विजों से अनुलोम करके उत्पन्न छः अपसद दशवें श्लोक में जो कह आए हैं और जो अपध्वंसज (अर्थात् प्रतिलोम से उत्पन्न) ये सब द्विजों के निंदित कर्म से जीवें। ४६। सूत अम्बष्ठ वैदेहक मागध इन्हों का क्रम से घोड़ा का सारथी पना बैदई स्त्रियों का कार्य (अर्थात् अंतः पुर रक्षण) बनियों का कर्म जीविका है। ४७।

* * * * * * * * * * * *

निषाद का मछली मारना आयोगव का काठ काटना मेद अंध्र चुन्चु मद्गु इन्हों का बन के पशु को मारना जीविका है वैदेहक की स्त्री में ब्राह्मण से उत्पन्न चुन्चु कहाता है और उसी से बंदी की स्त्री में उत्पन्न मद्गु कहाता है । ४८ । क्षत्ता उग्र पुक्कस इन्हों का बिल में रहने वाली गोह आदि का वध और बंधन धिग्वण का चर्म कार्य्य वेण का कांस्य मृदंग आदि वाद्य भाण्ड वादन जीविका है । ४९ । ग्राम आदि के समीप में चैत्यद्रुम (अर्थात् प्रसिद्ध वृक्ष) के मूल में और श्मशान पर्वत बन इन्हों के समीप में ये सब प्रकट अपने कर्म्मों से जीवन करते रहें । ५० । चाण्डाल श्वपच ये दोनों ग्राम के बाहर निवास करें पात्र से रहित रहें इन्हों का धन कुत्ता गदहा है । ५१ । मुरदा के वस्त्र को पहिरें फूटे पात्र में भोजन करें लोहे का गहना पहिरें नित्य ही डोलते रहें । ५२ । धर्म का आचरण करते संते इन्हों के साथ दर्शन आदि व्यवहार को न करें इन्हों का विवाह आपुस में होता है और व्यवहार भी आपुसै में करें । ५३ । इन्हों का अन्न पराधीन है फूटे पात्र में अन्न देना रात्रि को ग्राम नगर आदि में फिरने न पावें । ५४ । राजा की आज्ञा से चिह्न युक्त कार्य्य के लिये दिन में डोलैं बांधव रहित मुरदा को ले जावैं ऐसी शास्त्र की मर्यादा है ।

मत्स्यघातो निषादानान्त्वष्टिस्त्वायोगवस्य च । मेदांध्रचुञ्चुमद्गूनामारण्यपशुहिंसनम् । ४८ ।
क्षत्तुग्रपुक्कसानान्तु बिलौको बंधबन्धनम् । धिग्वणानां चर्म्मकार्य्यं वैणानां भाण्डवादनम् । ४९ ।
चैत्यद्रुमश्मशानेषु शैलेषूपवनेषु च । वसेयुरेते विज्ञाता वर्त्तयन्तः स्वकर्मभिः । ५० ।
चाण्डालश्वपचानान्तु बहिर्ग्रामात्प्रतिश्रयः । अपपात्राश्च कर्त्तव्या धनमेषां श्वगर्द्दभम् । ५१ ।
वासांसि मृतचेलानि भिन्नभाण्डेषु भोजनम् । कार्ष्णायसमलङ्कारः परिव्रज्या च नित्यशः । ५२ ।
न तैः समयमन्विच्छेत्पुरुषो धर्ममाचरन् । व्यवहारो मिथस्तेषां विवाहः सदृशैः सह । ५३ ।
अन्नमेषां पराधीनं देयं स्याद्भिन्नभाजने । रात्रौ न विचरेयुस्ते ग्रामेषु नगरेषु च । ५४ ।
दिवा चरेयुः कार्य्यार्थंश्चिह्निता राजशासनैः । अबान्धवं शवं चैव निर्हरेयुरितिस्थितिः । ५५ ।
वध्यांश्च हन्युः सततं यथाशास्त्रं नृपाज्ञया । वध्यवासांसि गृह्णीयुः शय्याश्चाभरणानि च । ५६ ।
वर्णापेतमविज्ञातन्नरङ्कलुषयोनिजम् । आर्य्यरूपमिवानार्य्यङ्कर्मभिः स्वैर्विभावयेत् । ५७ ।
अनार्य्यता निष्ठुरता क्रूरता निष्क्रियात्मता । पुरुषं व्यञ्जयन्तीह लोके कलुषयोनिजम् । ५८ ।
पित्र्यं वा भजते शीलम्मातुर्वोभयमेव वा । न कथञ्चन दुर्योनिः प्रकृतिं स्वां नियच्छति । ५९ ।
कुले मुख्येऽपि जातस्य यस्य स्याद्योनिसङ्करः । संश्रयत्येव तच्छीलन्नरोऽल्पमपि वा बहु । ६० ।
यत्र त्वेते परिध्वंसाज्जायन्ते वर्णदूषकाः । राष्ट्रिकैः सह तद्राष्ट्रं क्षिप्रमेव विनश्यति । ६१ ।
ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा देहत्यागोऽनुपस्कृतः । स्त्रीबालाभ्युपपत्तौ च बाह्यानां सिद्धिकारणम् । ६२ ।
अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । एतं सामासिकन्धर्म्मं चातुर्वर्ण्ये ब्रवीन्मनुः । ६३ ।

५५ । राजा की आज्ञा से यथा शास्त्र वध के योग्य पुरुषों का वध करें वध के योग्य पुरुषों का वस्त्र शय्या आभरण लेवैं । ५६ । निकाम योनि से उत्पन्न वर्ण से रहित बेजान भले पुरुष का भेस बनाये हो और भला पुरुष न हो तो उस के कर्म से उस की जाति को जानै । ५७ । अश्रेष्ठता निष्ठुरता क्रूरता क्रिया राहित्य इन्हों से लोक में निकाम योनि से उत्पन्न पुरुष जाना जाता है । ५८ । माता के स्वभाव अथवा पिता के स्वभाव किम्वा दोनों के स्वभाव को पुरुष ग्रहण करता है निकाम योनि वाला किसी प्रकार से अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता । ५९ । अच्छे कुल में उत्पन्न है और योनि सङ्कर है परंतु थोड़ा अथवा बहुत पिता के स्वभाव को ग्रहण करता है । ६० । जिस राज्य में वर्णों के दूषण करने वाले वर्णसंकर उत्पन्न हैं वह राज्य जन सहित जलदी नाश को पाता है । ६१ । ब्राह्मण गौ स्त्री बालक इन्हों के लिये देखने में जो प्रयोजन आवै उस्से रहित देह त्याग करै तो बाह्य (अर्थात् वर्ण से रहित) जो ये सब हैं उन्हीं को सिद्धि (अर्थात् स्वर्ग) प्राप्ति होती है । ६२ । अहिंसा सत्य अचोरी शौच इंद्रियों का रोकना ये सब धर्म संक्षेप करके चारो वर्णों को मनु जी ने कहा । ६३ । * * * *

शूद्रा में ब्राह्मण से उत्पन्न कन्या हो सो पारशवी कहाती है उस का विवाह ब्राह्मण करै और कन्या उत्पन्न हो उस का विवाह ब्राह्मण करै और कन्या उत्पन्न हो इस रीति से कन्या उत्पन्न होती आवै और उस कन्या का विवाह ब्राह्मण करता आवै तो छठईं कन्या बीज के प्रधानता से ब्राह्मण जाति को उत्पन्न करती है। ६४। शूद्र ब्राह्मण भाव को प्राप्त होता है और ब्राह्मण शूद्र भाव को प्राप्त होता है इसी रीति से क्षत्रिय से और वैश्य से उत्पन्न को जानना जैसे शूद्रा में ब्राह्मण से उत्पन्न पारशव होता है वह शूद्रा का विवाह करै उस से पुत्र उत्पन्न हो वह भी शूद्रा का विवाह करै उस से भी पुत्र उत्पन्न हो इसी रीति से पुत्र उत्पन्न होता आवै और शूद्रा का विवाह करता आवै तो छठवां पुत्र योनि के निचाई से शूद्र जाति को उत्पन्न करता है इस रीति से शूद्रा में क्षत्रिय से उत्पन्न कन्या चौथे पुरुष में बीज के प्रधानता से क्षत्रिय को उत्पन्न करती है और पुत्र चौथे पुरुष में योनि की निचाई से शूद्र को उत्पन्न करता है वैश्य से शूद्रा में उत्पन्न कन्या दूसरे पुरुष में बीज के प्रधानता से वैश्य को उत्पन्न करती है और पुत्र दूसरे पुरुष में योनि की निचाई से शूद्र को उत्पन्न करता है इसी रीति से ब्राह्मण से वैश्या में उत्पन्न पचयें पुरुष में बड़ाई छोटाई को पाता है और ब्राह्मण से क्षत्रिया में उत्पन्न तीसरे पुरुष में बड़ाई छोटाई को पाता है क्षत्रिय से वैश्या में उत्पन्न तीसरे पुरुष में बड़ाई छोटाई को पाता है। ६५। नीच जाति में (अर्थात् शूद्रा में ब्राह्मण से उत्पन्न भया और ब्राह्मणी में नीच जाति से) (अर्थात् शूद्र से) उत्पन्न भया इन दोनों में बड़ा कौन है इस का उत्तर आगे के श्लोक में देंगे। ६६। ऊंच बीज से नीच योनि में (अर्थात् ब्राह्मण से शूद्रा में) उत्पन्न पाक यज्ञ आदि गुण से युक्त होवे वह बड़ा है और नीच बीज से

शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसा चेत्प्रजायते। अश्रेयान् श्रेयसीं जातिङ्गच्छत्यासप्तमाद्युगात्। ६४।
शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैव शूद्रताम्। क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च। ६५।
अनार्यायां समुत्पन्नो ब्राह्मणात्तु यदृच्छया। ब्राह्मण्यामप्यनार्यात्तु श्रेयस्त्वं क्वेति चेद्भवेत्। ६६।
जातो नार्यामनार्यायामार्यादार्य्यो भवेद्गुणैः। जातोप्यनार्यादार्यायामनार्य इति निश्चयः। ६७।
तावुभावप्यसंस्कार्याविति धर्मोव्यवस्थितः। वैगुण्याज्जन्मनः पूर्व उत्तरः प्रतिलोमतः। ६८।
सुबीजं चैव सुक्षेत्रे जातं संपद्यते यथा। तथार्याज्जात आर्यायां सर्वं संस्कारमर्हति। ६९।
बीजमेके प्रशंसंति क्षेत्रमन्ये मनीषिणः। बीजक्षेत्रे तथैवान्ये तत्रेयन्तु व्यवस्थितिः। ७०।
अक्षेत्रेबीजमुत्सृष्टमंतरैव विनश्यति। अबीजकमपि क्षेत्रं केवलं स्थण्डिलं भवेत्। ७१।
यस्माद्बीजप्रभावेण तिर्य्यग्जा ऋषयो भवन्। पूजिताश्च प्रशस्ताश्च तस्माद्बीजं प्रशस्यते। ७२।
अनार्यमार्यकर्म्माणमार्य्यञ्चानार्यकर्म्मिणम्। संप्रधार्य्याब्रवीद्धाता न समौ नासमाविति। ७३।

ऊंच योनि में (अर्थात् शूद्र से ब्राह्मणी में) उत्पन्न बड़ा नहीं है यह निश्चय है। ६७। दोनों संस्कार के योग्य नहीं हैं यह सिद्धांत है क्योंकि पहिला नीच जाति में उत्पन्न है और दूसरा प्रतिलोम है। ६८। जिस रीति से अच्छा बीज अच्छे खेत में पड़े तो अच्छा सस्य उत्पन्न होता है इसी रीति से श्रेष्ठ से श्रेष्ठ स्त्री में उत्पन्न सर्व संस्कार के योग्य होता है। ६९। कोई पंडित बीज को अच्छा कहते हैं कोई पंडित क्षेत्र को अच्छा कहते हैं कोई पंडित दोनों की प्रशंसा करते हैं तहां आगे जो व्यवस्था कहेंगे सो जानना। ७०। ऊसर में बीज पड़ा सो नष्ट हो जाता है प्ररोह के प्राप्त नहीं होता और अच्छा खेत है बीज से रहित है तो केवल स्थंडिल है उस में अन्न उत्पन्न नहीं होता इस लिये दोनों की निंदा से अच्छा बीज अच्छे खेत में पड़े तो अच्छा अन्न उत्पन्न होवै यह पूर्व कहि आए हैं सोई संमत है कि दोनों को प्रधानता है। ७१। जिस कारण से बीज के प्रभाव करके तिर्यग् योनि में (अर्थात् हरिणी) में उत्पन्न ऋष्यशृंग आदि ऋषि होते भये पूजित और प्रशस्त हुए इस लिये बीज प्रशस्त है (अर्थात् बीज और योनि के मध्य में बीज करके उत्कृष्ट जाति प्रधान है इस बात पर जानना)। ७२। नीच है ऊंच का कर्म करता है और ऊंच है नीच कर्म करता है इन दोनों को विचार करके ब्रह्मा ने कहा कि न सम हैं और न असम हैं क्योंकि द्विजाति का कर्म करने वाला शूद्र द्विजाति सम नहीं होता (अर्थात् द्विजाति कर्म का अनधिकारी द्विजाति कर्म करने वाला भी हो तो द्विजाति सम नहीं होता इसी रीति से शूद्र का कर्म करने वाला द्विजाति शूद्र सम नहीं है निषिद्ध कर्म करने से जाति की बड़ाई नहीं गई है और असम भी नहीं है निषिद्ध कर्म करने से दोनों को समता है) इस लिये जिस को जो कर्म निंदित है सो उस कर्म को न करै यह वर्णसंकर पर्यन्त को धर्मोपदेश है। ७३। * * * *

जो ब्राह्मण ब्रह्म ध्यान में युक्त हो अपने कर्म में रत हो सो क्रम से छः कर्म करके जीवन करैं । ७४ । पढ़ना पढ़ाना यज्ञ करना यज्ञ कराना दान देना प्रतिग्रह करना ये छः कर्म ब्राह्मण को है । ७५ । इन छः कर्मों में तीन कर्म (अर्थात् पढ़ाना यज्ञ कराना विशुद्ध पुरुष से प्रतिग्रह करना) जीविका के लिये है ब्राह्मण की जीविका के लिये जो तीन कर्म हैं सो क्षत्रिय को नहीं है। ७६। ७७। वैश्य को भी क्षत्रिय की नाईं जानना यह प्रजापति मनु ने कहा । ७८। शस्त्र और अस्त्र (अर्थात् मंत्र पढ़के जो चलाया जाय) इन दोनों को धारण करना यह कर्म है सो क्षत्रिय को है और बनियां पना खेती करना पशु पालना यह कर्म वैश्य को है और पढ़ना दान देना यज्ञ करना यह धर्म्म दोनों का है । ७९ । अपने कर्म्मों में एक एक श्रेष्ठ कर्म्म तीनों को है ब्राह्मण को पढ़ना क्षत्रिय को रक्षा करना वैश्य वार्ता (अर्थात् बनियां पना पशु पालन) । ८० । अपने कर्म से ब्राह्मण जीने न सके तो क्षत्रिय के कर्म से जीवै क्योंकि क्षत्रिय अनन्तर है (अर्थात् समीप है) । ८१ । दोनों के कर्म से जीने न सके तो वैश्य के कर्म से जीवै । ८२ । वैश्य के कर्म से जीने वाले ब्राह्मण और क्षत्रिय पराधीन (अर्थात् बैल आदि से पराधीन) और भूमि में स्थित बहुत जीवों

ब्राह्मणा ब्रह्मयोनिस्था ये स्वकर्म्मण्यवस्थिताः । ते सम्यगुपजीवेयुः षट्कर्म्माणि यथा क्रमम् । ७४ ।

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनन्तथा । दानं प्रतिग्रहश्चैव षट्कर्म्माण्यग्रजन्मनः । ७५ ।

षण्णान्तु कर्म्मणामस्य त्रीणि कर्म्माणि जीविका । याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः । ७६ ।

त्रयो धर्म्मा निवर्त्तन्ते ब्राह्मणात्क्षत्रियम्प्रति । अध्यापनं याजनं च तृतीयश्च प्रतिग्रहः । ७७ ।

वैश्यम्प्रति तथैवैते निवर्त्तेरन्निति स्थितिः । न तौ प्रतिहितान्धर्म्मान्मनुराह प्रजापतिः । ७८ ।

शस्त्रास्त्रभृत्त्वं क्षत्रस्य वणिक्पशुकृषिर्विशः । आजीवनार्थन्धर्म्मस्तु दानमध्ययनं यजिः । ७९ ।

वेदाभ्यासो ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य च रक्षणम् । वार्त्ता कर्म्मैव वैश्यस्य विशिष्टानि स्वकर्म्मसु । ८० ।

अजीवंस्तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्म्मणा । जीवेत्क्षत्रियधर्म्मेण स ह्यस्य प्रत्यनन्तरः । ८१ ।

उभाभ्यामप्यजीवंस्तु कथं स्यादिति चेद्भवेत् । कृषिगोरक्षमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम् । ८२ ।

वैश्यवृत्त्यापि जीवंस्तु ब्राह्मणः क्षत्रियोपि वा । हिंसा प्रायां पराधीनां कृषिं यत्नेन वर्जयेत् । ८३ ।

कृषिं साध्विति मन्यंते सा वृत्तिः सद्विगर्हिता । भूमिं भूमिशयांश्चैव हंति काष्ठमयो मुखम् । ८४ ।

इदं तु वृत्तिवैकल्यात्त्यजतो धर्म्मनैपुणम् । विट्पण्यमुद्धृतोद्धारं विक्रेयं वित्तवर्द्धनम् । ८५ ।

सर्वान् रसानपोहेत कृतान्नञ्च तिलैस्सह । अश्मनो लवणञ्चैव पशवो ये च मानुषाः । ८६ ।

सर्वञ्च तान्तवं रक्तं शाणक्षौमाविकानि च । अपि चेत्स्युररक्तानि फलमूले तथौषधीः । ८७ ।

अपः शस्त्रं विषं मांसं सोमं गंधांश्च सर्वशः । क्षीरं क्षौद्रं दधि घृतं तैलं मधु गुडं कुशान् । ८८ ।

आरण्यांश्च पशून्सर्वान्दंष्ट्रिणश्च वयांसि च । मद्यं नीलिञ्च लाक्षां च सर्वांश्चैकशफांस्तथा । ८९ ।

का नाश जिस में हो ऐसी जो खेती है उस को यत्न पूर्वक वर्जन करै । ८३ । खेती को कोई अच्छी मानते हैं सो ठीक नहीं क्योंकि भूमि को और भूमि में स्थित जीव को लोह मुख वाला काष्ट (अर्थात् हल) नाश करता है इस लिये उस जीविका की साधु लोगों ने निंदा की है । ८४ । ब्राह्मण क्षत्रिय अपने जीविका से जीने न सकै और वैश्य की जीविका से जीवैं तो आगे जो बेचने को मना करैंगे उस को छोड़कर द्रव्य के बढ़ाने वाली वस्तु बेचै । ८५ । सब रस सिद्धार्थ (अर्थात् सरसव) तिल पत्थर लवण पशु मनुष्य इन सब को न बेचै रस के निषेध से लवण का निषेध सिद्ध रहा फेर लवण का निषेध जो किया सो दोष की बड़ाई जानने के लिये सो भी प्रायश्चित्त बड़ाई के लिये है इसी रीति से अन्य का भी पृथक् निषेध को जानना । ८६ । रक्त वस्त्र सन तीसी भेड़ि इन्हों से जो वस्त्र है श्वेत अथवा रक्त फल मूल औषधि । ८७ । जल लोह विष मांस सोमलता गंध दूध मधु दही घी तेल मधूच्छिष्ट (अर्थात् मोम) गुड़ कुशा । ८८ । बन के पशु दाढ़ वाले जीव (अर्थात् सिंह आदि) पक्षी मद्य नील लाख एक खुर वाला जीव इन सब को न बेचै । ८९ । * * * * * *

खेती करने वाला खेती में तिल उत्पन्न करै और वह तिल शुद्ध हो बहुत काल तक गृह में न रहा हो तो उस को धर्म के अर्थ बेचै। ९०। भोजन अबटन दान ये तीन कर्म छोड़ के दूसरा कर्म जो तिल से करै सो कीड़ा होके कुत्ता के विष्ठा में पितरों के साथ डूबै। ९१। मांस लाख लवण इन के बेचने से तुरंत पतित होता है और दूध बेचने से तीन दिन में शूद्र भाव को प्राप्त होता है। ९२। इच्छा पूर्वक दूसरे बस्तुओं के बेचने से ब्राह्मण सात रात में वैश्य भाव को प्राप्त होता है। ९३। रस (अर्थात् गुड़ आदि) को रस (अर्थात् घी आदि) से बदला करना लवण को दूसरे रस से बदला न करना सिद्धान्न को आमान्न करके तिल को धान्य करके सम बदला करना। ९४। आपत्काल में प्राप्त क्षत्रिय पूर्व कथित जीविका से जीवै परन्तु बड़ों की जीविका से जीवै परन्तु बड़ों की जीविका से जीने का अभिमान कभी न करै। ९५। अधम जाति वाला लोभ से बड़ों के कर्म से जीवै तो राजा उस को निर्द्धन करके जलदी अपने देश से निकाल देवै। ९६। गुण से हीन भी अपना धर्म हो तो उस को करना पर का धर्म बहुत अच्छा हो तो उस को न करना पर का धर्म करके जाति से शीघ्र पतित होता है। ९७। वैश्य अपने कर्म से जीने न सकै तो शूद्र के

कामुत्पाद्य कृष्यां तु स्वयमेव कृषीवलः। विक्रीणीत तिलान् शुद्धान्धर्मार्थमचिरस्थितान्। ९०।
भोजनाभ्यञ्जनाद्दानाद्यदन्यत्कुरुते तिलैः। कृमिभूतः श्वविष्ठायां पितृभिः सह मज्जति। ९१।
सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च। त्र्यहेण शूद्री भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात्। ९२।
इतरेषां तु पण्यानां विक्रयादिह कामतः। ब्राह्मणस्सप्तरात्रेण वैश्यभावन्नियच्छति। ९३।
रसारसैर्निमातव्या न त्वेव लवणं रसैः। कृतान्नञ्चाकृतान्नेन तिला धान्येन तत्समाः। ९४।
जीवेदेतेन राजन्यस्सर्वेणाप्यनयङ्गतः। न त्वेव ज्यायसीं वृत्तिमभिमन्येत कर्हिचित्। ९५।
यो लोभादधमो जात्या जीवेदुत्कृष्टकर्मभिः। तं राजा निर्द्धनं कृत्वा क्षिप्रमेव प्रवासयेत्। ९६।
वरं स्वधर्मो विगुणो न पारक्यः स्वनुष्ठितः। परधर्मेण जीवन्हि सद्यः पतति जातितः। ९७।
वैश्यो जीवन्स्वधर्मेण शूद्रवृत्त्याऽपि वर्त्तयेत्। अनाचरन्नकार्याणि निवर्तेत च शक्तिमान्। ९८।
अशक्नुवंस्तु शुश्रूषां शूद्रः कर्तुं द्विजन्मनाम्। पुत्रदारात्ययं प्राप्तो जीवेत्कारुककर्मभिः। ९९।
यैः कर्मभिः प्रचरितैः शुश्रूष्यंते द्विजातयः। तानि कारुककर्माणि शिल्पानि विविधानि च। १००।
वैश्यवृत्तिमनातिष्ठन्ब्राह्मणः स्वे पथिस्थितः। अवृत्तिकर्षितः सीदन्निमं धर्मं समाचरेत्। १०१।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयाद्ब्राह्मणस्त्वनयङ्गतः। पवित्रं दुष्यतीत्येतद्धर्मतो नोपपद्यते। १०२।
नाध्यापनाद्याजनाद्वा गर्हितादा प्रतिग्रहात्। दोषो भवति विप्राणां ज्वलनांबुसमाहि ते। १०३।
जीवितात्ययमापन्नो योऽन्नमत्ति यतस्ततः। आकाशमिव पङ्केन न स पापेन लिप्यते। १०४।
अजीगर्तः सुतं हंतुमुपासर्पद्बुभुक्षितः। न चालिप्यत पापेन क्षुत्प्रतीकारमाचरन्। १०५।

कर्म से जीवै और जो वस्तु करने के योग्य नहीं है उस को न करै। ९८। द्विजाति की सेवा को शूद्र न कर सकै और उस की स्त्री पुत्र क्षुधा से दुःखित होवैं तो रसोई करने वालों के कर्म से जीवै। ९९। जिन कर्मों से द्विजाति की सेवा होवे वह जो कारुक (अर्थात् बढ़ई) का कर्म और शिल्प (अर्थात् चित्र लिखन आदि) कर्म नाना प्रकार के हैं उन को करै। १००। वैश्य कर्म को न करै और जीविका से कष्ट को पावै अपने मार्ग में स्थित होवै ऐसा जो ब्राह्मण सो आगे जो धर्म कहेंगे उस को करै। १०१। आपत्काल में प्राप्त ब्राह्मण चारो ओर से प्रतिग्रह करै जिस कारण से पवित्र (अर्थात् गंगा आदि नदी) दोषी होती हैं यह बात धर्म से उत्पन्न नहीं होता। १०२। पढ़ाना यज्ञ कराना निंदित से धन लेना इन्हों से ब्राह्मण को दोष नहीं होता क्योंकि अग्नि और जल इन्हों के समान ब्राह्मण है। १०३। आपत्काल में इधर उधर से जो ब्राह्मण भोजन करता है सो पाप से लिप्त नहीं होता जैसे आकाश कांदव में भी है परंतु उस से लिप्त नहीं होता। १०४। अजीगर्त ऋषि क्षुधा से पीड़ित होकर अपना बेटा शुनःशेफ को बेचा यज्ञ में सौ गौ लिया यज्ञ खंभ में बांधिके मारने में प्रवृत्त हुए क्षुधा शांति के लिये परंतु पाप करके लिप्त न हुए यह बात ऋग्वेद के ब्राह्मण में शुनःशेफ की कथा में स्पष्ट है। १०५। * * * * *

धर्म और अधर्म का जानने वाला क्षुधा से पीड़ित वामदेव ऋषि प्राण रक्षा के लिये कुत्ते की मांस को भोजन करने की इच्छा करत संते पाप से लिप्त न हुए । १०६ । क्षुधा से पीड़ित महा तपस्वी पुत्र सहित भरद्वाज ऋषि जन रहित बन में वृधु नाम बढ़ई से बहुत गौ का दान लिया । १०७ । धर्म और अधर्म का जानने वाला क्षुधा से पीड़ित विश्वामित्र ऋषि चाण्डाल के हाथ से कुत्ते की जंघा की मांस को लेकर भोजन करने के लिये निश्चय किया । १०८ । आपत्काल के अभाव में ब्राह्मण को यज्ञ कराना पढ़ाना इन दोनों से प्रतिग्रह करना परलोक में निन्दित है । १०९ । पूर्व कथित बात में कारण कहते हैं आपत्काल में अथवा अनापत्काल में संस्कार सहित जो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य उन्हीं को पढ़ाना यज्ञ कराना होता है और प्रतिग्रह करना तो निकृष्ट जाति शूद्र से भी होता है इस लिये उन दोनों से यह निंदित है । ११० । यज्ञ कराने से और पढ़ाने से जो पाप होता है सो जप और होम से जाता है प्रतिग्रह करने से जो पाप होता है सो तप से और प्रतिग्रह की बस्तु के त्याग से जाता है । ११ । अपनी जीविका से जीने न सकै ब्राह्मण तो उपपातकी आदि से शिल और उंछ को लेवै प्रतिग्रह से शिल बड़ा उस से भी उंछ बड़ा । ११२ । धर्म और कुटुम्ब इन्हीं के अर्थ कष्ट को पाये हुए निर्द्धन ब्राह्मण सोना रूपा छोड़कर धान्य और वस्त्र को और यज्ञ के

श्वमांसमिच्छन्नार्त्तोऽत्तुन्धर्माधर्मविचक्षणः । प्राणानां परिरक्षार्थम्वामदेवो न लिप्तवान् । १०६ ।
भरद्वाजः क्षुधार्त्तस्तु स पुत्रो विजने वने । बह्वीर्गाः प्रतिजग्राह वृधोस्तक्ष्णो महातपाः । १०७ ।
क्षुधार्त्तश्चाऽत्तुमभ्यागाद्विश्वामित्रः श्वजाघनीम् । चाण्डालहस्तादादाय धर्म्माधर्म्मविचक्षणः । १०८ ।
प्रतिग्रहाद्याजनाद्वा तथैवाध्यापनादपि । प्रतिग्रहः प्रत्यवरः प्रेत्यविप्रस्य गर्हितः । १०९ ।
याजनाध्यापने नित्यं क्रियेते संस्कृतात्मनाम् । प्रतिग्रहस्तु क्रियते शूद्रादप्यन्त्यजन्मनः । ११० ।
जपहोमैरपैत्येनो याजनाध्यापनैः कृतम् । प्रतिग्रहनिमित्तं तु त्यागेन तपसैव च । १११ ।
शिलोंछमप्याददीत विप्रोऽजीवन्यतस्ततः । प्रतिग्रहाच्छिलः श्रेयांस्ततोऽप्युंछः प्रशस्यते । ११२ ।
सीदद्भिः कुप्यमिच्छद्भिर्द्धनम्वा पृथिवीपतिः । याच्यः स्यात्स्नातकैर्विप्रैरदित्संस्त्यागमर्हति । ११३ ।
अकृतञ्च कृतात्क्षेत्राद्गौरजाविकमेव च । हिरण्यन्धान्यमन्नञ्च पूर्वम्पूर्वमदोषवत् । ११४ ।
सप्त वित्तागमाधर्म्यादायो लाभः क्रयो जयः । प्रयोगः कर्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च । ११५ ।
विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्ष्यं विपणिः कृषिः । धृतिर्भैक्ष्यं कुसीदञ्च दशजीवनहेतवः । ११६ ।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वृद्धिन्नैव प्रयोजयेत् । कामं तु खलु धर्म्मार्थं दद्यात्पापीयसेऽल्पिकाम् । ११७ ।
चतुर्थमाददानोऽपि क्षत्रियो भागमापदि । प्रजा रक्षन्परं शक्त्या किल्बिषात्प्रतिमुच्यते । ११८ ।
स्वधर्मो विजयस्तस्य नाहवे स्यात्पराङ्मुखः । शस्त्रेण वैश्यान् रक्षित्वा धर्म्यमाहारयेद्बलिम् । ११९ ।

अर्थ सोना रूपा को भी शास्त्रोक्त कर्म से रहित क्षत्रिय से भी मांगै और जो कृपणता से धन देने की इच्छा न करै उस को त्याग देवै । ११३ । सस्य सहित खेत से बिना सस्य वाला खेत का प्रतिग्रह करना दोष रहित है और गौ बकरा भेड़ा सोना अन्न सिद्धान्न इन्हीं में पूर्व पूर्व उत्तर उत्तर से दोष रहित है इस लिये पूर्व पूर्व के अभाव में पर पर को ग्रहण करना । ११४ । विभाग से प्राप्त भूमि में गड़ा हुआ मिला और मोल लिया जीत से मिला व्यवहार करने से मिला काम करके मिला भले लोगों से प्रतिग्रह करके मिला इन सात प्रकार से द्रव्य का आगम धर्म से युक्त है । ११५ । विद्या (अर्थात् वेद विद्या छोड़कर वैद्यक न्याय विष का झारना) शिल्प (अर्थात् लिखना आदि) भृति (अर्थात् मजूरी) सेवा गौ का रक्षा बनियां का कर्म खेती करना संतोष भक्ष्य (अर्थात् भिक्षा समूह) ब्याज लेना ये दश जीने का कारण है (अर्थात् अनापत्काल में जो जीविका जिस को निषिद्ध है उस जीविका को आपत्काल में वह पुरुष करै । ११६ । ब्राह्मण और क्षत्रिय ब्याज न लेवैं अथवा निकृष्ट कर्म करने वाले को धर्म के अर्थ थोड़ा ब्याज लेकर धन यथेष्ट देवै । ११७ । शक्ति पूर्वक प्रजों की रक्षा करत संते आपत्काल में प्रजों से चौथा भाग लेत संते क्षत्रिय पाप से छूटता है । ११८ । शस्त्र से जय प्राप्ति और संग्राम में न भागना ये दोनों राजा का धर्म है शस्त्रों से वैश्यों की रक्षा करके धर्म से युक्त बलि (अर्थात् अपने भाग) को लेवै । ११९ । * * * *

२०

धान्य में वैश्यों से बीस रुपैया बढ़ने में अष्टम भाग लेवे आपत्काल में और अत्यन्त आपत्काल में तो चौथा भाग कह आये हैं आपत्काल न होवे तो बारहवां भाग लेवे हिरण्य (अर्थात् मोहर आदि) का और पशु इन्हीं का पचासवां भाग लेवे और आपत्काल होवे तो बीसवां भाग लेवे शूद्र और कारू (अर्थात् रसोई बनाने वाले) शिल्पी (अर्थात् बढ़ई आदि) इन्हीं से आपत्काल में भी कर न लेवे किंतु कर्म ही करावे (अर्थात् ये सब कर्म ही करके राजा का उपकार करें। १२०। ब्राह्मण की सेवा से शूद्र जीने न सके और जीविका की इच्छा करे तो क्षत्रिय का आराधन करके जीवे अथवा धनी वैश्य का आराधन करके जीवे। १२१। स्वर्ग के लिये अथवा जीविका और स्वर्ग दोनों के लिये ब्राह्मणों की आराधन शूद्र करे ब्राह्मण की सेवा करने वाला यह शूद्र है ऐसा संसार में विदित होना उस की कृतकृत्यता (अर्थात् करने योग्य सब वस्तु को कर चुकना) है। १२२। ब्राह्मण की सेवा ही शूद्र का बड़ा कर्म है इस को छोड़कर और जो करना है सो निष्फल है। १२३। शूद्र की सेवा में सामर्थ्य कर्म में उत्साह पुत्र स्त्री आदि का पोषण परिमाण इन सब को देखकर अपने गृह से उस के योग्य जीविका को ब्राह्मण करे। १२४। जूठा अन्न पुराना कपड़ा सार रहित धान्य पुरानी शय्या पुरानी गृह की सामग्री इन सब को आश्रित शूद्र है उस को देना। १२५। लहसुन आदि के भक्षण

धान्येऽष्टमं विशां शुल्कं विंशं कार्षापणावरम्। कर्मोपकरणाः शूद्राः कारवः शिल्पिनस्तथा। १२०।
शूद्रस्तु वृत्तिमाकांक्षन् क्षत्रमाराधयेद्यदि। धनिनं वाप्युपाराध्य वैश्यं शूद्रो जिजीविषेत्। १२१।
स्वर्गार्थमुभयार्थं वा विप्रानाराधयेत्तु सः। जात ब्राह्मणशब्दस्य साह्यस्य कृतकृत्यता। १२२।
विप्रसेवैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्त्यते। यदतोऽन्यद्धि कुरुते तद्भवत्यस्य निष्फलम्। १२३।
प्रकल्प्या तस्य तैर्वृत्तिः स्वकुटुम्बाद्यथार्हतः। शक्तिञ्चावेक्ष्य दाक्ष्यञ्च भृत्यानाञ्च परिग्रहम्। १२४।
उच्छिष्टमन्नन्दातव्यं जीर्णानि वसनानि च। पुलाकाश्चैव धान्यानां जीर्णाश्चैव परिच्छदाः। १२५।
न शूद्रे पातकं किंचिन्न च संस्कारमर्हति। नास्याधिकारो धर्मेऽस्ति न धर्मात्प्रतिषेधनम्। १२६।
धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तमनुष्ठिताः। मंत्रवर्जन्न दुष्यंति प्रशंसां प्राप्नुवंति च। १२७।
यथा यथा हि सद्वृत्तमातिष्ठत्यनसूयकः। तथा तथेमञ्चामुञ्च लोकं प्राप्नोत्यनिंदितः। १२८।
शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्यो धनसञ्चयः। शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते। १२९।
एते चतुर्णाम्वर्णानामापद्धर्माः प्रकीर्तिताः। यान्सम्यगनुतिष्ठन्तो व्रजंति परमां गतिम्। १३०।
एष धर्मविधिः कृत्स्नश्चातुर्वर्ण्यस्य कीर्तितः। अतः परम्प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम्। १३१॥

* इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ *

से पातक शूद्र को नहीं होता यज्ञोपवीत आदि संस्कार भी शूद्र को नहीं है अग्निहोत्र आदि धर्म में भी शूद्र को अधिकार नहीं है पाक यज्ञ आदि धर्म का निषेध भी नहीं है ये सब बात तो कह आए हैं यह श्लोक आगे के लिये अनुवाद (अर्थात् सिद्ध वस्तु का कथन) है। १२६। अपने धर्म को जानने वाला धर्म की इच्छा करने वाला द्विजों का निषिद्ध आचार को आश्रय करने वाला जो शूद्र सो नमस्कार मंत्र करके पंच यज्ञ को करे छोड़े न इस से लोक में प्रसिद्धता को पाता है। १२७। पर के गुण की निंदा को न करने वाला शूद्र जैसे जैसे भले लोगों के आचरण को करता है तैसे तैसे इस लोक में बड़ा कहाता है और परलोक में स्वर्ग को पाता है। १२८। समर्थ भी शूद्र हो परंतु धन का संचय न करे क्योंकि शूद्र धन को पाके ब्राह्मण ही को बाधा करता है। १२९। यह चारो वर्ण के आपत्काल के धर्म को कहा जिस धर्म को करत संते परमगति को पाते हैं। १३०। चारो वर्णों का संपूर्ण धर्म विधि यह कहा इस के अनंतर शुभ प्रायश्चित्त विधि को कहेंगे। १३१। इति श्री मनुस्मृति भाषा टीकायां कुल्लूक भट्ट व्याख्याऽनुसारिण्यां श्री बाबू देवीदयाल सिंह कारितायां श्री काम्यजी संस्कृत पाठशालीय गुलज़ार शर्म्म पण्डित कृतायां दशमोऽध्यायः १० ॥ * ॥ * ॥ * * * * * * * * *

विवाह की इच्छा करने वाला ज्योतिष्टोम आदि याग की इच्छा करने वाला पैंड़हरू सर्व धन दक्षिणा वाली विश्वजित् याग करने वाला विद्या गुरु माता पिता इन तीनों को भोजनाच्छादन देने वाला वेद पठन समय में भोजनाच्छादन की इच्छा करने वाला रोगी । १ । ये नव ब्राह्मण स्नातक कहाते हैं (अर्थात् ब्रह्मचारी कहाते हैं) और धर्म भिक्षा स्वभाव वाले हैं ये सब धन रहित हों तो इन्हीं की विद्या के योग्य हिरण्य आदि देना (अब इस स्थान में ऐसी आशंका होती है कि दशईं अध्याय के अंत में यह कहा कि इस के अनंतर प्रायश्चित्त विधि को कहैंगे ऐसी प्रतिज्ञा किया और स्नातक ब्रह्मचारी का वर्णन प्रारंभ किया सो प्रतिज्ञा से विरुद्ध है तिस का समाधान करते हैं कि करने योग्य जो कार्य नहीं है उस के करने वाले दान करके शुद्ध होते हैं यह कह आए और सर्प आदि के वध की शुद्धि दान से न कर सकै तो दूसरा प्रायश्चित्त करै ऐसा आगे कहैंगे इसलिये दान पात्र का वर्णन बड़ा प्रायश्चित्त है तो उस का प्रारंभ युक्त है और इस अध्याय का प्रयोजन भी यही है कि वर्ण और आश्रम इन दोनों का धर्म आदि से भिन्न प्रायश्चित्त आदि धर्म का कथन करना और भी नैमित्तिक धर्म का कथन करना इस अध्याय में युक्त है) । २ । ये नव ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं इन को वेदी के भीतर दक्षिणा सहित अन्न देना और इन से जो भिन्न हैं उनको वेदी के बाहर सिद्धान्न देना कहते हैं । ३ । वेद पढ़ने वाले ब्राह्मण को विद्या योग्य सर्व रत्न राजा देवै और यज्ञ के लिये दक्षिणा देवै । ४ । प्रथमा स्त्री के रहत संते भिक्षा से धन बटोर के उस धन से दूसरा विवाह करै तो रति मात्र फल उस को है जिस

सान्तानिकं यक्ष्यमाणमध्वगं सर्ववेदसम् । गुर्वर्थं पितृमात्रर्थं स्वाध्यायार्थ्युपतापिनः । १ ।
न वैतान्स्नातकान्विद्याद्ब्राह्मणान्धर्मभिक्षुकान् । निःस्वेभ्यो देयमेतेभ्यो दानं विद्या विशेषतः । २ ।
एतेभ्यो हि द्विजाग्र्येभ्यो देयमन्नं सदक्षिणम् । इतरेभ्यो बहिर्वेदि कृतान्नं देयमुच्यते । ३ ।
सर्वरत्नानि राजा तु यथार्हम्प्रतिपादयेत् । ब्राह्मणान्वेदविदुषो यज्ञार्थञ्चैव दक्षिणाम् । ४ ।
कृतदारो परान्दारान् भिक्षित्वा योऽधिगच्छति । रतिमात्रं फलन्तस्य द्रव्यदातुस्तु संततिः । ५ ।
धनानि तु यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत् । वेदवित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते । ६ ।
यस्य त्रैवार्षिकं भक्तम्पर्याप्तम्भृत्यवृत्तये । अधिकं वापि विद्येत स सोमम्पातुमर्हति । ७ ।
अतः स्वल्पीयसि द्रव्ये यः सोमं पिबति द्विजः । स पीतसोमपूर्वोऽपि न तस्याप्नोति तत्फलम् । ८ ।
शक्तः परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि । मध्वापातो विषास्वादः स धर्मप्रतिरूपकः । ९ ।
भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौर्ध्वदेहिकम् । तद्भवत्यसुखोदर्कञ्जीवितस्य मृतस्य च । १० ।
यज्ञश्चेत्प्रतिरुद्धः स्यादेकेनाङ्गेन यज्वनः । ब्राह्मणस्य विशेषेण धार्मिके सति राजनि । ११ ।
यो वैश्यः स्याद्बहुपशुर्हीनक्रतुरसोमपः । कुटुम्बात्तस्य तद्द्रव्यमाहरेद्यज्ञसिद्धये । १२ ।
आहरेत्त्रीणि वा द्वे वा कामं शूद्रस्य वेश्मनः । न हि शूद्रस्य यज्ञेषु कश्चिदस्ति परिग्रहः । १३ ।

ने धन दिया उसी की संतति है । ५ । स्त्री पुत्र के सेवन में लगा हो और वेद को पढ़े हो ऐसे ब्राह्मण को राजा यथा शक्ति धन देवै । ६ । भृत्य स्त्री पुत्र आदि आश्रित जन सहित जिस पुरुष को तीन वर्ष तक भोजन के लिये अन्न है सो सोमयाग करने के योग्य है । ७ । इस से थोड़ा धन वाला सोमयाग करै तो उस का फल नहीं पाता । ८ । परजन के अन्न आदि देने को समर्थ है और अपने जन को नहीं देता अपने जन दुःख से जीते हैं सो पुरुष धर्म का प्रति रूपक है (अर्थात् धर्म करने वाला नहीं है) किंतु प्रथम यश मिलता है पीछे से नरक होता है । ९ । भृत्य पुत्र स्त्री माता पिता आदि को पीड़ा देकर परलोक के लिये दान आदि जो करता है सो दान उस पुरुष के जीते तक है और मरे पीछे दुःख देने वाला है । १० । धार्मिक राजा के रहत संते जिस ब्राह्मण की अथवा क्षत्रिय की यज्ञ द्रव्य बिना एक अंग से हीन हो । ११ । तो पाक यज्ञ आदि से रहित और सोम से रहित बहुत पशु वाला वैश्य के गृह से उस अंगके योग्य द्रव्य को बल से अथवा चोरी से यज्ञ करने वाला लेवै । १२ । यज्ञ का दो अथवा तीन अंग द्रव्य बिना सिद्ध नहीं होता और वैश्य से भी धन नहीं मिलता तो शूद्र के गृह से बल करके अथवा चोरी से धन ग्रहण करै क्योंकि शूद्र को यज्ञ संबंध कोई नहीं है और जो आगे लिखैंगे कि यज्ञ के अर्थ शूद्र से भिक्षा न लेना तिस पर कहते हैं कि बल से अथवा चोरी से धन ग्रहण करना मना नहीं है । १३ ।　*　*

जो अग्निहोत्री नहीं है और सौ गौ वाला है अथवा यज्ञ से रहित है सहस्र गौ वाला है इन दोनों के गृह से यज्ञ के अंग को सिद्ध होने के लिये धन ग्रहण करे इस में कुछ विचार न करे । १४ । जो जो ब्राह्मण नित्य ही प्रतिग्रह करता है और बाउली कूंआं तड़ाग इन को नहीं खनाता है और यज्ञ नहीं करता दान से रहित है उस्से यज्ञांग सिद्धि के लिये धन मांगा और वह नहीं देता तो बल से अथवा चोरी से उस के गृह से धन को लेवे इस्से लेने वाले की प्रसिद्धि होती है और धर्म बढ़ता है । १५ । एक दिन में दो बार भोजन करना ऐसी शास्त्र की आज्ञा है इस में छः बेर जिसने भोजन न किया तो तीन दिन उपवास भया चौथे दिन पहिली बेर एक दिन के भोजन भर अन्न हीन कर्म वाले से चोरी करके लेना । १६ । खरिहान से खेत से गृह से अथवा जहां से मिले तहां से अन्न को चोरावे और जब अन्न स्वामी पूछे कि कहां से अन्न चोराया तुम ने तो कहि देवे । १७ । ब्राह्मण के धन को क्षत्रिय कभी न ग्रहण करे और अत्यंत आपत्काल प्राप्त हो तो निषिद्ध कर्म करने वाला और विहित कर्म का त्याग करने वाला जो ब्राह्मण और क्षत्रिय है उस के गृह से चोरी करे । १८ । जो मनुष्य असाधु लोगों से द्रव्य लेके साधु लोगों को देता है सो अपने को नौका बनाके उन दोनों को तारता है । १९ । यज्ञ करने वालों का जो धन है सो देवतों का धन

योनाहिताग्निः शतगुरयज्वा च सहस्रगुः । तयोरपि कुटुम्बाभ्यामाहरेदविचारयन् । १४ ।
आदाननित्याच्चादातुराहरेदप्रयच्छतः । तथा यशोऽस्य प्रथते धर्मश्चैव प्रवर्द्धते । १५ ।
तथैव सप्तमे भक्ते भक्तानि षडनश्नता । अश्वस्तनविधानेन हर्तव्यं हीनकर्मणः । १६ ।
खलात्क्षेत्रादगाराद्वा यतो वाप्युपलभ्यते । आख्यातव्यन्तु तत्तस्मै पृच्छते यदि पृच्छति । १७ ।
ब्राह्मणस्वन्नहर्तव्यं क्षत्रियेण कदाचन । दस्युनिष्क्रिययोस्तु स्वमजीवन् हर्तुमर्हति । १८ ।
यो साधुभ्योऽर्थमादाय साधुभ्यः संप्रयच्छति । स कृत्वा प्लवमात्मानं संतारयति तावुभौ । १९ ।
यद्धनं यज्ञशीलानां देवस्वं तद्विदुर्बुधाः । अयज्वनान्तु यद्वित्तमासुरस्वन्तदुच्यते । २० ।
न तस्मिन्धारयेद्दण्डं धार्मिकः पृथिवीपतिः । क्षत्रियस्य हि बालिश्याद्ब्राह्मणः सीदति क्षुधा । २१ ।
तस्य भृत्यजनं ज्ञात्वा स्वकुटुम्बान्महीपतिः । श्रुतशीले च विज्ञाय धर्म्यां वृत्तिम्प्रकल्पयेत् । २२ ।
कल्पयित्वास्य वृत्तिञ्च रक्षेदेनं समन्ततः । राजा हि धर्मषड्भागं तस्मात्प्राप्नोति रक्षितात् । २३ ।
न यज्ञार्थं धनं शूद्राद्विप्रोभिक्षेत कर्हिचित् । यजमानो हि भिक्षित्वा चाण्डालः प्रेत्य जायते । २४ ।
यज्ञार्थमर्थं भिक्षित्वा यो न सर्वम्प्रयच्छति । स याति भासतां विप्रः काकतां वा शतं समाः । २५ ।
देवस्वं ब्राह्मणस्वं वा लोभेनोपहिनस्ति यः । स पापात्मा परे लोके गृध्रोच्छिष्टेन जीवति । २६ ।
इष्टिं वैश्वानरीन्नित्यन्निर्वपेदब्दपर्यये । क्लृप्तानाम्पशुसोमानां निष्कृत्यर्थमसंभवे । २७ ।
आपत्कल्पेन यो धर्मं कुरुते नापदि द्विजः । स नाप्नोति फलन्तस्य परत्रेति विचारितम् । २८ ।

कहाता है ऐसा पंडितों ने कहा और जो यज्ञ करने वाले नहीं हैं उन का जो धन है सो राक्षसों का धन कहाता है । २० । ऐसे कर्म में धार्मिक राजा दंड न देवे क्योंकि राजा के लड़कपन से ब्राह्मण क्षुधा से पीड़ित होता है । २१ । ब्राह्मण का भृत्य जन कुटुंब (अर्थात् पोष्यवर्ग) पठन शील (अर्थात् स्वभाव) इन सब को जानि के धर्म करके युक्त जीविका को राजा करे । २२ । ब्राह्मण की जीविका करके और उस की रक्षा चारो ओर से करे उस रक्षा से ब्राह्मण जो धर्म करेगा उस का छठां भाग राजा पाता है । २३ । ब्राह्मण यज्ञ के लिये शूद्र से धन को कभी न मांगै कदाचित् मांग के उस धन से यज्ञ करै तो दूसरे जन्म में चाण्डाल होता है । २४ । यज्ञ के लिये भिक्षा मांग के धन बटोर के और संपूर्ण धन को यज्ञ में न लगावे सो सौ जन्म तक भास पक्षी और कौआ होता है । २५ । जो मनुष्य लोभ से देवता के द्रव्य को और ब्राह्मण के द्रव्य को नाश करता है सो पापी परलोक में गिद्ध पक्षी के जूठे से जीता है । २६ । पशु यज्ञ और सोम यज्ञ वर्ष भर में एक बेर करना कदाचित् यह न हो सके तो इस के प्रायश्चित्त के लिये वर्ष की समाप्ति में अग्नि देवता की यज्ञ करै । २७ । आपत्काल नहीं है और आपत्काल के धर्म को जो ब्राह्मण करता है सो परलोक में उस के फल को नहीं पाता । २८ । * * *

मरण से डरे हुए विश्वेदेवा साध्यगण ब्राह्मण बड़े ऋषि लोग इन सबों ने आपत्काल में मुख्य विधि का गौण विधि किया। २९। मुख्य विधि करने में समर्थ होके और गौण विधि को करता है उस को परलोक में उस गौण विधि का फल नहीं होता। ३०। धर्म को जानने वाला ब्राह्मण राजा से कुछ न कहै किंतु अपने पराक्रम से अपकारी लोगों का शासन करै। ३१। राजा के पराक्रम से अपना पराक्रम बड़ा है इस लिये ब्राह्मण अपने पराक्रम से शत्रुओं का निग्रह करै। ३२। अथर्व अङ्गिरा ऋषि ने कहा जो मारण प्रयोग उस को करै इस में विचार कुछ न करै ब्राह्मण को वाणी ही शस्त्र है उस्से शत्रुओं को मारै। ३३। क्षत्रिय अपने बाहु वीर्य से वैश्य और शूद्र ये दोनों धन से जप होम से ब्राह्मण आपत्काल को बितावै। ३४। विहित कर्म को करने वाला पुत्र शिष्य आदि को सिखाने वाला प्रायश्चित्त आदि को कहने वाला सब जीवों से मित्रता रखने वाला ऐसे ब्राह्मण को अनिष्ट (अर्थात् निग्रह करो) ऐसा न बोलना और कठोर वाणी न बोलना। ३५। कन्या युवती थोड़ा विद्यावान मूर्ख व्याधि से पीड़ित यज्ञोपवीत से रहित ये सब सायं प्रातः काल अग्निहोत्र को न करैं। ३६। कदाचित इन सब को करैं तो नरक में जाते हैं और जिस की अग्नि है (अर्थात्

विश्वैश्च देवैः साध्यैश्च ब्राह्मणैश्च महर्षिभिः। आपत्सु मरणाद्भीतैर्विधेः प्रतिनिधिः कृतः। २९।
प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्त्तते। न साम्परायिकन्तस्य दुर्मतेर्विद्यते फलम्। ३०।
न ब्राह्मणो वेदयेत किञ्चिद्राजनि धर्मवित्। स्ववीर्य्येणैव तान् शिष्यान्मानवानपकारिणः। ३१।
स्ववीर्य्याद्राजवीर्य्याच्च स्ववीर्य्यम्बलवत्तरम्। तस्मात्स्वेनैव वीर्य्येण निगृह्णीयादरीन् द्विजः। ३२।
श्रुतीरथर्वाङ्गिरसीः प्रकुर्य्यादविचारयन्। वाक् शस्त्रं वै ब्राह्मणस्य तेन हन्यादरीन्द्विजः। ३३।
क्षत्रियो बाहुवीर्य्येण तरेदापदमात्मनः। धनेन वैश्यशूद्रौ तु जपहोमैर्द्विजोत्तमः। ३४।
विधाता शासिता वक्ता मैत्रो ब्राह्मण उच्यते। तस्मै नाकुशलं ब्रूयान्न शुष्काङ्गिरमीरयेत्। ३५।
न वै कन्या न युवतिर्नाल्पविद्यो न बालिशः। होता स्यादग्निहोत्रस्य नार्त्तो नासंस्कृतस्तथा। ३६।
नरके हि पतन्त्येते जुह्वतः स च यस्य तत्। तस्माद्वैतानकुशलो होता स्याद्वेदपारगः। ३७।
प्राजापत्यमदत्वाश्वमग्न्याधेयस्य दक्षिणाम्। अनाहिताग्निर्भवति ब्राह्मणो विभवे सति। ३८।
पुण्यान्यन्यानि कुर्वीत श्रद्दधानो जितेन्द्रियः। न त्वल्पदक्षिणैर्यज्ञैर्यजेतेह कथञ्चन। ३९।
इंद्रियाणि यशः स्वर्गमायुः कीर्त्तिम्प्रजाः पशून्। हन्त्यल्पदक्षिणो यज्ञस्तस्मान्नाल्पधनो यजेत्। ४०।
अग्निहोत्र्यपविध्याग्नीन् ब्राह्मणः कामकारतः। चांद्रायणं चरेन्मासं वीरहत्या समं हि तत्। ४१।
ये शूद्राद्धिगम्यार्थमग्निहोत्रमुपासते। ऋत्विजस्ते हि शूद्राणां ब्रह्मवादिषु गर्हिताः। ४२।
तेषां सततमज्ञानां वृषलाग्न्युपसेविनाम्। पदामस्तकमाक्रम्य दाता दुर्गाणि सन्तरेत्। ४३।
अकुर्वन्विहितङ्कर्म्म निन्दितञ्च समाचरन्। प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयते नरः। ४४।

अग्निहोत्र का स्वामी) सो भी नरक जाता है इस लिये जो वेद के पार गया हो और अग्निहोत्र कर्म को जानने वाला हो सोई यजमान का होम करै। ३७। विभव रहत संते अग्निहोत्र का जो दक्षिणा ब्रह्मा के निमित्त घोड़ा है उस को न देवै तो अग्निहोत्र का फल उस ब्राह्मण को नहीं होता। ३८। इंद्रियों को जीतकर श्रद्धा सहित पुरुष दूसरी पुण्य को करै परंतु थोड़ी दक्षिणा से यज्ञ को न करै। ३९। इंद्रिय यश स्वर्ग आयुः कीर्ति प्रजा पशु इन सब को थोड़ी दक्षिणा वाली यज्ञ नाश करती है इस लिये थोड़ा धन वाला यज्ञ को न करै। ४०। अग्निहोत्री ब्राह्मण इच्छा से सायं प्रातः होम न करै तो पुत्र मारने का दोष होता है उस पाप के छोड़ाने के लिये एक मास चान्द्रायण व्रत करै। ४१ जो ब्राह्मण शूद्र से धन लेके अग्निहोत्र करता है वह शूद्र ही का ऋत्विक् होता है उस को कुछ फल नहीं होता और वेद पढ़ने वाले ब्राह्मणों में निंदित कहाता है। ४२। ऐसे ऋत्विजों के माथे पर पांव धरके वह शूद्र द्रव्य देने से नरक को तरता है और ऋत्विजों को कुछ फल नहीं होता। ४३। विहित कर्म को न करने से और निंदित कर्म को करने से इंद्रियों के अर्थ में प्रसक्त होने से मनुष्य प्रायश्चित्त के योग्य होता है। ४४।

बिना इच्छा से पाप करने में प्रायश्चित्त पंडितों ने कहा और इच्छा से पाप करने में भी वेद की आज्ञा से प्रायश्चित्त है । ४५ । बिना इच्छा से किया हुआ पाप वेदाभ्यास से छूटता है और मोह करके किये जो पाप सो नाना प्रकार के प्रायश्चित्त करने से छूटता है । ४६ । भाग्य से पूर्व जन्म में किये हुए कर्म से प्रायश्चित्त के योग्य होके और बिना प्रायश्चित्त किए सज्जनों के साथ भोजन वास स्पर्श आदि से संसर्ग को न करें । ४७ । कोई मनुष्य इस लोक में दुष्ट कर्म से और कोई मनुष्य पूर्व जन्म के दुष्ट कर्म से निकाम रूप को पाता है । ४८ । सोना चोराने वाला सुरा पीने वाला ब्राह्मण को मारने वाला गुरु स्त्री गमन करने वाला क्रम से निकाम नख जन्म से काला दांत क्षयी रोग निकाम चाम को पाता है । ४९ । चुगुल इशारा से कर्म को जानने वाला धान्य चोराने वाला मिलावट करने वाला क्रम से दुर्गंधि नाक दुर्गंधि मुख अंग हीनता अंग बाहुल्य (अर्थात् छः अंगुरी आदि) को पाता है । ५० । अन्न चोराने वाला जान के चुप रहने वाला वस्त्र चोराने वाला घोड़ा चोराने वाला क्रम से आमरोग गूंगपना श्वेत कुष्ट पंगुलता को पाता है । ५१ । इसी रीति से निकाम कर्म कर के भले लोगों से निंदित मनुष्य होते हैं और जड़ मूक अंध बधिर आदि निकाम रूप को पाते हैं । ५२ । इस लिये शुद्दि के अर्थ प्रायश्चित्त नित्य करैं जो प्राय-

अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः । कामकारकृतेप्याहुरेके श्रुतिनिदर्शनात् । ४५ ।

अकामतः कृतम्पापम्वेदाभ्यासेन शुध्यति । कामतस्तु कृतं मोहात्प्रायश्चित्तैः पृथग्विधैः । ४६ ।

प्रायश्चित्तीयताम्प्राप्य दैवात्पूर्वकृतेन वा । न संसर्गं व्रजेत्सद्भिः प्रायश्चित्ते कृते द्विजः । ४७ ।

इह दुश्चरितैः केचित्केचित्पूर्वकृतैस्तथा । प्राप्नुवंति दुरात्मानो नरा रूपविपर्ययम् । ४८ ।

सुवर्णचौरः कौनख्यं सुरापः श्यावदन्तताम् । ब्रह्महा क्षयरोगित्वन्दौश्चर्म्यं गुरुतल्पगः । ४९ ।

पिशुनः पौतिनासिक्यं सूचकः पूतिवक्त्रताम् । धान्यचौरोऽङ्गहीनत्वमातिरैक्यं तु मिश्रकः । ५० ।

अन्नहर्ता मयावित्वं मौक्यं वागपहारकः । वस्त्रापहारकः श्वैत्र्यम्पङ्गुतामश्वहारकः । ५१ ।

एवङ्कर्म्म विशेषेण जायंते सद्विगर्हिताः । जडमूकान्धबधिरा विकृताकृतयस्तथा । ५२ ।

चरितव्यमतो नित्यम्प्रायश्चित्तम्विशुद्धये । निन्द्यैर्हि लक्षणैर्युक्ता जायन्तेऽनिष्कृतैनसः । ५३ ।

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः । महांति पातकान्याहुस्संसर्गश्चापि तैस्सह । ५४ ।

अनृतञ्च समुत्कर्षे राजगामि च पैशुनम् । गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया । ५५ ।

ब्रह्मोज्झता वेदनिन्दा कौटसाक्ष्यं सुहृद्वधः । गर्हितान्नाद्ययोर्जग्धिः सुरापानसमानि षट् । ५६ ।

निक्षेपस्यापहरणं नराश्वरजतस्य च । भूमिवज्रमणीनाञ्च रुक्मस्तेयसमं स्मृतम् । ५७ ।

रेतस्सेकः स्वयोनीषु कुमारीष्वंत्यजासु च । सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु गुरुतल्पसमं विदुः । ५८ ।

गोवधोऽयाज्यसंयाज्यपारदार्यात्मविक्रयाः । गुरुमातृपितृत्यागः स्वाध्यायाग्न्योः सुतस्य च । ५९ ।

परिवित्तितानुजे नोढे परिवेदनमेव च । तयोर्दानञ्च कन्यायास्तयोरेव च याजनम् । ६० ।

श्चित्त नहीं किए हैं सो निंदा युक्त लक्षण सहित होते हैं । ५३ । ब्रह्महत्या सुरापान ब्राह्मण का दश मासा सोना अथवा इस्से अधिक चोराना माता से संभोग ये चार महा पातक हैं इन्हों के साथ संसर्ग करने से पांचवां महा पातक है । ५४ । नीच जाति होके हम बड़ा जाति हैं ऐसा झूठ बोलना राजा के समीप जिस में उस का मरण हो ऐसा किसी का दोष कहना गुरु से झूठ बोलना ये बस ब्रह्महत्या के समान हैं । ५५ । पढ़े हुए वेद को भूलना वेद निंदा साखी होके झूठ बोलना मित्र का बध लहसुन आदि का भक्षण विष्ठा आदि का भक्षण ये सब सुरापान के समान हैं । ५६ । थाती मनुष्य घोड़ा रूपा भूमि हीरा मणि इन्हों का चोराना सोना चोराने के समान है । ५७ । सहोदरा भगिनी कुमारी चाण्डाली मित्र की स्त्री पुत्र की स्त्री इन्हों के साथ रति करना ये सब माता के गमन के समान हैं । ५८ । गौ का बध यज्ञ कराने के योग्य जो नहीं है उस को यज्ञ कराना पराए की स्त्री से रति करना अपनी आत्मा को बेचना गुरु माता पिता वेद का पढ़ना अग्नि की सेवा पुत्र इन्हों का त्याग करना । ५९ । विवाह रहित जेठे भाई के रहत संते छोटे भाई का विवाह होना और उन दोनों भाईयों को कन्या देना और उन को यज्ञ कराना । ६० । * *

कन्या के योनि में अङ्गुली डालके दूषित करना व्याज लेके जीवन करना ब्रह्मचारी होके मैथुन करना तड़ाग बगीचा भार्या पुत्र इन्हों को बेचना । ६१ । काल में यज्ञोपवीत न होना चाचा आदि की सेवा न करना द्रव्य लेके पढ़ाना द्रव्य देके पढ़ना बेचने योग्य नहीं जो तिल आदि उन का बेचना । ६२ । सोना आदि का जो उत्पत्तिस्थान उस में राजा की आज्ञा से अधिकार होना पुल आदि का बांधना औषधी का मारना अपनी स्त्री आदि को वेश्या बनाके पर पुरुष संयोग से जो धन मिलै उस्से जीना शास्त्र कथित मारण प्रयोग करना मंत्र औषधी आदि के देने से वशीकरन करना । ६३ । ईन्धन के अर्थ गीले वृक्ष को गिराना देवता पितरों के बिना केवल अपने ही के अर्थ रसोई बनाना इच्छा बिना एक बेर लहसुन आदि जो भक्षण योग्य नहीं है उस का भक्षण करना । ६४ । अधिकार रहत संते अग्निहोत्र का त्याग करना सोना छोड़ के रूपा आदि का चोराना तीनों ऋण को न छोड़ाना वेद और धर्मशास्त्र इन्हों से विरुद्ध शास्त्र का सीखना नाचना गाना बजाना । ६५ । धान्य तामा लोहा आदि और पशु इन्हों का चोराना मदिरा पान करने वाली ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य की जो स्त्री है उस के साथ रति करना स्त्री शूद्र वैश्य क्षत्रिय इन्हों का मारना परलोक नहीं है ऐसी बुद्धि होना ये सब एक एक उपपातक कहाते हैं । ६६ । ब्राह्मण को दंड हस्त पाद आदि से पीड़ा करना लहसुन पुरीष मद्य इन्हों का सूंघना कुटिलपना मुख आदि में मैथुन करना ये

कन्याया दूषणञ्चैव वार्द्धुष्यं व्रतलोपनम् । तडागारामदाराणामपत्यस्य च विक्रयः । ६१ ।
व्रात्यता बांधवत्यागो भृत्याध्यापनमेव च । भृताच्चाध्ययनादानमपण्यानाञ्च विक्रयः । ६२ ।
सर्वाकरेष्वधीकारो महायंत्रप्रवर्तनम् । हिंसौषधीनां स्त्र्याजीवोऽभिचारो मूलकर्म च । ६३ ।
इन्धनार्थमशुष्काणां द्रुमाणामवपातनम् । आत्मार्थञ्च क्रियारम्भो निन्दितान्नादनन्तथा । ६४ ।
अनाहिताग्निता स्तेयमृणानामनपक्रिया । असच्छास्त्राधिगमनं कौशीलव्यस्य च क्रिया । ६५ ।
धान्यकुप्यपशुस्तेयं मद्यपस्त्रीनिषेवणम् । स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधो नास्तिक्यञ्चोपपातकम् । ६६ ।
ब्राह्मणस्य रुजः कृत्वा घ्रातिरघ्रेयमद्ययोः । जैह्म्यञ्च मैथुनं पुंसि जातिभ्रंशकरं स्मृतम् । ६७ ।
खराश्वोष्ट्रमृगेभानामजाविकवधस्तथा । संकरीकरणं ज्ञेयं मीनाहिमहिषस्य च । ६८ ।
निन्दितेभ्यो धनादानं वाणिज्यं शूद्रसेवनम् । अपात्रीकरणं ज्ञेयमसत्यस्य च भाषणम् । ६९ ।
कृमिकीटवयोहत्यामद्यानुगतभोजनम् । फलैधःकुसुमस्तेयमधैर्यञ्च मलावहम् । ७० ।
एतान्येनांसि सर्वाणि यथोक्तानि पृथक् पृथक् । यैर्यैर्व्रतैरपोह्यंते तानि सम्यङ्निबोधत । ७१ ।
ब्रह्महा द्वादशसमाः कुटीं कृत्वा वने वसेत् । भैक्ष्याश्यात्मविशुद्ध्यर्थं कृत्वा शवशिरोध्वजम् । ७२ ।
लक्ष्यं शस्त्रभृतां वा स्याद्विदुषामिच्छयात्मनः । प्रास्येदात्मानमग्नौ वा समिद्धे त्रिरवाक्शिराः । ७३ ।
यजेत वाश्वमेधेन स्वर्जितागोसवेन वा । अभिजिद्विश्वजिद्भ्यां वा त्रिवृताग्निष्टुतापि वा । ७४ ।

सब जाति भ्रंश करने वाले हैं । ६७ । गदहा घोड़ा ऊंट हाथी बकरा भेड़ा मछली सर्प भैंसा इन्हों का वध संकरीकरण कहाता है । ६८ । निंदित पुरुष से धन लेना बनियां का कर्म करना शूद्र का सेवन करना असत्य बोलना ये सब अपात्रीकरण कहाते हैं । ६९ । क्रमी (अर्थात् छोटे कीड़े) कीट (अर्थात् बड़े कीड़े) पक्षी इन्हों का मारना भोजन के योग्य बस्तु पेटारी में रक्खी हुई मद्य के साथ आई उस वस्तु का भोजन फल लकड़ी फूल इन्हों का चोराना अधीर होना ये सब मलावह कहाता है । ७० । ये सब पाप भिन्न भिन्न करके कहे ये सब जिस जिस व्रत करके दूर होते हैं उन व्रतों को जानो । ७१ । ब्राह्मण को मारने वाला अपने शुद्धि के लिये बन में कुटी बनाके बारह वर्ष तक उस कुटी में बास करै जिस ब्राह्मण को मारे हो उस का शिर ध्वजा में रखके भिक्षा मांगै यह प्रायश्चित्त निर्गुण ब्राह्मण को गुणवान ब्राह्मण बिना इच्छा से मारै तहां जानना । ७२ । अथवा अपनी इच्छा से शस्त्र विद्या जानने वाले पुरुषों के शस्त्र का लक्ष्य (अर्थात् निशाना) होवे अथवा नीचे शिर करके तीन बेर अपनी आत्मा को अग्नि में डालै यह प्रायश्चित्त और आगे के श्लोक में जो कहैंगे अश्वमेध याग करना सो भी निर्गुण ब्राह्मण को गुणवान् क्षत्रिय इच्छा से मारै तहां जानना । ७३ । अथवा अश्वमेध स्वर्जित गोसव अभिजित् विश्वजित् त्रिवृत् अग्निष्टुत् इन्हों में से कोई एक याग करै यह प्रायश्चित्त अज्ञान से ब्राह्मण मारै तहां ब्राह्मण आदि तीनों वर्ण को जानना । ७४ । *

ब्रह्महत्या छोड़ाने के लिये थोड़ा भोजन करत संते इंद्रियों के जीते हुए कोई एक वेद को पढ़त सौ योजन गमन करै यह भी अज्ञान से जाति मात्र ब्राह्मण वध में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य को जानना । ७५ । अथवा वेद पढ़े हुए ब्राह्मण को संपूर्ण धन देवै अथवा जीवन पर्यंत भोजन के निमित्त ब्राह्मण को धन देवै अथवा सामग्री सहित गृह ब्राह्मण को देवे यह भी अज्ञान से जाति मात्र ब्राह्मण वध में ब्राह्मण को जानना । ७६ । अथवा हविष्य भोजन करत संते पश्चिम वाहिनी सरस्वती में स्नान करै अथवा थोड़ा भोजन करत संते तीन बेर वेद की संहिता को पढ़ै यह ज्ञान से जाति मात्र ब्राह्मण वध में ब्राह्मण को जानना । ७७ । गौ ब्राह्मण का हित करत संते दाढ़ी मोछ सहित मूड़ मुड़ाये नह कटाये ग्राम के समीप में अथवा गौ के स्थान में अथवा वृक्ष के मूल में बास करै बन में कुटी बनाके रहै इस के विकल्प के लिये यह कहा है। ७८। अथवा बारह वर्ष के व्रत का प्रारंभ किए है और मध्य में ब्राह्मण गौ इन्हों की विपत्ति छोड़ाने के लिये प्राण त्याग करै तो उसी समय में ब्रह्महत्या से छूटता है । ७९ । ब्राह्मण का सर्व धन चोराके लिये जाता है उस के लाने के निमित्त यथा शक्ति बहाना रहित यत्न करै और तीन बेर युद्ध करै और ब्राह्मण का चोरी गया सर्व धन को न भी लावै तो ब्रह्महत्या से छूटता है अथवा धन जाने से शोक सहित ब्राह्मण चोर के साथ युद्ध करने से प्राण त्याग में प्रवृत्त हो तो चोरी गया जो धन उस के समान धन देकर उस के प्राण की रक्षा करै तो भी ब्रह्महत्या से छूटता है इस

जपन्वान्यतमं वेदं योजनानां शतं व्रजेत् । ब्रह्महत्यापनोदाय मितभुङ्नियतेन्द्रियः । ७५ ।
सर्वस्वं वेदविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् । धनं वा जीवनायालं गृहम्वा सपरिच्छदम् । ७६ ।
हविष्यभुग्वानुसरेत्प्रतिस्रोतः सरस्वतीम् । जपेद्वा नियताहारस्त्रिर्वै वेदस्य संहिताम् । ७७ ।
कृतवापनो वा निवसेद्ग्रामान्ते गोव्रजेपि वा । आश्रमे वृक्षमूले वा गोब्राह्मणहिते रतः । ७८ ।
ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सद्यः प्राणान्परित्यजेत् । मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता गोर्ब्राह्मणस्य च । ७९ ।
त्र्यवरं प्रतिरोद्धा वा सर्वस्वमवजित्य वा । विप्रस्य तन्निमित्ते वा प्राणालाभे विमुच्यते । ८० ।
एवं दृढव्रतो नित्यं ब्रह्मचारी समाहितः । समाप्ते द्वादशे वर्षे ब्रह्महत्याम्व्यपोहति । ८१ ।
शिष्ट्वा वा भूमिदेवानां नरदेवसमागमे । स्वमेनोऽवभृथस्नातो हयमेधे विमुच्यते । ८२ ।
धर्मस्य ब्राह्मणो मूलमग्रं राजन्य उच्यते । तस्मात्समागमे तेषामेनो विख्याप्य शुद्ध्यति । ८३ ।
ब्राह्मणः सम्भवेनैव देवानामपि दैवतम् । प्रमाणञ्चैव लोकस्य ब्रह्मा चैव हि कारणम् । ८४ ।
तेषां वेदविदो ब्रूयुस्त्रयोप्येनस्सु निष्कृतिम् । सा तेषाम्पावनाय स्यात्पवित्रं विदुषां हि वाक् । ८५ ।
अतोन्यतममास्थाय विधिं विप्रः समाहितः । ब्रह्महत्या कृतं पापं व्यपोहत्यात्मवत्तया । ८६ ।
हत्वागर्भमविज्ञातमेतदेव व्रतञ्चरेत् । राजन्यवैश्यौ चेजाना वात्रेयीमेव च स्त्रियम् । ८७ ।

स्थान पर ऐसी शंका होती है कि यह बात तो उनासी के श्लोक में लिख आए हैं तो पुनरुक्ति दोष पड़ा तिस का समाधान यह है कि इस प्रकार का मरण छोड़कर दूसरे प्रकार से मरै गौ ब्राह्मण की रक्षा के लिये तहां उनासी के श्लोक का विषय जानना इस लिये पुनरुक्ति दोष न हुआ । ८० । इस रीति से नित्य ही व्रत का धारण करने वाला निश्चिंत होकर ब्रह्मचर्य करने वाला बारह वर्ष समाप्त भये संते ब्रह्महत्या से छूटता है । ८१ । अथवा अश्वमेध यज्ञ के अवभृथ स्नान में (अर्थात् अंत-स्नान में) राजा के समागम में ब्रह्महत्या करने वाला ब्राह्मण अपनी ब्रह्महत्या को निवेदन करके उन्हों के साथ स्नान करै तो ब्रह्महत्या से छूटता है यह प्रायश्चित्त स्वतंत्र है किसी का अंग नहीं है । ८२ । क्योंकि ब्राह्मण धर्म का मूल है और क्षत्रिय धर्म का अग्र भाग है इस लिये दोनों को अपने पाप को जनाके शुद्ध होता है । ८३ । ब्राह्मण उत्पत्ति ही करके देवतों का देवता है और उस का उपदेश सब को मानने योग्य है इस में वेद ही कारण है और उपदेश का मूल वेद ही है । ८४ । वेद पढ़े हुए तीन ब्राह्मण जो प्रायश्चित्त कहैं सोई पवित्र है क्योंकि वेद पाठी ब्राह्मण की वाणी ही पवित्र है । ८५ । कहे हुए प्रायश्चित्तों में एक भी करै और ब्रह्म को जानै तो ब्रह्महत्या से छूटता है । ८६ । ब्राह्मणी में ब्राह्मण से उत्पन्न गर्भ के नाश में भी यही व्रत है यज्ञ करत क्षत्रिय और वैश्य ब्राह्मण की रजस्वला स्त्री इन्हों में कोई एक के वध में भी पूर्व कथित व्रतों में कोई एक व्रत को करै । ८७ ।

* * * * * * * *

साती होके झूठ बोलने में गुरु को मिथ्या दोष लगाने में ब्राह्मण का सुवर्ण छोड़के रूपा आदि थाती हरण में और क्षत्रिय आदि का सुवर्ण आदि थाती हरण में अग्निहोत्री ब्राह्मण की स्त्री वध में मित्र के वध में ब्रह्महत्या का व्रत करना । ८८ । यह जो बारह वर्ष का प्रायश्चित्त कहा है सो बिना इच्छा से ब्राह्मण के वध में जानना और इच्छा से ब्राह्मण के वध में यह प्रायश्चित्त नहीं है किंतु इस का दूना है । ८९ । मोह से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये तीनों वर्ण पैष्टी सुरा पीके अग्नि वर्ण (अर्थात् अग्नि में तपाके लाल वर्ण) सुरा को पीवै उस करके शरीर नष्ट होने से उस पाप से छूटते हैं । ९० । गो मूत्र अथवा जल गौ का दूध गौ का घी गौ के गोबर का रस इन्हों में से कोई एक को अग्नि वर्ण करके पीवै और उस से मर जावै तो शुद्ध होवे । ९१ । गौ आदि के रोम से वस्त्र बनाके पहिरे हुए जटा धारण किए हुए सुरा पात्र चिह्न से युक्त चाउर का कणा तिल की खरी इन दोनों में से एक को रात्रि में एक बार एक वर्ष तक भोजन करै तो सुरा पान के दोष से छूटै यह प्रायश्चित्त बिना जानके गौण सुरा पान में जानना । ९२ । अन्न के मल को सुरा कहते हैं इस लिये ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य सुरा को न पीवैं । ९३ । गौड़ी माध्वी पैष्टी तीन प्रकार की सुरा हैं क्रम से गुड़ से भई मधु से भई पिसान से भई जैसी एक तैसी ही तीनों इस लिये ब्राह्मण

उक्त्वा चैवानृतं साक्ष्ये प्रतिरुध्य गुरुन्तथा । अपहृत्य च निःक्षेपं कृत्वा च स्त्री सुहृद्वधम् । ८८ ।
इयं विशुद्धिरुदिता प्रमाप्याकामतो द्विजम् । कामतो ब्राह्मणवधे निष्कृतिर्न विधीयते । ८९ ।
सुराम्पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुराम्पिबेत् । तया स्वकाये निर्दग्धे मुच्यते किल्बिषात्ततः । ९० ।
गोमूत्रमग्निवर्णम्वा पिबेदुदकमेव वा । पयो घृतम्वा मरणाद्गोशकृद्रसमेव वा । ९१ ।
कणान्वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि । सुरापानापनुत्यर्थं वालवासा जटी ध्वजी । ९२ ।
सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते । तस्माद्ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुराम्पिबेत् । ९३ ।
गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा । यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः । ९४ ।
यक्षरक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरा सवम् । तद्ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्नता हविः । ९५ ।
अमेध्ये वा पतेन्मत्तो वैदिकम्वाप्युदाहरेत् । अकार्यमन्यत्कुर्य्याद्वा ब्राह्मणो मदमोहितः । ९६ ।
यस्य कायगतं ब्रह्म मद्येनाप्लाव्यते सकृत् । तस्य व्यपैति ब्राह्मण्यं शूद्रत्वञ्च स गच्छति । ९७ ।
एषा विचित्राऽभिहिता सुरापानस्य निष्कृतिः । अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि सुवर्णस्तेयनिष्कृतिम् । ९८ ।
सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो राजानमभिगम्य तु । स्वकर्म्मख्यापयन् ब्रूयान्मां भवाननुशास्त्विति । ९९ ।
गृहीत्वा मुसलं राजा सकृद्धन्यात्तु तं स्वयम् । वधेन शुध्यति स्तेनो ब्राह्मणस्तपसैव तु । १०० ।
तपसापनुनुत्सुस्तु सुवर्णस्तेयजं मलम् । चीरवासा द्विजोऽरण्ये चरेद्ब्रह्महणो व्रतम् । १०१ ।
एतैर्व्रतैरपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः । गुरुस्त्रीगमनीयन्तु व्रतैरेभिरपानुदेत् । १०२ ।

तीनों को न पीवै । ९४ । मद्य (अर्थात् गौड़ी माध्वी पैष्टी तीनों को छोड़कर ग्यारह प्रकार के जो पुलस्त्य ऋषि ने कहा है सो सब ग्यारहों को गिनाते हैं कटहर दाख महुआ खजूर ताड़ ऊख मधु टंक मृद्वी (अर्थात् दाखका भेद) मिरा (अर्थात् द्रव्य विशेष) नरियर इन्हों से बनाया सुरा मांस सुरा आसाव (अर्थात् मद्य का अवस्था विशेष) इन सब को यक्ष राक्षस पिशाच का अन्न कहते हैं इस लिये देवतों की हविष्य को भोजन करने वाला ब्राह्मण इन सब को न पीवै । ९५ । मद्य पान से मोहित होके ब्राह्मण अपवित्र में गिरेगा वेद के मंत्रों को कहैगा नहीं करने योग्य बस्तु को करेगा इस लिये मद्य को न पीवै । ९६ । जिस ब्राह्मण के हृदय में स्थित वेद एक बेर भी मद्य पान करने से डूबेगा उस ब्राह्मण का ब्रह्मतेज नष्ट होगा और वह ब्राह्मण शूद्र भाव को प्राप्त होगा । ९७ । यह सुरा पान का विचित्र प्रायश्चित्त कहा इस के अनन्तर सोना चोराने के प्रायश्चित्त को कहैंगे । ९८ । ब्राह्मण सोना चोराके राजा के पास जाकर कहै कि मैं सोना चोराने वाला हूं मेरा दंड आप करैं । ९९ । राजा मूसर को लेकर आप एक बेर उस को मारै वध से शुद्ध होता है और ब्राह्मण तप से शुद्ध होता है । १०० । तप से सोना चोराने के पाप को दूर करने की इच्छा करत संते वस्त्र का खंड पहिरके बन में ब्रह्महत्या के व्रत को करै । १०१ । इन व्रतों करके चोरी के पाप को ब्राह्मण दूर करै मातृगमन के पाप को आगे जो व्रत कहैंगे उस्से दूर करै । १०२ । * *

मातृगमन करने वाला अपने पाप को कहके तप्त लोह के शयन में सोवै अथवा लोह की स्त्री बनाके अग्नि में तपाके उस का आलिंगन करै (अर्थात् जिस प्रकार से माता के शरीर को अपनी शरीर से मिलान किया रहा उसी प्रकार से मिलै)। १०३। अथवा लिङ्ग और वृषण (अर्थात् पेल्हड़) इन दोनों को काटके अपनी अंजली में रखके निर्ऋति दिशा (अर्थात् दक्षिण पश्चिम का कोन) में सीधा चला जावै जब तक न मरै। १०४। अथवा खट्वाङ्ग (अर्थात् खटिआ का एक अंग) धारण किए हुए वस्त्र का खंड पहिरे हुए नख लोम केश दाढ़ी मोछ को रक्खे हुए जन रहित बन में निश्चिंत होकर एक वर्ष तक प्राजापत्य व्रत को करै यह प्रायश्चित्त अज्ञान से अपनी भार्या जानके मातृगमन में जानना। १०५। अथवा इन्द्रियों को जीतकर हविष्य अथवा यव की लपसी भोजन करत संते मातृगमन के पाप को दूर करने के लिये तीन मास तक चान्द्रायण व्रत को करै यह प्रायश्चित्त असाध्वी अथवा दूसरे वर्ण की गुरु भार्या के गमन करने में जानना। १०६। इन व्रतों से महा पातकी लोग अपने पाप को दूर करैं और उपपातकी लोग आगे जो व्रत कहैंगे उस्से अपने पाप को दूर करैं। १०७। उपपातकी गौ का मारने वाला एक मास तक यव का सतुआ पीवै नख लोम केश आदि को नहरनी और छूरा से कटाय के गौ के चर्म से वेष्टित होके गौ के स्थान में वास करै।

गुरुतल्पयभिभाष्यैनस्तप्ते स्वप्यादयोमये। सूर्मीञ्ज्वलन्तीस्वा श्लिष्येन्मृत्युना स विशुध्यति। १०३।
स्वयम्वा शिश्नवृषणावुत्कृत्याधायचाञ्जलौ। नैर्ऋतीन्दिशमातिष्ठेदानिपातादजिह्मगः। १०४।
खट्वाङ्गी चीरवासा वा श्मश्रुलो विजने वने। प्राजापत्यञ्चरेत्कृच्छ्रमब्दमेकं समाहितः। १०५।
चान्द्रायणम्वा त्रीन्मासानभ्यस्येन्नियतेन्द्रियः। हविष्येण यवाग्वा वा गुरुतल्पापनुत्तये। १०६।
एतैर्व्रतैरपोहेयुर्महापातकिनो मलम्। उपपातकिनस्त्वेवमेभिर्नानाविधैर्व्रतैः। १०७।
उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मासं यवान्पिबेत्। कृतवापो वसेद्गोष्ठे चर्मणा तेन संवृतः। १०८।
चतुर्थकालमश्नीयादक्षारलवणं मितम्। गोमूत्रेणाचरेत्स्नानं द्वौ मासौ नियतेन्द्रियः। १०९।
दिवानुगच्छेद्गास्तास्तु तिष्ठन्नूर्द्ध्वंरजः पिबेत्। शुश्रूषित्वा नमस्कृत्य रात्रौ वीरासनं वसेत्। ११०।
तिष्ठन्तीष्वनुतिष्ठेत्तु व्रजन्तीष्वप्यनुव्रजेत्। आसीनासु तथासीनो नियतो वीतमत्सरः। १११।
आतुरामभिशस्ताम्वा चौरव्याघ्रादिभिर्भयैः। पतिताम्पङ्कलग्नाम्वा सर्वोपायैर्विमोचयेत्। ११२।
उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम्। न कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः। ११३।
आत्मनो यदि वाऽन्येषां गृहे क्षेत्रेऽथवा खले। भक्षयन्तीन्न कथयेत्पिबन्तञ्चैव वत्सकम्। ११४।
अनेन विधिना यस्तु गोघ्नो गामनुगच्छति। स गोहत्या कृतम्पापं त्रिभिर्मासैर्व्यपोहति। ११५।
वृषभैकादशागाश्च दद्यात्सुचरितव्रतः। अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो निवेदयेत्। ११६।
एतदेव व्रतं कुर्य्युरुपपातकिनो द्विजाः। अवकीर्णिवर्ज्जं शुद्ध्यर्थं चान्द्रायणमथापि वा। ११७।

१०८। एक दिन उपवास करके दूसरे दिन पहिली बेर थोड़ा भोजन करै इन्द्रियों को जीते हुए दो मास तक गौ मूत्र से स्नान करै। १०९। दिन में गौ के पीछे चलै खड़े होकर गौ के खुर से उड़ती धूली को पीवै सेवा करत संते नमस्कार करके रात्रि में वीरासन से रहै। ११०। गौ खड़ी हो तो आप भी मत्सर (अर्थात् दूसरे के शुभ में द्वेष) से रहित होके इन्द्रियों को जीते हुए खड़ा रहै गौ चलै तो आप भी उस के पीछे चलै गौ बैठै तो आप भी बैठै। १११। रोग और चोर बाघ आदि भय के कारण इन्हीं से युक्त गौ हो अथवा गिरी हो या कांदव में फंसी हो उस को सब उपाय से यथा शक्ति छोड़ावै। ११२। गर्मी वर्षा शीत में और अति वायु चलने में यथा शक्ति गौ की रक्षा बिना किए हुए अपनी रक्षा न करै। ११३। अपने अथवा दूसरे के गृह में अथवा खरिहान में या खेत में भक्षण करती गौ को न कहै और बछुवा को पिलाती हो तो भी न कहै। ११४। गौ का मारने वाला मनुष्य इस विधि से गौ के पीछे चलै तो तीन मास में गौ हत्या से छूटै। ११५। सुंदर प्रकार से व्रत करके एक बैल और दस गौ को देवै कदाचित् इतना न हो सकै तो वेद पढ़े हुए ब्राह्मण को सब धन देवै। ११६। आगे जो अवकीर्णी कहैंगे उस को छोड़कर ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये उपपातक से युक्त होवें तो शुद्धि के लिये यही व्रत करैं अथवा चांद्रायण व्रत को करैं। ११७।

* * * * * * * * *

अब कर्णी चतुष्पथ (अर्थात् चौरहा) में पाक यज्ञ विधान करके रात्रि में निर्ऋति देवता के निमित्त काणा गदहा से याग करै। ११८। अग्नि में विधि पूर्वक समां सिंचंतु मारुतः इस मंत्र से वायु इंद्र गुरु अग्नि इन्हों को घी से आहुति देवै। ११९। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये तीनों वर्ण ब्रत में स्थित हैं और इच्छा से वीर्य पात करैं तो ब्रत का लंघन भया इस बात को धर्म जानने वाले ब्रह्म वादियों ने कहा। १२०। अवकीर्णी (अर्थात् ब्रह्मचर्यावस्था में वीर्य गिराने वाला) का ब्रह्म तेज वायु इंद्र गुरू अग्नि इन चारों के पास जाता है। १२१। इस पाप को छोड़ाने के लिये गदहा का चाम पहिरके अपने कर्म को करत संते सात घर से भिक्षा मांगै। १२२। उस भिक्षा को एक बेर भोजन करत संते सायं प्रातः मध्यान्ह काल में स्नान करत संते रहै तो एक वर्ष में शुद्ध होवै। १२३। जातिभ्रंश करने वाले कर्मों में कोई एक कर्म को इच्छा से करके सांतपन कृच्छ्र करै और बिना इच्छा से किए हो तो प्राजापत्य ब्रत करै ब्रतों का लक्षण आगे कहैंगे। १२४। संकरी करण कर्मों में और अपात्री करण कर्मों में इच्छा से कोई एक कर्म करने में एक मास चांद्रायण ब्रत करै और मलिनी करण कर्मों में इच्छा से कोई एक कर्म करने में तीन दिन यव की लपसी भोजन करै। १२५। अपने कर्म में स्थित क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन्हों के वध में ब्रह्म हत्या ब्रत

अवकीर्णी तु काणेन गर्दभेन चतुष्पथे। पाकयज्ञविधानेन यजेत निर्ऋतिन्निशि। ११८।
हुत्वाऽग्नौ विधिवद्धोमानंततश्च समेत्यृचा। वातेन्द्रगुरुवन्हीनां जुहुयात्सर्पिषा हुतीः। ११९।
कामतोरेतसस्सेकं ब्रतस्थस्य द्विजन्मनः। अतिक्रमम्ब्रतस्याहुर्द्धर्म्मज्ञा ब्रह्मवादिनः। १२०।
मारुतम्पुरुहूतञ्च गुरुम्पावकमेव च। चतुरो ब्रतिनोभ्येति ब्राह्मन्तेजोवकीर्णिनः। १२१।
एतस्मिन्नेनसिप्राप्ते वसित्वा गर्द्दभाजिनम्। सप्तागारांश्चरेद्भैक्षं स्वकर्म्मपरिकीर्तयन्। १२२।
तेभ्योलब्धेन भैक्षेण वर्तयन्नेककालिकम्। उपस्पृशंस्त्रिषवणं त्वब्देन स विशुध्यति। १२३।
जातिभ्रंशकरङ्कर्म्म कृत्वान्यतममिच्छया। चरेत्सान्तपनङ्कृच्छ्रम्प्राजापत्यमनिच्छया। १२४।
सङ्करापात्रकृत्यासु मासं शोधनमैन्दवम्। मलिनी करणीयेषु तप्तः स्याद्यावकैस्त्र्यहम्। १२५।
तुरीयो ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वधे स्मृतः। वैश्येष्टमांशोवृत्तस्थे शूद्रे ज्ञेयस्तु षोडश। १२६।
अकामतस्तु राजन्यं विनिपात्य द्विजोत्तमः। वृषभैकसहस्रागा दद्यात्सुचरितव्रतः। १२७।
त्र्यब्दञ्चरेद्वा नियतो जटी ब्रह्महणो ब्रतम्। वसन्दूरतरे ग्रामाद्वृक्षमूलनिकेतनः। १२८।
एतदेव चरेदब्दं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमः। प्रमाप्य वैश्यं वृत्तस्थं दद्याच्चैकशतङ्गवाम्। १२९।
एतदेव ब्रतङ्कृत्स्नं षण्मासान्ब्रह्महा चरेत्। वृषभैकादशा वापि दद्याद्विप्राय गाः सिताः। १३०।
मार्जारनकुलौ हत्वा चाषं मण्डूकमेव च। श्वगोधोलूककाकांश्च शूद्रहत्याब्रतञ्चरेत्। १३१।
पयः पिबेत्त्रिरात्रम्वा योजनम्वाध्वनो व्रजेत्। उपस्पृशेत्स्रवंत्यां वा सूक्तम्वाब्दैवतं जपेत्। १३२।
अभ्रिङ्काष्णायसीं दद्यात्सर्प्पं हत्वा द्विजोत्तमः। पलालभारकं षंढे सैसकञ्चैकमाषकम्। १३३।

का चतुर्थांश अष्टमांश षोड़शांश ब्रत क्रम से जानना ये सब ब्रत इच्छा से कर्म करने में जानना। १२६। बिना इच्छा से क्षत्रिय का वध करके ब्राह्मण एक बैल सहित हजार गौ ब्राह्मण को देवै। १२७। अथवा जटा धारण किए हुए नियम से ग्राम के बाहर वृक्ष के मूल में बास करत संते ब्रह्महत्या का ब्रत तीन वर्ष तक करै इच्छा रहित वध में यह जानना। १२८। अपने कर्म में स्थित वैश्य का वध करके ब्राह्मण एक वर्ष तक ब्रह्म हत्या ब्रत को करै अथवा एक सौ एक गौदान करै इच्छा रहित वध में यह जानना। १२९। शूद्र का वध करने वाला ब्राह्मण छः मास ब्रह्म हत्या ब्रत को करै एक बैल श्वेत वर्ण दश गौ ब्राह्मण को देवै यह भी बिना इच्छा से वध में जानना इन सब ब्रत करने में कपाल ध्वजा को छोड़ देना। १३०। बिलारि नेउर नीलकंठ मेंडुका कुक्कर गोह उल्लू कौआ इन्हों में कोई एक का वध करके शूद्र हत्या ब्रतों को करै। १३१। अथवा त्रिरात्र दूध पीवै इस में अशक्त हो तो तीन रात चार कोश गमन करै इस में भी अशक्त हो तो तीन रात नदी में स्नान करै इस में भी अशक्त हो तो आपोहिष्ठा इस सूक्त का जप करै यह बिना इच्छा से वध में जानना। १३२। सर्प वध करके चोखा आगे का भाग वाला लोह दंड ब्राह्मण को देवै और नपुंसक को वध करके एक भार पुआरा और एक मासा सीसा इन दोनों को देवै। १३३।

सूअर तित्तिर सुगा क्रौंच (अर्थात् रक्त मूड़ वाला करांकुल) के शब्द करते पांती से गमन करने वाला इन्हों का वध करके क्रम से एक घड़ा भर घी एक द्रोण तिल दो वर्ष का बछवा तीन वर्ष का बछवा को ब्राह्मण को देवै । १३४ । हंस बलाका (अर्थात् विष कंठिका पक्षि विशेष) बकुला मोर बानर बाज भास इन सबों में से कोई एक को वध करके ब्राह्मण को गौ देवै । १३५ । घोड़ा हाथी इन्हों का वध करके क्रम से वस्त्र पांच बैल ब्राह्मण को देवै बकरा भेड़ा इन दोनों में से कोई एक का वध करके एक बैल देवै गदहा का वध करके एक वर्ष का बछवा देवै । १३६ । कच्ची मांस का भोजन करने वाले बाघ आदि का वध करके दूध देती गौ को देवै और कच्ची मांस को न भोजन करने वाले मृग आदि को वध करके बछिया देवै ऊंट का वध करके एक रत्ती सोना देवै । १३७ । ब्राह्मण आदि चारो वर्ण की व्यभिचारिणी स्त्री का वध करके ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र क्रम से चर्मपुट धनुष बकरा भेड़ा को देवै । १३८ । दान करके संपूर्ण पाप को छोड़ाने में असमर्थ हो तो एक एक के वध में एक एक कृच्छ्र व्रत करै । १३९ । हाड़ सहित जीव (अर्थात् गिरगिटान आदि) सहस्र के वध में और बिना हाड़ के जीव (अर्थात् उंडुस आदि) गाड़ी भर के वध में शूद्र हत्या व्रत को करै । १४० । हाड़ सहित जीव के वध में ब्राह्मण को कुछ देवै

घृतकुम्भं वराहे तु तिलद्रोणन्तु तित्तिरौ। शुके द्विहायनम्वत्सं क्रौंचं हत्वा त्रिहायनम् । १३४ ।
हत्वा हंसं बलाकाञ्च बकम्बर्हिणमेव च । वानरं श्येनभासौ च स्पर्शयेद्ब्राह्मणाय गाम् । १३५ ।
वासो दद्याद्धयं हत्वा पञ्च नीलान्वृषान् गजम् । अजमेषावनड्वाहं खरं हत्वैकहायनम् । १३६ ।
क्रव्यादांस्तु मृगान् हत्वा धेनुं दद्यात्पयस्विनीम्। अक्रव्यादान्वत्सतरीमुष्ट्रं हत्वा तु कृष्णलम्। १३७।
जीनकार्मुकवस्तावीन्पृथग्दद्याद्विशुद्धये । चतुर्णामपि वर्णानान्नारीर्हत्वानवस्थिताः । १३८ ।
दानेन वधनिर्णेकं सर्पादीनामशक्नुवन् । एकैकशश्चरेत्कृच्छ्रं द्विजः पापापनुत्तये । १३९ ।
अस्थिमतान्तु सत्वानां सहस्रस्य प्रमापणे । पूर्णे चानस्यनस्थ्नान्तु शूद्रहत्या व्रतञ्चरेत् । १४० ।
किञ्चिदेव तु विप्राय दद्यादस्थिमताम्वधे । अनस्थ्नाञ्चैव हिंसायाम्प्राणायामेन शुद्ध्यति । १४१ ।
फलदानन्तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम् । गुल्मवल्लीलतानाञ्च पुष्पितानाञ्च वीरुधाम्। १४२ ।
अन्नाद्यजानां सत्वानां रसजानाञ्च सर्वशः । फलपुष्पोद्भवानाञ्च घृतप्राशो विशोधनम् । १४३ ।
कृष्टजानामोषधीनाञ्जातानाञ्च स्वयम्वने । वृथालम्भेनुगच्छेद्गान्दिनमेकम्पयोव्रतः । १४४ ।
एतैर्व्रतैरपोह्यं स्यादेनो हिंसासमुद्भवम् । ज्ञानाज्ञानकृतं कृत्स्नं शृणुतानाद्यभक्षणे। १४५ ।
अज्ञानाद्वारुणीम्पीत्वा संस्कारेणैव शुद्ध्यति। मतिपूर्वमनिर्देश्यम्प्राणान्तिकमितिस्थितिः । १४६ ।
अपः सुरा भाजनस्था मद्यभाण्डस्थितास्तथा। पञ्चरात्रम्पिबेत्पीत्वा शंखपुष्पी शृतम्पयः । १४७ ।
स्पृष्ट्वा दत्वा च मदिरां विधिवत्प्रतिगृह्य च। शूद्रोच्छिष्टाश्च पीत्वापः कुशवारि पिबेत्त्र्यहम्। १४८ ।

और हाड़ रहित जीव के वध में प्राणायाम करै । १४१ । फल के देने वाले वृक्ष (अर्थात् आम्र आदि) गुल्म (अर्थात् कुब्जक आदि) वल्ली (अर्थात् गडुचि आदि) लता (अर्थात् वृक्ष पर चढ़ने वाली) फूले जो वीरुध (अर्थात् कोंहड़ा आदि) इन्हों में से एक एक के छेदन में गायत्री आदि ऋचा का सौ बार जप करना । १४२ । अन्न आदि में उत्पन्न जीव और गुड़ आदि रस में उत्पन्न जीव फल पुष्प में उत्पन्न जीव इन्हों के वध में घृत भोजन करना । १४३ । जोतने से जो अन्न उत्पन्न होता है साठी आदि और आप से बन में जो उत्पन्न होता है तीनी आदि इन्हों को प्रयोजन रहित छेदन में एक दिन दूध पीके रहै और गौ के पीछे गमन करै । १४४ । जानके अथवा बिना जानके किए जो जीव वध उस पाप को इन व्रतों करके दूर करना योग्य है और भोज के योग्य जो वस्तु नहीं है उस के भक्षण में प्रायश्चित्त को सुनो । १४५ । बिना जानके गौड़ी माध्वी सुरा को पीवै तो पुनः संस्कार से शुद्ध होता है और जान के पीवै तो मरण से शुद्ध होता है यह शास्त्र की मर्यादा है । १४६ । पैष्टी सुरा पात्र में और मद्य पात्र में स्थित गंध रहित जल के पीने में शंखपुष्पी औषध पक्के दूध को पांच रात पीवै । १४७ । सुरा को छूके देके लेके और शूद्र का जूठा जल को पीके कुश से पक्के जल को तीन दिन पीवै । १४८ । * * *

सोम याग को करने वाला ब्राह्मण सुरा पीने वाले की गंध को सूंघके जल में तीन बेर प्राणायाम करके घी को भोजन करने से शुद्ध होता है । १४९ । अज्ञान से विष्ठा मूत्र सुरा से छुई गई वस्तु इन तीनों में से कोई एक को भोजन करके ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य पुनः संस्कार के योग्य होते हैं । १५० । पुनः संस्कार में मुंडन मेखला दंड भिक्षा ये धारो नहीं होते । १५१ । भोजन करने योग्य जिस का अन्न नहीं है उस का अन्न और स्त्री शूद्र इन्हीं का जूठा अन्न भक्षण के योग्य नहीं जो मांस इन्हीं का भक्षण करके यव के सतुआ को सात दिन पीवै । १५२ । शुक्त (अर्थात् स्वभाव से मधुर रस काल से जल में वास आदि से आमिल होना) कषाय (अर्थात् बहेड़ा आदि) यह पवित्र भी हो तो इन को पीके तब तक अशुद्ध रहता है जब तक ये सब पचै न । १५३ । ग्राम का सूअर गदहा ऊंट सियार बानर कौआ इन्हीं का मूत्र और विष्ठा को भोजन करके ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य चांद्रायण व्रत को करैं । १५४ । सूखी मांस भूमि में उत्पन्न छत्राक (अर्थात् कुक्करमुत्ता) और भक्षण के योग्य है अथवा नहीं है इस प्रकार से जो मांस जानी नहीं गई है वह मांस सूना (अर्थात् वध स्थान) में रक्खी हो इन्हीं में से कोई एक के भक्षण में पूर्व कथित व्रत को करैं । १५५ । कच्ची मांस के भोजन करने वाले बाघ आदि ग्राम का सूअर ऊंट ग्राम का मुरगा मनुष्य

ब्राह्मणस्तु सुरापस्य गन्धमाघ्राय सोमपः । प्राणानप्सु चिरायम्य घृतम्प्राश्य विशुध्यति । १४९ ।
अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरा संस्पृष्टमेव च । पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णाद्विजातयः । १५० ।
वपनं मेखलादण्डो भैक्ष्यचर्य्याव्रतानि च । निवर्त्तन्ते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्म्मणि । १५१ ।
अभोज्यानां च भुक्त्वान्नं स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेव च । जग्ध्वा मांसमभक्ष्यञ्च सप्तरात्रं यवान्पिबेत् । १५२ ।
शुक्तानि च कषायांश्च पीत्वा मेध्यान्यपि द्विजः । तावद्भवत्यप्रयतो यावत्तन्न व्रजत्यधः । १५३ ।
विड्वराहखरोष्ट्राणां गोमायोः कपिकाकयोः । प्राश्य मूत्रपुरीषाणि द्विजश्चांद्रायणञ्चरेत् । १५४ ।
शुष्काणि भुक्त्वा मांसानि भौमानि कवकानि च । अज्ञातञ्चैव सूनास्थमेतदेव व्रतञ्चरेत् । १५५ ।
क्रव्यादशूकरोष्ट्राणां कुक्कुटानाञ्च भक्षणे । नरकाकखराणाञ्च तप्तकृच्छ्रं विशोधनम् । १५६ ।
मासिकान्नञ्च यो श्नीयादसमावर्तको द्विजः । स त्रीण्यहान्युपवसेदेकाहञ्चोदके वसेत् । १५७ ।
ब्रह्मचारी तु यो श्नीयान्मद्यमांसङ्कथञ्चन । स कृत्वा प्राकृतं कृच्छ्रं व्रतशेषं समापयेत् । १५८ ।
बिडालकाकाखूच्छिष्टञ्जग्ध्वाश्वनकुलस्य च । केशकीटावपन्नञ्च पिबेद्ब्रह्मसुवर्चलाम् । १५९ ।
अभोज्यमन्नन्नात्तव्यमात्मनः शुद्धिमिच्छता । अज्ञानभुक्तं तूत्तार्य्यं शोध्यं वाप्याशु शोधनैः । १६० ।
एषोनाद्यादनस्योक्तोव्रतानां विविधो विधिः । स्तेयदोषापहर्तॄणां व्रतानां श्रूयतां विधिः । १६१ ।
धान्यान्नधनचौर्याणि कृत्वा कामाद्द्विजोत्तमः । स्वजातीयगृहादेव कृच्छ्राब्देन विशुध्यति । १६२ ।
मनुष्याणां तु हरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य च । कूपवापीजलानाञ्च शुद्धिश्चान्द्रायणं स्मृतम् । १६३ ।

कौआ गदहा इन्हीं में से कोई एक के मांस के भक्षण में तप्त कृच्छ्र व्रत को करैं । १५६ । ब्रह्मचारी मासिक श्राद्ध के अन्न को भोजन करके तीन दिन उपवास करै और एक दिन जल में वास करै । १५७ । ब्रह्मचारी अज्ञान से मधु और मांस इन दोनों में से एक को भक्षण करके प्राजापत्य कृच्छ्र को करके व्रत शेष को समाप्ति करैं । १५८ । बिलारि कौआ मूसा कुत्ता नेउर इन्हीं में से कोई एक का जूठा वस्तु को भोजन करके केश और बड़े कीड़े इन दोनों में से कोई एक से मिली हुई वस्तु को भोजन करके वह सुवर्चला औषधी से पक्व जल को पीवै । १५९ । अपने को शुद्धि का इच्छा करने वाला भोजन के योग्य जो वस्तु नहीं है उस को भोजन न करै और अज्ञान से भोजन किए हो तो वमन (अर्थात् उलटी) करै यह न हो सके तो प्रायश्चित्त करके अपनी आत्मा को शुद्ध जलदी करै । १६० । भोजन के योग्य जो वस्तु नहीं है उस के भोजन में यह प्रायश्चित्त कहा चोरी के पाप के प्रायश्चित्त को सुनो । १६१ । ब्राह्मण के गृह से इच्छा करके धान्य को चोराके कृच्छ्र व्रत को एक वर्ष तक शुद्धि के लिये ब्राह्मण करै परंतु देश काल द्रव्य परिमाण स्वामि गुण आदि की अपेक्षा करके अधिक भी जानना इसी रीति से आगे जो कहैंगे उस में भी जानना । १६२ । मनुष्य स्त्री खेत गृह बावली कूंआ का जल इन्हीं के हरण में चांद्रायण व्रत करना । १६३ । * * * * * * * * *

थोड़े मोल वाली और थोड़े प्रयोजन वाली बस्तु के हरण में सान्तपन कृच्छ्र करे और चोराई बस्तु जिस की हो उस को देवै यह बात सब चोरी के प्रायश्चित्त में जानना । १६४ । भक्ष्य (अर्थात् चबेना आदि) भोज्य (अर्थात् भात आदि) यान (अर्थात् सवारी) शय्या आसन पुष्प मूल फल इन्हों में से कोई एक के हरण में पंचगव्य (अर्थात् गौ का दूध दही घी मूत गोबर) को पीवे । १६५ । तृण काष्ठ सूखा वृक्ष अन्न गुड़ वस्त्र चाम मांस इन्हों में से कोई एक के चोराने में तीन दिन उपवास करना । १६६ । मणि मोती मूङ्गा ताम्बा रूपा लोहा कांसा पत्थर इन्हों में से कोई एक के चोराने में बारह दिन तक चाउर का कण को भोजन करना । १६७ । कपास कीड़ा ऊर्णा इन्हों से भए वस्त्र एक खुर वाले पशु पक्षी गंध औषधी रस्सी इन्हों में से कोई एक के चोराने में तीन दिन तक दूध पीना यहां सब बस्तु के हरण में एक रूप प्रायश्चित्त कहा सो कैसे बनै ऐसी आशंका भई उस का समाधान यह है कि चोराई बस्तु को तो स्वामी को दिया और चोरी तो सब की एक ही है इस लिये एक रूप प्रायश्चित्त कहा इसी रीति से चोरी में जहां एक रूप प्रायश्चित्त है तहां जानना । १६८ । इन व्रतों करके चोरी के पाप को दूर करे और गमन के योग्य जो स्त्री नहीं है उस के गमन में जो पाप है उस को आगे जो व्रत कहेंगे उस से दूर करे । १६९ । सगी बहिन मित्र पुत्र इन्हों की स्त्री कुमारी चाण्डाली इन्हों

द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वान्यवेश्मतः । चरेत्सान्तपनं कृच्छ्रन्तन्निर्यात्यात्मशुद्धये । १६४ ।
भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य च । पुष्पमूलफलानाञ्च पञ्चगव्यम्विशोधनम् । १६५ ।
तृणकाष्ठद्रुमाणाञ्च शुष्कान्नस्य गुडस्य च । चेलचर्मामिषाणाञ्च त्रिरात्रं स्यादभोजनम् । १६६ ।
मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च । अयः कांस्योपलानाञ्च द्वादशाहं कणान्नता । १६७ ।
कार्पासकीटजोर्णानां द्विशफैकशफस्य च । पक्षिगंधौषधीनाञ्च रज्वाश्चैव त्र्यहम्पयः । १६८ ।
एतैर्व्रतैरपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः । अगम्यागमनीयन्तु व्रतैरेभिरपानुदेत् । १६९ ।
गुरुतल्पव्रतं कुर्य्याद्रेतः सिक्त्वा स्वयोनिषु । सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च । १७० ।
पैतृष्वस्रेयीं भगिनीं स्वस्रीयां मातुरेव च । मातुश्च भ्रातुस्तनयां गत्वा चांद्रायणं चरेत् । १७१ ।
एतास्तिस्रस्तु भार्यार्थे नोपयच्छेत्तु बुद्धिमान् । ज्ञातित्वेनानुपेयास्ताः पतंति ह्युपयन्नधः । १७२ ।
अमानुषीषु पुरुष उदक्यायामयोनिषु । रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सान्तपनञ्चरेत् । १७३ ।
मैथुनं तु समासेव्य पुंसि योषिति वा द्विजः । गोयानेप्सु दिवा चैव सवासाः स्नानमाचरेत् । १७४ ।
चाण्डालान्त्यस्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च । पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात्साम्यन्तु गच्छति । १७५ ।
विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्त्ता निरुंध्यादेकवेश्मनि । यत्पुंसः परदारेषु तच्चैनाञ्चारयेद्व्रतम् । १७६ ।
साचेत्पुनः प्रदुष्येत्तु सदृशेनोपयन्त्रिता । कृच्छ्रञ्चान्द्रायणञ्चैव तदस्याः पावनं स्मृतम् । १७७ ।
यत्करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनाद्द्विजः । तद्भैक्ष्यभुग्जपन्नित्यन्त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति । १७८ ।

में से कोई एक के साथ अज्ञान से रमण करके मातृगमन का प्रायश्चित्त करे । १७० । मौसी की बेटी और फूफू की बेटी सगे भाई की लड़की इन्हों में से कोई एक के साथ रति करे तो चांद्रायण व्रत करे परंतु ये सब अज्ञान से एक बेर पर पुरुष के साथ रति किए हों तब जानना क्योंकि प्रायश्चित्त थोड़ा है इस लिये यह कहते हैं । १७१ । बुद्धिमान पुरुष पूर्व कथित भाई की लड़की को छोड़कर तीनों के साथ विवाह न करे और करे तो नरक में जाता है । १७२ । गौ को छोड़कर घोड़ी आदि पशु और रजस्वला स्त्री और कोई एक संम्बध से रहित स्त्री और जल इन्हों में वीर्य पात करके सान्तपन कृच्छ्र करे । १७३ । गाड़ी जल दिन इन्हों में पुरुष अथवा स्त्री के साथ रति करके वस्त्र सहित स्नान करै । १७४ । अज्ञान से चाण्डाली और म्लेच्छ आदि की स्त्री इन्हों के अन्न को भोजन करके और इन्हों से प्रतिग्रह करके ब्राह्मण पतित होता है और ज्ञान से तो इन्हों के सम होता है । १७५ । पर पुरुष में रत स्त्री को भर्ता एक गृह में रोक के रक्खे और जो व्रत पुरुष को पर स्त्री गमन में है सो व्रत उस स्त्री को करावै । १७६ । अपनी जातिके पुरुष के साथ एक बेर रति करने से स्त्री दोषी भई उस का प्रायश्चित्त करके फेर अपने जाति वाले पुरुष के साथ रति करे तो वह स्त्री प्राजापत्य व्रत और चांद्रायण व्रत को करै । १७७ । शूद्र वर्ण की स्त्री के साथ एक रात रति करके ब्राह्मण क्षत्रिय जो पाप करते हैं उन को दूर करने के लिये तीन वर्ष तक भिक्षा मांगके भोजन करत संते जप करत रहै । १७८ ।

चारो वर्ण के पाप का प्रायश्चित्त यह कहा अब पतितों के साथ संसर्ग करने वाले के प्रायश्चित्त को सुनो । १७९ । पतितों के साथ एक वर्ष तक एक सवारी अथवा एक आसन पर बैठे एक पंघति में भोजन करै तो उस के सम होता है और पतितों को यज्ञ करावे अथवा जनेऊ कराके गायत्री सुनावे अथवा विवाह आदि संबंध करै तो तुरंत उस के सम होता है । १८० । जिस पतित के साथ जो संसर्ग करै सो संसर्ग विशुद्धि के लिये उसी का व्रत करै । १८१ । सपिण्ड बांधव बाहर जाके जाति ऋत्विक् गुरु के समीप निंदित दिन में सायंकाल में पतित को जल देवै । १८२ । दासी जल से पूर्ण घट को प्रेत की नाईं (अर्थात् दक्षिण मुख होके) पांव से ठरकाय देवै और बांधवों के सहित सपिण्ड लोग एक दिन उपवास करैं । १८३ । उस पतित के साथ बैठना बोलना उस को भाग देना उस के साथ लोक का व्यवहार आदि इन सब को त्याग करै । १८४ । जेठा भाई से गुण करके अधिक हो तो जेठांश को पावै और जेठा भाई की जेठाई और जेठंशी इन दोनों की निवृत्ति होती है । १८५ । जब पतित ने प्रायश्चित्त को किया तब उस के साथ सपिण्ड लोग जल से पूर्ण नया घड़ा को पुण्य जलाशय में स्नान करके ठरकाय देवैं । १८६ । वह

एषाम्पापकृतामुक्ता चतुर्णामपि निष्कृतिः । पतितैः संप्रयुक्तानामिमाः शृणुत निष्कृतीः । १७९ ।
सम्वत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् । याजनाध्यापनाद्यौनान्न तु यानासनाशनात् । १८० ।
यो येन पतितेनैषां संसर्गं याति मानवः । स तस्यैव व्रतं कुर्य्यात्तत्संसर्गविशुद्धये । १८१ ।
पतितस्योदकं कार्य्यं सपिण्डैर्बान्धवैर्बहिः । निन्दितेऽहनि सायाह्ने ज्ञात्यृत्विग्गुरुसन्निधौ । १८२ ।
दासीघटमपाम्पूर्णम्पर्यस्येत्प्रेतवत्पदा । अहोरात्रमुपासीरन्न शौचम्बान्धवैस्सह । १८३ ।
निवर्तेरंश्च तस्मात्तु सम्भाषणसहासने । दायाद्यस्य प्रदानञ्च यात्रा चैव हि लौकिकी । १८४ ।
ज्येष्ठता च निवर्तेत ज्येष्ठावाप्यञ्च यद्धनम् । ज्येष्ठांशम्प्राप्नुयाच्चास्य यवीयान् गुणतोऽधिकः । १८५ ।
प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णकुम्भमपान्नवम् । तेनैव सार्द्धम्प्रास्येयुः स्नात्वा पुण्ये जलाशये । १८६ ।
सत्वप्सु तं घटम्प्रास्य प्रविश्य भवनं स्वकम् । सर्वाणि ज्ञातिकार्य्याणि यथा पूर्वं समाचरेत् । १८७ ।
एतदेव व्रतं कुर्य्याद्योषित्सु पतितास्वपि । वस्त्रान्नपानन्देयन्तु वसेयुश्च गृहान्तिके । १८८ ।
एनस्विभिर्निर्णिक्तैर्नार्थं किञ्चित्समाचरेत् । कृतनिर्णेजनांश्चैव न जुगुप्सेत कर्हिचित् । १८९ ।
बालघ्नांश्च कृतघ्नांश्च विशुद्धानपि धर्म्मतः । शरणागतहंतॄंश्च स्त्रीहंतॄंश्च न संवसेत् । १९० ।
येषां द्विजानां सावित्री नानूच्येत यथाविधि । तांश्चारयित्वा त्रीन्कृच्छ्रान् यथाविध्युपनाययेत् । १९१ ।
प्रायश्चित्तं चिकीर्षन्ति विकर्मस्थास्तु ये द्विजाः । ब्रह्मणा च परित्यक्तास्तेषामप्येतदादिशेत् । १९२ ।
यद्गर्हितेनार्जयंति कर्म्मणा ब्राह्मणा धनम् । तस्योत्सर्गेण शुध्यंति जप्येन तपसैव च । १९३ ।
जपित्वा त्रीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः । मासं गोष्ठे पयः पीत्वा मुच्यतेऽसत्प्रतिग्रहात् । १९४ ।

पतित जल में घड़ा को डालकर अपने गृह में प्रवेश करके जाति के संपूर्ण कार्य को पूर्व की नाईं करै । १८७ । पतिता स्त्री में भी यही विधि है और पतिता स्त्री के गृह के समीप में बास देना और भोजन पानी वस्त्र भी देना । १८८ । बिना प्रायश्चित्त किए पापियों के साथ कोई अर्थ को न करै और जब प्रायश्चित्त कर चुके तब निंदा भी कभी न करै । १८९ । बालक उपकार शरणागत स्त्री इन्हों में से कोई एक का नाश करने वाला शास्त्रोक्त प्रायश्चित्त किए भी हो तो उस के साथ बास न करना । १९० । जिस ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य की गायत्री विधि से कही न गई हो उस को तीन कृच्छ्र व्रत कराके यथा विधि फेर जनेऊ करना । १९१ । विरुद्ध कर्म करने वाला (अर्थात् निषिद्ध शूद्र सेवा करने वाला) और वेद को नहीं पढ़ने वाला ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य प्रायश्चित्त करने की इच्छा करै तो उन को भी तीन कृच्छ्र व्रत का उपदेश करना । १९२ । निंदित कर्म करके जो धन ब्राह्मण अर्जन करते हैं उस धन के त्याग से और जपतप करके शुद्ध होते हैं । १९३ । निर्चिंत होके एक मास तक नित्यही तीन हजार गायत्री का जप करत संते गौ के स्थान में बास करत दूध का आहार करत असत्प्रतिग्रह से ब्राह्मण छूटता है । १९४ ।

गौ के स्थान से फेर आया हुआ उपवास करके दुर्बल नम्र ब्राह्मण को भले लोग पूछैं कि हे ब्राह्मण हमारे सब के समान होने की इच्छा करते हो क्या । १९५ । तब वह ब्राह्मण कहै कि फेर असत्प्रतिग्रह न करेंगे सत्य कहते हैं ऐसा कहके गौ के भोजन के लिये घास देवै उस की दिई घास को गौ भोजन करें तब भले लोग उस का ग्रहण करें । १९६ । व्रात्यों को यज्ञ कराके पिता गुरु आदि से भिन्न निषिद्ध दाह आदि मरण श्राद्ध करके और मारण प्रयोग करके अहीन नाम वाली याग करके तीन कृच्छ्र करै । १९७ । शरणागत को त्याग करके वेद पढाने के योग्य जो नहीं उस को वेद पढ़ाके एक वर्ष तक यव का आहार करके रहै । १९८ । कुत्ता सियार गदहा मनुष्य घोड़ा सूअर ग्राम बासी जो बिलारि आदि इन्हों में से कोई एक करके काटा गया पुरुष प्राणायाम से शुद्ध होता है । १९९ । कच्ची मांस भोजन करने वाला और अपांक्त्य (अर्थात् पूर्व जो कह आए हैं पंगति में रहने के योग्य नहीं) सो एक मास तक दो दिन उपवास करके तीसरे दिन सायंकाल में भोजन करै और संहिता का जप करै देवकृतस्यैनसो-ऽवयजनमसि इस आदि आठ मंत्र करके आठ बेर होम करै नित्य ही तब शुद्ध होता है । २०० । ऊंट से अथवा गदहा से युक्त जो गाड़ी आदि तिस पर इच्छा से चढ़ के और नंगा होके स्नान करके प्राणायाम करै । २०१ । दुःखित मनुष्य बिना जल के विष्ठा

उपवासकृशन्तन्तु गोव्रजात्पुनरागतम् । प्रणतम्प्रति पृच्छेयुः साम्यं सौम्येच्छसीति किम् । १९५ ।
सत्यमुक्त्वा तु विप्रेषु विकिरेद्यवसङ्गवाम् । गोभिः प्रवर्तिते तीर्थे कुर्य्युस्तस्य परिग्रहम् । १९६ ।
व्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म्म च । अभिचारमहीनञ्च त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति । १९७ ।
शरणागतम्परित्यज्य वेदं विप्लाव्य च द्विजः । सम्वत्सरं यवाहारस्तत्पापमपसेधति । १९८ ।
श्वसृगालखरैर्दष्टो ग्राम्यैः क्रव्याद्भिरेव च । नराश्वोष्ट्रवराहैश्च प्राणायामेन शुध्यति । १९९ ।
षष्ठान्नकालता मासं संहिताजप एव वा । होमाश्च सकला नित्यमपांक्त्यानां विशोधनम् । २०० ।
उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानन्तु कामतः । स्नात्वातु विप्रो दिग्वासाः प्राणायामेन शुध्यति । २०१ ।
विनाद्भिरप्सु वाप्यार्तः शारीरं सन्निवेश्य च । सचैलो बहिराप्लुत्य गामालभ्य विशुध्यति । २०२ ।
वेदोदितानां नित्यानां कर्म्मणां समतिक्रमे । स्नातकव्रतलोपे च प्रायश्चित्तमभोजनम् । २०३ ।
हूंकारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वंकारं च गरीयसः । स्नात्वा नश्नन्नहः शेषमभिवाद्य प्रसादयेत् । २०४ ।
ताडयित्वा तृणेनापि कण्ठेवा बध्यवाससा । विवादे वा विनिर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत् । २०५ ।
अवगूर्य्य त्वब्दशतं सहस्रमभिहत्य च । जिघांसया ब्राह्मणस्य नरकम्प्रतिपद्यते । २०६ ।
शोणितं यावतः पांसून् संगृह्णाति महीतले । तावन्त्यब्दसहस्राणि तत्कर्ता नरके वसेत् । २०७ ।
अवगूर्य्य चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रन्निपातने । कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्य शोणितम् । २०८ ।
अनुक्तनिष्कृतीनान्तु पापानामपनुत्तये । शक्तिञ्चावेक्ष्य पापञ्च प्रायश्चित्तम्प्रकल्पयेत् । २०९ ।

और मूत्र का त्याग करै अथवा जल ही में उस कर्म को करै तो ग्राम से बाहर जाके नदी आदि में वस्त्र सहित स्नान करके गौ को छूके शुद्ध होता है । २०२ । वेद में कथित नित्य कर्म को न करने में और ब्रह्मचर्य्य व्रत के लोप में एक दिन उपवास करना । २०३ । ब्राह्मण को हूं ऐसा कहके और बड़े लोगों को तुम ऐसा कहके स्नान और उन्हों को प्रसन्न करके प्रणाम करके एक दिन उपवास करै । २०४ । ब्राह्मण को तृण से भी ताड़न करके और विवाद में जीत के वस्त्र से कंठ को बांधि के प्रणाम करके प्रसन्न करै । २०५ । ब्राह्मण के वध के लिये शस्त्र को उठावै और मारै न तो भी सौ वर्ष तक नरक में रहता है और वध करके हजार वर्ष तक नरक में रहता है । २०६ । मारने से ब्राह्मण के शरीर से रुधिर पृथिवी की जितनी धूलि के रज को पकड़ता है तितने हजार वर्ष तक मारने वाला नरक में बास करता है । २०७ । ब्राह्मण के मारने के लिये शस्त्र उठाके कृच्छ्र व्रत करै मारने में अति कृच्छ्र व्रत करै और रुधिर निकारने में कृच्छ्र अति कृच्छ्र दोनों करै । २०८ । जिस पाप का प्रायश्चित्त नहीं कहा है उस पाप को दूर करने के लिये उस की शक्ति और पाप दोनों को देखके प्रायश्चित्त का कल्पना करना । २०९ । * *

जिन उपायों से पाप को मनुष्य दूर करते हैं और उन उपायों को देव ऋषि पितरों ने कहा उन उपायों को हम कहैंगे । २१० । प्राजापत्य व्रत करत संते तीन दिन प्रातःकाल में तीन दिन सायंकाल में भोजन करै तीन दिन बिना मांगे जो मिलै उस को भोजन करै अंत में तीन दिन उपवास करै ग्रास की संख्या और परिमाण को कहते हैं छब्बीस ग्रास प्रातःकाल बत्तीस ग्रास सायंकाल बिना मांगे में चौबीस ग्रास मुरगा के अंडा प्रमाण अथवा जितना मुख में जासकै हविष्यान्न भोजन करना और वस्तु को भोजन न करना । २११ । गौ का मूत गोबर दूध दही घी कुश सहित जल इन सब को एकत्र करके एक दिन पीवै और दूसरे दिन उपवास करै यह सान्तपन कृच्छ्र कहाता है और जब पूर्व कथित छवों वस्तु को एक एक दिन में एक एक वस्तु को भोजन करै और सातयें दिन उपवास करै तब महा सांतपन कृच्छ्र कहाता है । २१२ । अति कृच्छ्र व्रत करत संते एक दिन प्रातः काल में एक ग्रास और एक दिन सायं काल में एक ग्रास और एक दिन बिना मांगे से मिलने में एक ग्रास उस को भोजन करै और तीन दिन उपवास करै । २१३ । तप्त कृच्छ्र व्रत करत संते निचिंत होके स्नान करके गरम जल दूध घी वायु इन चारो में से एक एक को एक बेर तीन तीन दिन पीवै संख्या और परिमाण को कहते हैं छः गंडा भर जल तीन गंडा भर दूध एक गंडा भर घी । २१४ । चित्त सावधान करके इंद्रियों को अपने वश करके बारह दिन तक उपवास करै यह व्रत सब पाप को दूर करने

यैरभ्युपायैरेनांसि मानवो व्यपकर्षति । तान्वोभ्युपायान्वक्ष्यामि देवर्षिपितृसेवितान् । २१० ।
त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम् । त्र्यहम्परञ्च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरन्द्विजः । २११ ।
गोमूत्रङ्गोमयं क्षीरन्दधिसर्प्पिः कुशोदकम् । एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् । २१२ ।
एकैकं ग्रासमश्नीयात् त्र्याहाणि त्रीणि पूर्ववत् । त्र्यहञ्चोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरन्द्विजः । ११३ ।
तप्तकृच्छ्रञ्चरन्विप्रो जलक्षीरघृतानिलान् । प्रतित्र्यहम्पिवेदुष्णान्सकृत्स्नायी समाहितः । २१४ ।
यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनम् । पराको नाम कृच्छ्रोयं सर्वपापापनोदनः । २१५ ।
एकैकं ह्रासयेत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्द्धयेत् । उपस्पृशं स्त्रिषवणमेतच्चान्द्रायणं स्मृतम् । २१६ ।
एवमेव विधिं कृत्स्नमाचरेद्यवमध्यमे । शुक्लपक्षादिनियतश्चरंश्चान्द्रायणव्रतम् । २१७ ।
अष्टावष्टौ समश्नीयात्पिण्डान्मध्यन्दिने स्थिते । नियतात्मा हविष्याशी यतिचान्द्रायणञ्चरन् । २१८ ।
चतुरः प्रातरश्नीयात्पिण्डान्विप्रः समाहितः । चतुरोऽस्तमिते सूर्य्ये शिशुचांद्रायणं स्मृतम् । २१९ ।
यथा कथञ्चित्पिण्डानान्तिस्त्रोशीतीः समाहितः । मासेनाश्नन्हविष्यस्य चन्द्रस्यैति सलोकताम् । २२० ।
एतद्रुद्रास्तथादित्या वसवश्चाचरन्व्रतम् । सर्वाकुशलमोक्षाय मरुतश्च महर्षिभिः । २२१ ।
महाव्याहृतिभिर्होमः कर्तव्यः स्वयमन्वहम् । अहिंसा सत्यमक्रोधमार्जवञ्च समाचरेत् । २२२ ।

वाला है । २१५ । तीनों काल में (अर्थात् प्रातः सायं मध्याह्न में) स्नान करत संते एक एक ग्रास को कृष्ण पक्ष में घटावै और शुक्ल पक्ष में बढ़ावै (अर्थात् शुक्ल पक्ष) की पूर्णमासी को पंद्रह ग्रास भोजन करै और कृष्ण पक्ष के परिवा में चौदह ग्रास इसी प्रकार से एक एक ग्रास को घटाते हुए अमावास्या में उपवास होगा फेर शुक्ल पक्ष के परिवा से एक एक ग्रास को बढ़ाते हुए पूर्णमासी को पंद्रह ग्रास होगा यह पिपीलिका मध्य चांद्रायण कहाता है पिपीलिका (अर्थात् चिंउटी) जैसे आगे पीछे मोटी रहती है मध्य में पतली रहती है तैसे यह व्रत है । २१६ । इसी को शुक्ल पक्ष से प्रारंभ करै तो यव मध्य चांद्रायण कहाता है जैसे यव मध्य में मोटा रहता है आदि अंत में पतला रहता है । २१७ । यति चांद्रायणं करत संते इंद्रियों को वश किए हुए हविष्य का आठ ग्रास को मध्यान्ह समय में एक मास तक भोजन करै जिस पक्ष से चाहै उस पक्ष से प्रारंभ करै । २१८ । शिशु चांद्रायण करत संते निचिंत होकर प्रातःकाल में चार ग्रास और रात्रि में चार ग्रास भोजन करै । २१९ । किसी प्रकार से निचिंत होकर एक मास में हविष्य का २४० ग्रास को भोजन करै तो चंद्र लोक में जावै । २२० । संपूर्ण पाप को नाश के लिये रुद्र आदित्य वसु वायु बड़े ऋषि लोग इन सबों ने इस व्रत को किया । २२१ । आप प्रति दिन महा व्याहृति से होम करै अहिंसा सत्य अक्रोध कोमलता इन सब को ग्रहण करै । २२२ । * * * * * *

रात्रि में और दिन में वस्त्र सहित स्नान करै यह स्नान कथित चांद्रायण को छोड़कर (अर्थात् यव मध्य पिपीलिका मध्य को छोड़कर) दूसरे चांद्रायण में जानना क्योंकि उन दोनों में तो त्रिकाल स्नान लिखा है और स्त्री शूद्र पतित इन्हों से भाषण व्रत करने वाला न करै। २२३। रात्रि में और दिन में खड़ा रहै अथवा बैठा रहै शयन न करै सामर्थ्य न हो तो भूमि में शयन करै ब्रह्मचारी रहै (अर्थात् स्त्री से संभोग न करै) मूंज की मेखला और पलाश का दंडा इन दोनों से युक्त रहै गुरु देवता ब्राह्मण इन्हों का पूजन करै। २२४। गायत्री और पवित्र मंत्र इन्हों का यथा शक्ति जप करै यह बात सब व्रत में जानना। २२५। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये सब इन व्रतों करके किए हुए पाप को दूर करैं और जो पाप प्रकाशित नहीं है (अर्थात् गुप्त है) उस को मंत्र और होम करके दूर करैं इस स्थान में ऐसी आशंका होती है कि परिषत् (अर्थात् धर्मशास्त्रियों की सभा) को निवेदन करेंगे तब वह मंत्र और होम का उपदेश करैंगे तब तो प्रकाशित पाप हुआ अप्रकाशित पाप कैसे होगा तो इस का समाधान यह है कि दूसरे के बहाने से पूछे तब अपना पाप अप्रकाशित भया। २२६। कहना पछताना तपस्या करना वेद पढ़ना इन्हों करके पाप करने वाला पाप से छूटता है और आपत्काल में दान करके पाप से छूटता है परंतु जो पाप प्रकाशित हुआ है उस

चिरत्रिर्न्निशायाञ्च सवासा जलमाविशेत्। स्त्रीशूद्रपतितांश्चैव नाभिभाषेत कर्हिचित्। २२३।
स्थानासनाभ्याम्विहरेदशक्तोऽधः शयीत वा। ब्रह्मचारी व्रती च स्याद्गुरुदेवद्विजार्चकः। २२४।
सावित्रीञ्च जपेन्नित्यम्पवित्राणि च शक्तितः। सर्वेष्वेव व्रतेष्वेवम्प्रायश्चित्तार्थमादृतः। २२५।
एतैर्द्विजातयश्शोध्या व्रतैराविष्कृतैनसः। अनाविष्कृतपापांस्तु मंत्रैर्होमैश्च शोधयेत्। २२६।
ख्यापनेनानुतापेन तपसाध्ययनेन च। पापकृन्मुच्यते पापात्तथा दानेन चापदि। २२७।
यथा यथा नरोऽधर्मं स्वयं कृत्वानुभाषते। तथा तथा त्वचेवाहिस्तेनाधर्म्मेण मुच्यते। २२८।
यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतङ्कर्म्म गर्हति। तथा तथा शरीरन्तत्तेनाधर्म्मेण मुच्यते। २२९।
कृत्वा पापं हि सन्तप्य तस्मात्पापात्प्रमुच्यते। नैवङ्कुर्य्याम्पुनरिति निवृत्या पूयते तु सः। २३०।
एवं सञ्चित्य मनसा प्रेत्य कर्म्मफलोदयम्। मनोवाङ्मूर्तिभिर्न्नित्यं शुभं कर्म्म समाचरेत्। २३१।
अज्ञानाद्यदि वाज्ञानात्कृत्वा कर्म्मविगर्हितम्। तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन् द्वितीयन्न समाचरेत्। २३२।
यस्मिन्कर्म्मण्यस्य कृते मनसः स्यादलाघवम्। तस्मिंस्तावत्तपः कुर्य्याद्यावत्तुष्टिकरम्भवेत्। २३३।
तपोमूलमिदं सर्वं दैवमानुषकं सुखम्। तपोमध्यं बुधैः प्रोक्तं तपोन्तं वेददर्शिभिः। २३४।
ब्राह्मणस्य तपोज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम्। वैश्यस्य तु तपो वार्ता तपः शूद्रस्य सेवनम्। २३५।
ऋषयः संयतात्मानः फलमूलानिलाशनाः। तपसैव प्रपश्यन्ती त्रैलोक्यं सचराचरम्। २३६।

को कहना अप्रकाशित पाप को न कहना एक प्राजापत्य व्रत स्थान में एक धेनु देना एक मास में अढ़ाई धेनु भई बारह वर्ष में ३६० धेनु होती हैं। २२७। जैसे केंचुरि से सर्प छूटता है तैसे प्रकाशित पाप को जैसे जैसे कहता है तैसे तैसे मनुष्य पाप से छूटता है। २२८। पाप करने वाले मनुष्य का मन जैसे जैसे दुष्ट कर्म की निंदा करता है तैसे तैसे उस अधर्म से उस को शरीर छूटती है। २२९। पाप करके संताप करै तो उस पाप से छूटता है मैं फेर ऐसा न करूंगा ऐसी निवृत्ति करके वह पापी पवित्र होता है। २३०। इस प्रकार करके मन से परलोक में कर्म फलोदय को मन वाणी शरीर से नित्य ही शुभ कर्म को करै। २३१। अज्ञान से अथवा ज्ञान से निंदित कर्म को करके उस कर्म से छूटने की इच्छा करत संते दूसरे निंदित कर्म को न करै और दूसरे निंदित कर्म को करै तो दूना प्रायश्चित्त करै। २३२। जिस प्रायश्चित्त करने से पापी के मन को संतोष न हो तो उस प्रायश्चित्त को फेर करै जब तक मन को संतोष न हो तब तक करता रहै। २३३। देवता और मनुष्य इन्हों के सुख का मूल मध्य अंत तप है यह बात वेद के देखने वाले ने कहा। २३४। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन्हों का क्रम से ज्ञान रक्षा वार्ता (अर्थात् खेती करना आदि) सेवा तप है। २३५। इंद्रियों को जीते हुए और फल मूल वायु इन्हों में से कोई एक को भोजन करते हुए ऋषि लोग चर अचर तीनों लोक को तप ही से देखते हैं। २३६। * * * *

औषध अरोग विद्या (अर्थात् ब्रह्म कर्म रूप वेदार्थ ज्ञान और वेद पठन) नाना प्रकार की स्वर्ग में स्थिति ये सब तप करके सिद्ध होते हैं। २३७। जो वस्तु दुःख से तरने योग्य मिलने योग्य करने योग्य जानने योग्य है सो तप से होने सकता है जो न होसके उस के होने में तप ही समर्थ है तप का उल्लंघन बड़ा कठिन है। २३८। महा पातकी आदि लेके जितने पाप करने वाले हैं ये सब तप से शुद्ध होते हैं। २३९। बड़े बड़े सर्प पतंग (अर्थात् सलभ) पशु पक्षी अचर (अर्थात् जो चल न सके) जीव ये सब तप के बल से स्वर्ग में जाते हैं। २४०। मन वाणी शरीर से जो कुछ पाप करते हैं सो सब तप ही से नष्ट होता है। २४१। यज्ञ में तप से शुद्ध ब्राह्मण का दिया हुआ हविष्य को देवता ग्रहण करते हैं और उन्हों के इच्छित वस्तु को बढ़ाते हैं। २४२। प्रजा पति (अर्थात् हिरण्य गर्भ) ने इस शास्त्र को तप ही से उत्पन्न किया और ऋषियों ने तप ही से इस को पाया। २४३। तप ही से संपूर्ण जंतु को दुर्लभ जन्म होता है इस बात को देखते हुए देवता लोग सब का मूल तप को जानकर तप की माहात्म्य कहते हैं। २४४। महा यज्ञ को और यथा शक्ति वेदाभ्यास को करनेवाले महा पातक को भी जलदी नाश करते हैं। २४५। जिस प्रकार से तेज से बढ़ी हुई अग्नि काठ को झट पट दहन करती है तिसी प्रकार से वेद को जानने वाला ज्ञान

औषधान्यगदो विद्या दैवी च विविधा स्थितिः। तपसैव प्रसिध्यंति तपस्तेषां हि साधनम्। २३७।
यद्दुस्तरं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुष्करम्। सर्वं तु तपसा साध्यन्तपो हि दुरतिक्रमम्। २३८।
महापातकिनश्चैव शेषाश्चाकार्य्यकारिणः। तपसैव सुतप्तेन मुच्यन्ते किल्बिषात्ततः। २३९।
कीटाश्चाहिपतङ्गाश्च पशवश्च वयांसि च। स्थावराणि च भूतानि दिवं यांति तपोबलात्। २४०।
यत्किञ्चिदेनः कुर्वन्ति मनोवाङ्मूर्तिभिर्ज्जनाः। तत्सर्वं निर्दहंत्याशु तपसैव तपोधनाः। २४१।
तपसैव विशुद्धस्य ब्राह्मणस्य दिवौकसः। इज्याश्च प्रतिगृह्णन्ति कामान्सम्वर्द्धयन्ति च। २४२।
प्रजापतिरिदं शास्त्रं तपसैवासृजत्प्रभुः। तथैव वेदानृषयस्तपसा प्रतिपेदिरे। २४३।
इत्येतत्तपसो देवा महाभाग्यम्प्रचक्षते। सर्वस्यास्य प्रपश्यन्तस्तपसः पुण्यमुत्तमम्। २४४।
वेदाभ्यासोन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रियाक्षमा। नाशयन्त्याशु पापानि महापातकजान्यपि। २४५।
यथैधस्तेजसा वन्हिः प्राप्तन्निर्द्दहति क्षणात्। तथा ज्ञानाग्निना पापं सर्वन्दहति वेदवित्। २४६।
इत्येतदेनसा मुक्तम्प्रायश्चित्तं यथाविधि। अत ऊर्द्ध्वं रहस्यानाम्प्रायश्चित्तन्निबोधत। २४७।
स व्याहृतिप्रणवकाः प्राणायामास्तु षोडश। अपि भ्रूणहनं मासात्पुनन्त्यहरहः कृताः। २४८।
कौत्सं जप्त्वाप इत्येतद्वाशिष्ठञ्च प्रतीत्यृचम्। माहित्रं शुद्धवत्यश्च सुरापोपि विशुध्यति। २४९।
सकृज्जप्त्वास्य वामीयं शिवसंकल्पमेव च। अपहृत्य सुवर्णन्तु क्षणाद्भवति निर्म्मलः। २५०।
हविष्यन्तीयमभ्यस्य न तं मह इतीति च। जपित्वा पौरुषं सूक्तं मुच्यते गुरुतल्पगः। २५१।

रूपी अग्नि से संपूर्ण पाप को दहन करता है। २४६। प्रकाशित पापों का यह प्रायश्चित्त कहा इस के अनंतर अप्रकाशित पाप के प्रायश्चित्त को जानो। २४७। अकार और सात व्याहृति इन्हों से युक्त गायत्री उस्से सोलह प्राणायाम प्रतिदिन एक मास तक करै तो गर्भ मारने के पाप को दूर करता है यह प्रायश्चित्त ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन्हों को है स्त्री और शूद्र इन्हों को मंत्र में अधिकार नहीं है। २४८। कौत्स ऋषि ने देखा जो सूक्त अपनः शोशुचदघं यह और वशिष्ठ ऋषि ने देखा जो सूक्त प्रतिस्तोमेभिरुषसं वशिष्ठाया यह माहित्रसूक्त महित्रीणामवोस्तु यह शुद्धवत्य एता निंद्रंस्तवाम यह तीन ऋचा इन्हों को प्रतिदिन एक मास तक सोलह बेर जप करै तो सुरापान करने वाला शुद्ध होता है। २४९। एक बेर प्रतिदिन एक मास तक अस्य वामीयमस्य वामस्य पलितस्य इस को और शिव संकल्प (अर्थात् यज्जाग्रतो दूरं यह वाजसनेयी शाखा में पठित मंत्र) को जप करै तो ब्राह्मण का सोना चोराने वाला शुद्ध होता है। २५०। हविष्यंस्वर्विदं तमजरं यह उन्नीस ऋचा और नतमंहो दुरितं यह आठ ऋचा सहस्रशीर्षा यह सोलह ऋचा इन्हों को सोलह बेर प्रति दिन एक मास तक जप करै तो मातृगमन के पाप से छूटता है। २५१। * * * * * * * * *

अवति हेलोवरुणयोः यह ऋचा यत्किञ्चिदं वरुण देवोजल यह ऋचा इन्हें। को एक बेर एक वर्ष तक जप करै तो छोटे बड़े पाप को (अर्थात् महा पातक उपपातक आदि को) नाश करता है । २५२ । नहीं ग्रहण करने योग्य बस्तु को ग्रहण करके और निंदित अन्न को भोजन करके तरत्समं दिवं यह चार ऋचा को तीन दिन जप करै । २५३ । सोम रुद्रा धारये श्याम स्वयम् यह चार ऋचा अर्यम्णं वरुणं मित्रञ्च यह तीन ऋचा इन्हों में से एक एक को एक बेर एक मास तक नदी में स्नान करके जप करै तो बहुत पापों से छूटता है । २५४ । इन्द्रमिन्द्र वरुणमग्निंत्रयः यह सात ऋचा को छः मास तक जप करै तो सब पाप से छूटता है जल में मूत्र विष्ठा आदि को करने वाला एक मास तक भिक्षा मांग के भोजन करै । २५५ । देव कृतस्य इन आदि शाकल होममंत्र से एक वर्ष तक घी का होम करै अथवा नमः इंद्रश्च इस ऋचा करके एक वर्ष तक जप करै तो महापातक को ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य नाश करते हैं । २५६ । ब्रह्म हत्या आदि महा पातक में से कोई एक पाप से युक्त हो तो निश्चिंत होकर गै। के पीछे गमन करै और भिक्षा मांग के भोजन करै इंद्रियों को जीते हुए एक वर्ष तक प्रति दिन पात्रमानी ऋचा को जप करै तो शुद्ध होता है । २५७ । वन में निश्चिंत होकर वेद संहिता को तीन बेर अभ्यास करै और तीन बेर पराक व्रत करै तो सब पाप से

एनसां स्थूलसूक्ष्माणां चिकीर्षन्नपनोदनम् । अवेत्यृचं जपेदब्दं यत्किञ्चिदमितीति वा । २५२ ।
प्रतिगृह्याप्रतिग्राह्यं भुक्त्वा चान्नम्विगर्हितम् । जपंस्तरत्समन्दीयम्पूयते मानवस्त्र्यहात् । २५३ ।
सोमारौद्रन्तु बह्वेनामासमभ्यस्य शुध्यति । स्रवन्त्यामाचरन्स्नानमर्य्यम्णामिति च त्र्यृचम् । २५४ ।
अब्दार्द्धमिन्द्रमित्येतदेनस्वी सप्तकञ्जपेत् । अप्रशस्तन्तु कृत्वाप्सु मासमासीत भैक्षभुक् । २५५ ।
मंत्रैश्शाकलहोमीयैरब्दं हुत्वा घृतं द्विजः । सुगुर्वप्यपहन्त्येनो जप्त्वा वा नम इत्यृचम् । २५६ ।
महापातकसंयुक्तोऽनुगच्छेद्गाः समाहितः । अभ्यस्याब्दम्पावमानीर्भैक्षाहारो विशुद्ध्यति । २५७ ।
अरण्ये वा त्रिरभ्यस्य प्रयतो वेदसंहिताम् । मुच्यते पातकैस्सर्वैः पराकैश्शोधितस्त्रिभिः । २५८ ।
त्र्यहन्तूपवसेद्युक्तस्त्रिरन्होभ्युपयन्नपः । मुच्यते पातकैः सर्वैस्त्रिर्ज्जपित्वाघमर्षणम् । २५९ ।
यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनः । तथाघमर्षणं सूक्तं सर्वपापापनोदनम् । २६० ।
हत्वा लोकानपीमांस्त्रीनश्नन्नपि यतस्ततः । ऋग्वेदन्धारयन्विप्रो नैनः प्राप्नोति किञ्चन । २६१ ।
ऋक्संहितान्त्रिरभ्यस्य यजुषाम्वा समाहितः । साम्नाम्वा सरहस्यानां सर्वपापैः प्रमुच्यते । २६२ ।
यथा महाह्रदम्प्राप्य क्षिप्तं लोष्टम्विनश्यति । तथा दुश्चरितं सर्वं वेदे त्रिवृति मज्जति । २६३ ।
ऋचो यजूंषि चान्यानि सामानि विविधानि च । एष ज्ञेयस्त्रिवृद्वेदो यो वेदैनं स वेदवित् । २६४ ।
आद्यं यत्त्र्यक्षरम्ब्रह्म त्रयी यस्मिन्प्रतिष्ठिता । स गुह्योन्यस्त्रिवृद्वेदो यस्तम्वेद स वेदवित् । २६५ ।

इति मानवे धर्म्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायामेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ *

छूटता है । १५८ । इंद्रियों को जीते हुए प्रति दिन प्रातः सायं मध्यान्ह काल में स्नान करत संते जल में तीन बेर ऋतंश्च सत्यं यह आघमर्षण सूक्त को जप करके सब पाप से छूटता है । २५९ । जिस प्रकार से सब यज्ञों का राजा अश्वमेध यज्ञ सब पाप को दूर करता है तिसी प्रकार से अघमर्षण सूक्त सब पाप को दूर करता है । २६० । तीनों लोक को हनन करके और जहां तहां भोजन करके ऋग्वेद को धारण करै तो कोई पाप को नहीं पाता है । २६१ । निश्चिंत होकर ऋग्वेद यजुर्वेद साम वेद की संहिता में से कोई एक संहिता को तीन बेर अभ्यास करके सब पाप से छूटता है । २६२ । जिस प्रकार से अगाध जल में माटी का ढेला डाले तो जलदी नष्ट होता है तिसी प्रकार से सब पाप तीनों वेद के पाठ में डूबता है । २६३ । इस बात को जो जानै सो वेद जानने वाला कहाता है । २६४ । सब वेदों का आदि तीन अक्षर वाला सब वेद का सार अपने में सब वेदों के स्थापन करने वाला जो ओंकार है उस को जानै सो वेद जानने वाला कहाता है । २६५ ॥ * ॥ इति श्री मनुस्मृति भाषा टीकायां कुल्लुक भट्ट व्याख्या ऽनुसारिण्यां श्री बाबू देवीदयाल सिंह कारितायां श्री कम्पनी संस्कृत पाठशालीय गुलजार शर्म्म पण्डित कृतायामेकादशोऽध्यायः । ११ । * * * * * * *

सब ऋषि लोग भृगु ऋषि से कहते हैं कि हे पाप रहित भृगु ऋषि आप ने विधि पूर्वक चारों वर्णों के धर्म्म को कहा अब हम सबों के शुभाशुभ कर्म्म फलों को विधि पूर्वक कहिए । १ । धर्म्मात्मा मनु के पुत्र भृगु ऋषि उन महर्षियों से बोले कि हे ऋषि लोग संपूर्ण कर्म योग के निर्णय को हम से सुनिए । २ । मन देह वाणी से उत्पन्न शुभाशुभ वाला जो कर्म है उस्से उत्पन्न मनुष्यों की गति उत्तम मध्यम अधम होती है । ३ । आगे जो दश लक्षण कहेंगे उस्से युक्त देह धारण करने वाला पुरुष का मन देह वाणी से उत्तम मध्यम अधम कर्म में प्रवृत्ति करने वाला मन को जानो । ४ । पर द्रव्य में ध्यान मन से अनिष्ट चिन्तन नास्तिकपना यह तीन प्रकार के मानस (अर्थात् मन से उत्पन्न) कर्म हैं । ५ । अप्रिय कथन असत्य भाषण पर दोष कथन प्रयोजन रहित बोलना यह चार प्रकार का वाचिक (अर्थात् वाणी से उत्पन्न) कर्म है । ६ । बिना दिई वस्तु का ग्रहण करना बिना विधि के जीव मारना पर स्त्री के साथ रति करना यह तीन प्रकार का शारीर (अर्थात् शरीर से उत्पन्न) कर्म हैं । ७ । शरीर से उत्पन्न शुभाशुभ कर्म के फल को क्रम से मन वाणी शरीर से देही पुरुष भोग करता है । ८ । शरीर वाणी मन से उत्पन्न कर्म करके क्रम से स्थावर (अर्थात् जो चल न सकै) पक्षी और पशु अंत्य जाति (अर्थात् चाण्डाल आदि) इन्हों के

चातुर्वर्ण्यस्य कृत्स्नोयमुक्तो धर्म्मस्त्वयानघ । कर्म्मणां फलनिर्वृत्तिं शंसनस्तत्वतः पराम् । १ ।
सतानुवाच धर्म्मात्मा महर्षीन्मानवो भृगुः । अस्य सर्वस्य शृणुत कर्म्मयोगस्य निर्णयम् । २ ।
शुभाशुभफलङ्कर्म्म मनोवाग्देहसम्भवम् । कर्मजागतयोनॄणामुत्तमाधममध्यमाः । ३ ।
तस्येह त्रिविधस्यापि त्र्यधिष्ठानस्य देहिनः । दशलक्षणयुक्तस्य मनोविद्यात्प्रवर्तकम् । ४ ।
परद्रव्येष्वभिध्यानम्मनसानिष्टचिन्तनम् । वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधङ्कर्म मानसम् । ५ ।
पारुष्यमनृतञ्चैव पैशून्यञ्चापि सर्वशः । असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् । ६ ।
अदत्तानामुपादानं हिंसाचैवाविधानतः । परदारोपसेवा च शारीरन्त्रिविधं स्मृतम् । ७ ।
मानसम्मनसैवायमुपभुङ्क्ते शुभाशुभम् । वाचा वाचाकृतङ्कर्म कायेनैव च कायिकम् । ८ ।
शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतान्नरः । वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम् । ९ ।
वाग्दण्डोथ मनोदण्डः कायदण्डस्तथैव च । यस्यैते निहिताबुद्धौ त्रिदण्डीति स उच्यते । १० ।
त्रिदण्डमेतन्निक्षिप्य सर्वभूतेषु मानवः । कामक्रोधौ तु संयम्य ततस्सिद्धिन्नियच्छति । ११ ।
योस्यात्मनः कारयिता तं क्षेत्रज्ञम्प्रचक्षते । यः करोति तु कर्माणि स भूतात्मोच्यते बुधैः । १२ ।
जीवसंज्ञोंतरात्मान्यः सहजः सर्वदेहिनाम् । येन वेदयते सर्वं सुखं दुःखञ्च जन्मसु । १३ ।
तावुभौ भूतसम्पृक्तौ महान् क्षेत्रज्ञ एव च । उच्चावचेषु भूतेषु स्थितन्तम्व्याप्य तिष्ठतः । १४ ।
असंख्या मूर्तयस्तस्य निष्पतंति शरीरतः । उच्चावचानि भूतानि सततञ्चेष्टयन्ति याः । १५ ।

भाव को प्राप्त होता है । ९ । जिसका वाणी मन शरीर ये सब क्रम से निषिद्ध कथन असत्संकल्प निषिद्ध व्यापार इन्हों को त्याग किए हैं वही त्रिदण्डी कहाता है क्योंकि दमन से दंड कहाता है तीन से तीनों वस्तु का दमन किया इस लिये वह त्रिदण्डी है । १० । संपूर्ण जीवों में इन तीनों दंड को (अर्थात् मनो दंड काय दंड वाणी दंड को) स्थापन करके काम क्रोध को रोकके सिद्धि को पाता है । ११ । शरीर को कर्म में प्रवृत्ति कराने वाला क्षेत्रज्ञ कहाता है और जो कर्म करता है सो भूतात्मा (अर्थात् शरीर) कहाता है यह बात पण्डित लोग कहते हैं । १२ । सर्व देह वालों के साथ उत्पन्न अंतरात्मा जीव नाम वाला जिस को महत् कहते हैं सो भिन्न है जिस्से जन्म में संपूर्ण सुख दुःख को क्षेत्रज्ञ अनुभव करता है (अर्थात् सुख दुःख को भोग करता है) । १३ । महत्तत्व और क्षेत्रज्ञ ये दोनों पृथिवी आदि पंच महाभूतों करके ऊंच नीच योनि में परमात्मा को पकड़ के रहते हैं । १४ । परमात्मा के शरीर से ऊंच नीच योनि में स्थित देह को सदा कर्म में प्रेरण करने वाले असंख्य मूर्ति (अर्थात् जीव) निकलते हैं । १५ । * * * * * * * *

परलोक में पापियों के दुःख भोग करने के लिये पृथिवी आदि पांच भूतों के भाग (अर्थात् अंश) से एक दूसरी ध्रुव शरीर (अर्थात् लिङ्ग शरीर) उत्पन्न होती है। १६। उस शरीर से यम की यातना (अर्थात् तीव्र वेदना) को अनुभव करके (अर्थात् दुःख भोग करके) वह शरीर जिस्से उत्पन्न हुई है उसी में लीन हो जाती है (अर्थात् पृथिवी आदि पांच भूतों से निकले रहे जो अंश सो पांचो भूतों में मिल जाते हैं)। १७। लिङ्ग शरीर में स्थित जीव विषय संग से उत्पन्न पाप को भोग करके निष्पाप होके बड़े पराक्रम वाले महान् और परमात्मा इन दोनों की आश्रय करता है। १८। आलस्य रहित महान् और परमात्मा ये दोनों साथ होकर जिस धर्म और अधर्म से युक्त जीव इस लोक में और परलोक में सुख और दुःख को पाता है उस धर्म को और भोग से बचे हुए पाप को बिचारते हैं। १९। जब जीव बहुत धर्म को करता है और थोड़ा पाप को करता है तब परलोक में सुख को पाता है। २०। और जब बहुत पाप को करता है और थोड़ा धर्म को करता है तब परलोक में दुःख को पाता है। २१। यम की यातना को भोगकर पाप से रहित होकर फेर जहां से उत्पन्न है लिङ्ग शरीर तिस में फेर विभाग से प्रवेश करता

पञ्चभ्य एव मात्राभ्यः प्रेत्य दुष्कृतिनान्नृणाम्। शरीरं यातनार्थीयमन्यदुत्पद्यते ध्रुवम्। १६।

तेनानुभूयता यामीः शरीरेणेह यातनाः। तास्वेव भूतमात्रासु प्रलीयंते विभागशः। १७।

सोनुभूयासुखोदर्कान्दोषान्विषयसङ्गजान्। व्यपेत कल्मषोभ्येति तावेवोभौ महौजसौ। १८।

तौ धर्मम्पश्यतस्तस्य पापञ्चातंद्रितौ सह। याभ्याम्प्राप्नोति सम्पृक्तः प्रेत्येह च सुखासुखम्। १९।

यद्याचरति धर्मं स प्रायशो धर्ममल्पशः। तैरेवचावृतो भूतैः स्वर्गे सुखमुपाश्नुते। २०।

यदि तु प्रायशोऽधर्मं सेवते धर्ममल्पशः। तैर्भूतैस्सपरित्यक्तो यामीः प्राप्नोति यातनाः। २१।

यामीस्ता यातनाः प्राप्य स जीवो वीतकल्मषः। तान्येव पंचभूतानि पुनरप्येति भागशः। २२।

एता दृष्ट्वास्य जीवस्य गतीः स्वेनैव चेतसा। धर्मतोधर्मतश्चैव धर्मे दध्यात्सदा मनः। २३।

सत्वंरजस्तमश्चैव त्रीन्विद्यादात्मनो गुणान्। यैर्व्याप्येमान्स्थितोभावान्महान्सर्वानशेषतः। २४।

यो यदैषां गुणो देहे साकल्येनातिरिच्यते। स तदा तद्गुणप्रायन्तङ्करोति शरीरिणम्। २५।

सत्वं ज्ञानन्तमोऽज्ञानं रागद्वेषौ रजः स्मृतम्। एतद्व्याप्तिमदेतेषां सर्वभूताश्रितम्वपुः। २६।

तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किञ्चिदात्मनि लक्षयेत्। प्रशान्तमिव शुद्धाभं सत्वन्तदुपधारयेत्। २७।

यत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः। तद्रजोऽप्रतिघं विद्यात्सततं हारिदेहिनाम्। २८।

यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तं विषयात्मकम्। अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत्। २९।

त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां यः फलोदयः। अग्र्यो मध्यो जघन्यश्च तम्प्रवक्ष्याम्यशेषतः। ३०।

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धर्मक्रियात्मचिन्ता च सात्विकङ्गुणलक्षणम्। ३१।

है। २२। अपने चेत से इस जीव की यह गति देखके सर्व काल धर्म में मन का योग करै। २३। सत्व रज तम यह तीनों आत्मा जो महत्तत्व उस के गुण हैं जिन गुणों से व्याप्त होके सब वस्तु में महान् स्थित है। २४। तीनों गुणों में से जो गुण अधिक जिस शरीर में है उस शरीर को तद्गुण प्राय (अर्थात् बहुत उस गुण वाला) वह गुण करता है। २५। सत्व ज्ञान है तम अज्ञान है राग (अर्थात् इष्ट वस्तु में अभिलाषा) द्वेष (अर्थात् अनिष्ट वस्तु में रोष) ये दोनों रज हैं इन तीनों गुणों से संपूर्ण जगत् व्याप्त है। २६। जब आत्मा को प्रीति संयुक्त प्रशांत शुद्ध स्वरूप देखै तब सत्य गुण को जानै। २७। जब आत्मा को दुःख संयुक्त अप्रसन्न देखै तब रजो गुण को जानै वह रजो गुण सर्व शरीर वाले को दुर्निवार है। २८। जब आत्मा को मोह संयुक्त विषय स्वरूप अप्रकट देखै तब तमो गुण को जानै वह तमो गुण तर्क के योग्य नहीं है और जानने के योग्य नहीं है। २९। इन तीनों गुणों का जो फलोदय श्रेष्ठ मध्यम नीच है इन सब को हम कहेंगे। ३०। वेदाभ्यास तप ज्ञान पवित्रता इंद्रियों का जीतना धर्म क्रिया आत्म चिंता ये सब सत्व गुण के लक्षण हैं। ३१। * * * * * * * * *

वस्तु के आरंभ में रुचि अधीरता असत्कार्य्यग्रहण सदा विषय सेवा ये सब रजो गुण के लक्षण हैं । ३२ । लोभ स्वप्न अधीरता कठोरता नास्तिकपना अनाचारता मांगना अनवधानता ये सब तमो गुण के लक्षण हैं । ३३ । भूत भविष्य वर्तमान यह तीनों काल में रहने वाले तीनों गुणों का संक्षेप करके क्रम से गुण लक्षण यह जानने योग्य है । ३४ । जो कर्म करके और करत संते और करने की इच्छा करत संते लज्जा को प्राप्त पुरुष हो उस कर्म को तामस गुण लक्षण पण्डित लोग जानैं । ३५ । इस लोक में जिस कर्म करके बड़ी प्रसिद्धता होने की इच्छा करता है और असम्पत्ति में शोक नहीं करता है उस कर्म को राजस गुण लक्षण जानैं । ३६ । जो कर्म वेदार्थ को सर्वात्म करके जानने की इच्छा करता है और जिस कर्म को करत संते लज्जा नहीं होती और जिस कर्म करके पुरुष की आत्मा सन्तुष्ट होती है उस कर्म को सत्व गुण लक्षण जानैं । ३७ । तमो गुण का लक्षण काम है रजो गुण का लक्षण अर्थ है सत्व गुण का लक्षण धर्म है इन्हों में उत्तर उत्तर श्रेष्ठ हैं । ३८ । जिस गुण करके जिस गति को जीव पाता है उन संपूर्ण जगत के गति को संक्षेप से मैं कहूंगा । ३९ । सत्व गुण वाले देव भाव को रजो गुण वाले मनुष्य भाव को तमो गुण वाले तिर्यग भाव (अर्थात् तिरछा चलने वाले के भाव) को प्राप्त होते हैं यह तीन प्रकार की गति हैं । ४० । सत्व आदि तीन गुण करके तीन

आरम्भरुचिताधैर्य्यमसत्कारपरिग्रहः । विषयोपसेवा चाजस्रं राजसं गुणलक्षणम् । ३२ ।
लोभः स्वप्नो धृतिः क्रौर्य्यन्नास्तिक्यम्भिन्नवृत्तिता । याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम् । ३३ ।
त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां त्रिषु तिष्ठताम् । इदं सामासिकं ज्ञेयं क्रमशो गुणलक्षणम् । ३४ ।
यत्कर्म कृत्वा कुर्वंश्च करिष्यंश्चैव लज्जति । तज्ज्ञेयं विदुषा सर्वं तामसङ्गुणलक्षणम् । ३५ ।
येनास्मिन्कर्मणा लोके ख्यातिमिच्छति पुष्कलाम् । न च शोचत्यसम्पत्तौ तद्विज्ञेयं तु राजसम् । ३६ ।
यत्सर्वेणेच्छति ज्ञातुं यन्न लज्जति चाचरन् । येन तुष्यति चात्मास्य तत्सत्वगुणलक्षणम् । ३७ ।
तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्वर्थ उच्यते । सत्वस्य लक्षणन्धर्मः श्रैष्ठ्यमेषां यथोत्तरम् । ३८ ।
येन यंस्तु गुणेनैषां संसारान्प्रतिपद्यते । तान्समासेन वक्ष्यामि सर्वस्यास्य यथाक्रमम् । ३९ ।
देवत्वं सात्विका यांति मनुष्यत्वञ्च राजसाः । तिर्य्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः । ४० ।
त्रिविधा त्रिविधैषा तु विज्ञेया गौणिकी गतिः । अधमा मध्यमाग्र्या च कर्म विद्या विशेषतः । ४१ ।
स्थावराः कृमिकीटाश्च मत्स्याः सर्पाः सकच्छपाः । पशवश्च मृगाश्चैव जघन्या तामसी गतिः । ४२ ।
हस्तिनश्चतुरंगाश्च शूद्रा म्लेच्छाश्च गर्हिताः । सिंहा व्याघ्रा वराहाश्च मध्यमा तामसी गतिः । ४३ ।
चारणाश्च सुपर्णाश्च पुरुषाश्चैव दांभिकाः । रक्षांसि च पिशाचाश्च तामसीषूत्तमा गतिः । ४४ ।
झल्ला मल्ला नटाश्चैव पुरुषाः शस्त्रवृत्तयः । द्यूतपानप्रसक्ताश्च जघन्या राजसी गतिः । ४५ ।
राजानः क्षत्रियाश्चैव राज्ञां चैव पुरोहिताः । वादयुद्धप्रधानाश्च मध्यमा राजसी गतिः । ४६ ।
गंधर्वा गुह्यका यक्षा विबुधानुचराश्च ये । तथैवाप्सरसः सर्वा राजसीषूत्तमा गतिः । ४७ ।

प्रकार की गति जो कहा सो देश काल आदि भेद करके संसार का कारण कर्म भेद से अधम मध्यम उत्तम भेद करके फेर तीन प्रकार की गति जानना । ४१ । वृक्ष और छोटे बड़े कीड़े मछली सर्प कछुआ पशु मृग इन सब गति को तमो गुण की नीच गति जानना । ४२ । हाथी घोड़ा शूद्र म्लेच्छ सिंह व्याघ्र सूअर इन सब गति को तमो गुण की मध्यम गति जानना । ४३ । नट पक्षी कपट से धर्म करने वाले पुरुष राक्षस पिशाच इन गति को तमो गुण की उत्तम गति जानना । ४४ । व्रात्य क्षत्रिय से सवर्णा भार्या में उत्पन्न जो दशईं अध्याय में कह आए हैं झल्ल (अर्थात् लाठी से प्रहार करने वाले) मल्ल (अर्थात् बाहू से युद्ध करने वाले) नट (अर्थात् रङ्गावतारक रंग कहिए सभा उस का अवतारक कहिए बनाने वाला) शस्त्र से जीने वाले जूआ खेलने वाले मदिरा पीने वाले पुरुष इन सब गति को रजो गुण की नीच गति जानना । ४५ । राजा क्षत्रिय राजा का पुरोहित शास्त्रार्थ प्रिय कलह प्रिय पुरुष इन सब गति को रजो गुण की मध्यम गति जानना । ४६ । गंधर्व गुह्यक यक्ष देवतों के अनुचर (अर्थात् देवतों के पीछे चलने वाले विद्याधर आदि) अप्सरा इन सब गति को रजो गुण की उत्तम गति जानना । ४७ । * *

तपस्वी यती ब्राह्मण वैमानिक गुण (अर्थात् अप्सरा को छोड़कर पुष्पक विमान पर चढ़कर चलने वाले) नक्षत्र दैत्य इन सब गति को सत्व गुण की नीच गति जानना । ४८ । यज्ञ करने वाले ऋषि देवता वेद ध्रुव आदि ज्योतिर्गण वत्सर पितृगण साध्यगण इन इन सब गति को सत्व गुण की मध्यम गति जानना । ४९ । ब्रह्मा और संसार के उत्पन्न करने वाले सब प्रजापति धर्म महत्तत्व माया इन सब गति को सत्व गुण की उत्तम गति जानना । ५० । मन वाणी शरीर ये तीनों कर्म के साधन हैं (अर्थात् यही तीनों से कर्म होता है) इन्हीं के भेद से तीन प्रकार के कर्म सत्व रज तम भेद करके हुए फेर नीच मध्यम उत्तम भेद करके एक एक में तीन २ प्रकार से नव प्रकार के पञ्चभूत से उत्पन्न संपूर्ण संसार है उस को मैं ने देखाने के लिये कहा इस लिये जो नहीं कहा सो भी गति ग्रंथान्तरों से देखने के योग्य है । ५१ । नर में अधम मूर्ख पुरुष इंद्रियों के प्रसङ्ग से धर्म्म के त्याग से निंदित गति को पाते हैं । ५२ । इस लोक में क्रम से यह जीव जिस जिस कर्म करके जिस जिस योनि में जाता है उन सब को जानो । ५३ । बहुत वर्ष तक घोर नरक के भोग से पापों को दूरकर शेष पाप से महापातकी पुरुष इन संसारों को पाते हैं । ५४ । कुत्ता सूअर गदहा ऊंट गौ बकरा भेड़ा मृग पक्षी चाण्डाल पुक्कश इन्हीं की योनि में ब्राह्मण को मारने वाला जाता है । ५५ । छोटे बड़े

तापसा यतयो विप्रा ये च वैमानिका गणाः । नक्षत्राणि च दैत्याश्च प्रथमा सात्विकी गतिः । ४८ ।
यज्वान ऋषयो देवा वेदा ज्योतींषि वत्सराः । पितरश्चैव साध्याश्च द्वितीया सात्विकी गतिः । ४९ ।
ब्रह्मा विश्वसृजोधर्म्मो महानव्यक्तमेव च । उत्तमां सात्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिणः । ५० ।
एष सर्वः समुद्दिष्टस्त्रिप्रकारस्य कर्म्मणः । त्रिविधस्त्रिविधः कृत्स्नः संसारः सार्वभौतिकः । ५१ ।
इन्द्रियाणाम्प्रसङ्गेन धर्म्मस्यासेवनेन च । पापान्संयांति संसारानविद्वांसो नराधमाः । ५२ ।
यां यां योनिन्तु जीवोयं येन येनेह कर्म्मणा । क्रमशो याति लोकेऽस्मिंस्तत्तत्सर्वन्निबोधत । ५३ ।
बहून्वर्षगणान् घोरान्नरकान्प्राप्य तत्क्षयात् । संसारान्प्रति पद्यन्ते महापातकिनस्त्विमान् । ५४ ।
श्वशूकरखरोष्ट्राणां गोजाविमृगपक्षिणाम् । चाण्डालपुक्कशानाञ्च ब्रह्महा योनिमृच्छति । ५५ ।
कृमिकीटपतङ्गानां विड्भुजाञ्चैव पक्षिणाम् । हिंस्राणां चैव सत्वानां सुरापो ब्राह्मणो व्रजेत् । ५६ ।
लूताहिसरटानाञ्च तिरश्चाञ्चाम्बुचारिणाम् । हिंस्राणाञ्च पिशाचानां स्तेनो विप्रः सहस्रशः । ५७ ।
तृणगुल्मलतानाञ्च क्रव्यादान्दंष्ट्रिणामपि । क्रूरकर्म्मकृताञ्चैव शतशो गुरुतल्पगः । ५८ ।
हिंस्रा भवंति क्रव्यादाः कृमयोऽभक्ष्यभक्षिणः । परस्परादिनः स्तेनाः प्रेताऽन्त्यस्त्रीनिषेविणः । ५९ ।
संयोगम्पतितैर्गत्वा परस्यैव च योषितम् । अपहृत्य च विप्रस्वम्भवति ब्रह्मराक्षसः । ६० ।
मणिमुक्ताप्रवालानि हृत्वा लोभेन मानवः । विविधानि च रत्नानि जायते हेमकर्तृषु । ६१ ।

कीड़े पतंग विष्ठा के भोजन करने वाले पक्षी मारने का स्वभाव वाले (अर्थात् बाघ आदि) इन्हीं की योनि में सुरा पान करने वाला ब्राह्मण जाता है । ५६ । मकरी सर्प गिरगिट जलचर टेढ़े चलने वाले जीव पिशाच मारने का स्वभाव वाले जीव इन्हीं की योनि में सोना चोराने वाला ब्राह्मण हजारों बेर जाता है । ५७ । तृण (अर्थात् दूब आदि) गुल्म (अर्थात् स्कन्ध रहित) लता (अर्थात् गुडुचि आदि) कच्चौ मांस भोजन करने वाले (अर्थात् गिद्ध आदि) दंष्ट्री (अर्थात् सिंह आदि) क्रूर कर्म करके जिस की शोभा है (अर्थात् बाघ आदि इन्हीं की योनि में मातृगमन करने वाला सैकड़ों बेर जाता है । ५८ । जीव के मारने का स्वभाव वाले कच्चौ मांस भोजन योग्य (अर्थात् बिलार आदि) होते हैं भोजन योग्य जो बस्तु नहीं है उसके भोजन करने वाले छोटे कीड़े होते हैं महा पातकी को छोड़कर जो चोर है सो परस्पर मांस भोजन करने वाले होते हैं (अर्थात् वह उस की मांस को भोजन करता है और वह उस की मांस को भोजन करता है) चाण्डाल की स्त्री से रति करने वाला प्रेत होता है । ५९ । पतितों के साथ संयोग पर स्त्री सेवन ब्राह्मण का सोना चोराना इन्हीं में से कोई एक कर्म करके ब्रह्म राक्षस होता है । ६० । लोभ से मणि मोती मूङ्गा और नाना प्रकार के रत्न इन्हीं के हरण से सोनार होता है । ६१ । * * *

धान्य कांस जल मधु दूध रस घी इन्हों के हरण से क्रम करके मूसा हंस प्लव नाम वाला पत्ती दंश (अर्थात् बन की माछी) कौआ कुत्ता नेउर होता है । ६२ । मांस वपा (अर्थात् चरबी) तेल नून दही इन्हों के हरण से क्रम करके गिद्ध मद्गु (अर्थात् जल चर पत्ती) तैलपायिक पत्ती झींगुर बलाका पत्ती होता है । ६३ । कौशेय (अर्थात् कीड़ा के पेट में से जो सूत निकाला गया उस का वस्त्र) क्षौम (अर्थात् तीसी के त्वचा से बना वस्त्र) कपास के सूत से बना वस्त्र गौ गुड़ इन्हों के हरण से क्रम करके तित्तिर पत्ती मेंडुका क्रौंच गोह वाग्गुद (अर्थात् गेदुरा पत्ती) होता है । ६४ । शुभ गंध (अर्थात् कस्तूरी आदि) पत्र शाक (अर्थात् बथुआ आदि पत्र साग) सिद्धान्न (अर्थात् भात सतुआ आदि) असिद्धान्न (अर्थात् व्रीहि यव आदि) इन्हों के हरण से क्रम करके छुछुंदर मयूर श्वावित् साही होता है । ६५ । अग्नि गृहोपस्कर (अर्थात् सूप मूसर आदि गृह के उपयोगी बस्तु) लाल वस्त्र इन्हों के हरण से क्रम करके बकुला गृहकारी (अर्थात् बिलनी) चकोर होता है । ६६ । मृग और हाथी इन दोनों में से एक को हरण करके हुंड़ार होता है घोड़ा के हरण से बाघ होता है फल और मूल इन दोनों में से एक के हरण से बानर होता है स्त्री जल सवारी जो कहा है उस को छोड़कर पशु इन के हरण से क्रम करके भालू चातक पत्ती (अर्थात् पपीहा) ऊंट बकरा

धान्यं हृत्वा भवत्याखुः कांस्यं हंसो जलं प्लवः । मधुदंशः पयः काको रसं श्वा नकुलो घृतम् । ६२ ।
मांसं गृध्रो वपाम्मद्गुस्तैलन्तैलपकः खगः । चीरीवाकस्तु लवणं बलाका शकुनिर्दधि । ६३ ।
कौशेयं तित्तिरिर्हृत्वा क्षौमं हृत्वा तु दर्दुरः । कार्प्पासन्तान्तवं क्रौंचो गोधा गां वाग्गुदो गुडम् । ६४ ।
छुछुन्दरिश्शुभान् गंधान् पत्रशाकन्तु बर्हिणः । श्वावित्कृतान्नम्विविधमकृतान्नन्तु शल्यकः । ६५ ।
बको भवति हृत्वाग्निं गृहकारी ह्युपस्करम् । रक्तानि हृत्वा वासांसि जायते जीवजीवकः । ६६ ।
वृको मृगेभं व्याघ्रोऽश्वम्फलम्मूलन्तु मर्क्कटः । स्त्रीमृक्षः स्तोकको वारि यानान्युष्ट्रः पशूनजः । ६७ ।
यद्वा तद्वा परद्रव्यमपहृत्य बलान्नरः । अवश्यं याति तिर्यक्त्वं जग्ध्वा चैवाहुतं हविः । ६८ ।
स्त्रियोप्येतेन कल्पेन हृत्वा दोषमवाप्नुयुः । एतेषामेव जन्तूनाम्भार्य्यात्वमुपयान्ति ताः । ६९ ।
स्वेभ्यस्स्वेभ्यस्तु कर्म्मभ्यः च्युता वर्णा ह्यनापदि । पापान्संसृत्य संसारान् प्रेष्यतां यांति शत्रुषु । ७० ।
वान्ताश्युल्कामुखः प्रेतो विप्रो धर्म्मात्स्वकात् च्युतः । अमेध्यकुणपाशी च क्षत्रियः कटपूतनः । ७१ ।
मैत्राक्षज्योतिकः प्रेतो वैश्यो भवति पूयभुक् । चैलाशकश्च भवति शूद्रो धर्म्मात्स्वकात् च्युतः । ७२ ।
यथा यथा निषेवन्ते विषयान्विषयात्मकाः । तथा तथा कुशलता तेषान्तेषूपजायते । ७३ ।
तेऽभ्यासात्कर्म्मणान्तेषां पापानामल्पबुद्धयः । सम्प्राप्नुवंति दुःखानि तासु तास्विह योनिषु । ७४ ।
तामिस्रादिषु चोग्रेषु नरकेषु विवर्त्तनम् । असिपत्रवनादीनि बंधनच्छेदनानि च । ७५ ।
विविधांश्चैव संपीडाः काकोलूकैश्च भक्षणम् । करम्भवालुका तापान् कुंभीपाकांश्च दारुणान् । ७६ ।

होता है । ६७ । जो कुछ पराई द्रव्य है उस के हरण से और देवतों के अनिवेदित हवि के भोजन से अवश्य तिर्यग्भाव (अर्थात् टेढ़े चलने वाले जीव की योनि) को प्राप्त होता है । ६८ । स्त्री भी पूर्व कथित कर्म करके पूर्व कथित जीवों की स्त्री होती है । ६९ । आपत्काल के अभाव में चारो वर्ण अपने कर्मों से रहित होकर पाप योनि में जाके अपने शत्रुओं के दास होते हैं । ७० । अपने धर्म से रहित ब्राह्मण वमन (अर्थात् उलटी किई गई बस्तु) उस का भोजन करने वाला उल्का मुख नाम वाला प्रेत होता है अपने धर्म से रहित क्षत्रिय विष्ठा मुरदा भोजन करने वाला कटपूतन नाम वाला प्रेत होता है । ७१ । अपने धर्म से रहित वैश्य पीब भोजन करने वाला मैत्राक्ष ज्योतिक नाम वाला प्रेत होता है अपने धर्म से रहित शूद्र वस्त्र भोजन करने वाला प्रेत होता है । ७२ । विषय में आत्मा को लगाने वाला पुरुष जैसा जैसा विषयों को सेवन करता है तैसा तैसा विषयों में प्रवीण होता है । ७३ । छोटी बुद्धि वाले वे सब उपपाप कर्मों के अभ्यास से तिन तिन योनि में दुःख को पाते हैं । ७४ । चौथी अध्याय में कहे हुए जो तामिस्र असिपत्र बन बंधन छेदन आदि नरक में दुःख पाते हैं । ७५ । नाना प्रकार की पीड़ा पाते हैं कौआ उल्लू पत्ती इन्हों से भोजन किए जाते हैं तपे बालू के ताप को पाते हैं अति दारुण कुम्भी पाक के दुःख को भोग करते हैं । ७६ ।

नित्य ही बहुत दुःख वाली निषिद्ध योनि में उत्पत्ति शीत ताप से पीड़ा नाना प्रकार की भय इन सब को पाते हैं । ७७ । वारम्वार गर्भ में वास दारुण जन्म बंधन कष्ट पर की सेवा इन सब को पाते हैं । ७८ । बंधु और प्रिय इन्हों के साथ वियोग दुर्जनों के साथ वास द्रव्यार्जन का प्रयास द्रव्यनाश मित्र और शत्रु इन्हों की प्राप्ति इन सब को पाते हैं । ७९ । उपाय रहित वृद्ध अवस्था व्याधि से दुःख नाना प्रकार के क्लेश दुर्जय मृत्यु इन सब को पाते हैं । ८० । जिस जिस भाव से जिस जिस कर्म को सेवता है तैसी शरीर से तिस तिस फल को भोग करता है (अर्थात् सात्विक राजस तामस भाव करके स्नान दान योग आदि करै तो सत्वाधिक रजोधिक तमोधिक शरीर करके स्नान दान योग आदि कर्म के फल को भोग करता है । ८१ । कर्मों के फल का उदय संपूर्ण यह मैं ने कहा इस के अनंतर ब्राह्मण के मोक्षहित कर्म को जानो । ८२ । वेदाभ्यास तप ज्ञान इंद्रियों का संयम अहिंसा गुरु सेवा ये सब कर्म मोक्ष के हित बड़ा है । ८३ । इन सब कर्मों में कोई कर्म पुरुषों के मोक्ष के लिये अति हित हैं । ८४ । सब कर्मों में आत्म ज्ञान (अर्थात् अपने को चीन्हना) श्रेष्ठ है क्योंकि उसी से मोक्ष होता है । ८५ । पूर्व कथित वेदाभ्यास

संभवांश्च वियोनीषु दुःखप्रायासु नित्यशः । शीतातपाभिघातांश्च विविधानि भयानि च । ७७ ।
असकृद्गर्भवासेषु वासञ्जन्म च दारुणम् । बन्धनानि च कष्टानि परप्रेष्यत्वमेव च । ७८ ।
बंधुप्रियवियोगांश्च वासञ्चैव च दुर्ज्जनैः । द्रव्यार्ज्जनञ्च नाशञ्च मित्रामित्रस्य चार्ज्जनम् । ७९ ।
जराञ्चैवाप्रतीकारां व्याधिभिश्चोपपीडनम् । क्लेशांश्च विविधांस्तांस्तान्मृत्युमेव च दुर्ज्जयम् । ८० ।
यादृशेन तु भावेन यद्यत्कर्म्म निषेवते । तादृशेन शरीरेण तत्तत्फलमुपाश्नुते । ८१ ।
एष सर्वः समुद्दिष्टः कर्म्मणाम्वः फलोदयः । नैःश्रेयसकरङ्कर्म्म विप्रस्येदन्निबोधत । ८२ ।
वेदाभ्यासस्तपोज्ञानमिन्द्रियाणाञ्च संयमः । अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयसकरम्परम् । ८३ ।
सर्वेषामपि चैतेषां शुभानामिह कर्म्मणाम् । किञ्चित् श्रेयस्करतरं कर्म्मोक्तम्पुरुषम्प्रति । ८४ ।
सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानम्परं स्मृतम् । तद्ध्यग्र्यं सर्वविद्यानाम्प्राप्यते ह्यमृतन्ततः । ८५ ।
षणामेषान्तु सर्वेषां कर्मणाम्प्रेत्य चेह च । श्रेयस्करतरं ज्ञेयं सर्वदा कर्मवैदिकम् । ८६ ।
वैदिके कर्म्मयोगे तु सर्वाण्येतान्यशेषतः । अन्तर्भवन्ति क्रमशस्तस्मिंस्तस्मिन् क्रियाविधौ । ८७ ।
सुखाभ्युदयिकं कर्म नैःश्रेयसिकमेव च । प्रवृत्तञ्च निवृत्तञ्च द्विविधङ्कर्म्म वैदिकम् । ८८ ।
इह चामुत्र वा काम्यं प्रवृत्तङ्कर्म्म कीर्त्यते । निष्कामंज्ञानपूर्वन्तु निवृत्तमुपदिश्यते । ८९ ।
प्रवृत्तङ्कर्म्म संसेव्य देवानामेति साम्यताम् । निवृत्तं सेवमानस्तु भूतान्यत्येति पञ्च वै । ९० ।
सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि । समम्पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति । ९१ ।
यथोक्तान्यपि कर्माणि परिहाय द्विजोत्तमः । आत्मज्ञाने शमे च स्याद्वेदाभ्यासे च यत्नवान् । ९२ ।

आदि छः कर्मों में इस लोक में परलोक में वेदोक्त कर्म (अर्थात् आत्म ज्ञान) सर्व काल में मोक्ष के हित जानने योग्य है । ८६ । आत्म ज्ञान से पूर्व कथित पांचो कर्म हो जाते हैं । ८७ । वैदिक (अर्थात् वेदोक्त) कर्म दो प्रकार का है एक प्रवृत्त दूसरा निवृत्त सुख और अभ्युदय को देने वाला प्रवृत्त है (अर्थात् ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ से सुख देने वाला स्वर्गादि फल होता है परंतु संसार में फेर लेआता है इस लिये प्रवृत्त कहाता है) और निःश्रेयस (अर्थात् मोक्ष) उस के लिये जो कर्म सो नैःश्रेयसिक कहाता है (अर्थात् संसार में फेर नहीं लेआता) इस लिये निवृत्त कहाता है । ८८ । इस लोक में और पर लोक में कामना के लिये जो कर्म सो प्रवृत्त कहाता है ज्ञान पूर्वक जो कर्म सो निवृत्त कहाता है । ८९ । प्रवृत्त कर्म करने से देवतों के सम होता है निवृत्त कर्म करने से पृथिवी आदि पांच भूतों को जीतता है (अर्थात् इन्हों ही से शरीर होता है इन्हों के जीतने से पुनर्जन्म नहीं होता) । ९० । सब भूतों में अपनी आत्मा को और सब भूतों को अपनी आत्मा में देखत संते आत्मा का योग करने वाला पुरुष स्वाराज्य (अर्थात् ब्रह्म भाव) को पाता है । ९१ । ब्राह्मण यथोक्त कर्म (अर्थात् अग्निहोत्र आदि कर्म) को त्यागकर ब्रह्म ध्यान इंद्रियजय ओंकार उपनिषद आदि वेदाभ्यास इन्हों में यत्न करै । ९२ । * * *

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य के जन्म के सफल करने वाले आत्मज्ञान वेदाभ्यास आदि कर्म हैं परंतु ब्राह्मण को तो विशेष करके इस लिये उस कर्म को पाके कृत कृत्य होता है (अर्थात् करने योग्य बस्तु को कर चुकता है)। ९३। पितर देव मनुष्य इन्हों का वेद नित्य नेत्र है वेद और शास्त्र ये दोनों अशंक्य हैं और अप्रतर्क्य हैं (अर्थात् तर्क करने योग्य नहीं हैं) यह शास्त्र की मर्यादा है। ९४। वेद से बाहर जो स्मृति और दृष्टार्थ वाक्य (अर्थात् चैत्य बंदन से स्वर्ग होता है चैत्य कहिए चैतरा) और चार्वाक मत ये सब निष्फल हैं क्योंकि उन्हों का मूल वेद है वह सब तमोनिष्ठ हैं (अर्थात् तमो गुण से भरे हैं)। ९५। वेद से बाहर जो वाक्य है सो पुरुष की बनाई है इस लिये अनित्य है (अर्थात् उत्पत्ति विनाश सहित है) और अनित्य बस्तु का प्रमाण नहीं है और स्मृति आदि जो वाक्य है सो तो नित्य है क्योंकि उन्हों का मूल वेद है इस लिये उन्हों का प्रामाण्य है। ९६। चारो वर्ण तीनों लोक भिन्न भिन्न चारो आश्रम भूत भविष्य वर्त्तमान जो कुछ कर्म है सो सब वेद ही से प्रसिद्ध होता है। ९७। सत्व रज तम इन गुणों से उत्पन्न जो शब्द स्पर्श रूप रस गंध ये सब वेद ही से उत्पन्न होते हैं। ९८। नित्य ही सर्व जीव को धारण करने वाला जो वेद शास्त्र है सोई पुरुष को श्रेष्ठ पुरुषार्थ है यह मैं (अर्थात् भृगु) मानता हूं। ९९। सेना

एतद्धि जन्मसाफल्यं ब्राह्मणस्य विशेषतः। प्राप्यैतत्कृतकृत्यो हि द्विजो भवति नान्यथा। ९३।
पितृदेवमनुष्याणाम्वेदश्चक्षुः सनातनम्। अशक्यञ्चाप्रमेयञ्च वेदशास्त्रमितिस्थितिः। ९४।
या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः। सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठाहिताः स्मृताः। ९५।
उत्पद्यंते च्यवंते च यान्यतोन्यानि कानि चित्। तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च। ९६।
चातुर्वर्ण्यन्त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्। भूतं भव्यं भविष्यञ्च सर्वम्वेदात्प्रसिध्यति। ९७।
शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसो गंधश्च पञ्चमः। वेदादेव प्रसूयन्ते प्रसूतिर्गुणकर्मतः। ९८।
बिभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम्। तस्मादेतत्परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम्। ९९।
सेनापत्यञ्च राज्यञ्च दण्डनेतृत्वमेव च। सर्वलोकाधिपत्यञ्च वेदशास्त्रविदर्हति। १००।
यथा जातबलोवह्निर्दहत्यार्द्रानपि द्रुमान्। तथा दहति वेदज्ञः कर्मजन्दोषमात्मनः। १०१।
वेदशास्त्रार्थतत्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन्। इहैव लोके तिष्ठन्स ब्रह्मभूयायकल्पते। १०२।
अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठा ग्रंथिभ्यो धारिणो वराः। धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठा ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः।१०३
तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरम्परम्। तपसा किल्बिषं हन्ति विद्ययामृतमश्नुते। १०४।
प्रत्यक्षञ्चाऽनुमानञ्च शास्त्रञ्च विविधागमम्। त्रयं सुविदितं कार्य्यन्धर्मशुद्धिमभीप्सता। १०५।
आर्षन्धर्मोपदेशञ्च वेदशास्त्राविरोधिना। यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मम्वेद नेतरः। १०६।
नैःश्रेयसमिदं कर्म यथोदितमशेषतः। मानवस्यास्य शास्त्रस्य रहस्यमुपदिश्यते। १०७।

पति का कर्म राज्य दंड देना सर्व लोक का स्वामिता इन सब के योग्य वेद शास्त्र जानने वाला है। १००। जिस प्रकार से बढ़ी अग्नि गीले वृक्ष को दहन करती है तिस प्रकार से वेद जानने वाला अपने कर्म से उत्पन्न दोष को दहन करता है। १०१। वेद शास्त्र का मुख्य अर्थ जानने वाला कोई आश्रम में बास करत संते मोक्ष के योग्य होता है। १०२। जो कुछ नहीं जानता उस्से एक ग्रंथ पढ़ने वाला बड़ा है उस से पढ़े हुए को जो भूलता नहीं सो श्रेष्ठ है उस से पढ़े हुए का अर्थ जानने वाला बड़ा है उस से व्यवसायी (अर्थात् वेदोक्त कर्म करने वाला) बड़ा है। १०३। तप (अर्थात् अपना धर्म करना) विद्या (अर्थात् आत्म ज्ञान) ये दोनों ब्राह्मण के मोक्ष का श्रेष्ठ उपाय है क्योंकि तप से पाप को नाश करता है और विद्या से मोक्ष को पाता है। १०४। धर्म का तत्व जानने की इच्छा करने वाला पुरुष प्रत्यक्ष अनुमान नाना प्रकार शास्त्रोक्त शब्द इन तीनों प्रमाण को अच्छे प्रकार से जानैं। १०५। वेद और स्मृति इन दोनों को अच्छे तर्क से जो अनुसंधान करता है सोई धर्म को जानता है दूसरा नहीं। १०६। भृगु जी कहते हैं कि मोक्ष देने वाले संपूर्ण कर्म को मैं ने कहा अब इस शास्त्र की गुप्त बातें को कहता हूं। १०७। * * * * * * *

जो धर्म मैं ने नहीं कहा उस धर्म को श्रेष्ठ ब्राह्मण कहैं तो करना शंका न करना । १०८ । जिस ने संपूर्ण वेद को धर्म से पढ़ा वही श्रेष्ठ ब्राह्मण कहाता है क्योंकि वेद के प्रत्यक्ष करने में वही कारण है । १०९ । दश के ऊपर अथवा तीन के ऊपर ब्राह्मण समुदाय जो है सो परिषत कहाता है सो जिस धर्म को कहैं सो धर्म करना उस का लंघन न करना । ११० । तीनों वेद को एक शाखा को पढ़ने वाला श्रुति स्मृति से विरोध रहित न्याय शास्त्र को पढ़ने वाला मीमांसा धर्मशास्त्र निरुक्त इन सबों को जानने वाला ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ दश से ऊपर हों सो परिषत कहाता है । १११ । ऋग्यजुः साम इन तीनों वेद के शाखा को पढ़ने वाला और उस का अर्थ जानने वाला तीन ब्राह्मण धर्म के संशय को दूर करैं । ११२ । अर्थ सहित वेद को पढ़ने वाला और स्मृति पुराण मीमांसा न्याय इन सबों का अर्थ जानने वाला एक भी जिस धर्म को कहै सोई धर्म है दश सहस्र मूर्ख कहैं सो धर्म नहीं है । ११३ । व्रत और मंत्र इन्हों से रहित केवल जाति ही से जीने वाले हजार भी हों तो परिषत नहीं कहाते हैं । ११४ । तमोगुण से युक्त मूर्ख धर्म को न जानने वाला जो पाप का प्रायश्चित्त कहते हैं उस को वह पाप सौ टुकड़ा होके पहुंचता है । ११५ । भृगु जी कहते हैं कि हे ऋषियो आप लोगों से कल्याण देने वाला जो धर्म है उस को कहा इस धर्म से च्युत न हो

अनाम्नातेषु धर्मेषु कथं स्यादिति चेद्भवेत् । यं शिष्टा ब्राह्मणा ब्रूयुः स धर्मः स्यादशंकितः । १०८ ।
धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः स परिबृंहणः । ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः । १०९ ।
दशावरा वा परिषद्यन्धर्मम्परिकल्पयेत् । त्र्यवरा वापि वृत्तस्थास्तन्धर्मन्न विचारयेत् । ११० ।
त्रैविद्यो हैतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः । त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्याद्दशावरा । १११ ।
ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च । त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये । ११२ ।
एकोपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद्द्विजोत्तमः । स विज्ञेयः परोधर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः । ११३ ।
अव्रतानाममंत्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् । सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वन्न विद्यते । ११४ ।
यं वदंति तमोभूता मूर्खा धर्ममतद्विदः । तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तॄननुगच्छति । ११५ ।
एतद्वोऽभिहितं सर्वन्निःश्रेयसकरम्परम् अस्मादप्रच्युतो विप्रः प्राप्नोति परमाङ्गतिम् । ११६ ।
एवं स भगवान्देवो लोकानां हितकाम्यया । धर्मस्य परमङ्गुह्यं ममेदं सर्वमुक्तवान् । ११७ ।
सर्वमात्मनि सम्पश्येत्सच्चाऽसच्च समाहितः । सर्वं ह्यात्मनि सम्पश्यन्नाऽधर्मे कुरुते मनः । ११८ ।
आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम् । आत्मा हि जनयत्येषां कर्मयोगं शरीरिणाम् । ११९ ।
खं सन्निवेशयेत्खेषु चेष्टनस्पर्शनेनिलम् । पक्तिदृष्ट्योः परन्तेजः स्नेहे योगाश्च मूर्त्तिषु । १२० ।
मनसीन्दुं दिशः श्रोत्रे क्रांते विष्णुं बले हरम् । वाच्यग्निम्मित्रमुत्सर्गे प्रजने च प्रजापतिम् । १२१ ।
प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि । रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तम्पुरुषं परम् । १२२ ।

ब्राह्मण तो परम गति को पाता है । ११६ । लोक का हित करते संते भगवान देव ने इस प्रकार से परम गुह्य धर्म को हम से कहा । ११७ । निश्चिंत होके आत्मा में संपूर्ण को देखै इस को देखते संते अधर्म में मन को न करै । ११८ । संपूर्ण देवता आत्मा हैं आत्मा में संपूर्ण स्थित हैं संपूर्ण शरीर वाले के कर्म योग को आत्मा उत्पन्न करता है । ११९ । हृदय के आकाश में बाहर के आकाश को लीन करै चेष्टा और स्पर्श इन्हों के कारण भूत देह की वायु में बाहर की वायु को और उदर के तेज में बाहर के तेज को देह के जल में बाहर के जल को पृथिवी का भाग जो शरीर है उस में बाहर की पृथिवी को लीन करै (अर्थात् एक रूप करै) । १२० । मन में चंद्र को श्रोत्र में दिशा को पाद इंद्रिय में विष्णु को बल में हर को वाणी इंद्रिय में अग्नि को पायु (अर्थात् मार्ग) इन्द्रिय में मित्र को उपस्थ (अर्थात् लिंग भाग) इन्द्रिय में प्रजापति को लीन करै । १२१ । सबों का शासन करने वाला छोटे से भी छोटा सुवर्ण के समान कांति वाला स्वप्न की बुद्धि सदृश ज्ञान करके ग्रहण योग्य पुरुष जो है उस को सर्वोत्कृष्ट जानो । १२२ ।

* * * * * * *

मनु जी को कोई मनु कोई अग्नि कोई प्रजापति कोई इन्द्र कोई नित्य ब्रह्म कहते हैं। १२३। यह आत्मा संपूर्ण प्राणियों को पृथवी आदि पंच महा भूतों की मूर्ति करके व्यापित होके जन्म वृद्धि क्षय करके नित्य ही चक्र की नाईं संसरण करता है। १२४। इस रीति से जो पुरुष सब भूतों में आत्मा करके आत्मा को देखता है सो सब की समता को पाके उत्कृष्ट पद को पाता

एतमेते वदन्त्यग्निं मनुमेके प्रजापतिम्। इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्। १२३।
एष सर्वाणि भूतानि पंचभिर्व्याप्य मूर्तिभिः। जन्मवृद्धिक्षयैर्नित्यं संसारयति चक्रवत्। १२४।
एवं यः सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना। स सर्वसमतामेत्य ब्रह्माभ्येति परम्पदम्। १२५।
इत्येतन्मानवं शास्त्रं भृगुप्रोक्तं पठन् द्विजः। भवत्याचारवान्नित्यं यथेष्टां प्राप्नुयाद्गतिम्। १२६।

॥ इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

है। १२५। भृगु ऋषि का कहा हुआ मनु के शास्त्र को पठन करत संते नित्य ही आचार सहित ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य होते हैं और यथेष्ट गति को पाते हैं। १२६। इति श्री मनुस्मृति भाषा टीकायां कुल्लुक भट्ट व्याख्याऽनुसारिण्यां श्री बाबू देवीदयाल सिंह कारितायां श्री कम्पनी संस्कृत पाठ शालीय गुलज़ार शर्म्म पण्डित कृतायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥